कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में चित्रित सौन्दर्य तथा प्रेम - एक तुलनात्मक अध्ययन

{बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की पी.एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत}

***

शोध प्रबन्ध

***

शोध-निर्देशक
डॉ० जगदेव प्रसाद पाण्डेय
रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
अतर्रा पो.ग्रे. कालेज अतर्रा

शोध-कर्त्री
रीता पाण्डेय
अतर्रा

१९९५

—: प्रमाण पत्र :—

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री रीता पाण्डेय ने मेरे मार्गदर्शन में रहकर कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में चित्रित प्रेमः एक तुलनात्मक अध्ययन शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है। इस शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करने के लिऐ बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय के अधिनियम मे उल्लिखित २०० दिन उपस्थित रहने के नियम का पूर्ण परिपालन किया है। यह शोध प्रबन्ध उसकी मौलिकता का परिचायक है जिससे शोध जगत में एक नया आयाम उद्घाटित होगा ऐसा मेरा विश्वास है।

शोध निर्देशक

जगदेवप्रसाद पाण्डेय
5/6/96

डा० जगदेव प्रसाद पाण्डेय

(अध्यक्ष संस्कृत विभाग)

अतर्रा पी.जी.कालेज, अतर्रा

अनुक्रमणिका

भूमिका

पुराकवीनाम गणना प्रसंगे कनिष्ठकाधिष्ठित कालिदासः।

उक्त सूक्ति में सूक्तिकार ने कालिदास के समान कवियों का इसलिये प्रत्याख्यान किया है क्योंकि भारतीय चिन्तन मनीषा के महार्घ जीवन तथ्यों सत्यों का ऋक्थ रूप में कालिदास ने ही ग्रहण कर उनकी मार्मिक अभिव्यक्ति की है। परिवर्तित कवियों ने इस प्रकार की मंजुल प्रभविष्णुता और कान्ता सम्मित का अभाव जानकर ही कवियों को अनाम और गणना करने वाली अंगुली को अनामिका कहा है। वास्तव में वाल्मीकि और व्यासका सच्चा उत्तराधिकारी कालिदास ही है। ऐसी भारतीय मान्यता है परम्परा और तार्किक दृष्टि से विश्लेषण करें तो यह सहज ही कहा जा सकता है कि अनामिका में यदि प्रथम रूप में किसी कवि को गणनीय समझा जा सकता है तो वह भवभूति ही है क्योंकि काव्यशास्त्रीय जगत में एकमेव करुण रस की सार्वत्रिक उपस्थिति, प्रचलित राम कथा को नया आयाम देने कामशास्त्रीय दृष्टि से प्रेमकथा का विन्यास, संवेदना और शिल्प का जैसा शाश्वत् अभिन्न संबन्ध भवभूति के साहित्य में प्राप्त होता है। समूचे संस्कृत काव्य संसार में वह दुर्लभ है सारतः कालिदास कवि कुल या कविता कामनी के विलास है सरस्वती पुत्र है, तो भवभूति ऐसे कवि है कि सरस्वती उनकी परिचारिका बन कर उनके लेखनीके संकेत की प्रतीक्षा करती है इसीलिए शोधकर्त्री ने दोनों कवियों की तुलना करने के लिए सौंदर्य प्रेम को प्रमुख माप दण्ड बनाया है। बात यह है कि काव्य की अपेक्षा नाटक एक सामूहिक कला,श्रुति मधुर सर्वजन सुलभ और परमानन्द दायक होता है इसलिये आलोच्य नाटककारों के नाट्यविधा को लेकर उसमें वर्णित, जिजीविषाओं सौंदये काम और प्रेम का वर्णन करने वाले स्थलों का एतद दृष्टि से अनुशंसन किया जा रहा है। इस दृष्टि से समस्त शोध प्रबन्ध को षष्ठ अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय में कालिदास और भवभूति का सामान्य परिचय है। इस प्रसंग में कालिदास पर हुए अद्यावधि शोध कार्यों की पृष्ठ भूमि में कालिदास का जीवन परिचय, किंवदन्ती के रूप

में विद्योत्तमावृत्तान्त भोज प्रसंग,कुमारदास वृत का उल्लेख कर कालिदास की समस्त रचनाओं को प्रस्तुत कर अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीयम् और मालविकाग्निमित्रम् की कथावस्तु प्रस्तुत की गयी है।इसी तारतम्य में कृपण यजुर्वेद के तैत्तरीय शाखा के अनुयायी कश्यप गोत्रीय भवभूति की स्थिति काल और उनके कृतित्व का उल्लेख कर मालती माधव महावीर चरित्र और उत्तर रामचरित की कथा वस्तु प्रस्तुत की गयी है। इसी परिपेक्ष में आलोच्यनाटकों के सौन्दर्य सम्बन्धी स्थलों की विस्तृत व्याख्या एवं तुलना की गयी है।

द्वितीय अध्याय सौन्दर्य तथा प्रेम के तात्विक विवेचन से सम्बन्धित है। सौन्दर्य की व्युत्पत्ति भारतीय पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्रियों की परिभाषाओं, सौन्दर्य के विषयीगत आदि विविध पक्ष भौतिक वादी दृष्टिकोंण के साथ अध्यात्मवादी दृष्टिकोंण, भारतीय एवं यूरोपीय काव्यशास्त्र में सौन्दर्य के तत्व, सौन्दर्य एवं भारतीय काव्य सम्प्रदाय, दर्शन नैतिकता, सत्यं शिवम् सुन्दरम् एवं कल्पना के साथ सौन्दर्य का सम्बन्ध। काव्य में रसानुभूति सौन्दर्य एवं श्रृंगार, काम प्रेम एवं सौन्दर्य का अन्तः सम्बन्ध, प्रेम का स्वरूप, प्रेम की कला उसकी कोटियां इत्यादि का सैद्धान्तिक विवेचन विस्तृत रूप में किया गया है क्योंकि उक्त मानदण्ड ही आलोचना के आधार स्तम्भ हैं।

तृतीय अध्याय में कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में चित्रित सौन्दर्य का वस्तुगत एवं भावगत विश्लेषण किया गया है। आँगिक सौन्दर्य वर्णन हेतु पुरुष के वाहृय आँगिक विस्तार दृढ़ता, तेजस्विता के साथ स्त्रियों के आँगिक सौन्दर्य में केश, मुख,भौंह, नेत्र, कपोल, अधर, दन्त, वाहु, स्तन, कटि, नितम्ब, श्रोणि, चरण आदि का तुलनात्मक विवेचन कर सूक्ष्म सौन्दर्य हेतु कान्ति, दीप्ति, तरलता, यौवनोन्माद, लज्जा, वीर्यक्षोभ क्षमता, आन्तरिक सौन्दर्य आदि की दृष्टि से कालिदास और भवभूति की तुलना की गयी है।

चतुर्थ अध्याय में कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में चित्रित प्रेम का स्वरूप निर्धारण किया गया है। प्रारम्भ में आलोच्य नाटककारों की प्रेम विषयक उच्चावच्य दृष्टि का विवेचन करते हुए दाम्पत्य प्रेम, प्रथमानुराग, प्रेम प्रादुर्भाव हेतु प्रथम दर्शन एवं साहचर्य की स्वीकृति प्रेमी के विशिष्ट गुण एवं आलोच्य नाटकों में काम एवं प्रेम के विविध चित्रों का काव्यशास्त्रीय,

काम शास्त्रीय और मनोविज्ञान के मानदण्डों के आधार पर सम्यक समीक्षा करते हुए आलोच्य नाटककारों के प्रेमगत साम्य वैषम्य का वर्णन किया गया है ।

पंचम अध्याय में आलोच्य नाटककारों के नाटकों में संयोग श्रृंगार संबंधी स्थलों का काव्यशास्त्रीय दृष्टि से परीक्षण किया गया है श्रृंगार रस की व्युत्पत्ति चर्तुर भेदों के साथ संयोग और वियोग का विस्तृत वर्णन, आलम्बन विभाव के रूप में पुरूरवा, अग्निमित्र, दुष्यंत, माधव, राम, शकुन्तला, उर्वशी, मालविका, सीता इत्यादि का चरित्र चित्रांकन एवं उद्दीपन विभाव का शास्त्रीय विश्लेषण करते हुए कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में प्रकृतिगत उद्दीपन स्थलों की सम्यक परीक्षा की गयी है । काव्य-शास्त्र में कायिक, वाचिक, सात्विक, अनुभावों के साथ श्रृंगार रस से संबंधित आवेग दैन्य, श्रम, मद, जड़ जड़ता, मोह, विवोध, स्वप्न, गर्व, अवहित्था, औत्सुम्य, उन्माद मति, व्याधि, हर्ष, चपलता, चिंता, आदि संचारी भावों का उल्लेख किया गया है इसी तारतम्य में आलोच्य नाटककारों में चित्रित संयोग श्रृंगार के विविध पक्ष - काम चेष्टायें, संभोग, मिलन, सुरति विलास वर्णन, इत्यादि का गहन और तात्विक विश्लेषण किया गया है

षष्ठ अध्याय विवेच्य नाटककारों के नाटकों में विप्रलम्भ श्रंगार से संबंधित है । प्रारम्भ में विप्रलम्भ श्रंगार का शास्त्रीय रूप, काव्य में उसकी महत्ता पूर्वराग मान प्रवास करूण आदि भेदों का सैद्धांतिक निरूपण कर आलोच्य नाटकों में चित्रित एतद् संबंधी स्थलों का साहित्यक विवेचन किया गया है । यहां यह स्मरणीय है कि काव्यशास्त्र में विप्रलम्भ श्रंगार की अभिव्यक्ति के लिए स्वीकृत काम दशाओं में अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, उन्माद, जड़ता इत्यादि के उदाहरण नाटकों से दिये गये हैं । इसके अतिरिक्त नाटकों में विरह की विभिन्न स्थितियां अरूचि, विवशता, तन्मयता, संताप, कृशता, वैकल्य को आधार बनाकर विरह संबंधी स्थलों का भी परीक्षण किया गया है ।

अंत में विरह वर्णन का वैशिष्ट्य - भाव व्यंजना एवं संचारीभाव , मौन व्यंजना, आत्मदशा की अरन्तुद वेदना प्रकृति के साथ तादाम्य उपालम्भ प्रेम प्रेषण इत्यादि दृष्टि से इस वियोग श्रंगार की समीक्षा की गयी है ।

शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करने में अपने निर्देशक डॉ0 जयदेव प्रसाद पाण्डेय [अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज अतर्रा का] सैद्धान्तिक एवं व्यवहार मार्गदर्शन पग-पग पर मुझे प्राप्त हुआ है। शोधकर्त्री अपनी कृतज्ञता एवं आभार हृदय से व्यक्त करती है

श्री राजाराम दीक्षित और डॉ0 ओंकारनाथ मिश्र प्रवक्ता संस्कृत विभाग अतर्रा कालेज अतर्रा के प्रति लेखिका अत्यन्त आभारी है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को इस रूप में उपस्थित करने का श्रेय डॉ0 वेद प्रकाश द्विवेदी [हिन्दी विभाग अतर्रा कालेज अतर्रा] को जाता है जिन्होंने सौन्दर्य शास्त्र को समझने के लिए एक नयी दृष्टि मुझे दी है उनके प्रति आभार व्यक्त करना बहुत ही औपचारिक हो जायेगा लेखिका उन विद्वानों और शोधकार्यों के प्रति अत्यन्त आभारी एवं चिरऋणी है जिनके अंशों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में [शब्दों] लेखिका ने ग्रहण कर शोध प्रबन्ध की भाषा को स्तरीय बनाने का यत् किंचित प्रयास किया है ।

मैं अतर्रा कालेज अतर्रा के पुस्तकालय अध्यक्ष श्री हीरालाल यादव की आभारी हूं कि उन्होंने मुझे उदारता पूर्वक पुस्तकों को उपलब्ध कराया है । श्री राकेश कुमार त्रिपाठी प्रवक्ता अंग्रेजी [सरस्वती इण्टर कालेज अतर्रा] का आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने प्रबन्ध लेखन की शाब्दिक त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया है मै अपने पिता श्री, माता एवं अपने पति श्री की विशेष आभारी हूं जिन्होंने मेरा समय-समय पर उत्साह वर्धन किया है ।

अन्त में मै श्रीमती अनुराधा द्विवेदी पत्नी [डॉ0 वेद प्रकाश द्विवेदी] को बड़े श्रद्धा एवं आदर के साथ स्मरण करती हूं जिन्हे समय-असमय कष्ट देकर मैने अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है ।

शोधकर्त्री Rita
रीता पाण्डेय

अतर्रा
दिनांक ....

अध्याय - १

{कालिदास एवं भवभूति का सामान्य परिचय}

कालिदास और भवभूति का सामान्य परिचय

(क) शोध अध्ययन की स्थिति, विस्तार एवं पूर्वकृत अध्ययन का उल्लेख :-

भारत के प्रतिष्ठा के दो मूल आधार स्तम्भ हैं - संस्कृति एवं संस्कृत । संस्कृत भाशा आसेतु हिमालय, भारतीयों की स्पन्दित भाषा है । प्राक्तन भारतीयों का चिन्तन मनन अन्वेषण, अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति का सफल सशक्त और अन्यतम साधन संस्कृत भाषा है । धर्म ग्रन्थ, पुराण, रामायण, महाभारत, स्मृति ग्रन्थ, दर्शन, साहित्य, व्याकरण, काम शास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, जयोतिष, ललित साहित्य सब ज्ञान विज्ञान की शाखायें इसी भाषा में प्राप्त होतीं हैं । संस्कृत भाषा को गीर्वाण या देववाणी कहकर सम्मानित किया गया है ।

पुरा कवीनाम् गणना प्रसंगे कनिष्ठकाधिष्ठित कालिदासः कहकर सूक्तिकार ने उनके समानधर्मा कवियों का प्रात्याख्यान किया है । बात यह है कि भारतीय चिन्तन मनीषियों ने जीवन के बहुविधि तथ्यों सत्यों का अनुसंधान आकलन कर जो महार्घ रत्न प्राप्त किये हैं । उन्हें ऋक्थ रूप में कालिदास ने ही जीवन्तता से ग्रहण कर उनकी प्रभविष्णु व्यंजना की है । इसीलिये निखिल विश्व समीक्षक उन्हें सार्वभौमिक सार्वजनीन सत्यों का कवि कहा है । शायद कालिदास के परवर्ती कवियों में इस प्रकार की कान्तासम्मिति अभिव्यक्ति का अभाव जानकर कवियों को अनाम और गिनती करनें वाली अंगुली को अनामिका कहा है । किन्तु न पक्तियों की लेखिका का विनम्र निवेदन है कि यदि अनामिका में किसी कवि को अधिष्ठित किया जा सकता है, कवि अपने मूल अर्थ में जिनके लिये सार्थक हो सकता है वह निश्चय ही मेरी दृष्टि में कवि नाटककार भवभूति ही होगा क्योंकि काव्य शास्त्रीय जगत में एकमेव करुण रस की सर्वत्र उपस्थिति एवम् पुरागाथा के रूप में प्रचलित राम कथा को नये आयाम देने के साथ ही मालतीमाधवम् के रूप में जिस प्रेम कथा का विन्यास किया है, संवेदना और भाषा का जैसा शाश्वत अभिन्न सम्बन्ध भवभूति ने दिखाया है समूचें संस्कृत काव्य संसार में वह दुलर्भ है । कहना नहीं होगा कि कालिदास कविकुलगुरू या कविता कामिनी के विलास हैं । सरस्वती के पुत्र हैं जबकि भवभूति अनामिका में स्थिति होने वाले ऐसे कवि हैं वाणी उनकी परिचारिका बनकर उनकी लेखनी के संकेत की प्रतीक्षा करती है ।

संस्कृत के प्रमुख इतिहास ग्रन्थों नाटकों के उद्भव विकास सम्बन्धी ग्रन्थों, शोध प्रबन्धों एवम् कालिदास की कृतियों के सम्पादनों तथा भवभूति के ग्रन्थों के सम्पादनों एवं विविध शोध सन्दर्भो में कालिदास एवं भवभूति पर बहुत कुछ लिखा-पढ़ा जा चुका है । जन्म स्थान, जीवन

परिचय कामशास्त्रीय मापदण्डों-रस ध्वनि, वक्रोक्ति अलंकार की दृष्टि से प्रस्तुत आलोच्य दोनों नाटककारों का अलग-अलग अध्ययन हुआ है ।

काव्य अपने आप में श्रुति मधुर रस पेशल सर्वजन सुलभ और परमानन्द दायक होता है किन्तु नाटक उससे अधिक रमणीयतर स्वीकार्य किया गया है । क्यों कि संगीत काव्य ललित कलाओं का मंजुल सफल संयोजन नाटकों में ही होता हैं । बहुत विस्तार से पिष्ट पेषण न करते हुए सारतः यह कहा जा सकता है कि नेत्र इन्द्रिय सन्निकर्ष से उत्पन्न हार्दिकता, मनोरंजक्ता एवं भावाभिव्यंजक्ता नाटकों के माध्यम से अधिक सफल होती है । इसीलिए शोधकर्त्री ने नाटक काव्य रूप के आधार पर कालिदास और भवभूति का तुलनात्मक अध्ययन सौन्दर्य तथा प्रेम के आधार पर किया है ।

कालिदास और भवभूति दोनों ऐसे ही नाटककार है जिन्होंने अपनी रचनाओं से लौकिक वेयस से निश्रेयस प्राप्त का सोपानबद्ध वर्णन किया है उन्होंने मानवमन की जिजिविषाओं, अभिलाषा इच्छाओं को समझ कर सौन्दर्यरस की चर्वणा करते हुए उसे आध्यात्मिक रूप में प्रतिष्ठित किया है । दोनो नाटककारों ने आसक्ति से अनासक्ति तक, राग से विराग तक, संयोग से वियोग तथा पुर्नभव से परमानन्द की अभिव्यक्ति अपने नाटकों में वर्णित किया है । यहाँ आलोच्य दोनो नाटककारों का सामान्य जीवन परिचय रचनायें और आलोच्य नाटकों की संक्षिप्त कथावस्तु देकर सौन्दर्य और प्रेम सम्बन्धी स्थलों का अनुशसदन किया जायेगा ।

कालिदास का सामान्य परिचय[1] :-

महाकवि कालिदास यद्यपि भारत में पैदा हुये किन्तु उनकी प्रतिभा की अमिट छाप जिस प्रकार अपने देशवासियों के हृदय में अंकित है उसी प्रकार विश्व का संस्कृत प्रेमी समाज भी उनसे प्रभावित है सैकड़ों वर्षो पूर्व से भारत के विभिन्न प्रान्तों में कालिदास की स्मृति में भाँति-भाँति के उत्सव आयोजित होते आये है । उनके प्रति भारतीय जनता में एक समान आदरभाव रहा है । यह परम सौभाग्य का विषय है कि उनका राष्ट्रीय सम्मान भी दिया जाने लगा है और उनको अपने देश के अतीत गौरव का प्रतीक स्वरुप स्मरण किया जाने लगा है ।

1. विस्तृत अध्ययन हेतु डॉ0 कपिल देव द्विवेदी, डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल, बल्देव उपाध्याय, वाचस्पति गैरोला, चन्द्रशेखर पाण्डेय, डॉ0 मिराशी, डॉ0 भगवत शरण उपाध्याय, इत्यादि विद्वानों की एतद् सम्बन्धी पुस्तकें द्रष्टव्य है ।

जहाँ तक उनकी जन्म भूमि का प्रश्न है कि कुछ विद्वानों ने बंगाली, कुछ ने कश्मीरी, कुछ ने विदिशा और कुछ लोग उन्हें उज्जयिनी का मानते है । किन्तु इन सभी मन्तव्यों का अनुशीलन करने पर यह सिद्ध होता है कि कालिदास उज्जैनी के निवासी थे ।

उज्जैनी के प्रति कालिदास के हार्दिक मोह को देखते हुए यह मानना युक्ति संगत है जान पड़ता है कि इनका जन्म वही हुआ था क्योंकि आगे चलकर उज्जैनी के अधिश्वर विक्रमादित्य के आश्रय में कालिदास के रहने के लिए जो युक्तियाँ प्रस्तुत की गयी है उनसे यह स्पष्ट हो रहा है कि कालिदास की जन्म भूमि उज्जैनी ही थी ।

महामहोपाध्याय वासुदेव मिरासी ने अपनी पुस्तक कालिदास के ग्रन्थों के आधार पर तत्सामयिक परिस्थितियों का विश्लेषण करके सिद्ध किया है कि रघुवंश के प्रथम सर्ग में महर्षि वशिष्ठ के आश्रम का पाँचवे सर्ग में वरतन्तु ऋषि के आश्रम का और अभिज्ञान शाकुन्तल के कण्व तथा मरिचि ऋषियों के आश्रम का वर्णन पढ़कर यह ज्ञात होता है कि कालिदास ने प्राचीन भारत के किसी गुरूकुल में रहकर विधिवत् अध्ययन किया अतः इनका जन्म स्थान भारत में ही माना जाता है इनके विषय में किवदन्तियाँ यह है -

विद्योत्तमा वृतान्त महाकवि कालिदास बाल्यकाल में अत्यन्त मूर्ख थे अपने समय की सर्वोत्तम ज्ञानगर्विता विद्योत्तमा नाम की एक राजकुमारी के साथ उनके विवाह का षडयंत्र रचा गया पंडितों ने मूक शास्त्र का आयोजन घोषित किया, विवाह के पश्चात् पत्नी के द्वारा तिरस्कृत होने पर कालिदास ने कालीदेवी की उपासना की और विद्या का वरदान प्राप्त कर घर लौटे कालिदास ने पत्नी "अनावृत कपाटं द्वारं देहि" (दरवाजा खोलो) कहा उत्तर में पत्नी ने कहा "अस्ति कश्चित् वाग विशेषः (वाणी में कुछ विशेषता आ गयी है) कालिदास पत्नी के इस वाक्य से इतने प्रभावित हुये कि उन्होंने उपर्युक्त वाक्य से तीन शब्दों को लेकर एक-एक से एक-एक काव्य की रचना कर डाली, अस्ति से कुमार संभव (अस्त्युत्तरस्यां दिशि., कु0 ।-।) कश्चित् से मेघदूत (कश्चित् कान्ताविरहगुरूणा, मे ।-।) वाग से रघुवंश (वागर्थाविव संपृक्तौ., रघु ।-।)

भोजवृत्त :-

किंवदत्ती है कि धारा के राजा भोज (1005 ई0 - 1054 ई0) के प्रधान कवि कालिदास थे राजा भोज संस्कृत भाषा के आश्रयदाता नरेशों में सर्वागणी है । 'भोजप्रबन्ध' ग्रन्थ

में राजा भोज और कालिदास की घनिष्ट मित्रता का उल्लेख है ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार आद्य शंकराचार्य के नाम से शंकराचार्य की गद्दीयाँ बनी और उन पर बैठने वाले संन्यासियों को शंकराचार्य कहा जाता है, उसी प्रकार आद्य कालिदास के नाम पर राज-कवियों को कालिदास कहने की परम्परा चल पड़ी । राजा भोज के आश्रित राज कवि 'पद्यगुप्त' या 'परिमल कालिदास' को भी इसी प्रकार कालिदास कहा गया हे, वे रघुवंश आदि के लेखक आद्य कालिदास नहीं है ।

कुमारदास - वृत्त :-

किंवदन्ती यह कि कालिदास का अन्तिम समय लंका के महाराज कुमारदास (500 ई0) के यहाँ बीता । वहाँ पर धन के लोभ में एक लालची वेश्या के हाथों उनकी हत्या हुई ।

अन्य परिचय :-

कालिदास के ग्रन्थों को देखने से यह ज्ञात होता है कि वे जन्मना ब्राह्मण थे और शिवभक्त थे, अन्य देवो के प्रतिउ नका आदर भाव था । रघुवंश और मेघदूत के वर्णनों से ज्ञात होता है कि उन्होंने भारत की विस्तृत यात्रा की थी । अतएव उनके भौगोलिक वर्णन सत्य स्वाभाविक और मनोरम हुए है उनका भौतिक जीवन सुखमय था । उन्हें आर्थिक कष्ट नहीं था, अतः उनके ग्रन्थों में धनहीनता या दारिद्रय का वर्णन नहीं मिलता है । उनका राजपरिवारों से संपर्क था । अतएव उन्हें राज-द्वारों और राजकीय जीवन का विस्तृत ज्ञान प्राप्त था । अपने जीवन काल में उन्हें विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हो गई थी । उन्होंने स्त्री-सौन्दर्य का वर्णन किया है किन्तु वे कामुकता और विषय वासनामय जीवन को श्रेयस्कर नहीं मानते । वे शारीरिक सौन्दर्य पर आश्रित प्रेम को वास्तविक प्रेम नहीं मानते अपितु हार्दिक और तपोमूलक प्रेम को ही प्रेम मानते है ।

उनके ग्रन्थों को देखने से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने वेदों, दर्शनो, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता पुराणों, आयुर्वेद, धनुर्वेद आदि का गंभीर अध्ययन किया था ।

राजकवियों को कालिदास कहने की परम्परा चल पड़ी थी सभी का उपनाम कालिदास था । कालिदास उपनाम वालो के भी कई ग्रन्थ है और वे सभी कालिदास की रचनाएं कही जाती हैं ।

राजशेखर ने ऐसे तीन कालिदासों का उल्लेख किया है ।

"एको पि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
श्रृडारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ।।"

कालिदास की 7 रचनाएँ प्रसिद्ध है -

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्
2. विक्रमोर्वशीयम्
3. मालविकाग्निमित्रम्
4. रघुवंशमहाकाव्यम्
5. कुमार संभवम्
6. मेघदूतम्
7. ऋतु संहार

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कृतियाँ भी कालिदास की रचना बताई जाती है -

1. कालीस्त्रोत
2. गंडाष्टक
3. ज्योतिर्विदामरण
4. राक्षसकाव्य
5. श्रुतबोध

इनको लेकर 41 ग्रन्थ कालिदास की रचना बताएँ जाते है । वास्तव में 6 ग्रन्थों को छोड़कर शेष रचनाएँ आद्य कवि कालिदास की न होकर परवर्ती कालिदास उपनाम वाले कवियों की रचनाएँ समझनी चाहिए, क्योंकि ये रचनाएं भाव, भाषा शैली प्रौढ़ता आदि की दृष्टि से न्यून स्तर की है । यहाँ उनके नाटकों की संक्षिप्त कथावस्तु दी जा रही है ।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

प्रथमो ड :-

नान्दी पाठ के पश्चात् सूत्रधार ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करता है और दुष्यन्त का उल्लेख करता है । तत्पश्चात् आश्रम के मृग का अनुसरण करते हुए, रथ पर बैठे हुए धनुर्धारी दुष्यन्त का सारथि के साथ प्रवेश । राजा मृग को मारना ही चाहता है कि इतनें में एक तपस्वी का प्रवेश । तपस्वी राजा को सूचित करता है कि यह आश्रम का मृग है, अतः उसे न मारें । राजा कहना मान लेता है । तपस्वी उसे आर्शीवाद देता है कि तुम्हारें चक्रवर्ती पुत्र हो और राजा से प्रार्थना करता है कि आश्रम में जाकर अतिथि-सत्कार स्वीकार करें । कुलपति कण्व सोमतीर्थ गये हैं और शकुन्तला अतिथि-सत्कार का काम करती है । राजा सारथि को आश्रम के बाहर छोड़कर साधारण वेष में आश्रम में जाता है । वहाँ वह वृक्षों में जल डालती हुई तीन अतिसुन्दर कन्याओं को देखता है । उनमें से एक शकुन्तला है । राजा उस पर आसक्त हो जाता है । एक भौंरा शकुन्तला को तंग करता है और वह रक्षा की प्रार्थना करती है । राजा जो अब तक वृक्ष की ओट

में छिपा हुआ था, सामने आता है और उन तीनों से वार्तालाप करता है । बातचीत से उसे ज्ञात होता है कि शकुन्तला विश्वामित्र और मेनका की पुत्री है तथा इस परित्यक्ता को ऋषि कण्व ने पाला है । वह क्षत्रिय कन्या है, अतः राजा उससे विचार का विचार दृढ़ करता है । राजा अपने राजस्व को प्रकट नहीं करता है । इसी बीच आश्रम में विक्षुब्ध हाथी का प्रवेश । राजा का अपने सैनिको को रोकने के लिए प्रस्थान । राजा पर आसक्त शकुन्तला का प्रियंवदा और अनसूया नामक अपनी दोनो सखियों के साथ प्रस्थान ।

द्वितीयोअंक :-

शकुन्तला पर आसक्त राजा का कामी की अवस्था में प्रवेश । शिकार खेलने से तंग आये हुए विदूषक का अपने विचार प्रकट करना । राजा शिकार खेलने का विचार छोड़ता है और सेनापति को भी मना करता है तथा सैनिकों को आदेश देता है कि वे आश्रमवासियों को कोई दुःख न दें । वह विदूषक को सूचित करता है कि वह शकुन्तला पर आसक्त है । वह विदूषक से कहता है कि कोई बहाना बताओं, जिससे फिर आश्रम में कुछ समय रूकना हो सके भाग्यवश दो ऋषि-कुमारो का प्रवेश और उनकी राजा से प्रार्थना कि राक्षसों से यज्ञ के रक्षार्थ वे कुछ समय में रूके । राजा की स्वीकृति । राजधानी से दूत का आगमन और माता द्वारा राजा को बुलाया जाना । राजा का अपनी जगह विदूषक को सेना के साथ राजधानी भेजना विदूषक राजधानी में रानियों को यह घटना न बतावें, अतः राजा का उसको कथन कि यह शकुन्तला से प्रेम की सब बातें केवल हंसी-मात्र है, वास्तविकता नहीं ।

तृतीयोअंक :-

शकुन्तला भी दुष्यन्त के प्रति आसक्ति के कारण अस्वस्थ है और फूलों की शैय्या पर लेटी हुई है । काम-पीड़ित अवस्था में राजा का प्रवेश । पेड़ो की ओट में छिपकर उसका शकुन्तला और उसकी सखियों की बात को सुनना । शकुन्तला का स्वीकार करना कि वह दुष्यन्त पर आसक्त है और उससे विवाह के बिना जीवित न रह सकेगी । अवसर पाकर राजा का सामने आना और शकुन्तला के प्रति अपने प्रेम की घोषणा करना । राजा और शकुन्तला को एकान्त में छोड़कर दोनों सखियों का प्रस्थान । राजा के द्वारा गान्धर्व विवाह का प्रस्ताव । शकुन्तला की आनाकानी । शन्ति-जल लेकर आश्रम की स्वामिनी गौतमी का प्रवेश । राजा का वृक्ष की ओट में छिपना । गौतमी का शकुन्तला को लेकर जाना । यज्ञ में राक्षसों के विध्न को दूर करने के लिए राजा का

प्रस्थान ।

चतुर्थोअंक :-

इसी बीच में राजा का शकुन्तला से गान्धर्व विवाह राजा का अपनी राजधानी के लिए प्रस्थान के समय शीघ्र ही शकुन्तला को लिवा जाने के लिए योग्य व्यक्ति को भेजने का आश्वासन । राजा का प्रस्थान । शकुन्तला राजा के ध्यान में मग्न कुटी में बैठी है । दुर्वासा ऋषि का अतिथि के रूप में आगमन । उनका आतिथ्य न करने पर क्रुद्ध ऋषि का शकुन्तला को शाप कि "जिसको स्मरण करती हुई तू मुझ आए हुए तपस्वी की ओर ध्यान नहीं दे रही है, वह याद दिलाने पर भी तुझे नहीं पहचानेगा ।"

प्रियंवदा का ऋषि को मनान और दुर्वासा का आश्वासन कि पहचान का कोई आभूषण दिखाने पर शाप का प्रभाव समाप्त हो जायेगा । प्रियंवदा और अनसूया दुर्वासा के शाप की बात न शकुन्तला को बताती है और न अन्य किसी को । वे समझती हैं कि राजा की अंगूठी शकुन्तला के पास है इसलिए राजा शकुन्तला को पहचान लेगा और शाप का कोई प्रभाव नहीं हो सकेगा यहाँ पर विष्कम्भक समाप्त हो जाता है ।

तीर्थयात्रा से लौटने पर ऋषि कण्व को आकाशवाणी द्वारा ज्ञात होता है कि शकुन्तला का गान्धर्व-विवाह दुष्यन्त से हुआ है और वह गर्भिणी है । ऋषि इस विवाह का समर्थन करते हैं । दुर्वासा के शाप के प्रभाव के कारण राजा शकुन्तला को सर्वथा भूल जाता है और उसे लिवाने के लिए किसी व्यक्ति को नहीं भेजता । शकुन्तला के गर्भ चिन्ह प्रकट है, अतः उसे राजा के पास भेजने का प्रबन्ध किया जाता है । शकुन्तला की विदाई की तैयार होती है । वनवृक्षों द्वारा आभूषण और रेशमी वस्त्रादि प्राप्त होते है । शकुन्तला अपनी सखियों, वन-मृगों आदि से विदाई लेती है । वियोग का प्रभावोत्पादक वर्णन हुआ है । ऋषि कण्व द्वारा शकुन्तला को कर्तव्य-शिक्षा और राजा के लिए संदेश । शकुन्तला का ऋषि से करुणापूर्ण मिलन और विदाई । शकुन्तला के साथ गौतमी और दो तपस्वियों का प्रस्थान । शकुन्तला को पति के पास भेजकर ऋषि को हार्दिक शान्ति प्राप्ति होती है ।

पंचमोअंक :-

शार्गरव, शारद्वत और गौतमी शकुन्तला को लेकर राजद्वार पर पहुंचते है । राजा

के आदेशानुसार वे महल में प्रवेश करते हैं । दुर्वासा के शाप के प्रभाव के कारण राजा शकुन्तला से विवाह की सारी बात भूला हुआ है । पारस्परिक अभिनन्दन के पश्चात् शार्गरव ने निवेदन किया कि आप दोनों के गान्धर्व विवाह का ऋषि कण्व ने समर्थन किया है और इसको आपके पास भेजा है । आ इसे स्वीकार करें । राजा यह सुनकर आश्चर्यान्वित हो जाता है और शकुन्तला से विवाह की घटना को असत्य बताता है । गौतमी शकुन्तला का घूंघट उठाती है, परन्तु राजा उसे नही पहचानता । शकुन्तला ने राजा की दी हुई अगूंठी को दिखाकर उसे विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया, परन्तु वह अगूंठी रास्ते में ही शकुन्तला के हाथ से गिर गई थी, अतः उसका वह उपाय भी निरर्थक रहा । शार्गरव और राजा में आवेशपूर्ण वार्तालाप होता है । राजा शकुन्तला को स्वीकार नही करता । पुरोहित ने शकुन्तला को पुत्र जन्म तक अपने घर रखने का प्रस्ताव किया । शकुन्तला को छोड़कर उसके साथी चले जाते हैं । शकुन्तला अपने आपको कोसती हुई रोती है उसी समय एक अप्सरा (मेनका) आकर उसे उड़ा ले जाती है । यह सुनकर सभी आश्चर्यमग्न हो जाते है । राज खिन्न-हृदय और चिन्तान्मग्न है ।

षष्ठोअंक :-

शकुन्तला के हाथ से शचीतीर्थ के जल में गिरी हुई अगूंठी एक धीवर को मिलती है । वह उसे बेचने के लिए बाजार में आया । पुलिस वालो ने उसे चोर समझकर पकड़ लिया और निर्णय के लिए राजा के पास ले गए । राजा ने धीवर को पुरस्कार देकर छोड़ दिया । उस अंगूठी को देखते ही राजा पर शाप का प्रभाव समाप्त हो गया और उसे शकुन्तला से विवाह की सारी घटना स्मरण हो आई । वह अत्यधिक दुःखित रहने लगा । मेनका की एक सखी सानुमती अदृश्य रूप में राजा के पास आकर उसकी अवस्था को देखती है । राजा विदूषक से वार्तालाप करता है और शकुन्तला के अधूरे चित्र मंगाकर पूरा करने का प्रबन्ध करता है । इसके पश्चात् प्रतीहारी मन्त्री का एक पत्र लाती है कि धनमित्र नामक एक व्यापारी नौका टूट जाने से समुद्र में मर गया उसके सन्तान नहीं है, अतः उसका धन राजकोष में जाएगा । राजा यह पढ़कर अत्यन्त दुःखित होता है कि सन्तानहीन होने के कारण उसका धन भी दूसरे के हाथ पड़ेगा । वह मूर्च्छित हो जाता है । इसी समय इन्द्र के सारथि मातलि का आगमन होता है । वह इन्द्र का सन्देश राजा को सुनाता है कि दैत्यों के नाश के लिए इन्द्र ने आपको तुरन्त बुलाया है । राजा इन्द्र के रथ

के रथ पर चढ़कर स्वर्ग के लिए प्रस्थान करता है ।

सप्तमोअंक :-

राजा ने दानवो पर विजय पाई । इन्द्र ने बड़े समारोह के साथ राजा को विदाई दी । स्वर्ग से लौटते समय राजा ने हेमकूट पर्वत पर मारीच ऋषि का आश्रम देखा । वह ऋषि को प्रणाम करने के लिए उतर पड़ा । मातलि ऋषि से मिलने गया, उसी समय राजा को एक अद्भुत बालक दिखाई पड़ा, जो शेर के बच्चे के दॉत गिनने का प्रयत्न कर रहा था और उसे खेल-खेल में तंग कर रहा था । बालक की आकृति राजा से बिल्कुल मिलती हुई थी । राजा उस पर पुत्रवत् प्रेम करने लगा । बालक भी राजा का कहना मानने लगा । बालक के साथ की तपस्विनी से उसे ज्ञात हुआ कि बालक की माता का नाम शकुन्तला है । बालक पुरुवंशी है । उसकी माता को उसके पिता ने छोड़ दिया है । अपराजिता नाम की औषधि की घटना से उसे निश्चय होता है कि वह बालक उसका ही पुत्र है । शकुन्तला सामने आती है और राजा का प्रणाम करती है । राजा शकुन्तला के पैरों में पड़कर अने अपराध के लिए क्षमा-याचना करता है । राजा और शकुन्तला मारीच ऋषि के दर्शनार्थ जाते है । मारीच ने बताया कि दुर्वासा के शाप के कारण राजा ने शकुन्तला को नहीं पहचाना । अंगूठी देखते ही शाप समाप्त होने से उसे शकुन्तला की स्मृति आई । उसने राजा को निर्दोष बताया । उसने दोनो को आशीवाद दिया और इन्द्र के रथ पर उन्हें राजधानी भेजा । वहॉ वे दोनो सुखपूर्वक रहने लगे । भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है । तात्पर्य यह कि अभिज्ञान शाकुन्तल में प्राकृतिक सुषमा परिवेष्ठित आश्रमस्थ, नवप्रस्फुटित यौवना किशोरी की आंगिक शोभा सौन्दर्य की पवित्रता एवं मादकता मुग्धा के मन में तीव्र काम का आवेग दुष्यन्त की कामुकदृष्टि गान्धर्व विवाह रोमांस की मादकता शापवस उसकी स्मृति का भूलना और स्मरण आने पर तदजन्य वियोग का अनुभव करने वाले ऐसे स्थल है जिसमें नायक-नायिका की स्त्री पुरूषोचित देहयष्टि आंगिक सुषमा कामोद्दीपन प्रेम स्फुरण मिलन इत्यादि सौन्दर्य काम एवं प्रेम के ऐसे स्थल है जिसमें कवि के साथ सामाजिक पूर्ण रूप से तादात्म्य करता है -

शकुन्तला का अत्याज मनोहर रूप मार्दव राजा के मन में उसे स्वयत करने की अज्ञात भावना का अंकुरण में कालिदास ने काम और प्रेम की नितान्त मूल्यवान मानदण्डो का स्थिरीकरण किया है ।

इस तरह से सम्पूर्ण कथावस्तु में रूप व्यापार वर्णन करने की कवि की अन्यत्र

भावना संभोग की उद्दाम मांसलता तथाविप्रलम्भ की मर्मद्राव विह्वलता का वर्णन कवि ने अत्यन्त भव्य और उज्जवल रूप में प्रस्तुत किया है ।

विक्रमोर्वशीयम्

प्रथमोअंक :-

पुरातन काल में पुरुरवा नाम के चन्द्रवंशी राजा थे । गंगा-यमुना संगम के समीप प्रतिष्ठान नामक नगर उसकी राजधानी थी । वे राजा एक दिन सूर्योपासना करके लौट रहे थे कि एक आर्त्तनाद उनके कानों में पड़ा । उधर आखें फेरी तो उन्होंने सुना कि कुछ अप्सरायें चिल्ला रही हैं - हमारी रक्षा करों ! हमारी रक्षा करों !! स्वर्ग की शोभास्वरूप हमारी सखी उर्वशी को केशी नामक दैत्य बन्दी करके लिये जा रहा है ? सुनते ही राजा ने उन्हें आश्वासन दिया, और कहा - हम आपकी सखी को लौटा लाने जाते है, आप हेमकूट पर हमारी प्रतीक्षा करें ।' इतना कहकर राजा ने केशी का पीक्षा किया और जब तक उर्वशी की संगिनी अप्सरायें हेमकूट पर पहुंची, तब तक वे भी उर्वशी को दैत्य के हाथ से छुड़ाकर वहॉ आ गये । रथस्थ उर्वशी को, जो आतंक से बेहोश हो गयी थी, उसकी सखी चित्रलेखा ने जब आश्वासित किया तब उसकी मूर्च्छा दूर हुई । उर्वशी के होश में आने पर उसकी आप्राकृतिक सुन्दरता देखकर राजा का मन मोहित हो गया । उर्वशी भी राजा पर आसक्त हो गयी । हेमकूट पर राजा का रथ उतर रहा था, रथ के चक्के निम्नोन्नत भूमि पर चलने से रथ को हिला रहे थे जिससे राजा का कन्ध उर्वशी के कन्धे से टकरा गया, इस स्पर्श ने उनके प्रेम केलिये अग्नि में आहुति का कार्य किया (दोनों के शरीर में वासना की बिजली दौड़ गई) । हेमकूट पर पहुंच कर उर्वशी अपनी सखियों के गले लगी । सबने मिलकर राजा को धन्यवाद दिया । इसी बीच प्रभाववश सब वृन्तान्त जानकर दैत्य के हाथों से उर्वशी की रक्षा केलिए इन्द्र ने जिस गन्धर्वराज चित्ररथ को भेजा था, वह वहॉ आया और पुरुरवा से कहा - महाराज, आपने इन्द्र का भारी कार्य कर दिया है, आप उर्वशी को साथ लेकर इन्द्र से मिल लें । इस अनुरोध को राजा ने यह कह कर टाल दिया कि - भाई, अभी इन्द्र से मिलने का समय नहीं है । अनन्तर सभी अपने अपने गन्तव्य स्थान को गये । उर्वशी राजा पर आसक्त हो गयी थी, इसीलिये वह जाती तो थी परन्तु आँखे राजा पर अटक रही थीं, वह झाड़ी से माला के उलझ जाने का बहाना बनाकर

गमन को विलम्बित कर (टेढ़ी कटाक्षों से) राजा को देख रही थी । किसी तरह हृदय खोकर सखियों के साथ वह स्वर्ग गयी । उसके चले जाने पर राजा भी हृदय गँवाकर अपने नगर लौटे ।

द्वितीयोअंक :-

राजधानी में आने पर भी राजा के दिन उर्वशी के ध्यानमें ही बीतते थे । अपनी उत्कण्ठा को शान्त करने के लिये वह एक दिन प्रमदवन में गये, वहाँ जाने से उनकी हालत और बिगड़ गई, वसन्त की शोभा ने उनके काम को और भड़काया । वहाँ अतिमुक्त लतामण्डप में बैठकर वह विदूषक से उपाय सोचने को कहने लगे । उन्होंने अपने प्रति निरङ्क्रोश व्यवहार का अपराध उर्वशी के मत्थे मढ़ा । उस समय तक उर्वशी भी अपने को नहीं रोक सकी, वह चित्रलेखा को साथ लेकर राजा के पास चली । दोनों तिरस्करिणी में छिपकर राजा की विश्रम्भवार्ता सुन रही थीं । अपने प्रति किये गये निष्ठुरत्वारोप को वह नहीं सह सकी । भूर्जपत्र पर उनके आरोप के उत्तर में उर्वशी ने निवेदन किया कि मेरी भी वही स्थिति है जो आपकी है - यह बात नहीं है कि मैं आपको दुःख में रखकर स्वयं मजे में रहती हूँ । इस प्रेमपत्र को प्राप्तकर राजा को बड़ी खुशी हुई । इसके बाद वह तिरस्करिणी हटाकर राजा के पास आई । राजा ने उसे अपने आसन पर बैठाया । इसी समय आकाश से किसी देव दूत ने कहा - 'उर्वशी भरत ने जो अभिनय तुम लोगों को सिखाया है, उसमें आठों रसों का समावेश है, उसे आज लोकपालों के साथ देवराज देखना चाहते है, इसलिये तुम्हें शीघ्रता करनी है, सुनते ही उर्वशी चली गई । उसे भी राजा से बिछुडने का खेद हुआ लेकिन लाचारी थी । उसके चले जाने पर उसके द्वारा लिखित भूर्जपत्र से राजा ने दिल बहलाना चाहा, किन्तु वह भूर्जपत्र विदूषक की असावधानी से उड़ गया था । राजा उसकी खोज में बेचैन थे । इसी बीच राजा को ढूँढती हुई रानी औशीनरी वहाँ आ पहुंची । संयोगवश उसे रास्ते में उड़ता हुआ वह भूर्जपत्र मिल चुका था । उसने आते ही राजा से कहा - 'आर्यपुत्र, परेशान मत होइये, यही तो है भूर्जपत्र ? ऐसा कहकर उसने वह भूर्जपत्र राजा को थम्हा दिया । इस प्रसंग से राजा सहम उठे, उनके मन में यह खटका पैदा हो गया कि इसने सब बातें जान लीं । अतः उसे खुश करने के लये राजा ने उसके पैरो पर गिरकर मनाना चाहा । रानी का क्रोध राजा के द्वारा किये गये पादपतन से भी नहीं गया, वह क्रोध लिये ही अपने परिजन के साथ वहाँ से चली गई । राजा का मन छोटा हो गया ।

तृतीयोअंक :-

औशीनरी राजा के पादपतन का तिरस्कार करके चली तो आई, परन्तु उसे पश्चाताप होने लगा । उसने चन्द्रमा तथा विशाखा को साक्षी बनाकर प्रियानुप्रसादन नामक व्रत किया, जिसमें संकल्प किया कि आजके दिन से आर्यपुत्र जिस स्त्री पर आकृष्ट हों या जो स्त्री आर्यपुत्र पर आकृष्ट हो उसके साथ मेरा व्यवहार प्रीतिपूर्ण होगा । इस तरह उसने राजा की प्रसन्नता केलिये प्रयत्नतो किया लेकिन राजा के अनुरोध करने पर भी वह उनके पास ठहरी नहीं - चली ही जाती रही इसी समय अभिसारिका के वेष में उर्वशी वहाँ आई उसने चित्रलेखा के साथ रानी की सभी बाते सुनी, जिससे उन्हें बहुत आनन्द हुआ । रानी के जाने पर उर्वशी ने राजा के सामने जाकर जय-जयकार की । चित्रलेखा ने राजा से कहा - 'महाराज, हमारी सखी को आप इस तरह रक्खें जिससे इसे स्वर्ग की याद न आवें' । इस पकार कहकर चित्रलेखा चली गई । राजा उर्वशी को प्रप्त कर प्रदोषकालिक चन्द्रमा की किरणों का उपभोग करके अन्त:पुर चले गये । इसके बाद उनके दिन सुखोपभोग में बीतने लगे ।

चतुर्थोअंक :-

एक समय उर्वशी क्रीडाबन्धु राजा को साथ कर गन्धमादन पर्वत पर विहार करने गई । वहाँ नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में उन दोनों के दिन बीतने लगे । वहाँ गंगा के तीन पर बालुका राशि से एक गन्धर्व-बाला क्रीड़ा कर रही थी । राजा उसे एकटक देखने लगे । इतने से ही उर्वशी को स्वामी पर क्रोध हो आया । भवितव्यता विषम होती है । राजा के उसी अपराध को उर्वशी ने अपना अपमान समझा, तथा उनके द्वारा किये गये पादपतन की भी अपेक्षा करके वह उस वन में प्रवेश कर गयी जो स्त्रियों के लिए अगन्तव्य था । उस वन में स्त्रियाँ इसलिये नहीं जाती थी कि उसमें कुमार रहते थे, जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर नियम कर दिया था कि जो स्त्री इस कुमार वन में आ जायेगी वह लता हो जायेगी और तब तक उसका उद्धार नहीं होगा जब तक गौरी चरणरागमणि से स्पर्श नहीं होगा । उस वन में उर्वशी ने ज्यों ही प्रवेश किया कि वह लता बन गई । राजा के लिये वह खो गई । इस प्रकार प्रेयसी के अकस्मात् लुप्त हो जाने से राजा नितान्त व्यग्र हो उठे । बरसात के आ जाने से वह एकदम पागल हो गये । वह उसी वन में प्रिया की की खोज करने लगे । जो मिलता था उसी से अपनी प्रिया की खबर पूछते

तथा अष्ट-सष्ट उत्तर की कल्पना करते-फिरते थे । इसी पागलपन में उनके दिन बीतने लगे । एक दिन वह घूमते थे कि उन्होंने एक रत्न देखा, उनकी इच्छा नहीं हुई कि हम रत्न ले, क्योंकि वह उनके लिए व्यर्थ था । उनकी प्रियतमा होती तो वह उसे लेकर उसके बालों पर पहनाते वह तो थी नहीं । यही सोचकर वह आगे बढ़े जा रहे थे कि किसी साधु ने कहा- 'यह रत्न सगमनीय है, इसके प्रभाव से प्रियमिलन होता है आप यह ले लें' । रत्न को लेकर राजा आगे बढ़े । उन्होंने एक लता देखी, उसे देखकर राजा को उस लता से लिपट जाने की प्रबल इच्छा हुई, राजा उससे लिपट गये और लिपटते ही लता उर्वशी हो गई । राजा की खुशी का ठिकाना नहीं रहा, (लपककर राजा उर्वशी के गले से चिपक गये) बाद में उर्वशी की इच्छानुसार राजा अपनी राजधानी प्रतिष्ठान नगर में प्रेयसी को साथ ले वापस आये ।

पंचमोअंक :-

राजधानी लौट आने पर प्रकृति ने राजा की बड़ी अभ्यर्थना की । कुछ दिनो के बाद किसी पुष्यपर्व पर सपरिवार राजा संगम स्नान करने गये । संयोगवंश उस सगमनीय मणि को, जिसे राजा बहुत चाहते थे क्योंकि उसके ही मिलने से वह उर्वशी के पास थे, कोई दासी तालवृत्त पर रखकर इधर से उधर लिये जा रही थी, दूर से किसी गृध्र ने देखा, उसे उस मणि में मांस खण्डका भ्रम हुआ अतः उसने उसे झपट लिया । यह खबर राजा को मिली, राजा शरासन बाण लेकर जब तक तैयार हुए तब तक वह गृध्र दृष्टि तथा बाण की गति से परे हो गया । राजा ने नगरवासियो से कहवा दिया कि पक्षियों के निवासवृक्षों पर उसकी तलाश की जाय । इसी समय दरबार में आकर काचुंकी ने निवेदन किया कि "किसी ने नामांकित अपने बाण से आहत करके गृध्र को मणि के साथ गिरा दिया था, वह मणि तथा बाण यही है । बाण में अंकित अक्षर पढ़े गये, उस पर अंकित था - "यह बाण पुरुरवा और उर्वशी के पुत्र कुमार आयु का है ।' सभी को आश्चर्यमिश्रित आनन्द की प्राप्ति हुई । इसी बीच कुमार को लेकर च्यवनाश्रम से एक तपसी राजा के पास आई । उसने आकर कुमार के बारे में राजा से सभी बातें कहीं । पुत्र की उपलब्धि से राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई । तापसी से मिलने उर्वशी भी दरबार में आई । तापसी ने उर्वशी से कहा - 'यह तुम्हारी निधि (पुत्र) मैंने तुम्हें सौंप दिया मुझे जाने की आज्ञा दो, मेरे आश्रम धर्म में बाधा होगी ।' यह कहकर तापसी चली गई । इसके बाद उर्वशी कुछ याद करके रोने लगी । राजा ने उसे बहुत कहा

कि 'यह हम लोगों के लिये पुत्र प्राप्ति का अवसर है, इसी खुशी के अवसर पर तुम रोने क्यों लगी ?'

उर्वशी ने किसी तरह अपने को संभालकर राजा से कहा - 'महाराज, मैं अब तक पुत्र के देखने से भूली हुई थी, मुझे स्मरण हुआ है - मेरे अभिनय में गड़बड़ी देखकर भरत ने मुझे शाप दिया था कि तुम स्वर्ग में मत रहो । इन्द्र ने कृपा की, उन्होंने मेरी प्रीति आप पर देख ली थी, इसीलिये उन्होंने कहा कि 'तब तक तुम हमारे प्रिय मित्र राजा पुरुरवा के साथ पृथ्वी पर रहो जब तक तुम्हारे द्वारा उत्पादित पुत्र का मुख राजा देख न लें । पश्चात तुमको स्वर्ग आ जाना होगा । वियोगभय से मैंने पुत्र को छिपा दिया । अब आपके साथ मेरे रहने का अवसान हुआ । राजा को इससे बड़ी मनोव्यथा हुई, उन्होंने कहा - 'ठीक है तुम स्वर्ग जाओ, मैं भी तुम्हारे पुत्र आयु को राजा बनाकर वन जाऊंगा, उसी समय अकस्मात् नारद वहाँ आ गये । सत्यकार के बाद उन्होंने राजा से इन्द्र का संवाद कहा - 'आप शस्त्र त्याग नहीं करें मुनियों ने कहा है कि निकट भविष्य में देवदानव युद्ध होने वाला है, आप हमारे युद्ध में सहायक हैं, आपका उसमें रहना आवश्यक है । यह उर्वशी भी आजीवन आपकी सहधर्मचारिणी होकर रहेगी ।' इस संवाद ने सभी को आनन्दित कर दिया । नारद ने कुमार आयु का अभिषेक स्वयं किया । सब आनन्दमग्न हो गये । राजा को जीवन भर के लिये उर्वशी जैसी सुन्दरी स्त्री तथा पुत्र, उर्वशी को सुरुप स्वामी एवं पुत्र, आयु को माता-पिता का प्यार इस तरह सभी अपने-अपने मनोरथ लाभ से परम प्रसन्न होकर दिन बिताने लगे ।

तात्पर्य यह कि पुरुरवा का सुदृढ विशाल शरीर, साहस, विक्रम, ओज के साथ अप्सरा उर्वशी का रुप लावण्य संकटमयी परिस्थिति में कृतज्ञता के मध्य उत्पन्न रुपाशक्ति उद्दाम विलास उर्वशी के लता बनने पर पुरुरवा के मार्मिक उद्गार सौन्दर्य काम एवं प्रेम के ऐसे स्थल है जिसमें कालिदास का मन बहुत रमा है ।

मालविकाग्निमित्रम

प्रमथोअंक :-

ईसवी सदी से कुछ पूर्व विदिशा में अग्निमित्र नाम के एक राजा थे । उनकी धारिणी और इरावती दो रानियां थी । विदर्भ के राजा माधव सेन भी अपनी छोटी बहन मालविका का विवाह

अग्निमित्र से कराना चाहते थे और शीघ्र ही इस कार्य के लिए अग्निमित्र से मिलना चाहते थे । माधवसेन के चचेरे भाई यज्ञसेन भी वहीं राजा थे । वे अग्निमित्र से बैर रखते थे । माधवसेन को राज्यच्युत करके बन्दी बना लिया । उनके मंत्री ने स्वामी की इच्छापूर्ति के लिये मालविका को अग्निमित्र के पास पहुंचा देना चाहा । तदनुसार वह मालविका और अपनी बहन कौशिकी को साथ लेकर राजधानी से बाहर आकर विदिशा-यात्रिदल में सम्मिलित हो गया । रास्ता चलने से श्रान्त होकर उन लोगों ने एक जंगल में डेरा डाला । वहाँ दस्युओ ने आक्रमण करके उन्हें तितर-बितर कर दिया, माधव सेन के मंत्री सुमति उस युद्ध में मारे गये । उनकी बहन कौशिकी मूर्च्छित हो गई, कुछ देर के बाद चेतना आने पर उसने मालविका को नहीं देखा । शोकाभिभूत होकर भाई की अग्निक्रिया करने के बाद विदिशा में आकर कौशिकी ने संन्यास ग्रहण कर लिया । कालक्रम से उसका प्रवेश अग्निमित्र के अन्त:पुर में हुआ, और वह रानी धारिणी की कृपा से वही सम्मानित होकर जीवन व्यतीत करने लगी । इधर दस्युओं ने मालविका को बन्दी बनाकर उपहार रुप में वीरसेन नामक धारिणी के भाई और अग्निमित्र के सीमान्त रक्षक को समर्पित कर दिया । वीरसेन ने देखा कि मालविका को संगीत की रुचि है । इसलिये उसे अपनी बहन धारिणी देवी के पास इस संवाद के साथ भेजदिया कि इसे संगीत तथा अभिनय की शिक्षा दिलाई जाय । धारिणी देवी ने भी मालविका की कलापटुता से प्रसन्न होकर उसे नाट्याचार्य गणदास से शिक्षा प्राप्त करने की समुचित व्यवस्था कर दी । कौशिकी ने मालविका को देखा और पहचाना भी, परन्तु विशेष कारणवश उसका परिचय किसी को नहीं दिया ।

एक दिन धारिणी ने अपना एक चित्र बनवाया, जिसमें उसके परिजन के रुप में मालविका का भी चित्रण किया गया था, वह चित्र रंगा गया था ही कि चित्रशाला में बैठी धारिणी उस चित्र को देख रही थी, पीछे से आकर राजा वहाँ खड़े हो गये । चित्र में एक अपरिचित सुन्दर तरुणी को देखकर राजा ने उत्सुकभाव से उसके विषय में पूछना प्रारम्भ किया । रानी ने जानबूझ कर उत्तर नहीं दिया । वही कुमारी वसुलक्ष्मी भी थी, बालसुलभ चंचलता से उसने कहा - इसका नाम मालविका है । राजा द्वारा किये गये कुतुहल प्रश्नों से उसकी उत्सुकता अनुमान करके रानी के हृदय में खटक पैदा हो गया और मालविका को राजा की नजर से बचाए रखने की व्यवस्था कर ली गई । चित्र में मालविका को देखकर राजा उसकी रुपमाधुरी पर मोहित हो गये, उन्होंने

अपने विदूषक से अपनी मनोदशा बता दी और मालविका को दिखा देने तथा उसे मिलाकर संगम करा देने के लिए उपाय करने को कहा । विदूषक ने उस दरबार में दोनो नाट्याचार्य गणदास तथा हरदत्त में झूठी अफवाहें फैलाकर विरोध का वातावरण पैदा कर दिया । उन लोगों ने राजा से यह निर्णय कर देने को कहा कि उनमें कौन विशेष-जानकारी रखता है । राजा ने इसमें कौशिकी को मध्यस्थ बनाया, कौशिकी ने राजा से भी मध्यस्थ में रहने को कहा । किस आधार पर विशेषज्ञता निर्धारित की जाय इस प्रसंग में कौशिकी ने निर्णय दिया कि दोनों आचार्य अपनी-अपनी शिष्याओं को स्वाभाविक वेश में छलिक अभिनय प्रदर्शित करने को कहें, जिसकी शिष्या प्रथम होगी वह विशेषज्ञ माना जायेगा । दोनो आचार्य इस बात पर राजी हुए । विदूषक का प्रथम उपाय सफल रहा । धारिणी ने बहुत प्रयत्न किया कि यह बात किसी तरह दब जाय, प्रदर्शन न हो, लेकिन सभी मिले हुए थे, उसे हताश होना पड़ा । प्रदर्शन होना निश्चित हो गया और रंगशाला में साजबाज ठीक किये जाने लगे ।

द्वितीयोअंक :-

वृद्ध होने के कारण गणदास को पहले प्रयोग दिखाने का अवसर दिया गया, राजा, धारिणी, कौशिकी, विदूषक और परिजन सभी उपस्थित थे । राजा मालविका को देखने के लिये अधीर हो रहे थे, पर्दा उठने पर मालविका सीधे साधे वेश में सामने आई । उसके लावण्य ने राजा को चकित कर दिया । अब तक उनकी धारणा थी कि चित्रगत मालविका की छवि चित्रकार की कुशलता-प्रसूत है, वह इतनी सुन्दरी नहीं होगी किन्तु साक्षात् मालविका को देखकर उन्होंने स्थिर किया कि चित्रकार मालविका के रूप को सम्पूर्ण भाव से चित्र में नहीं ला सका, यह चित्र से कहीं अधिक सुन्दरी है । नृत्य प्रारम्भ हुआ । शर्मिष्ठाप्रवर्तित चतुष्पद संगीत में भाव प्रदर्शन द्वारा मालविका ने राजा के प्रति आत्मनिवेदन किया । राजा मन्त्रमुध की तरह देखते रहे । नृत्य समाप्त हुआ हरदत्त को यह कह कर टरका दिया कि आपका प्रयोग फिर कभी देखा जायेगा, अभी भोजन का समय उपस्थित है । सब लोग भोजन आदि के लिये उठकर चले गये । राजा ने विदूषक से कहा - वयस्य, सचमुच यह बड़ी ही सुन्दरी है, विधाता में सौन्दर्य सृष्टि की जितनी क्षमता थी वह सब इसमें लगा दी गई है । अब तुम शीघ्र ऐसा उपाय करो, जिससे इसके साथ मेरा मिलन हो जाय । राजा की विरह वेदना दिनानुदिन बढ़ी गई, वह बराबर उसी के मिलन की चिन्ता में रहने

लगा । विदूषक ने राजा के कथनानुसार राजा की स्थिति से वकुलावलिका को अवगत कराया, वह मालविका की सखी तथा स्नेहपात्री थी ।

तृतीयोअंक :-

अग्निमित्र के अन्त:पुर की चाहारदिवारी में रमणियों के सुखविहारार्थ एक बाग लगाया गया था - जिसका नाम प्रभदवन था । उसमें धारिणी द्वारा ललित एक अशोक वृक्ष था, उसके पत्ते सुनहले रंग के थे, इसी से उसका नाम तपनीयाशोक रखा गया था उसके दोहद केलिये किसी तरुणी को उस पर नुपुरयुक्त चरणों से प्रहार करना था । धारिणी के पैर में पीड़ा थी, अत: उन्होंने मालविका को यह कह कर उस कार्य केलिए भेजा कि 'यदि पांच रात्रि के बीच इस अशोक वृक्ष के फूल निकल आये तो तुम्हारा मनोरथ पूर्ण कर दूंगी, मालविका अपनी सखी वकुलावलिका को साथ लेकर प्रभदवन पहुंची, वकुलावविका ने उसके चरणों को रंग कर नूपुर पहनाचा, अशोक के दोहद पूरे हुए । इसी समय घूमते घामते राजा वहॉ पहुंच गये । उनके वहॉ पहुंचते से पहले ही वकुलावलिका ने राजा का अभिप्राय मालविका को बताया । राजा ने स्वयं भी अपना अनुराग प्रकट किया । उसके और वकुलावलिका के बीच जो बातचीत हुई थी, उससे राजा को मालविका की मानसिक स्थिति का पता चल गया था । उन्होंने प्रकट शब्दों में प्रणय-याचना की । जिस समय राजा, मालविका और वकुलावलिका के बीच बातें हो रही थीं, उसी समय कार्यान्तर से राजा को ढूंढ़ती हुई राजा की द्वितीय पत्नी इरावती वहॉ आ गई, उसके आने से इस प्रणयवार्ता का रंग उतर गया । पर तुरंत राजा ने अपने को सम्हालते हुए इरावती से कहा देवि ! तुम्हारा ही अन्वेषण करता हुआ मैं यहॉ आया और (देर से) तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था । किन्तु जब तक तुम नही आ रही थी तब तक इससे बातें करके मैं अपना दिल बहला रहा था । इन बातों का इरावती पर कुछ असर नहीं हुआ, वह क्रोध में भरी राजा की उपेक्षा करके वहॉ से चली गई । जाने के पहले वह वकलावलिका को भी फटकार सुना गई । इरावती इस बात की उपेक्षा नहीं करना चाहती थी, वह धारिणी के यहॉ जाकर राजा के इस अविनय की सूचना कुछ विस्तार के साथ दे आई । इस बात के सुनने से धारिणी को भी इरावती की बात रखने के लिये कठोर व्यवसथा करनी पड़ी । मालविका और वकुलावलिका को कारावास की सजा दी गई । उनकी रखवाली के लिये धारिणी ने अपनी एक विश्वासभाजन परिचारिका को वहॉ बैठा दिया और उसको आज्ञा दे दी कि बिना धारिणी

की मुहर देखे उन दोनो कैदियों को किसी प्रकार मुक्त न करे ।

चतुर्थांक :-

मालविका तथा वकुलावलिका के कारावास से राजा को बड़ा खेद हुआ । उनके खेद तथा प्रार्थना से परवश होकर विदूषक ने एक उपाय सोचा और तदनुसार राजा को धारिणी के पास उनकी खबर लेने के लिये भेजा । इधर विदूषक ने एक तिकडम उपस्थित किया । उसने अपने हाथ में केतकी-कण्टक से सर्पदंशन का दाढ़ बना लिया और मिथ्या सर्पदंशन की बात फैलाकर सब को चिन्तित कर दिया । उसने यह प्रचार किया कि रानी को सलामी में देने के लिये मैं फूल लेने गया था कि मुझे कालासर्प ने काट लिया । रानी को इससे बड़ी चिन्ता होने लगी कि संयोगयवश अगर इस सर्पदंशन से इसके प्राण गये तो यह ब्रह्महत्या का कलंक मेरे ही माथे चढ़ेगा । विदूषक विषवेग वाले जनका स्वांग बनाकर दरबार में उपस्थित हुआ जहॉ राजा, रानी और कौशिकी वगैरह उपस्थित थे । विदूषक ने विषवेग का ऐसा प्रदर्शन किया कि सभी चिन्तित हो उठे । राजा ने विदूषक की विषचिकित्सा के लिए अपने वैद्य ध्रुवसिद्धि को आदेश भेजा, विदूषक ध्रुवसिद्धि के पास गया ध्रुवसिद्धि ने उसकी चिकित्सा में 'नागमुद्रा' की आवश्यकता बताई । सभी के सामने एक ब्राह्मण के जीवन का प्रश्न था । किसी को कुछ सोचने का अवसर नहीं था । धारिणी के पास नागमुद्रा वाली अंगूठी थी, रानी ने तत्क्षण वह अगूंठी जयसेना को दे दी । अंगूठी देखते ही विदूषक का कृत्रिम विषवेग उतर गया । उसने वही अंगूठी दिखाकर मालविका और वकुलावलिका को कारावास से मुक्त कराया । वहॉ की रक्षिका से कह दिया कि राजा की कुण्डली देखकर दैवज्ञो ने बताया कि ग्रहस्थिति कुछ मन्द है, इसीलिये उसके शान्त्यर्थ सभी बन्दी जन छोड़े जा रहे हैं । देवी ने केवल इरावती का दिल रखने के लिये अपनी परिचारिका को नहीं भेजकर मुझे भेजा है जिससे इरावती को यही मालूम हो कि राजा छोड़ रहे हैं इसमें देवी का कोई हाथ नही है । संकेतानुसार - राजा विदूषक, मालविका और वकलावलिका सभी समुद्रग्रह में मिले । मालविका और राजा दोनो एक दूसरे से दिलखोलकर मिले, मालविका ने देवी का भयमात्र अपने मिलन का प्रतिबन्धक बताकर आत्मनिवेदन कर दिया विदूषक और वकुलावलिका आसपास छिपे बैठे रहे । यह प्रणयलीला चल ही रही थी कि इरावती फिर वहॉ आ गई, उसके साथ उसकी परिचारिका निपुणिका भी थी । समुद्रगृह के दरवाजे पर बैठा विदूषक स्वप्न में बक रहा था - मालविके, राजाप्रिया होओ, इरावती को राजप्रणय से जीत लो,

इत्यादि । निपुणिका को यह अप्रिय लगा, उसने वही का कोई कुटिल काष्ठदण्ड उठाकर विदूषक के ऊपर चला दिया, जिससे विदूषक को पुनः सर्पभय हो आया, राजा विदूषक की समय आवाज पर बाहर निकल, स्नेहाधीन मालविका भी उनके पीछे थे, वकुलावलिका भी वहाँ आ गई । इरावती इस दृश्य को देखकर तमक उठी, उसने एक एक को फटकारें सुनाई । राजा ने कितना समझाया कि इसमें कुछ और बात नहीं है, केवल कारामुक्ति की कृतज्ञता सूचित करने के लिये यहाँ मेरे पास आई है । वकुलावलिका के ऊपर इरावती बहुत बिगड़ी, क्योंकि इरावती की धारणा थी कि इस फसाद की जड़ वकुलावलिका ही है । वकुलावलिका ने भी कह दिया कि जब राजा ही आकृष्ट हो रहे है तब इसमें मेरा क्या दोष है । सभी स्तम्भित भाव में खड़े रहे, इरावती क्रोध में भरी थी, राजा उसे प्रसन्न करने की चेष्टा कर रहे थे, लेकिन वह क्यों मानती । उसने अपनी परिचारिका से कहा, जाकर देवी से कह दे -- "आपका पक्षपात देखा गया, अब हमारे हृदय में विश्वास हो गया कि आपने जानकर इन लोगों को मिलाने का प्रयत्न किया है ।' इस संवाद से सभी चिन्ता में पड़ गये, क्योंकि धारिणी इसे पाकर बिगड़ उठेगी, तब तो यह कार्य और सविघ्न हो जायेगा । इसी समय अन्तःपुर की ओर से एक दासी दौड़ती हुई वहाँ आकर कहने लगी 'विगल वान ने कुमारी वसुलक्ष्मी को इस तरह डरा दिया है कि उसकी घिग्घी बंध गई है । महारानी गोद में रखकर आश्वासन दे रही है फिर भी उन्हें होश नहीं हो रहा है । राजा ने सुनते ही कहा-चलो, मैं होश कराता हूं । इधर यह खबर फैलने लगी कि तपनीयाशोक में फूल लग गये हैं । मालविका को इस पर कुछ आशा बंधी । वकुलावलिका ने भी कहा - देवी सत्यप्रतिज्ञ है, वह आपके मनोरथ अवश्यक पूर्ण करेंगी ।

पंचमोअंक :-

राजा के पास विदर्भ से सूचना आई कि सैनिको ने यज्ञसेन को परास्त करे माधवसेन को बन्दीगृह से मुक्त कर आधे राज्य पर अधिकार करा दिया है । बन्दियों-चारणों ने राजा की स्तुति की । राजा और विदूषक तपनीयाशोक की कुसुम समृद्धि देखने के लिये प्रमदवन चले गये । धारिणी ने मालविका को प्रसाधन-निपुण कौशिकी की सहायता से वैवाहिक वेश से अलंकृत करके उसे, पण्डित, कौशिकी और परिजन को साथ लेकर प्रमदवन में वर्तमान राजा का दर्शन किये । विदूषक ने इस साज-सज्जा को देखकर राजा से कहा - आपके मनोरथ अब पूरे होगें । इसी समय अग्निमित्र के

पिता पुष्यमित्र ने जो उन दिनों अश्वमेघ यज्ञ में दीक्षित थे, दूत के साथ एक पत्र भेजा जिसमें यह सूचना थी कि "कुमार वसुमित्र ने यज्ञाश्व की रक्षा में बड़ी बहादुरी दिखाई है, समुद्र के किनारे यवन सैनिको ने उस अश्व को घेर लिया था किन्तु धनुर्धर वसुमित्र ने सबको परास्त कर या को निर्विघ्न बना दिया है । आप सपिरवार यज्ञ में सम्मिलित हों । पुत्र विजय वार्ता से रानी को बड़ा आनन्द हुआ । इसकी सूचना तत्काल अतःपुर में दी गई और अन्य रानियों को भी संवाद देने लगी दासी को पुरस्कार दिये । अनन्तर धारिणी ने राजा से कहा - आपने भी प्रिय संवाद सुनाया है अतः अनुरूप पारितोषिक को स्वीकार करें । और आन्तरिक आकांक्षा की अभिव्यक्ति परिस्थिति या शापवश नायक नायिकाओं के वियोग का अत्यन्त स्वाभाविक रसश्लेषल और हृदयद्रावक चित्रांकन किया है । इतना अवश्य हैकि मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीयम् में अन्तःपुर के षडयंत्रो से बचाकर प्रेम की व्यंजना की गई है काम प्रेम और सौन्दर्य की दृष्टि से उक्त दोनो नाटक अपेक्षित प्रभाव नही छोड़ पाते जबकि अभिज्ञानशाकुन्तल इस दृष्टि से कालिदास की सर्वोत्तम कृति है क्योंकि मुग्धा किशोरी शकुन्तला के आंगिक सौन्दर्य हेतु जिन प्राकृतिक उपादानों का वर्णन नाटककार ने किया है वे स्वतः सौन्दर्य के शाश्वत मानदण्ड है निवार परिवेष्टित सरसिज अनाविद्ध रत्न कोमल निटप कलंक रहित चन्द्रमा इसके उदाहरण है ।

कवि नाटककार कालिदास में बाह्य सौन्दर्य के साथ ही साथ आन्तरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हेतु सदाचार हृदय की विशालता शील संयम धैर्य वीरता, आदि गुणों की विवृति कही सापेक्षित् तो कहीं संघर्षपूर्ण विरोधी प्रवृत्तियों परिस्थितियों का चित्रांकन कर दिखाया गया अतिशय कामातुरता पिता की अनुमति की प्रतीक्षा किये बिना अपना सर्वस्व सर्मपण करने वाली नायिका को पति विस्मृति का दण्ड इसीलिये हमें सावधान करता हुआ प्रतीत होता है कहना नहीं हो कि कालिदास ने अपने तीनों नाटकों में विभिन्न परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से इसी समय माधवसेन द्वारा उपहार स्वरूप भेजी गई दो शिल्पिकायें वहाँ हाजिर की गई । उन बालिकाओं ने मालविका को देखकर आश्चर्य प्रकट किया और बरबस उनके मुख से यह शब्द निकल पड़े 'यह तो राजकुमारी है, उन बालिकाओं को देखकर पूर्व परिचयवश मालविका की ऑखों से आंसू निकल पड़े । बालिकाओं ने रूपपरिवर्तन हो जाने पर भी स्वर से कौशिकी को पहचान लिया । हम पर आश्चयित होकर राजा ने जिज्ञासा प्रकट की तदनुसार कुछ बालिकाओं ने और शेषांश में कौशिकी ने मालविका का

कुलक्रम यहाँ आना, प्रभृति वृन्तान्त कह सुनाया, जिससे प्रमाणित हुआ कि मालविका राजकुमारी है । सभी को बड़ी खुशी हुई, किन्तु मालविका को चिन्ता होने लगी कि कहीं ऐसा न हो कि राजा मुझे सत्कृत करके भैया के पास भेज दें । इधर धारिणी ने कौशिकी से पूछा इतने दिनों तक आपने मालविका का परिचय न देकर उसका मेरे द्वारा जो अपमान कराया सो क्या उचित हुआ ? कौशिकी ने इसका उत्तर दिया - यह जानबूझ कर ही किया गया है, आप सुने - जिस समय मालविका के पिता भी जीवित थे उसी समय तीर्थ यात्रा में आये हुए एक सिद्ध पुरुष ने कहा था कि 'मालविका एक वर्ष तक दासी का कार्य करके अपने योग्य पुरूष के साथ ब्याही जा सकेगी ।' यहा आपके आश्रय में मैंने देखा कि वह अनायास पूरा हो रहा है, इसलिये मैं चुप रही । अगर मैं उस समय उसका परिचय दे देती तो इसे वह विधि-विधान किसी और जगह भोगना पड़ता, जो अच्छा नहीं होता इसके बाद धारिणी ने इरावती की भी अनुमति से कौशिकी को पूछ कर राजा से कहा - आप पूर्वोक्त पारितोषिक में मालविका को स्वीकार करें राजा ने कहा - जब आप इसे स्तुत्यमान कर देवी शब्द दे रही है और घूंघट दी है तो मैं आपकी इस आज्ञा को स्वीकार करता हूँ ।

तात्पर्य यह कि अन्तःपुर के परिजनों के मध्य चित्रांकित अतिविशिष्ट किशोरी मालविका को देखकर अग्निमित्र का मुग्धहोना, शर्मिष्ठा प्रवर्तित चतुष्पद संगीत में भाव प्रदर्शन के माध्यम से मालविका का आत्मनिवेदन प्रमदवन में वकुलावलिका के साथ मालविका और अग्निमित्र की भेंट कारागार से मालविका की मुक्ति ऐसे प्रसंग है जहाँ सौन्दर्य, काम, प्रेम के विविध चित्र अत्यन्त सरलता पूर्वक चित्रित किये गये है ।

यहा यह उल्लेख्य है कि कालिदास के तीनों नाटकों के नायक राजा और विवाहित पुरूष है नायिकायें या तो आश्रमस्थ नवयौवन सम्पन्ना कोमल किशोरी है अथवा राजपरिवार में पत्नी किन्तु क्षद्मवेश धारण किये हुए परिचारिका अथवा अप्सरा कोटि की नायिका है ।

तीनो नाटकों की कथा में आंगिक सौन्दर्य निरुपण करने के पर्याप्त अवसर नाटककार को उपलब्ध थे कालिदास ने प्रथम दर्शन में ही प्रेमोत्पत्ति का वर्णन कर यौवन जनित कामवेग, पुरुष की भोग प्रधान तीव्र आसक्ति, नारी सुलभ लज्जा स्थूल मांसल और वासना प्रधान पक्षा का निरुपण कर उन्हें निश्रेयस की उच्च उदात्त परिष्कृत और वात्सल्य में परिवसित होने वाली दृष्टि का निरुपण किया है।

कालीदास का संक्षिप्त परिचय, उनके नाटकों की कथा वस्तु तथा काम प्रेम सौन्दर्य की दृष्टि से उन स्थलों का उल्लेख कर हम इसी क्रम में भवभूति की सम्यक आलोचना प्रस्तुत करेगी जिससे निष्कर्ष रूप में काम प्रेम और सौन्दर्य की दृष्टि में कथा बिषयक साम्य वैषम्य का निरूपण सरलता से किया जा सके ।

भवभूति

संस्कृत साहित्य में भवभूति का एक प्रतिष्ठित स्थान माना गया है । जहाँ तक उनके जीवन वृत्त का सम्बन्ध है । उनके बारे में अपर्याप्त- जानकारी उपलब्ध है । उनके नाटकों की प्रस्तावना से उनके जीवनवृत्त के जो सूत्र उपलब्ध है उनके अनुसार वो आधुनिक बम्बई राज के विदर्भ (वरार) अंचल में स्थिति 'पद्मपुर' के निवासी थे वे विशुद्ध वैदिक वंश के ब्राह्मण थे वे कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय शाखा के अनुयायी कश्यप गोत्रीय उदुम्बर ब्राह्मण थे । उनके पिता का नाम नीलकंठ, माता का नाम जतुकर्णी तथा पितामह का नाम गोपाल भट्ट था । उनका पाँचवाँ पूर्वज महाकवि नामक व्यक्ति याज्ञिक विद्वान था । डॉ0 भांडारकर ने लिखा है कि पद्मपुर के निकट महाराष्ट्रीय ब्रह्मणों का एक कुल आज भी विद्यमान है, जो कि भवभूति की वंश परम्परा में से है उन्होंने अपने गुरु का नाम "ज्ञाननिधि' बताया है । आधुनिक खोजों के अनुसार प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट को ही भवभूति ने 'ज्ञाननिधि' नाम से स्मरण किया है ।

भवभूति का पितृप्रदत्त नाम श्रीकण्ठ भट्ट था जैसा कि उन्होंने अपने नाटकों की प्रस्तावना में "भट्ट श्री कण्ठपद लाक्षनों भवभूतिर्नाम' यह लिखकर सूचित किया है कि भवभूति उनका नामकरण लोक में वैसे प्रचलित हुआ है, इस सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि देवी पार्वती की वन्दना करते हुए श्री कण्ठ ने

साम्बा पुनातु भवभूति पवित्र मूर्तिः'

गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूति सिताननौ'

अतः

इन पद्यों में भवभूति शब्द का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है और जहाँ तक मेरा विचार है श्रीकण्ठ भट्ट को भवभूति के नाम से अभिहित करना अधिक उपयुक्त है ।

भवभूति का समय :-

भवभूति का समय निर्धारित करने में विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा कुछ तथ्यों के आधार पर उसकी पूर्व सीमा निर्धारित की गयी है ।

पूर्व सीमा और अपर सीमा :-

वाण (606 से 648 ई0 के लगभग) में हर्षचरित के आरम्भ में अपने पूर्ववर्ती प्रसिद्ध कवियों और नाटककारों का उल्लेख किया है किन्तु उसमें भवभूति का उल्लेख नहीं है । अतः वह बाण का परवर्ती कवि सिद्ध होता है । उसका समय 650 ई0 पूर्व नहीं रखा जा सकता ।

वामन ने अपने कव्यालंकारसूत्र वृत्ति में भवभूति के दो श्लोको को उद्धृत किया है दोर्लीलाचिंत (महावीर 1-54) इयं गेहे लक्ष्मी, (उत्तर 1-38) वामन का समय 8 वीं शताब्दी ई0 का उत्तरार्ध और 9वीं ई0 का प्रथम चरण माना जाता है । अतः भवभूति 750 ई0 से परवर्ती नहीं हो सकते ।

कल्हण की 'राजतरंगिणी' 1148 से हमें भवभूति के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचनायें मिलती हैं । उसमें एक श्लोक (4-144) में लिखा है कि कन्नौज के राजा यशोवर्मा के यहाँ दो कवि रहा करते थे, भवभूति और वाक्पतिराज यशोवर्मा को भवभूति और वाक्पतिराज का आश्रयदाता बताया है ।

कवि वाकपतिराज श्री भवभूत्यादि सेवितः ।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुविवन्दिताम् ।। (1)

वाक्पति राज ने गउडवहो (गौडबन्ध) में भवभूति की प्रशंसा में प्राकृत में एक पद्य लिखा है । (गउडवहो, पद्य सं0 799) इसका संस्कृत रुपान्तर इस प्रकार है ।

"भवभूति जलनिधिनिर्गत काव्यामृत रसकणा इव स्फुरन्ति । यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु" ।।

वाक्पतिराज ने गउडवहो (पद्य 827, 831) में यशोवर्मा के राज्यकाल में एक खग्रास सूर्यग्रहण का उल्लेख किया है । डॉ0 याकोवी ने इस सूर्यग्रहण का समय 14 अगस्त 733 ई0 निकाला है । इससे सिद्ध होता है कि वाक्पति राज 733 ई0 में यशोवर्मा का आश्रित कवि

1. राज 4-144

था और उस समय भवभूति की कीर्ति फैल चुकी थी और उस समय उसका ज्येष्ठ समकालीन आश्रित कवि था । वाक्पति राज संभवतः लगभग 730 ई0 या 753 ई0 तक यशोवर्मा का आश्रित कवि रहा -

गउडवहो का रचनाकाल 740 ई0 के लगभग माना जाता है - यदि 733 में भवभूति की आयु लगभग 50 वर्ष मानी जाये तो उसका जन्म समय 683 ई0 या 680 ई0 मानना उचित होगा । यदि उसकी आयु 70 या 80 वर्ष मानी जाये तो उसका अन्तकाल 750 या 760 ई0 के लगभग होगा ।

इस प्रकार भवभूति का समय 680 ई0 से 750 ई0 तक मानना उचित है -

हर्ष के बाद कान्यकुब्ज के शासक यशोवर्मा हुये, यशोवर्मा राम के बड़े भक्त थे 'रामायण की कथा को लेकर उन्होंने 'रामाभ्युदय' नाटक लिखा था जो इस समय उपलब्ध नही है ।

किन्तु जिसके अस्तित्व के प्रमाण काव्यशास्त्र के अनेक ग्रन्थों में आज भी जीवित है । यशोवर्मा 8वीं शताब्दी के आरम्भ में शासक नियुक्त हुये और 733 ई0 के लगभग (जैसा कि चीन के इतिहास से भी विदित है) उनको काश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीड ने परास्त किया ।

अतः भवभूति का स्थिति काल 700-733 ई0 के आस पास रखा जाना अधिक उपयुक्त बैठता है[1] ।

कृतित्व :-

भवभूति ने तीन नाटक लिखे 'मालतीमाधव', 'महावीर चरित', और 'उत्तररामचरित' । इनमें से प्रथम तो 'प्रकरण' और बाद के दो नाटक है । इनके अतिरिक्त प्राचीन सूक्ति संग्रहो में भी भवभूति के नाम से कुछ स्फुट कवितायें देखने को मिलती है । यहाँ उनके नाटकों की कथावस्तु एवं सौन्दर्य प्रेम सम्बन्धी स्थलों का उल्लेख किया जा रहा है ।

मालती माधवम्

इस प्रकरण के 10 अंक है । जिसमें कवि मालती और माधव की कल्पित प्रेम कथा को बड़ी ही संजीदगी से निबद्ध किया है कुछ असम्भव नहीं है । इस कथानक को उन्होंने

1. विस्तृत अध्ययन के लिए - डॉ0 शेषराज शर्मा, डॉ0 आर0 डी0 कर्माकर, रामचन्द्र मिश्र डॉ0 गंगासागर राय, डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, डॉ0 अयोध्या प्रसाद सिंह के ग्रन्थ द्रष्टव्य है

लोक कथाओं और ब्रहत्त कथा के प्रसंग से लिया है - किन्तु अपनी उदात्त कल्पना के द्वारा उन्होंने रसाभिनिवेश किया है, वह आसाधरण है ।

प्रथम अंक :-

नाटक के प्रथम अंक के आरम्भ में मदनोत्सव का आयोजन दिखाया गया है जिसमें मालती और माधव एक दूसरे को देखते ही आसक्त हो जाते है इसके बाद सखियों सहित मालती चली जाती है और तब मकरन्द का प्रवेश होता है । माधव की वियोगावस्था के वर्णन के साथ ही पहला अंक समाप्त होता है ।

दूसरे अंक में पद्मावती-नरेश के मंत्री भूरिवसु अपनी पुत्री मालती का विवाह नन्दन के साथ करने के लिए उद्यत होते है । इधर कामन्दकी छिपे तौर पर मालती को माधव से विवाह करने के लिए तैयार कर लेती है ।

तीसरे अंक में कामन्दकी शिवमन्दिर के निकट अशोकवन में मालती और माधव के मिलन की योजना बनाती है । माधव वहाँ पहले से ही छिपा बैठा होता है । लवंगिका, मालती को लेकर वहाँ आती है कि दोनो का मिलन होने से पूर्व ही पिजड़े से एक शेर निकल भागता है, जिससे बड़ी भगदड़ मच जाती है इतने में ही मकरन्द उसे मार डालता है किन्तु इस घटना से माधव और मकरन्द दोनो बेहोश हो जाते हैं ।

चौथे अंक में मृतक सिंह के पास ही माधव और मकरन्द भी मूर्छितावस्था में दिखाई देते है दोनो को होश में लाया जाता है । होश में आने पर मालती के साथ उसकी सखी मदयन्तिका को देखता है । दोनो में परस्पर प्रेम पैदा हो जाता है । इस अंक में विष्कंभ से यह सूचना मिलती है कि मालती का विवाह पद्मावती-नरेश के साले नन्दन के साथ तय होगया है ।

पाँचवे अंक में कापालिका अघोरघण्ट मालती को कराला देवी को बलि देने के लिए पकड कर ले जा रहा है । मालती डर से चिल्लाती है कि पास ही श्मशान से माधव आ उपस्थित होता है और वह अघोरघण्ट को मार डालता है ।

छंठे अंक में एक ओर तो कपालकुण्डला अपने गुरु अघोरघण्ट का बदला लेने के लिए उद्यत दिखाई देती है और दूसरी ओर से राजा के सैनिक मालती को खोजते हुए श्मशान पर आते है । वहाँ उन्हें मालती मिल जाती है । पुनः मालती और नन्दन के विवाह की तैयारी

की जाती है । इसी बीच एक ओर तो कामन्दकी की बुद्धिमत्ता से मालती की जगह मकरन्द के साथ नन्दन का विवाह हो जाता है और दूसरी ओर कामन्दकी, मालती को शिव के मन्दिर में ले जाकर माधव के साथ उसका गान्धर्व विवाह करा देती है ।

सातवें अंक में नन्दन को सुहागरात मनाने के दृश्य में अंकित किया जाता है किन्तु दुलहिन बना मकरन्द उसकी बुरी तरह से मरम्मत कर देता है । नन्दन उसको बुरा-भला कह कर वहाँ से चला जाता है । इतने में भाभी को समझाने के उद्देश्य से नन्दन की बहिन मदयन्तिका उस कक्ष में आती है, किन्तु मालती के वेश में मकरन्द को देखकर वह बड़ी विस्मित एवं प्रसन्न होती है ।

आठवें अंक में मालती और माधव उद्यान में मदयन्तिका और मकरन्द की प्रतीक्षा करते हुए दिखाये जाते हैं किन्तु तभी कलहंस आकर सूचना देता है कि मदयन्तिका को भगाने के अपराध में सैनिकों द्वारा मकरन्द पकड़ लिया गया है । अपने मित्र की रक्षा के लिए माधव, मालती को अकेली छोड़कर वहाँ से दौड़ पड़ता है । इधर उचित अवसर की तलाश में बैठी हुई कपालकुण्डला, मालती को भगाकर श्री पर्वत पर ले जाती है । उधर सैनिको और माधव मकरन्द का भयंकर युद्ध होता है । राजा उनकी वीरता से प्रभावित होकर उन्हें छोड़ देता है ।

नवे अंक में मकरन्द के साथ माधव विक्षिप्तावस्था में विन्ध्यपर्वत पर घूमता दिखाया जाता है । वह मालती के वियोग में व्याकुल है । ठीक इसी समय कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी का प्रवेश होता हौ और उसके द्वारा माधव को यह सूचना मिलती है कि मालती को बचाकर कुटिया में रखा गया है ।

दसवें अंक में मालती का पिता भूरिवसु, कामन्दकी, लवंगिका और मदयन्तिका आदि मालती के शोक में संतृप्त है, कि मकरन्द आता है वह माधव-मालती के मिलन का शुभ समाचार देता है । बाद में उसका मदयन्तिका के साथ विवाह हो जाता है । तात्पर्य यह कि मालती के अनुपम सौन्दर्य को निकट से देखकर माधव का आसक्त होना प्रेम विहृल मालती द्वारा प्रिय का चित्रांकन प्रथम दर्शन में ही स्तम्भ खेद रोमांस आदि के माध्यम से अपने भाव की अभिव्यक्ति मकरन्द एवं मदयन्तिका के बीच प्रेम का अंकुरण मालती के विवाह की चर्चा सुन माधव की धनआसक्ति कपालकुण्डला के मन्दिर में अघोरघण्ट से मालती की रक्षा आदि की घटनायें सौन्दर्य काम की विविध

दशाऐ प्रेम प्रस्फुरन एवं अनन्यता का भवभूति ने बहुविध वर्णन किया है यहाँ यह स्मरणीय है कि दोनों के वियोग और मिलन में अनेक बार आकस्मिक संयोगो का बहुत हाथ रहा है साथ ही इसमें दो प्रणय कथायें समानान्तर विकसित हुयी है ।

उत्तररामचरितम्

उत्तररामचरित में 7 अंक है, जिसमें राम के जीवन के उत्तरार्द्ध कथा को निबद्ध किया गया है ।

प्रथम अंक में नान्दीपाठ के बाद सूत्रधार नाटककार का परिचय देता है - इसके बाद नाटक की प्रस्तावना से हमें विदित होता है कि कुलगुरू वशिष्ठ की निगरानी में राम की मातायें अरुन्धती को साथ में लेकर श्रृष्यश्रृंग के द्वादशवर्षीय यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए चली गयी है । इसी समय राम अन्तःपुर में सीता के पिता-वियोग पर उसे दिलासा देते है । अष्टावक्र जाते है और वे राम-सीता को वशिष्ठ तथा अरुन्धती के आर्शीवाद की सूचना देते है । अष्टावक्र के बाद लक्ष्मण का प्रवेश होता है और वह खेद ग्रस्त सीता के मनोविनोद के लिए राम के विगत जीवन की कथा को चित्रपट में दिखाते हैं । चित्रपट में सीता जी गंगा जी को देखती है और राम से, पुनः वन-विहार तथा गंगास्नान के लिए आग्रह करती है । राम गर्भवती सीता की इच्छा को पूरा करने के लिए लक्ष्मण को यह कार्यभार सौंपते हैं । इसके बाद सीता सो जाती हैं । इसी बीच लोकवृत्त को जानने के लिए भेजा गया दुर्मुख आता है और सीता के लोकापवाद के सम्बन्ध में राम से निवेदन करता है । राम बेहोश हो जाते हैं । उधर प्रातःकाल होने पर सीता को लेकर लक्ष्मण वन की ओर चल देते है ।

दूसरे अंक में आत्रेयी और वासन्ती के वार्तालाप से हमें विदित होता है कि महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में कुश-लव नामक दो मेधावी बालक लाये गये हैं । जिन्हें जृम्भकास्त्र जन्मसिद्ध है । आत्रेयी से हमें यह विदित होता है कि तमसा नदी पर गये हुये महर्षि ने किसी व्याध के द्वारा एक क्रौंच पक्षी को मारे जाते हुए देखा, जिससे संतृप्त होकर महर्षि ने व्याध को शाप दिया है । महर्षि की इस श्लोकबद्ध वाणी को सुनकर ब्रह्मा जी प्रगट होते हैं और महर्षि से 'रामायण' की रचना करने के लिए आग्रह करते हैं । आत्रेयी की बातों से यह भी पता चलता है कि राम

ने सीता की सुवर्णमूर्ति को धर्मपत्नी का रुप देकर अश्वमेघ यज्ञ को आरंभ किया है । ठीक उसी समय पुष्पक विमान पर आरुढ़ राम का प्रवेश होता है और वे शम्बूक को मार कर उसका उद्धार करते है । बाद में दिव्यरुपी शम्बूक से राम को लोपमुद्रा तथा अगस्त्य के आश्रम में आने की सूचना मिलती है ।

तीसरे अंक में मुरला और तमसा नामक दो नदियो के वार्तालाप से यह विदित होता है कि लक्ष्मण द्वारा अरक्षितावस्था में छोड़ी गई सीता ने अपमानवश गंगा में कूदकर वही दो पुत्रों को जन्म दिया, दूध छूटने पर उन दोनों पुत्रों को गंगादेवी ने वाल्मीकि को सौंप दिया है । इसके बाद उन दोनों नदियों के वार्तालाप से यह विदित होता है कि भगवती भागीरथी कुश-लव की बारहवीं वर्षगाँठ पर सीता से सूर्य की अर्चना करने के लिए कहती हैं । और उसको यह भी समझाती हैं कि पृथ्वी में उसको कोई भी नहीं देख सकता है । इस विष्कंभ के बाद पुष्प-चयन करती हुई सीता का प्रवेश होता है । ठीक इसी समय पुष्पक विमान से राम भी उधर ही आ निकलते है । राम की अवस्था को देखकर सीता मूर्छित हो जाती है । राम भी सीता के विलाप में मूर्छित हो जाते है । तमसा की आज्ञा से सीता दो बार राम का स्पर्श करती है और उन्हें होश में लाती है इसके बाद बासन्ती और राम की बातचीत होती है । बाद में राम अश्वमेध यज्ञ के लिए अयोध्या की ओर प्रस्थान करते है ।

चौथे अंक में दाण्डायन और सौद्यातकी नामक तपस्वी बालको के वार्तालाप से पता चलता है कि ऋषि वशिष्ठ अरुन्धती और राम की माताओं को साथ लेकर श्रृष्पश्रृंग के आश्रम से बाल्मीक मुनि के आश्रम में उपस्थित हुए है । यही हमें यह भी मालूम होता है कि महाराज जनक के साथ वशिष्ठ आदि का मिलन होता है । इसी बीच वहाँ लव का प्रवेश होता है । परिचय पूछे जाने पर लव अपने को कुश का भाई तथा वाल्मीक का शिष्य बताता है । इसी बीच लक्ष्मण का पुत्र चंद्रकेतु अश्वमेघ के अश्व को लेकर वहाँ आता है और उस अश्व को वीरो के लिए एक चुनौती जान कर लव उसका अपहरण कर लेता है ।

पाँचवें अंक में लव, चंद्रकेतु के सैनिको को परास्त कर देता है । लव के जृम्भकास्त्रों को देखकर सुमंत को आश्चर्य होता है बाद में लव तथा चन्द्रकेतु का युद्ध होता है ।

छठे अंक में विमान पर चढ़े हुए विद्याधर और विद्याधरों के वार्तालाप से यह विदित होता है कि चन्द्रकेतु लव के युद्ध में आग्नेय वारुण और वायव्य आदि अस्त्रों का प्रयोग हो रहा है । इन्हीं के मुख से यह भी जानने को मिलता है कि युद्धस्थल पर एकाएक ही राम के आ जाने से दोनो योद्धाओं का संघर्ष शान्त हो गया है । चन्द्रकेतु राम को अपने वीर प्रतियोगी लव का परिचय देता है । लव राम के व्यक्तित्व से प्रभावित होता है और चन्द्रकेतु से उनका परिचय प्राप्त करता है । लव के अभिवादन के बाद राम उसका आलिंगन करते है । इसी बीच कुद्ध कुश प्रवेश होता है किन्तु लव उसको शिष्टतापूर्वक व्यवहार करने तथा राम को प्रणाम करने के लिए कहता है । राम उसका भी आलिंगन करते है । राम को उन दोनों बालकों में राजचिन्ह तथा सीता का सादृश्य देखकर विस्मय होता है । तदनन्तर अरुन्धती, वशिष्ठ, वाल्मीक, जनक और कौशल्या आदि राम के समीप आते है ।

सातवें अंक में गर्भांक नामक एक अवान्तर नाटक की योजना करके पूर्व छहो अंको की सारी घटनाओं को दिखाया जाता है । गंगा के तट पर नाटक का अभिनय देखने वाले समग्र देशवासी लोग सीता को प्रणाम करते है और लोकपाल तथा सप्तर्षि पुष्पवृष्टि करते है । यही पर राम, सीता, लक्ष्मण, कुश, लव और शत्रुघ्न आदि का संमिलन होता है । और सुखान्त स्थित में नाटक की कथा समाप्त हो जाती है ।

सार यह है कि उत्तररामचरित की कथा आन्तरिक मनोयात्रा की व्यथा कथा है जिसमें एक ओर आर्दश प्रजारंजन है तो दूसरी ओर प्रियतमा प्राण वल्लभा का निश्छल निष्कपट प्रेम है चित्रवीथिका और यत्र-तत्र निर्वासन जनित वियोगावस्था में सीता के किशोरी और युवती रुप का वर्णन कर कवि ने नख-शिख परम्परागत सौन्दर्य का पालन यत्किञ्चित रूप में किया है सचमुच ही दीर्घ वियोग के अवसरों पर मनमृग कुलाचें भरता हुआ अतीत के गौह में जा छिपता है राम जनस्थान दण्डकारण्य की भयावह परिस्थितियों को देखकर पितृज्ञा के समय वनवास की स्मृति भीरु अपने को धिक्कारते है भवभूति ने प्रेम के गम्भीर अस्तुद हृदयदावक पक्ष के चित्रांकन में अधिक सफल दिखाई देते है ।

महावीर चरितम्

इस नाटक में 7 अंक है । 'रामायण' की कथा का पूर्वार्द्ध भाग - राम विवाह राम वनवास, सीता हरण और राम का राज्याभिषेक इस नाटक की कथावस्तु है ।

प्रथम अंक में ऋषि विश्वामित्र यज्ञ की रक्षार्थ राम-लक्ष्मण के लिए दशरथ से याचना करते हैं । अनिच्छा होने पर भी दशरथ अपने दो पुत्रों को ऋषि के हाथ सौंप देते हैं । इसी यज्ञ को देखने के लिए जनकपुरी से महाराज नजक के छोटे भाई कुशध्वज सीता और उर्मिला को साथ लेकर आते हैं । इन दोनों की राम और लक्ष्मण से भेंट होती है । इतने में ही रावण का दूत आता है और वह सीता को वरण करने के लिए रावण का सन्देश सुनाता है । दूत की बात पूरी भी नहीं हो पाती कि भारी कोलाहल के साथ ताड़का का आश्रम में प्रवेश होता है । विश्वामित्र का संकेत पाकर राम उसको मार डालते है ।

इसके बाद शिवधनु को भंग करते हैं और विवाह हो जाता है यह समाचार दूत के द्वारा रावण तक पहुंच जाता है ।

दूसरे अंक में रावण के नीतिकुशल मंत्री माल्यवान क्रोधी ब्राह्मण परशुराम को राम के विरूद्ध भड़काता है ।

तीसरे अंक में राम परशुराम के वाक्य युद्ध का वर्णन

चौथे अंक में परशुराम पराजित होते हैं माल्यवान के षडयन्त्र से सूर्पणखा कैकेयी की दासी मन्थरा के रुप में कैकेयी का पत्र राम को देती है कि दशरथ के वरदान के अनुसार राम 14 वर्ष वन में निवास करें और भरत का राज्याभिषेक हो ।

पाँचवे अंक में सीताहरण, जटायु रावण युद्ध, विभीषण का राम से मिलना, बालि वध, और सुग्रीव की मैत्री का वर्णन है ।

छठे अंक में राम और रावण का घमासान युद्ध और रावण वध का वर्णन किया गया है ।

सातवें अंक में सीता की अग्नि परीक्षा, राम का अयोध्या आना और उनका राज्याभिषेक हो जाता है और यही पर कथा समाप्त हो जाती है ।

महावीर चरित में राम के वीर बनने की घटनायें विन्यस्त है कथा की विशालता के कारण नाटककार को काम प्रेम और सौन्दर्य के स्थलों को विशेष रुप से चित्रित करने का अवसर ही नहीं मिला ।

भवभूति के तीनो नाटकों पर विहंगम दृष्टिपात करते हुए यह सहज ही निष्कर्ष

निकाला जा सकता है कि महावीर चरित को छोड़कर शेष दोनों नाटक काम प्रेम एवं सौन्दर्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है मालती-माधव में यदि रूपाशक्ति जन्य काम का आकर्षण नायिका की समानुपातिक आंगिक विस्तार देहकान्ति सौकुमार्य, मृसणता लीला विलास नायक की आसक्ति परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से विरह का चित्रांकन हुआ है वही प्रेम के साहचर्यजन्य रुप की ऐसी अभिव्यक्ति हुई है जिसमें अनन्यता एक निष्ठा, गम्भीर दाम्पत्य प्रेम, प्रेम की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर चित्रांकन हुआ है जिसमें पाठक सामाजिक आकंठ मग्न हो जाता है ।

इस प्रकार कालिदास और भवभूति के नाटकों का सिंहावलोकन करते हुए संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि दोनो नाटककारों के नायक उच्चकुलोद्भव पुरुष है जिनमें आन्तरिक सदाचार शील सद्वृत्ति संयम दृढ़ता है कालिदास और भवभूति दोनों नाटककारों ने स्त्री पुरूष सौन्दर्य निरुपण हेतु प्राकृतिक उपादानों को उन्मुक्त रुप से ग्रहण किया है शाप या आकस्मिक संयोग से परिस्थितियों में घात-प्रतिघात उत्पन्न कर नायक-नायिकाओं की प्रेम विषयक लौकिक या अलौकिक स्थित का चित्रांकन किया है । दोनों नाटककारों ने संयोग कालिक - दर्शन आलिंगन परिरम्भझा केलि विलास इत्यादि का चित्रांकन किया है अतः यह निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि आलोच्य नाटककारों ने ऐसी नाटकीय कथावस्तु, आरोहावरोह से युक्त घटना व्यापार का चयन किया है जिसमें सौन्दर्य प्रेम के बहुविध कोमल आकर्षक उच्च, उदान्त भोगेच्छा प्रधान वासनात्मक रूपों का चित्रांकन किया जा सके ।

अध्याय - २

{सौन्दर्य तथा प्रेम का तात्विक विवेचन}

सौन्दर्य की व्युत्पत्ति

'सौन्दर्य' सुन्दर की भाववाचक संज्ञा है । वाचस्पत्यकोश के अनुसार 'सु' उपसर्गश्र्वक 'उन्द' धातु में 'अरन' प्रत्यय जोडकर 'सुन्दर की सिद्धी की गयी है । जिसका अर्थ हुआ अच्छी तरह से आर्द्र करने वाला ।[1] 'नन्द' धातु से भी सुन्दर की व्युत्पत्ति मानी गयी है । सुन + नन्द अर्थात जो भली प्रकार से प्रसन्न करे । संस्कृत हिन्दी कोश में सुन्दर की व्युत्पत्ति सुन्द + अर से की गई है ।[2]

सुन्दर की एक और व्युत्पत्ति भी सम्भव है - सुन्दराति इति सुन्दरम । 'सुन्द' का अर्थ है कर्तनी अर्थात जो कैंची की तरह काटने वाला हो, उसको जो लाता हो, वह सुन्दर है । सौन्दर्य हृदय पर, कैंची की तरह काट वाला प्रभाव, नेत्रों द्वारा करता है ।[3]

इसके अतिरिक्त 'सुनर' तथा 'असन' से भी सुन्दर का सम्बन्ध जोडा गया है ।[4]

परन्तु ये व्युत्पत्तियां कल्पना क्रीडा की उपज हैं । अतः सौन्दर्य की सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती है । विभिन्न विद्वानों द्वारा सौन्दर्य की जो परिभाषाएं दी गयी हैं, उनके संकलन से एक लघु ग्रन्थ बन सकता है । यूनान में सौन्दर्य की जो परिभाषाएं दी गयी हैं वे हैं - सुकरात, अफलातून, अरस्तु की परिभाषाएं । रोम में प्लूटार्क, प्लाटिनस ने जर्मनी में काण्ट, हीगेल, शापेनहॉबर एवं लेसिंग ने, इंग्लैण्ड में शैफटसबरी, रस्किन, एडीसन, बर्क एवं पेन ने मुख्य रूप से तथा अन्य देशों में अनेक विद्वानों ने सौन्दर्य की परिभाषाएं दी हैं । भारतीय कवियों एवं विचारकों ने भी सौन्दर्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है । कुछ परिभाषाएं निम्न प्रकार से हैं -

महाकवि माघ - 'जो क्षण - क्षण नवीनता प्राप्त करे, वही रूप रमणीय है ।'[5]

कालिदास के अनुसार - 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारूता ।'[6]

1. वाचस्पत्य कोश पृ0 5314   2. संस्कृत हिन्दी कोश, वी0 एस0 आप्टे पृ0 1115
3. डा0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल : जय शंकर प्रसाद दस्तु एवं कला, पृ0 288
4. डा0 लालता प्रसाद सक्सेना : मंझन कासौन्दर्य दर्शन पृ0 18
5. माघ शिशु पाल वध 4/17   6. कालिदास कुमार संभव

सम्पूर्णानन्द की मान्यता है - 'कुछ ऐसे दिग्विषय हैं जिनको देखकर हृदय में रस का संचार होता है । - - हम इन सब में जो मनोहारिता पाते हैं, उसे सौन्दर्य कहते हैं । [1]

डा0 हरिद्वारी लाल शर्मा - 'अपनी अनुभूति, प्रत्यक्ष, स्मृति, कल्पनादि द्वारा जो आनन्द को उत्पन्न करने वाले वस्तु के गुण को सौन्दर्य, वस्तु को सुन्दर कहते हैं ।' [2]

राम विलास शर्मा - 'प्रकृति, मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनन्द दायक गुण का नाम सौन्दर्य है ।' [3]

हरिवंश सिंह के अनुसार - 'स्थूल या सूक्ष्म जगत में आत्मा की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है ।' [4]

प्रसाद जी ने सौन्दर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान कहा है । [7] सौन्दर्य के सम्बन्ध में डा0 फतह सिंह की मान्यता मौलिक है । उनके विचार से यह प्रश्न अर्थ विज्ञान का है । उन्होने कल्पना की है कि संस्कृत भाषा भाषियों के पूर्वजों ने उन्हीं पदार्थों के लिए सुन्दर शब्द को प्रयुक्त करना प्रारम्भ किया होगा जिनके सम्पर्क में से उनके हृदय में 'सुम' नामक अनुभूति उत्पन्न हुयी होगी । उन्होने लिखा है कि - 'हमारा मन ही 'सुम' अनुभूति का दाता होने से सुन्दर है एवं जिस वस्तु या विभाव द्वारा आकर्षित होकर मन में अनुभूति विभावित होती है, उसे सुन्दर कहा जा सकता है, अतः उस वस्तु या विभाव के आकर्षण को ही सौन्दर्य कह सकते हैं । इसीलिए मनोहारिता, मनोज्ञता आदि शब्द सौन्दर्य के पर्यायवाची समझे जाते हैं ।

पाश्चात्य विचारकों में वाउमगार्टिन, हीगेल, कोचे, कीट्स, शीलिंग आदि ने सौन्दर्य को परिभाषित किया है - The appearance of perfections or

We may define beauty as successul expression, or better, as expression and more, because expression when it is not successful, is not expression."[3]

"Beauty is truth, Truth is beauty- that is all.[4]

"Ye know on earth, and all ye need to know"[1]

"Beauty is the represented in the form of fnite."[2]

1. डॉ0 सम्पूर्णानन्द : चिद्विलास - 209
2. सौन्दर्यशास्त्र पृ0 101
3. समालोचक का सौन्दर्य -शास्त्र विशेषांक -पृ0 176
4. सौन्दर्य विज्ञान पृ0 56-57
5. सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका पृ0 127
6. वाडम गार्टेन
7. हीगल
8. क्रोचे

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय एवं पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्रियों ने सौन्दर्य पर दो दृष्टि से विचार किया है -

1. भौतिकवादी या वस्तुगत दृष्टिकोण, जिसमें विभाव को दृष्टि में रखकर विचार हुआ है ।
2. अध्यात्मवादी या व्यक्तिगत दृष्टिकोण जिसमें व्यक्ति को दृष्टि मे रखकर विचार हुआ ।

कुछ ऐसे समन्यवयवादी विचारक हैं जिन्होंने सौन्दर्य को वस्तुगत भी माना एवं व्यक्तिगत भी । इस जमी पर विचार करना उपयोग एवं प्रसंगानुकूल होगा ।

प्रत्ययीकृत पुनः प्रत्यक्ष (आइडियालाइज्ड रिप्रेजेन्टेश) में ललितकलाओं का सौन्दर्य बोध छिपा है। अतः सुन्दर की अभिव्यक्ति या सौन्दर्य का अभिवर्द्धन कला का उद्देश्य है । वास्तविकता यह है कि कला में हमें सृष्टा (कलाकार) की चेतना के मुग्ध संवेग या समग्र मानव-चेतना तक आशु संक्रमण मिलता है । यह संक्रमण सौन्दर्य-स्फूर्ति के सहारे निष्पन्न होता है । ललित कला (चारू-कला) की तरह उपयोगी कलाओं (कारूकला) में भी सौन्दर्य-बोध का महत्व है । वस्तुतः प्रत्येक कला कलाकार की मनःस्थिति अथवा आत्मानुभूति का एक आन्तरिक अंश है । वाह्य उपदानों से उसका तात्विक नहीं, अभिव्यक्तिगत संबंध है । कलाकार की अनुभूतियों में सुरक्षित अमूर्त कला जब प्रत्यक्षीकरण के माध्यम से मूर्त्ति बनने लगती है, तब सांसारिक उपादानों की आवश्यकता होती है । अतः उपयोगी कलाओं में भी आवश्यक उपादानों के प्रस्तुत रहने पर उन्हें समंजस संगठन, आकारिक अनुपात एवं नयमाभिरामता प्रदान करने के लिए कलाकार को अपनी शिल्प-रूचि तथा सौन्दर्य-बोध का प्रयोग करना ही पड़ता है ।

दूसरा ध्यातव्य तथ्य यह है कि सौन्दर्य-दृष्टि से कला में मुख्य और गौण अथवा अल्प और विराट का कोई भेद नहीं होना चाहिए । आवश्यक है कि कला में प्रस्तुत सौन्दर्य के आलम्बन-विधान में रूचि-भेद क्रियाशील रहता है । अतः कला-सृजन एवं कला-भावना में क्रमशः सृष्टा एवं सहृदय की स्वाद रूचि का आपेक्षिक महत्व है। आधुनिक सौन्दर्य प्रधान

कलानुचिन्तन से बहुत पूर्व प्लेटो ने इस आश्रगत रूचि भेद को संकेतित किया था । किन्तु इस मान्यता को कुछ सीमाओं के साथ ही स्वीकृत होना चाहिए, क्योंकि आत्मरूचि निर्भर व्यक्ति अपनी कल्पनाओं से उच्चकोटिक कला का सृजन अथवा चयन नहीं कर सकता । अतः कला की सृजन-क्षमता हेतु कल्पना, भावना अथवा संवेग में अंशतः वस्तु प्रत्ययनेयता आवश्यक है ।

कुछ विचारकों की दृष्टि में सौन्दर्य पूर्णतः वस्तुनिष्ठ है । इसीलिए वह प्रत्यक्ष-बोध से संबंधित है । प्रत्यक्ष हेतु अन्तःकरण और इन्द्रिय दोनों का वस्तु के साथ सान्निकर्ष या संयोग होना चाहिए । इस प्रत्यक्ष की मात्रा इन्द्रियों की सशक्तता, अशक्तता और अच्छाई-बुराई पर निर्भर है । इन्द्रिय एक प्रकार की शक्ति है, जिसमें बाहरी वस्तु, ज्ञेय अथवा दृश्य से प्रभावित होने तथा उनको प्रभावित करने की क्षमता है । सेन्द्रिय होने के कारण ही, अर्थात प्रत्यक्षीकरण के माध्यम की विशेषता के कारण ही हम व्यक्तियों में सौन्दर्य के प्रभाव से मुग्ध होने तथा सुन्दर को प्रभावित करने में स्तर अथवा मात्रा कि भिन्नता पाते हैं । इसीलिए व्यक्ति के सौन्दर्य-बोध की भिन्नता भी इसका पुष्कल प्रमाण पेश करती हैं कि सौन्दर्य का संबंध ऐन्द्रिय-प्रत्यक्ष से है

इस मान्यता को स्वीकृत करने पर एक दूसरा तथ्य स्वयं उद्घाटित होता है - वह है - सौन्दर्य-ग्रहण में अंतःकरण का योग । अन्तःकरण के योग की आवश्यकता दो अवस्थाओं में है - एक सौन्दर्य की प्रत्यक्षावस्था में, दूसरे उनकी स्मृति में । पहली अवस्था में इसलिए अन्तःकरण का योग होना चाहिए कि अन्यमनस्क होने की दशा में, चित्त कहीं और लगे रहने की अवस्था में सौन्दर्य के अवलोकन में मन नहीं रमता है । स्मृति अवस्था में- अन्तःकरण का योग इसलिए चाहिए कि इसमें सौन्दर्य का वास्तविक आलम्बन अन्तर्हित रहता है ।

द्वितीयावस्था की उद्भूति प्रथमावस्था में ही निहित है । सौन्दर्य-भावन में यही वह स्थल है, जहां 'आइडिया' एवं 'इमेज' में एकत्व अथवा सन्तुलन रहता है । इन दोनों में यदि भावगत पौवपिर्य माना जाए तो 'आइडिया' कारण एवं 'इमेज' कार्य होगा ।

इसी विचार शरणी पर यह स्थापना निर्भर है - 'इमेज इज द रिपाइजेशन ऑफ एन आइडिया इन ए सिंगल ऑब्जेक्ट ।' किन्तु कुछ विचारकों की दृष्टि में इमेज एवं आइडिया के

1. काव्य में सौन्दर्य तत्व डॉ0 कुमार विमल
2. वही

बीच वस्तुगत पौर्वापर्य है, जिसके अनुसार प्रथम कारण और द्वितीय कार्य है । इनमें नियतपूर्ववर्त्तित्व के साथ-साथ अविनाभाव है ।

कला-प्रसंग में सौन्दर्य-चिन्तन अधिकतर अतिवादी रहा है । एक ओर चेर्नीशेव्स्की जैसे वस्तुनिष्ठ विचारक ने सौन्दर्य की परिभाषा इस प्रकार दी है -

'ब्यूटी इज लाइफ' तो दूसरी ओर रोफ्ट्सबरी जैसे आत्मनिष्ठ चिन्तक ने कहा - 'ब्यूटी एण्ड गॉड और वन एण्ड सेम ।' इस तरह सौन्दर्य (विचारकों के हाथों में) दो अति बिन्दुओं के बीच दोलक की तरह झूलता रहा और कोई भी दो विचारक एक मत पर नहीं पहुंच सके । फलतः सौन्दर्य की परिभाषाएं अनेक हैं । सौन्दर्य संबंधी धारणाओं को सरलतापूर्वक समझने के लिए पाश्चायत्य सौन्दर्य-चिन्तन के विकास का यह देशाधार विवेचन उपयोगी सिद्ध होगा

क. यूनान

1. सुकरात -

सुन्दर और शिव एक है, अतः सुन्दर जीवन-सापेक्ष है । (जनोफेन-रचित 'मेमोरेबिलिया' नामक ग्रन्थ के आधार पर सुकरात के सौन्दर्य सिद्धान्त का यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है

2. प्लेटो -

सुन्दर, शिव एवं सत्य एक हैं । सुन्दर 'पत्य' है एवं पूर्व है तथा सुन्दर के लिए नैतिक होना आवश्यक है ।

3. अरस्तु -

सौन्दर्य आकांक्षा, वासना और उपयोगिता से ऊपर की वस्तु है, तथा सुन्दर वस्तु में 'आर्डर' 'सिमेट्री और 'डिफिनिटनेस' की विद्यमानता रहती है । इनका सिद्धान्त-सार यह है कि सुन्दर और शिव एक नहीं है, क्योंकि शिव का अनुभव गति की अवस्था (state of motion) में होता है और सुन्दर की अनुभूति स्थिति (रिपोज) की अवस्था में ।

ख. राम

ख. रोम

1. प्लूटार्क -

सौन्दर्य एक प्रकार की कलात्मक कुशलता है ।

2. प्लोटिनस -

ऊंची धारणा और तर्क का सम्मिश्रण सौन्दर्य है । पुनः ऊंची धारणा और तर्क के सम्मिश्रण को सौन्दर्य ही रूप-विधान प्रदान करता है । अर्थात् सौन्दर्य पूर्णतः भावगत है, अल्पांश में भी वस्तुगत नहीं । इसलिए सौन्दर्य एक रहस्यात्मक सहजानुभूति है ।

ग. जर्मनी

1. वाउमगार्टेन -

प्रकृति सौन्दर्य का चल प्रतिमान है । अतः प्रकृति का अनुकरण ही सौन्दर्य-सृजन है ।

2. काण्ट -

(इन्होंने 'ट्रन्सेण्डेण्टल एस्थेटिक्स' की उद्भावना की । इनके अनुसार) सौन्दर्य चिन्तनशील धारणा का आनन्द है। इसका अस्तित्व वस्तुनिष्ठ नहीं है । किन्तु इसका उद्देश्य नैतिक शिवत्व का स्थापन है ।

3. हीगेल -

'आइडियल' की अभिव्यक्ति का प्रयास सौन्दर्य-सृजन है और इसका माध्यम अथवा अनुकरण ही सुन्दर है ।

4. शॉपेनहावर -

इच्छाओं अथवा 'प्लैटोनिक आइडियाज' का सम्मूर्तन ही सौन्दर्य है ।

5. लेसिंग -

सौन्दर्य अभिव्यक्ति में नहीं, वस्तु-विधान और पद्धति में है । इन्होंने केवल चित्रकला एवं कविता को दृष्टिपथ करके सौन्दर्य पर विचार करने की चेष्टा की है ।

घ. इंगलैण्ड

सौन्दर्य के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को प्रारम्भ करने का श्रेय इंगलैण्ड के सौन्दर्य शास्त्रियों को है । ये सौन्दर्यशास्त्री मुख्यतः दो निकाय के हैं- 'आइडियालिस्ट' (अर्थात् इण्ट्यूशनलिस्ट) एवं 'फार्मेलिस्ट' (अर्थात् एनालिटिकल प्योरिस्ट) प्रथम निकाय के विचारक सौन्दर्य को विश्लेषण

1. लेक्चर्स आन आर्ट, जॉन रस्किन, जार्ज एलेन, 1904

से परे मानते हैं, क्योंकि सौन्दर्य का विश्लेषण नहीं हो सकता, चूंकि वह वस्तु एक अखण्ड गुण है । किन्तु 'फार्मेलिस्ट' विचारकों का कथन है कि सौन्दर्य का विश्लेषण हो सकता है, क्योंकि उसका संबंध वस्तु-विशेष के आकृति-विधान से है।

इंगलैण्ड के 'आइडियालिस्ट' विचारकों में ये प्रधान है -

1. शैफ्टशबरी -

सौन्दर्य और परम विभु एक है ।

2. टॉमस रीड -

सौन्दर्य आध्यात्मिक चैतन्य है ।

3. रस्किन -

सौन्दर्य ईश्वर की विभूति है । रस्किन ने मनुष्य में दो वृत्तियां मानी हैं -सहज, काल्पनिक सहज-वृत्ति के अन्तर्गत ही सौन्दर्य-बोध आता है । इन्होंने सौन्दर्य की दो श्रेणियों मानी हैं - टिपिकल एवं बायटलन । इन्होंने फिर 'वायटलन ब्यूटी' के दो भेद माने हैं - रिलेटिव, जेनेटिक ।

इंग्लैण्ड के 'फार्मेलिस्ट' विचारकों में निम्नलिखित प्रमुख हैं -

1. एडिसन -

सौन्दर्य परिवेश और संगीत का फल है ।

2. होगार्थ -

सौन्दर्य वस्तु विशेष के अंगों के सन्धि-बन्ध, प्रयुक्तियों की रंजकता और अनुक्रम में विद्यमान रहता है ।

3. बर्क -

वस्तु-विशेष की वर्णगत चारुता, आंगिक कोमलता एवं उज्जवलता ही सौन्दर्य है ।

4. बेन -

सौन्दर्य सोद्देश्य होता है । हमारा वह संवेग जो जीवन के प्रयोजनों से परे रहता है, सौन्दर्य कहलाता है ।

5. एल्सन -

सौन्दर्य विचारों का प्रवाह है ।

च. रूस

1. चर्नासेत्सकी -

सौदर्य ही जीवन है ।

सौन्दर्य सामाजिक जीवन के जीवन्त यथार्थ का ऐसा प्रतिबिम्ब है, जो हमें आनन्द ही नहीं देता, प्रगतिशील होने की प्रेरणा भी देता है । सौन्दर्य के सम्बन्ध में ऐसी धारणा हर्जेन एवं वर्जी की सीमा है ।

संक्षेप में पाश्चात्य सौन्दर्य-चिन्तन के विकास का देशाधार विवेचन है ।[1]

सौन्दर्य का स्वरूप

भौतिकवादी या वस्तुगत दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण के विचारको ने विभाव या वस्तु में ही सौन्दर्य की खोज की है । संस्कृत काव्यशास्त्र में क्षेमेन्द्र ने औचित्य को जो महत्व दिया है, उसे सौन्दर्य की दृष्टि ही माना जा सकताहै । अरस्तु ने सम्मात्रा symmetry, व्यवस्थित क्रम तथा निश्चित आकार के रूप में सौन्दर्य के जिन अंगो का प्रतिपादन किया है, वे इसी औचित्य के अन्दर आ जाते है । संसार में सौन्दर्य के जिन अंगो का प्रतिपादन किया है, वे इसी औचित्य के अन्दर आ जाते है । संसार में सौन्दर्य की भावना इसी औचित्य तत्व पर आश्रित है । प्रत्येक वस्तु का अपना एक विशिष्ट तथ्य निर्दिष्ट स्थान है । जहाँ से भ्रष्ट होने पर उसका मूल्य तथा महत्व नष्ट हो जाता है ।[2]

क्षेमेन्द्र ने औचित्य को ही सौन्दर्य का मूल तत्व माना है । यदि कोई सुन्दरी अपने गले में करधनी, नितम्ब के ऊपर, हाथों में नूपुर एवं पैरों में पहन ले तो उसकी प्रचण्ड मूर्खता देखकर उस पर कौन नही हंस पड़ेगा यदि कोई पुरूष शरणागत प्रणत के ऊपर वीरता दिखाये और शत्रु पर करूणा करे तो उसकी हंसी कौन नही उडायेगा सच्ची बात तो यह है कि औचित्य के बिना न तो अलंकार ही सौन्दर्य का उन्मेष करते और न गुण ही प्रीति का विस्तार करते है

दिदिशे ने कहा था कि वस्तु के पारस्परिक सम्बन्धों में सौन्दर्य है । वर्क ने आकार की लघुता, मसृणता, क्रमिक परिवर्तन, कोमलता, वर्ण दीप्ति एवं शुद्धता को सौन्दर्य के उपकरण माना है । रिचार्ड प्राइस एकरूपता, वैशिष्ट्य, व्यवस्था तथा सम्मात्रा में सौन्दर्य स्वीकार करते है।[3]

1. विस्तृत विवेचन काव्य में सौन्दर्यतत्व - डॉ० कुमार विमल द्रष्टव्य हैं।
2. बल्देव उपाध्याय: भारतीय साहित्य शास्त्र, पृ0 31।
3. वही पृ0 32

इस प्रकार वस्तु के बाह्रय रूपाकार में सौन्दर्य की खोज करने वाले विचारकों ने विभिन्न गुणों को प्रमुख स्थान दिया है । यह वस्तुगत गुण किसी न किसी प्रकार कलाओं के सौन्दर्य में भी महत्वपूर्ण ध्यान रखते है ।

इस वर्ग के विचारकों की खोज वस्तु तक ही परिमित रही । सौन्दर्य का अनुभव कर्ता से भी कोई सम्बन्ध है, इस ओर उनकी द्रृष्टि नही गयी । कुछ विद्वान विभाव या वस्तु के रूपाकार से आगे किन्तु उनका द्रृष्टिकोण भौतिकवादी ही रहा । डां. जेरार्ड ने जहाँ विभाव की द्रृष्टि से आकृति एवं वर्ण-सौन्दर्य को स्वीकार किया, वहाँ प्रमाता को द्रृष्टि में रखकर उपयोग सौन्दर्य को भी माना है ।[1]

जेफ्रे, एलीसन एंव बेन इत्यादि ने साहचर्यवाद Law of asso. की प्रतिष्ठा करके सौन्दर्य के वस्तुगत द्रृष्टिकोण की त्रुटियों को दूर करने का प्रयास किया । परन्तु उनके मत में भी विभाव को मुख्य स्थान मिला, क्योंकि उनके मतानुसार जो सुखद अनुभूतियां सौन्दर्य का कारण बनती है वे वस्तुतः और अनिवार्यतः विभाव या वस्तु को लक्ष्य करके ही उपजती एवं संचित होती है ।[2] अतः साहचर्यवाद का महत्व इतना ही माना जा सकता है कि वह अनुकूल परिस्थिति में भाव का प्रकर्ष कर सकता है एवं प्रतिकूल परिस्थिति में या तो दुःखद भाव को कुछ कम कर सकता है या सुखद भाव में कुछ न्यूनता ला सकता है ।[3]

कुछ विचारकों ने विभाव को छोड़कर सौन्दर्य का कारण विभिन्न जातियों में प्रचलित सौन्दर्य आदर्शो के आधार पर सौन्दर्य की विवेचना का प्रयास किया है । इनमें पेरवकी का नाम उल्लेखनीय है । पर ये आदर्श भी तो विभिन्न विभावों से संयुक्त है । लार्ड फेनु,विलियम, शेन्सटन एवं अब्राहय ह्यूकर ने प्रथा और स्वभाव को सौन्दर्य का हेतु माना है । रेनाल्ड्सादि ने सौन्दर्य-मीमांसा में प्रकृति को महत्व दिया है । उनके मतानुसार प्रत्येक पौधे एवं प्राणी की प्रकृति उसके पूर्व निर्णीत रूप की ओर लिए जा रही है एवं यदि हम उनके रूपों में सौन्दर्य देखते है तो केवल इसलिए की हम ऐसा करते आए है । हमारी यह आदत इसी प्रकार की है जिस प्रकार हाँ से स्वीकृति एवं ना से निषेद्य का ज्ञान होता है ।[4]

1. ब्यूटी ऑफ यूटिलिटी
2. डॉ0 फतह सिंह भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका पृ0 10
3. डॉ0 आनन्द प्रसाद दीक्षित सौन्दर्य तत्व की भूमिका, 9
4. डॉ0 फतह सिंह भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, पृ0 11

ह्यूम का कहना है कि प्रकृति ने विषयों या विभावों में कुछ ऐसे गुण निहित किए हैं जो विशेष भावनाओं का उत्पन्न करते है । उपर्युक्त सभी मतों में किसी न किसी प्रकार से वस्तुगत या भौतिक दृष्टिकोण की ही प्रधानता रही है । डॉ0 रामविसाल शर्मा ने भी इसी पक्ष में अपना निष्कर्ष दिया है ।

अध्यात्मवादी या व्यक्तिगत दृष्टिकोण

इस कोटि के विचारकों में सर्वाधिक उल्लेखनीय नाम क्रोचे का है । अतः इस सर्वप्रथम उन्ही के दृष्टिकोण पर दृष्टिपात करेंगे । क्रोचे ने चार वृत्तियों के समिश्रण को आत्मा मानी है । ये चार वृत्तियां इस प्रकार है -

1. वीक्षामूलक वृत्ति
2. अन्वीक्षामूलक वृत्ति
3. विधिमूलक वृत्ति
4. योगक्षेममूलक वृत्ति ।

क्रोचे का मत है कि समस्त रूपादि का बोध केवल वीक्षावृत्ति के व्यापार द्वारा ही हो सकता है । अतः सौन्दर्य की बाह्य सत्ता नहीं होती है । सौन्दर्य-बोध ही सौन्दर्य या सुन्दर होता है।[1] क्रोचे के मतानुसार सौन्दर्य का निर्णय किन्ही बहिरंग नियमों से निश्चित करना सम्भव नहीं है, क्यों कि सौन्दर्य बाह्य नहीं आन्तरिक वस्तु है । सौन्दर्य केवल कल्पनामूलक अर्न्तव्यापार होता है । क्रोचे का कहना है कि हम ज्ञानमात्र को दो भागों में बांट सकतेहैं कल्पना प्रसूत विशेषवलम्बी ज्ञान और अन्वीक्षा प्रसूत सामान्यावलम्बी ।[2] कला या सौन्दर्य का सृजन 'इन्ट्यूटिव नालेज' से ही होता है । इससे ही बिम्ब-निर्माण सम्भव है । यह स्वयं प्रकाश ज्ञान जितना विशुद्ध एवं मुक्त होता है, उतनी ही कला सुन्दर होती है ।[3] निर्विकल्प भाव से किसी मूर्ति की अभिव्यक्ति का नाम ही स्वयंप्रकाशन है । जिस व्यक्ति में यह ज्ञान होता है, उसे कवि कहा जाता है । स्वयंप्रकाशन ज्ञान की होगी तो अभिव्यक्ति अवश्य होगी । क्रोचे की दृष्टि में अभिव्यक्ति में ही सौन्दर्य है। स्वयं प्रकाश ज्ञान और अभिव्यक्ति की अभिन्नता का सिद्धान्त क्रोचे की मौलिक देन है ।[4]

"Monuments of art which are the stimulants of aesthetic repraduction, are called beautiful things or the physically beautiful. This combination of words constitutes a verbal paradox. Because the beautiful is not a physical fact; it does not belong to things but to the activity of man, to spiritual energy."
Aesthetic. P. 159

क्रोचे की सौन्दर्यशास्त्री मान्यताओं की सविस्तार आलोचना डॉ0 दास गुप्ता ने "सौन्दर्य-तत्व"[1] ग्रन्थ में की है। यहाँ स्थानाभाव से हमने सारांश में ही क्रोचे के विचारों को स्पष्ट किया है। उनके विचारों में अनेकमुखी अन्तर्विरोध हैं और सौन्दर्य-शास्त्र के सम्बन्ध में वे कोई मान्य सिद्वान्त नही रख पाते हैं।[2] परन्तु क्रोचे का यह महत्व असंदिग्ध है कि उन्होंने सौन्दर्यशास्त्र को संकीर्णनियमों से छुटकारा दिलाने का प्रयास किया एवं कला की आध्यात्मिकता पर बल दिया है ।

सौन्दर्य की आध्यात्यादी व्याख्या करने वाले अथवा उसे ईश्वरीय शक्ति से जोड़ने वाले विचाराकों में प्लेटो, प्लाटिनस, रस्किन तथा सेर अगस्टाइन का नाम उल्लेखनीय है। अगस्टाइन की मान्यता है कि असीम शिवत्व एवं सत्य, सौन्दर्य ईश्वर के गुण हैं एवं वस्तुओ को ये गुण ईश्वर ही प्रदान करता है। प्लेटो ने सृष्टि के दो प्रकार माने हैं - चेतन (Ideal) एवं

2. Human knowledge has two forms; it is either initiative konwlege or logical knowledge. Knowledge abtained through the imagination or knowledge abtained through the intellect. Knowledge of the individual or knowledge of the universal." - Ibid.
3. "The doctrine of your intution makes the value of art to consist of its power of intution in such a manner that so far as pure and concrete intuitions are achiened will art and beauty be achieved." - Ibid. P. 38
4. He alone who divides the unity of the spirit into soul and body can have faith in a pure act of the soul, and therfore in an intution, which should exist as on intuition and yet be without its body, the expression. The expression is the actuality of intuition as action is of the will, and in the same way as will not be exercised into action is not will. So intuition unexpressed is not an intuition."- Ibid. P.386

1. वही - पृ0 386
2. डॉ0 आनन्द प्रसाद दीक्षित - ' सौन्दर्य तत्व की भूमिका - पृ0 18

प्रतीयमान (Phenomenal) प्रतीयमान जगत का मूल्य रूप भी चेतन जगत में हैं, जो अद्वैत तथा आध्यान्तिक सौन्दर्य है तथा जो सदा एक ही रूप रहता है। प्रत्येक सुन्दर वस्तु इसी आध्यान्तिक सौन्दर्य से ही सुन्दर होती है। प्लाटीनस ने भी परम-शक्ति के शिवरूप पर ही बल दिया है। उसके अनुसार इसी ' शिवत्वमय एक ' से बुद्धि का उदय होता है एवं यही आध्यान्तिक -सौन्दर्य है । प्लेटो एवं प्लाटीनस दोनों ने यही धारणा व्यक्त की है कि सभी प्रकार का सौन्दर्य हममें सत्य और मंगल को बढ़ाता है ।[1] इन दोनों का आध्यान्तिक सौन्दर्य शेफट्सबरी के उस प्रथम सौन्दर्य से तुलनीय है जिसे उन्होंने सत्य ईश्वर मानकर यह बतलाया है कि उसी के प्रतिबिम्ब स्वरूप सृष्टि में सारे सौन्दर्य विद्यमान है ।

कला के नैतिक दृष्टिकोण रखने वाले टाल्सटॉय का विचार है कि नैतिक विवेक जाग्रत करने वाली कृति ही सुन्दर मानी जाती है ।[2]

कला का उद्देश्य व्यक्तियों को जोड़ना है । वही कला उत्कृष्ट है, जो यह कार्य करे । इसी प्रकार रस्किन ने सौन्दर्य का सम्बन्ध ईश्वर से जोड़ा है । वस्तु की अनन्तता, एकता स्थिरता , सम्मात्रा, शुद्धता एवं संयदि आदि विशेषताएं बतलाते हुए उन्होंने कहा कि ईश्वर सर्वज्ञ अपनी महिमा व्यक्त कर रहा है । ईश्वर ही सौन्दर्य-स्वरूप है । रस्किन ने अपने ग्रन्थ ' ' लेक्चर्स ऑन आर्ट '[3] तथा ' माडर्न पेन्टर्स ' में सौन्दर्य तत्व पर विचार किया है और सर्वत्र ही नैतिकता के आलोक में अपनी परिभाषाएं व्यक्त की है ।

उन्होंने सौन्दर्य के दो भेद-बाह्य (Typical) और आन्तरकि (Vital) मानते हुए बाहरी गुण एवं आनन्दमय जीवन के साथ उत्पन्न सुखबोध की चर्चा की है ।

1. डॉ0 दास गुप्ता सौन्दर्य तत्व, पृ0 158
2. People have now only to reject the fatse theary of beauty according to which enjoyment is considered to be the purpose of art, and religious perception will naturally take its place as the of art of our time."

3. The great arts can have but three pricipal.

ज्वायफे और रीड ने भी सौन्दर्य की आध्यात्मवादी व्याख्या की है । ज्वायफे ने सुन्दर, सुखद और उपयागी को भिन्न-भिन्न मानते हुए सौन्दर्य को किसी अदृश्य शक्ति की अभिव्यक्ति माना है । वह भौतिक उपकरणों द्वारा व्यक्त होती है । रीड ने ज्ञान (Cognetion) एवं इच्छा (Affection) को ईश्वरीय शक्तियां मानकर मूलतः सुन्दर माना है । रीड के अनुसार सौन्दर्य कोई वस्तु का गुण नहीं । वह तो ईश्वरीय शक्ति है ।

कुछ सौन्दर्य शास्त्रियों ने मानव-व्यवहार को विश्लेषण करते हुए सौन्दर्य-मीमांसा की है । इनमें शिलर और बाउत्स, विक्टर कजिन का नाम उल्लेखनीय है ।

शिलर ने मानव-व्यवहार के तीन क्षेत्र माने हैं-जड़ जगत, नीति-जगत और क्रीडा-जगत क्रीडा जगत में जड़ एवं नीति जगत् का समन्वय है और यही सौन्दर्य का जगत् है । यही आनन्द का क्षेत्र है । लाउत्स ने भी मानव-व्यवहार के तीन क्षेत्र माने हैं-सत् लोक, नियम-लोक और इष्टबुद्धि लोक । लाउत्स के अनुसार सौन्दर्य सुख का ही एक विकसित रूप है और उससे भिन्न नहीं है । भेद केवल यही है कि सुख इन्द्रिय-गोचर होता है और वह हमारी वैयक्तिक आत्मा को आनन्दित करता है । जब कि सौन्दर्य हमारी व्यापक (Universal) आत्मा को प्रसन्न करता है । विक्टर कजिन ने सौन्दर्य के तीन भेद स्वाकार किये हैं- भौतिक, नैतिक और मानसिक । उसकी दृष्टि में मानसिक सौन्दर्य ही प्रधान है, शेष दोनों इसी पर आधारित हैं । मानसिक सौन्दर्य ही शुद्ध आत्यान्तिक है । यही ईश्वर है ।

प्रसिद्ध विद्वान काण्ट भी नैतिकता और आध्यात्मिकता के विश्वासी थे । काण्ट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ-'निर्णय-मीमांसा' (Critique of pure ledgement) में सौन्दर्य,कला, अभिरूचि से शुद्ध तथा निःस्वार्थ आनन्द की प्राप्ति होती है । नीति एवं सौन्दर्य दोनों व्यक्तिनिष्ट होने के साथ सर्वनिष्ठ भी होते हैं क्योंकि जो वस्तु या नीति की बात एक के लिए सुन्दर या उचित है, वही दूसरे के लिये भी होती या हो सकती है । भला या बुरा तो रूचि पर निर्भर है किन्तु सौन्दर्यानुभव में एक प्रकार की निश्चिंतता रहती है कि जो हमें सुन्दर लग रहा है, वही दूसरों को भी सुन्दर लगेगा ।[1]

हीगेल ने कला को मनुष्य की सिसृच्छावृत्ति का फल स्वीकार किया है । उनकी दृष्टि में जहाँ एक ओर सौन्दर्य की बाह्य सत्ता है, वहाँ उसने यह भी माना है कि अन्तर चिद्भिव्यक्ति के साथ मेल हुए बिना कोई वस्तु सुन्दर नहीं कहला सकती है । विशेष रूप से उपस्थित चिदभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है ।

1. डॉ0 आनन्द प्रकाश दीक्षित सौन्दर्य तत्व की भूमिका, पृ0 23

चिदभिव्यक्ति के आन्तरिक रूप को सत्य और तदनूरूप बाह्य-वस्तु को सुन्दर कहा जाता है ।[1] सौन्दर्य की आध्यात्मिक दृष्टि से व्याख्या करने वाले उपर्युक्त विचारकों के अतिरिक्त भी अनेक मनीषी अपने-अपने ढंग से सौन्दर्य की मीमांसा करते रह हैं ।

यह प्रश्न अभी तक सुलझ नहीं सका कि सौन्दर्य व्यक्तिगत है या वस्तुगत । आचार्य शुक्ल इसे भाषा के गड़बड़झाले के अतिरिक्त कुछ नहीं माना है । उनका कहना है कि- 'जैसे वीर-कर्म से पृथक वीरत्व कोई पदार्थ नहीं है वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं है ।'[2]

डॉ0 फतहसिंह ने भी समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया है ।[3]

उपर्युक्त समग्र विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि सौन्दर्य को परिभाषित करना अति कठिन है । हमारी दृष्टि में तो सौन्दर्य को वस्तुगत या व्यक्तिगत मानना एकांगी दृष्टिकोण का परिचायक है । अतः वस्तु के पक्ष में सौन्दर्य यदि बाह्य रूपाकार की समुचित संयोजना है तो व्यक्ति के पक्ष में वह एक आनन्दमयी अनुभूति है जिसका स्वरूप निर्धारित करने का प्रयास हम आगे करेंगे

भारतीय दृष्टि में

सौन्दर्य-शास्त्र का विधिवत और पुष्कल अध्ययन जैसा यूरोप में किया गया, वैसा भारत में नहीं । यहां के एक भी दार्शनिक ने सौन्दर्य को पश्चिम की तरह अपने चिन्तन-मनन का विषय सम्भवतः नहीं बनाया है । दो-एक पुराणों एवं सूत्र-ग्रन्थों में शिल्प संबंधी नियमों और आचारों का थोड़ा बहुत उल्लेख मिलता है । अग्नि-पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, शुक्रनीति, मनसार एवं चित्र सूत्र में शिल्पकला के कुछ नियमों एवं आचारों का वर्णन किया गया है । चित एवं मूर्ति की अपेक्षा काव्य और संगीत का हमारे यहां विशेष विवेचन हुआ है । भारतीय विचारकों ने कलामूलक सौन्दर्य को टस नाम से अभिहित किया है । काव्य की आत्मा के अनुसंधान जिन सिद्धांतों का प्रवर्तन हुआ उन्हें हम सौन्दर्यानुभूति के सिद्धांत कह सकते हैं । इस प्रकार रस, ध्वनि, व्यंजना, वक्रोक्ति, औचित्यादि वादों का विवेचन सौन्दर्य शास्त्र के अन्तर्गत ही समझा जाना चाहिए । रस, रसिक, रसवंत, रसास्वादनादि शब्द सौन्दर्य के विभिन्न रूपों एवं अवस्थाओं को अभिव्यक्त करते हैं । 'रस' वैदिक साहित्य

1. डॉ0 दास गुप्ता सौन्दर्य तत्व
2. चिंतामणि (1) पृ0 164
3. दोनों बातों का एकांगीपन एक मूल्य तथ्य का तिरस्कार करता है। यह सर्वविदित है कि सौन्दर्यभूति के व्यापार में प्रमाता एवं विभाव दोनों का कुछ न कुछ हांथ है, उक्त एकांगीपन यह भूल जाता है कि मनुष्य न तो केवल "तन" है एवं न केवल "मन" ही वह तन और मन दोनो का संघात है।

में होता हुआ, उपनिषदों में अवगाहन करता हुआ, आभय योग एवं काव्यशास्त्रों में आकर अपना पूरा विस्तार प्राप्त करता है ।

वैदिक संहिताओं में सौन्दर्य पर कोई अलग सूक्त या काण्ड भले ही न मिलता हो, लेकिन उनमें सौन्दर्य संबंधी ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनसे प्रतीत होता है कि वैदिक युग में सौन्दर्य के विविध रूपों और भंगिमाओं का ज्ञान तत्कालीन समाज को अवश्य उपलब्ध था । ऋग्वेद में आये हुए सौन्दर्य के पर्यायवाची शब्दों का जर्मन विद्वान पिशेल तथा ओल्डेनवर्ग ने एक संकलन में किया है । सौन्दर्य-विषयक भाव को व्यक्त करने वाले इतने शब्द वेदों में मिलते हैं, यह देखकर हमें गौरव होता है ।

उदाहरणार्थ यहां कुछ शब्द उद्धृत हैं -

1. पेराश	9. भण्ड	17. रण्व
2. अप्सस	10. प्रिय	18. यक्ष
3. दृश	11. चारू	19. अद्भात
4. श्री	12. रूप	20. हिरण्य पेशस्
5. वयुः	13. कल्याण	21. सहस्रपेशस्
6. वल्गुः	14. शुभ	22. रूचि
7. श्रियः	15. चित्र	23. लावण्य
8. भद्र	16. स्वाप्र	24. विश्वपेशस्

अभी सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि वैदिक ऋषियों का मानस सौन्दर्य एवं उदान्त तत्व को ग्रहण करने के लिए सदा उत्सुक रहता था एवं उन्होंने इनका साक्षात्कार भी किया था । आनन्द कुमार स्वामी ने एक स्थल पर कहा है कि वैदिककाल की सौन्दर्य-भावना एकांत

व्यावहारिक थी और उसकी सौन्दर्यानुभूति कौशल या अलंकरण तक सीमित थी । उनका यह कथन युक्तिसंगत इसलिए नहीं प्रतीत होता कि अग्नि, ऊषा, सविता, मरूत, इन्द्रादि की स्तुति में सौन्दर्य के मार्मिक स्वरूप का दिव्यचेतना का उत्कृष्ट निरूपण हुआ है ।

संक्षेप में वेदिकाल की धार्मिक दृष्टि जीवन में विराट् की अनुभूति को उत्पन्न करती है । यह अनुभूति परम आनन्द देने वाली है, अतएव यह सौन्दर्य की अनुभूति है । सौन्दर्य की इस अनुभूति से हमारा साधारण अनुभव रूपान्तरित हो जाता है और प्रत्येक वस्तु में दिव्यता एवं आध्यात्मिकता का आविर्भाव होता हैं । इतना ही नहीं, हम वस्तुओं का सौन्दर्य उनके 'पर' रूप में खोजने लगते हैं । हमारी कलाओं में रेखा और रंगों द्वारा वस्तुओं के साधारण अनुभव के 'पर' रूप की व्यंजना है । वस्तुओं के साधारण अनुभव के पीछे विराट्-जीवन की झांकी है । भारतीय सौन्दर्य चेतना में यह आध्यात्मिक दृष्टि वैदिक काल की देन है ।[1]

बौद्ध-दर्शन के दुःखवाद एवं शून्यवाद और उपनिषदों के आत्मवाद ने कई शताब्दियों तक भारत के लोक-जीवन को प्रभावित किया। इन दार्शनिक विचारों के प्रकाश में, आतमचिंतन के आलोक में, यहां के जनसमुदाय ने जीवन को स्पष्टता के साथ समझने का प्रयास किया । जीवन क्या है ? उसमें दुःख की सत्ता क्यों है ? ऐसे अनेक प्रश्नों पर इस काल के दार्शनिकों ने विचार विमर्श किया । इससे जीवन को आच्छादित करने वाली वैदिक-कालीन कुहेलिका छिन्न-भिन्न हो गयी और जागतिक तत्वों को आमने-सामने रखकर देखने का प्रयास किया गया है । इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारी शिल्प-रचना के साथ योग-दृष्टि का समावेश हो गया । कला-साधना, योग-साधना के समकक्ष समझी जाने लगी ।

कला-सर्जना के साथ योग-साधना का सामंजस्य उपस्थित करना भारतीय-कला दर्शन की निजी विशेषता हो गयी । जिस प्रकार योग-साधना के द्वारा हम अपनी आत्मा में निहित पराशक्ति का साक्षात्कार करते हैं और जीवन के मायाजनित बंधनों से मुक्त हो जाते हैं । उसी प्रकार कला-साधना द्वारा चित्त को बाह्य वासनाओं से हटाकर एक बिंदु पर स्थापित किया जाता है । कलाकार भी योगी की तरह अपने इष्टदेव का साक्षात्कार करता है और पुनः उसी झांकी को किसी माध्यम से मूर्त कर लेता है । आदर्शी कलाकार योगी साधक, दृष्टादि उपाधियों से विभूषित किया जाता

1. "सौन्दर्य शास्त्र" डॉ0 हरद्वारी लाल शर्मा पृ0 24।

1. "सौन्दर्य शास्त्र" डॉ0 हरद्वारी लाल शर्मा, पृ0 24।

है । फिर भी ध्यान देने की बात यह है कि योग कलाक्तों के लिए साधन रहा, साध्य नहीं ।

योग का लक्ष्य चित्त की एकाग्रता है विषमताओं को हटाकर जीवन में सामंजस्य उत्पन्न करना है । योगी सभी प्रकार के छन्दों से ऊपर उठकर भूमा में प्रवेश करता है, जहां पूर्णानन्द है । कलाकार भी चित्त की एकाग्रता द्वारा कला के सत्य का प्रत्यक्षीकरण करता है । और वह उस आनन्दलोक में प्रवेश करता है , जहां सभी विषयों का साधारणीकरण हो जाता है । अग्निपुराण में शिल्पी को उपदेश देते हुए कहा गया है । कि उसे इष्ट-देव के मूर्ति-निर्माण की पूर्व रात्रि में अपन इष्ट का ध्यान करना चाहिए । गद्गद् चित्त से प्रार्थना करना चाहिये । इष्टदेव स्वप्न में उसे दर्शन देंगे और उसी झांकी के अनुरूप मूर्ति का निर्माण करना चाहिए । शिल्पशास्त्रों में मूर्तिकार के आदर्श आचरण का भी उल्लेख है । मूर्तिकार को अथर्ववेद का विशेष रूप से और वैदिक मन्त्रों का सामान्य रूप से ज्ञान होना चाहिए । उसका आचरण पवित्र हो, वह एक पत्नी व्रत का पालन करे । भगवान की पूजा में उसका चित्त लगना चाहिये । वह गले में रूद्राक्षमाला और अंगुली में कुश की पवित्री धारण करे । कला की साधना का लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार एवं भगवत प्राप्ति होना चाहिए । कला के साथ साधना का यह सामंजस्य मध्यकालीन इसाई-संत कलाकारों में भी देखी जा सकती है ।

उपनिषद के आत्मवाद को शंकराचार्य ने जिस उत्साह के साथ सम्पूर्ण भारत में प्रचारित किया, उससे वैदिक धर्म का पुनरूत्थान तो हुआ, लेकिन जन साधारण का मानस रस के अभाव में सूखने लगा । तब, दक्षिण से भक्ति की उमड़ती हुई धारा फूट निकली और उससे सम्पूर्ण उत्तरापथं को भी रसप्लावित कर दिया । विष्णु, शिव, दुर्गा, गणपति आदि देवताओं के प्रति भक्ति-भावना जाग्रत हुई और तत्सम्बन्धी उद्‌गार कला के विभिन्न माध्यमों से व्यक्त होने लगे । इस प्रकार योग के साथ भक्ति तत्व भी कलामूलक अनुभूति में समाविष्ट हो गया ।

कला के क्षेत्र में योग और भक्ति का प्रभाव 300 ई0पू0 से 18वीं शताब्दी के अन्त तक कायम रहा ।[1] मूर्ति और चित्रकला के माध्यम से भारत की सौन्दर्य-भावना के विकास का अध्ययन एक गंभीर विषय है । मेरा प्रतिपाद्य काव्यगत सौन्दर्य है, इसलिए मैं केवल काव्य से सम्बन्धित मुख्य मतों का यहां संक्षेप में उल्लेख करना चाहती हूँ ।

काव्य की आत्मा के अनुसंधान में संस्कृताचार्यों ने जिन सिद्वान्तों का निरूपण किया है , सच पूछिये तो वे काव्य सौन्दर्य के व्यापक अर्थ मे कला-शास्त्र के सिद्धान्त हैं ।

काव्य-सौन्दर्य की अनुभूति से उत्पन्न आनन्द का नाम है । भरतमुनि के प्रसिद्ध सूत्र- विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगद् रस निष्पत्तिः' को लेकर शंकुक, लोल्लट, नायक, अभिनवगुप्त आदि ने विभिन्न व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं । रस-सिद्धान्त में विभाव का उल्लेख होने से कला-सौन्दर्य में, वस्तु-जगत का भी समावेश हो जाता है । विभाव के अन्तर्गत नायक-नायिका, देश और कालगत परिस्थिति एवं बाह्य प्रकृति इन सभी का समावेश हुआ है । पश्चिम के कुछ दार्शनिकों ने तो आत्म-तत्व को ही सब कुछ मान लिया है एवं कुछ ने वस्तु तत्व को । एक तो वस्तु-जगत के संस्कारों को मानस के समक्ष नगण्य ठहराते हैं और दूसरे मानस की कोई स्वतंत्र निरपेक्ष सत्ता नहीं मानते । ये दोनों आदर्शवादी एवं भौतिकवादी सिद्धांत अतिवादी प्रतीत होते हैं । कला-दर्शन का अकेले एक से काम नहीं चलेगा । भरतमुनि ने उपर्युक्त सूत्र में विभाव को स्थान देकर कला का संबंध वस्तु जगत से स्थापित कर दिया है । क्रोचे की शब्दावली में हम इस विभाव को सौन्दर्य निष्पत्ति का भौतिक समुत्तेजन (Physical stimulant to asthetic reproduction) कहेंगे।

योरोपीय दृष्टि में

प्लेटो ने सृष्टि को दो रूपों में देखा है- चेतन (Ideal) और प्रतीयमान । चेतन जगत नित्य है, चिन्मय है तथा आदि अन्त से परे है । इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता यह सदा एक रस रहता है । प्रतीयमान जगत में जो सौन्दर्य दिखाई देता है, उसका मूल उत्स इसी चेतन जगत में है । चेतन के सौन्दर्य की तरंग चिद्-विलास सर्वत्र व्याप्त है । चेतन का एकत्व प्रतीयमान के अनेकत्व के माध्यम से प्रकाशित हो रहा है । जहां अनेकत्व उस एकत्व के प्रकाश को अभिव्यक्त करता है, वहीं सौन्दर्य है । प्लेटो ने सौन्दर्य को तत्वज्ञान का साधन माना है । सौन्दर्य में शिव-मंगल विधान का तत्व स्वतः निहित है । सौन्दर्य की आराधना द्वारा व्यक्ति दिव्य सत्य का दर्शन करता है, पवित्र प्रेम का साक्षात्कार करता है और अपनी आत्मा का ईश्वरीय सत्ता में निलय करता है । सौन्दर्यानुभूति द्वारा व्यक्ति की दृष्टि नैतिक, चित्त पवित्र एवं चरित्र दिव्य हो सकता है । सौन्दर्य-विवेचन के प्रसंग में प्लेटो के शिष्य अरस्तु ने कहा है कि सुन्दर वह है जो शिव है इसीलिए आनन्दायक है

क्योंकि वह शिव है ।[1] सुन्दर के साथ सत्य शिव एवं सदाचार की चर्चा प्राचीन यूनानी आचार्यो से प्रारम्भ हुई और एवं आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है ।

प्राचीन यूनानी आचार्यों में अनेकता में एकता का सिद्धांत सौन्दर्य के स्वरूप विवेचन में अत्यन्त प्रमुख रहा । कुछ आचार्यो ने सौन्दर्य को वस्तुविशेष की रूपाकृति अधिष्ठित पाया । कुछ ने व्यक्ति के चेतन मानस में उसका मूल तत्व देखा । प्रथम की दृष्टि में सौन्दर्य वस्तुनिष्ठ एवं दूसरे की दृष्टि से आत्मनिष्ठ कहा जायेगा । वस्तुनिष्ठ दृष्टि ने रूपाकृति पर बल दिया और तत्संबंधी अनेक प्रतिमानों का उद्घाटन किया । रूपाकृति के प्रसंग में निम्नलिखित तत्वों का प्रायः विवेचन होता है :-

सम्मात्रा	सिमेट्री	संयम	मॉडरेशन
एकरूपता	यूनिफार्मिटी	मसृणता	स्मूथनेश
विविधता	वैराइटी	व्यंजना	सजेशन
औचित्य	प्रोप्राइटी	स्पष्टता	सिम्प्लिसिटी
संगति	हार्मनी	कोमलता	टेन्डरनेस
प्रमाणबद्धता	प्रोपोर्शन	वर्ण-प्रदीप्ति	कलरिंग

एक ही प्रकार के दो या दो से अधिक अंगों में समानरूपता को सम्मात्रा कहते हैं । एक समान अंगों में एकरूपता का होना आवश्यक है । यदि किसी व्यक्ति का एक हाथ उसके तक पहुंचता और दूसरा उसकी कमर तक लटकता हो, तो यह हास्यास्पद हो जायेगा । दोनों हाथों की लम्बाई-मोटाई में समान होना आवश्यक है । प्रमाणबद्धता या सानुपातिकता में अनुपात का विचार किया जाता है । शरीर के विभिन्न अंगों में समविभाजन और संतुलन का होना आवश्यक है । जिस वस्तु में जिस अंश का जिस अनुपात में, जिस अंश में होना चाहिए उसका उसी अनुपात में होना प्रमाणबद्धता है । विशाल राजभवन में विशाल सिंह द्वार शोभा देगा, लेकिन छोटे से मकान का बड़ा सा फाटक भद्दा लगेगा । भवन की ऊंचाई के अनुसार ही उसके गुम्बद, कलश, द्वार आदि की ऊंचाई होनी चाहिए । किसी वस्तु के विभिन्न अंगों में जिस तत्व के कारण उनमें सामंजस्य का बोध होता है, वह संगति है । संगति का अर्थ विरोध का अभाव है । किसी सुन्दर पदार्थ के विभिन्न अवयव विभिन्न प्रतीत होते हुए भी घुल-मिलकर एक तरंग में आ जाते हैं । इन्द्रधनुष के साथ विभिन्न रंग संगति-तत्व के कारण एक इन्द्रधनुष दृष्टिगोचर होते हैं । अतः उनमें सामंजस्य

1. The beautiful is that good which is pleasant because it is good.

ें समन्वय का बोध होता है । यहां एक रंग द्वारा जो आया व्यक्त होती है, वह दूसरे रंग द्वारा पुष्ट होती है । इसमें एक के द्वारा दूसरे की सम्पुष्टि एवं समृद्धि होती है । चित्र, नृत्य एवं संगति में विभिन्न प्रकार के वर्ण, गति और लय का प्रयोग होता है, लेकिन वे एक-दूसरे की सदा श्री-वृद्धि ही करते हैं । परस्पर विरोधी अंगो में भी संगति पायी जाती है । जैसे काले मखमल के परिपार्श्व में सोने की अंगूठी या जार्जेट की काली साड़ी में गोरी तरूणी । इस प्रकार संगति में संवाद का होना अनिवार्य है । संवादात्मक प्रभाव एक-दूसरे की श्री-परिपुष्टि करते हैं बाधित नहीं करते । वस्तु में अनेक तत्वों की संगति से ही रूप का अनुभव होता है । इसी प्रकार औचित्य, संयम, व्यंजना आदि तत्वों की भी उपयोगिता समझनी चाहिए ।

अरस्तु ने सौन्दर्य को सापेक्ष और निरपेक्ष इन दो रूपों में भी देखने का प्रयास किया है शुद्ध संगीत, स्वतः पूर्ण वर्ण चमत्कार ये निरपेक्ष सौन्दर्य की श्रेणी में आयेंगे । लेकिन जहां सौन्दर्यानुभूति में प्रसंग, संबंध और साहचर्य की आवश्यकता होती है, वहां वह सापेक्ष है । जिस संगीत में चित्त की वासना, उत्तेजना और चंचलता की उत्पत्ति होती है, वह 'सुन्दर' नहीं है । लेकिन जो रागिनी हमारे मानस को पवित्र भावों को प्रतिमूर्ति करती है वह निश्चय ही सुन्दर है । भाव की शुद्धता दिव्य या ईश्वरीय शक्ति से उद्भूत होती है । अरस्तु ने सौन्दर्य के विवेचन में प्रतीकवाद की भी चर्चा की है । लेकिन यूनानियों का पूर्व-जन्म, परलोक और आध्यात्मिकता पर प्रगाढ़ विश्वास न होने के कारण प्रतीकवाद या सूक्ष्म विवेचन वहां न हो सका । यह सिद्धांत सादृश्यवाद (सेम्ब्लेन्स) के समक्ष गौण पड़ गया । रूपाकृति के सौन्दर्य पर जो दृष्टि अधिक रीझती थी वह प्रतीकमूलक का विवेचन करने में असमर्थ सिद्ध हुई । प्लाटिनस ने प्लेटो के 'कला प्रकृति का अनुकरण है' का खंडन किया एवं प्रतीकवाद की महत्ता का पुनः प्रतिपादन किया । प्लाटिनस का जन्म मिश्र में 205 में हुआ था । इन्होंने रोम में 245 ई0 से 260 तक अध्यापन कार्य किया । इनके कला-विवेचन के तीन प्रतिवाद द्रष्टव्य हैं -

क. अनुकरणवाद और प्रतीकवाद । यह तत्वदर्शन की समस्या है ।

ख. सौन्दर्य मूलक और व्यवहारिक दृष्टिकोण का प्रतिवाद । यह नैतिक समस्या है ।

ग. अमूर्त और मूर्त का प्रतिवाद । यह सौन्दर्य-शास्त्र की समस्या है ।

प्लाटिनस के मतानुसार, किसी वस्तु के साधारण प्रत्यक्षीकरण में सान्दर्य का मूल-तत्व नहीं देखा जा सकता । प्रत्येक दृश्यमान पदार्थ किसी महत् या ऋत की अभिव्यंजना करता है । कोई वस्तु इसलिए सुन्दर प्रतीत होती है कि उसके माध्यम से सार्वभौम चेतना का प्रकाश होता है । इसीलिए किस वस्तु का सौन्दर्य चित्त शक्ति की छाया मात्र है । प्लाटिनस के विचार से संगति या समानरूपता का पर्याय नहीं है । सौन्दर्य के सामंजस्य पर खेलने वाला एक आलोक है, जो दिव्य और ईश्वरीय है । सुन्दर वस्तु महत् सत्य या चित्त का प्रतिबिम्बन करती है । इस प्रकार कला, प्लाटिनस की दृष्टि में, अनुकरण नहीं बल्कि प्रतीकीकरण है । प्लेटो ने कला को सत्य से त्रिधा दूर घोषित किया था, प्लाटिनस ने उसे ऐन्द्रिय रूप में सत्य का प्रतीकात्मक प्रकाश कहा ।

प्राचीन यूनानी आचार्यो का युग धीरे-धीरे समाप्त हो चला और योरोप में ईसाई मतानुयायियों का अभ्युदय हुआ । इस क्रिश्चियन युग में संत टॉमस, संत फ्रांसिस, दाँते, जीतो आदि विचारकों ने कला-दर्शन पर अपने मत प्रकट किए । मसीही धर्म में ईश्वर सत्ता का आलोक इतना प्रखर है कि - कला, दर्शन, जगत, जीव आदि उसी से भासित होते दिखाई पड़ते हैं । उपर्युक्त विचारकों ने सौन्दर्य को ईश्वरीय या दिव्य-ज्योति का प्रकाशन कहा है । प्रकृति और कला के माध्य से उसी परम प्रभु की ज्योति को अधिक सफलता के साथ व्यक्त कर सकती है । क्योंकि, कला सीमाबद्ध एवं परतंत्र है, किन्तु प्रकृति निःसीम एवं समर्थ है । जिस भौतिक-सौन्दर्य से हमारी ज्ञानेन्द्रियों को वासनात्मक उत्तेजना प्राप्त होती है, वह दूषित एवं त्याज्य है । यदि हमारी आध्यात्मिक दृष्टि उसमें दिव्य-ज्योति का दर्शन कर सके तो वह अभिनन्दन है ।

ईसा की चौथी शताब्दी में स्पेन की एक धर्म-सभा ने यह फैसला दिया था कि किसी भी गिरिजाघर में कोई या चित्र नहीं रह सकता है । ग्रेगरी महान के राज्यकाल में, ईसा की छठी शताब्दी में मार्सेलिस के पादरी ने अपने गिरिजाघरों की सभी मूर्तियों को तोड़ देने की आज्ञा दे दी । लेकिन, ग्रेगरी ने यह कहकर उन मूर्तियों को बचा लिया कि ये मूर्तिया पूजन के लिए नहीं वरन् हमें शिक्षित करने हेतु गिरिजाघरों में रखी जायें । वर्णमाला की तरह मूर्तियां भी जन-

साधारण को ज्ञान प्रदान करती है । तब योरोप के [illegible] बहुत से गिरिजाघरों में मूर्तियां जन-साधारण को शिक्षित करने के बहाने रखी जाने लगीं । उपयोगिता की दृष्टि से भले ही यह दृष्टिकोण लाभदायक हो, लेकिन सौन्दर्य-शास्त्र की दृष्टि से यह कदापि श्लाघनीय नहीं है । संत अगस्टाइन को भी ललित-कला की सात्विकता पर अविश्वास हो चला । दीवार में चित्रित ईसा मसीह की छवि को उन्होंने देखना से मना किया था ।

संत अगस्टाइन सौन्दर्य-विवेचन में प्लेटो की तद्विषयक मान्यता से आगे नहीं पहुंच सके, फिर भी कुरूपता पर उन्होंने कुद मौलिक विचार प्रस्तुत किए । कुरूपता सौन्दर्य के अन्तर्गत एक निम्नकोटि का तत्व है । यह उसका पूरक बनकर वर्तमान रहता है, शासक बनकर नहीं । प्लूटार्क ने कला के क्षेत्र से कुरूपता को बहिष्कृत तो कर दिया था, फिर भी इतना मानते थे कि यदि कुशलता के साथ-साथ कुरूपता का अनुकरण किया जाये तो कुछ आनन्दानुभूति हो सकती है । अगस्टाइन तत्वदर्शी संत थे । आकृतिमूलक बाह्य-सौन्दर्य को गौण स्थान दिया और आध्यात्मिक सौन्दर्य को प्रधान । किसी भौतिक पदार्थ की सुन्दरता उसके अंगों के सामंजस्य के साथ ही उसके वर्ण-माधुर्य पर आश्रित होती है, लेकिन उसका वर्ण-माधुर्य कितना महान् हो उठेगा जब परम-पिता के राज्य में अध्यात्म की ज्योति सूर्य की तरह उद्भाषित होती रहेगी ।[1]

मध्य-युग की समाप्ति के उपरान्त आधुनिक युग का श्री गणेश होता है । इस युग में गम्भीर दर्शन की प्रधानता रही । सौन्दर्य अनुभूति एवं प्रज्ञा का मिलन-बिन्दु होने के कारण दार्शनिकों के लिए एक आकर्षण हो गया । साथ ही उनके मानस में यह विचार भी क्रियाशील था कि सौन्दर्य मानव-जीवन के प्रतिपल परिवर्तित क्षणों की अभिव्यंजना है । इन्हीं दो दृष्टि बिंदुओं के मेल से आधुनिक सौन्दर्य-शास्त्र का जन्म हुआ ।

प्लाटिनस ने काण्ट तक, ईसा की तीसरी से अठारहवीं शताब्दी तक, सौन्दर्य के सैद्धांतिक पक्ष पर किसी न किसी रूप में विचार-विमर्श होता रहा । दकार्त से काण्ट के जीवन-काल तक सौन्दर्य-शास्त्र की समस्याएं सामने लायी गयीं । सिडनी एवं स्कैलिजर से लेसिंग और विकलमान तक सौन्दर्य संबंधी तथ्य एवं दर्शन प्रस्तुत किए गए । दकार्त्त, स्पिनोजा, लेवनिज, उल्फ और

1. The beauty of my material object is congruence of parts together with a artain sweetness of colour but now great will be the sweetness of colour when the righteous shell shine forth like the sun in the kingdom of their father.

वामगार्टन के विवेचन में विचार, तर्क और बौद्धिकता की प्रधानता है । लेकिन, बैकन, लॉक, शेफ्टसबरी, बर्कल, ह्यूम और रूसो ने सौन्दर्य के सिद्धांत पक्ष की अपेक्षा उसके व्यवहार पक्ष पर, प्रायोगिक पद्धति पर विशेष जोर दिया । सूखे तर्क की अपेक्षा निजी अनुभव कहीं श्रेयस्कर है, यह उनका विश्वास था । काण्ट ने अपने विवेचन में सैद्धांतिक और व्यवहारिक, तर्क-मूलक औसर प्रायोगिक, प्रज्ञात्मक और संवेदनात्मक दोनों पद्धतियों का सामंजस्य किया ।

लेवनीज की दृष्टि में संख्या का सर्वाधिक महत्व था । कला-विवेचन में भी इन्होंने इस सिद्धांत को घटाकर ही दम लिया । उनके मतानुसार गीति-कला एक प्रकार की गणना है, जिसमें मन अनजाने कुछ गिनता रहता है ।

सौन्दर्य की अनुभूति कुछ संख्याओं के सामंजस्य की अनुभूति है । अगस्टाइन की तरह कला में कुरूपता का स्थान वे इसलिए स्वीकार करते थे कि उससे सौन्दर्य की अभिपूर्ति होती है । कुरूप सुन्दर का पूरक है । सुन्दर वस्तु किसी सामंजस्य की अभिव्यक्ति होती है ।

वामगार्टन (1714-1762) ने संवेदनमूलक प्रत्यक्ष-ज्ञान (परसेप्शन) और अनुभूति (फीलिंग) इन दोनों के लिए 'Asthetic' शब्द का प्रयोग किया । आगे चलकर योरोपीय साहित्य में सौन्दर्य-शास्त्र अथवा कला-दर्शन के लिए इसी 'एस्थेटिक' का प्रयोग प्रचलित हो गया है । वामगार्टन ने 'एस्पेटिक' को अनुभूति के रूप में एक विशिष्ट प्रकार का ज्ञान कहा है, यद्यपि इस शब्द की व्युत्पत्ति मूलक अर्थ - 'अस्पष्ट-परिज्ञान' है । सौन्दर्य अथवा कला-सृष्टि अपने आप में पूर्ण है, यह विचार दकार्त्त से वामगार्टन तक किसी न किसी रूप में प्रचलित रहा । वामगार्टन का कथन है कि पूर्णता में ही आनन्द है, अपूर्णता में नहीं । उनकी यह उक्ति छान्दोग्य उपनिषद के उस उद्‌गार से मिलती है जिसमें भूमा को ही सुख कहा गया है । पूर्णता सदा आनन्ददायक होती है । सौन्दर्य में शाश्वत आनन्द है, इसीलिए वह पूर्ण है

जर्मन विचारकों की सौन्दर्य-भावना को प्रभावित करने वाले मुख्यतः तीन ब्रिटिश लेखक हैं - बर्क लार्ड और ह्यग्रय । रेनाल्डस ने भी चारित्र्यमूलक भावना का समावेश कर

सौन्दर्य-शास्त्र को परिपुष्ट किया है । उन्होंने इस भावना को सौन्दर्य और अभिव्यंजना के बीच की चीज कहा है ।

एडमण्ड बर्क का कथन है कि व्यक्ति को किसी भी मनोवेग का स्वाभाविक व्यापार अपने आप पर कष्टकर नहीं बल्कि सुखद प्रतीत होते हैं । किसी विख्यात डाकू को किसी चौराहे पर फांसी दी जाती हो, तो, यह सुनते ही सुन्दर से सुन्दर नाटक को छोड़कर दर्शक चौराहे पर एकत्रित हो जायेंगें । इस करूण दृष्य से निश्चय ही उन्हें सुखद अनुभूति होती है । इस प्रकार उनके मानसिक विकारों का रेचन होता है ।

हृाग्रथ ने रेखा में सौन्दर्य का दर्शन किया है । वह रेखा, जिसमें तरंग, प्रवाह, गति, वर्त्तुलता और तरलता होगी । निश्चय ही सौन्दर्य-विद्यायिनी होगी । रेखाओं की विभिन्नता के बीच एकतारता की अभिव्यक्ति आवश्यक है । हृाग्रथ ने सौन्दर्य में वैशिष्ट्य भावना को उच्चतर स्थान प्रदान किया है । लेकिन इनका चित्रकला के साथ जितना युक्तियुक्त है उतना अन्य कलाओंके साथ नहीं । रूसो (1712-1778) ने कला-विवेचन में स्वच्छन्दतावाद का प्रतिष्ठापन किया । योरोप के विचारक सौन्दर्य-शास्त्र की समीक्षा में एक-न-एक कड़ी हमेशा जोड़ते आये हैं ।

विंकलमान सुन्दरता औरि अभिव्यंजना को एक-दूसरे का विरोधी मानते हैं । उनकी मान्यता है कि अभिवयंजना तत्व के प्रकट होने से वस्तु का रूप बिखर जाता है । सौन्दर्य का निवास रूप में है, अभिव्यंजना में नहीं । रूप यदि गतिशील, चंचल या व्यंजना प्रधान होगा तो सौन्दर्य वहां ठहरेगा ही नहीं, इसके लिए तो शान्ति, विश्राम एवं स्थिरता चाहिए । वस्तु के गतिशील होने से उनका रूप-स्तर परिवर्तित होता रहता है । इस तरह उसकी सुन्दरता भी निश्चित नहीं रह पाती । विंकलमान की उक्ति मान्यता निश्च्यय ही सदोष है, क्योंकि अभियंजकता रूप को सुन्दर बनाती है, उसे आकर्षण और विशिष्टता से मण्डित करती है । आदर्शवाद पर अपना मत प्रकट करते हुए इन्होंने कहा कि जब व्यक्ति शिक्षित और संस्कृत दृष्टिकोण से अपने अनुभवों का निरीक्षण करता है तभी उसका प्रादुर्भाव होता है । निरीक्षक

व्यक्ति की मानसिक सक्रियता द्वारा जो रूप परिमार्जित होकर सामने आता है, वही आदर्श है । यह आदर्श सुन्दर ही हो, यह आवश्यक नहीं । सौन्दर्य का उद्‌गम स्थल तो हमारा मानस है । इसी से सौन्दर्य की किरणें फूटती है । इस प्रकार, किसी वस्तु का सौन्दर्य भी दृष्टा के मानसिक वातावरण, परिस्थिति, दृश्यादि के अनुसार कई प्रकारों में विभाजित हो जाता है । भावक के मन की अपनी गति सौन्दर्य को विविध रूपों में काटती-छांटती रहती है । फिर भी जहां सौन्दर्य के महत् रूप का दर्शन होगा वहां मानसिक एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का संघटन आवश्यक है । विंकलमान ने रूप एवं दृश्य की चर्चा चलाकर कला-दर्शन में एक नवीन मत का सूत्रपात किया जो आज तक विवाद का विषय बना हुआ है । इन्होंने शैली के दो विभाग किए हैं, उदात्त एवं ललित । उदात्त एवं ललित । उदात्त शैली (ग्रैंड स्टाइल) आत्मा की अर्थवत्ता और मुखर मूकता की अभिव्यंजना है ।[1] अर्थात जब कलाकार का मानस अपनी आत्मा का आनन्द-मधु पीकर विभोर हो उठता है, तभी गूढ़ भावों की व्यंजना उदात्तशैली में प्रकट होती है । ललित शैली (स्टाइल ऑफ ग्रेस) से आशय कोमलकान्त, मधुर पदावली से है । जब कलाकार का मानस जीवन एवं विसर्ग के सौन्दर्य को सहज प्रसन्नता के साथ अभिव्यक्त करता है, तभी ललित शैली जन्म लेती है ।

लेसिंग और विकलमान के बाद काण्ट का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दि क्रिटिक आर्फ दि पावर ऑफ जजमेन्ट' 1790 ई0 में प्रकाशित हुआ । काण्ट ने नैतिक जीवन को प्रकृति और विचार का मिलन बिन्दु कहा है । प्रकृति और व्यक्ति स्वातन्त्र्य ये दो क्षेत्र परस्पर विरोधी है, लेकिन नैतिक जीवन में दोनों का मिलन सम्भव है । ज्ञानचक्षु से हम भले ही पूर्णतया या सार्वभौम सत्य का दर्शन करें, लेकिन व्यवहार पक्ष में हमारे समक्ष उस विराट पूर्ण का एक तुच्छ अंश ही आता है । केवल नैतिक आचरण के समय ही अंश और पूर्ण का, प्रकृति और स्वातन्त्र्य का, ऐन्द्रिय और अतीन्द्रिय का मिलन होता है । काण्ट के सौन्दर्य-शास्त्र के प्रारंभ रुचि के विवेचन (जजमेन्ट आर्फ टेस्ट) से होता है । इन्होंने इस प्रसंग में कई विषयों की अपने ढंग से गम्भीर विवेचना की है । आत्मनिष्ठ, वस्तुनिष्ठ, समंसमष्टि, व्यष्टि, उपयोगिता, सोद्‌देश्यता, शिव, सत्य, विवेक, प्रज्ञा, ऐन्द्रिकता, रूप, वस्तु आदि अनेक विषयों की चर्चा इन्होंने की है । कुछ विचारकों की दृष्टि में काण्ट का सौन्दर्य-शास्त्र एक पूरा भूल-भुलैया है, उसमें कहीं स्पष्ट सिद्धान्त-निरूपण नहीं हैं । परस्पर विरोधी विचार वहां तैरते नजर

1. Grand style is the expression of a significant and eloguent silence of the soul.

आते हैं । लेकिन हीगेल का मत इससे बिल्कुल भिन्न है । उनके मतानुसार काण्ट का कथन सौन्दर्य के सम्बन्ध मेंपहला विवेकपूर्ण वक्तव्य है -

"The first rational word concerning beauty."

काण्ट ने सौन्दर्यानुभूति से उत्पन्न आनन्द को इन्द्रिय जनित सुख ने भिन्न माना है । विशुद्ध सौन्दर्य बोध के अवसर पर व्यवहारिक जीवन में आने वाली सोद्देश्यता नहीं पायी जाती है । सौन्दर्यानुभूति में तर्कजनित विरोध नहीं रहता है, उसमें तो एक सर्वजनीन सत्ता रहती रहती है । शिव Good में लक्ष्य का, अन्तिमफल का श्रेय का विचार निहित रहता है । सुन्दर में ऐसा कोई लक्ष्य नहीं रहता । सुन्दर इस वस्तु की सुखानुभूति है, जो एक ही साथ सार्वभौम एवं आवश्यक है । सौन्दर्यानुभूति के क्षणों में पूर्वापर, अन्तर्वाह्य, तारतम्य, सोद्देश्यता, जाति, प्रकार, मात्रा, अनुकमत्व आदि का बोध नहीं होता है । यह एक वास्तविक, प्रत्यक्ष एवं आनंदमूलक अनुभूति है । काण्ट की सौन्दर्यानुभूति एवं भरत की रसानुभूति का आन्तरिक स्वरूप बहुत कुछ एक सा प्रतीत होता है ।

शिलर - इन्होंने ललित-कला को मानव-संस्कृति का एक प्रमुख तत्व माना है । यह बर्बर पशुता से हमें सभ्य मानवता तक ले आयी है । इनकी दृष्टि में सौन्दर्य तो वस्तुनिष्ठ है, न आत्मनिष्ठ, यह आत्म-वस्तुनिष्ट है । अर्थात सौन्दर्य विषय प्रधान भी है एवं विषयीप्रधान भी । शिलर का कथन है कि 'सौन्दर्य हमारे लिए सचमुच 'वस्तु' है, क्योंकि इसकी अनुभूति हमें किसी विचार के फलस्वरूप प्राप्त होती है । साथ ही, यह हमारी एक भाव दशा है क्योंकि अनुभूति के बिना इसका प्रत्यक्षीकरण सम्भव नहीं । इस तरह यह रूप है, क्योंकि इसका हम ध्यान करते हैं । यह प्राण है, क्योंकि हम इसकाअनुभावन करते हैं । संक्षेप में, हमारे भाव और कर्म का संगम बिन्दु सौन्दर्य है ।'[1]

1. "Beauty is therefor endeed on object for us. Because reaction is the condetion under which we have a feeling of it, but at the same time it is a state of our subject, because feeling is the condition under which we have a perception of it. It is, therefore, a form, because we contemplate it, it is life because we feel it in one word, it is at once our state and our act."

काण्ट के सौन्दर्य-सिद्धान्त से अभिप्रेरित होकर शिलर ने इस क्षेत्र में अपने दो मतों का युक्तियुक्त प्रतिवादन किया । पहला है कलानिष्ठ और दूसरा क्रीड़ा भावना ।[1]

व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण का आकृतिभूलक या रूपगत अर्थ कलानिष्ठ सादृश्य है । वास्तविकता स्वयं वस्तु से उत्पन्न होती है, लेकिन व्यक्ति की कल्पना या प्रत्यक्षीकरण उसमें सादृश्य विधान कर लेता है । अर्थात जब किसी वस्तु के रूपगत अर्थ का बोध हमारी ज्ञानेन्द्रियों को होता है तभी कला के सादृश्य-विधान का उद्गम होता है । क्रीड़ाभावना तो हमारी जन्मजात प्रवृत्ति है । खेल में हमारा कोई लक्ष्य या सांसारिक उद्देश्य निहित नहीं रहता । अपने मन को अनुरंजित करने हेतु हम खेल में तल्लीन होते हैं । जब हम किसी चीज को देखते हैं और देखते ही रहते हैं, देखने में ही जब आत्मसुख का अनुभव होने लगता है, तभी क्रीड़ा-भावना का उद्भव होता है । खेल में सांसारिक लाभ-हानि के झमेले से मुक्त होकर हम आनन्द-विभोर हो उठते हैं । सभी बन्धनों से मुक्त होकर स्वंच्छन्दता के साथ वहां आनन्दानुभूति प्राप्त करते हैं । कलाकृति के आस्वादन में भी, शिलर का मत है, यही क्रीड़ा-भावना काम करती है । जबकि वास्तविक रूप में कल्पना या प्रत्यक्षीकरण के द्वारा कलानिष्ठ सादृश्य विधान संभव होता है । तब उस सादृश्य वस्तु में, काल्पनिक वस्तु में हम असंदिग्ध होकर, उसे यथार्थ समझकर, रस का आस्वादन करते हैं । कला-मूलक वस्तु लौकिक एवं यथार्थ होते हुए भी, निरुद्देश्यता-मूलक आनन्द के कारण, अलौकिक एवं काल्पनिक हो जाती है । सहृदय भावक कलागत सौन्दर्यानुभूति द्वारा जीवन के सत्य एवं शिव का किस प्रकार साक्षात्कार कर लेता है - यह एक गंभीर प्रश्न है । शिलर ने अपनी अद्भुत, प्रतिभा द्वारा इस प्रश्न का सम्यक् समाधान किया है । उनके विवेचन का निष्कर्ष है कि सौन्दर्य हमारे जीवन की वास्तविक अभिव्यक्ति है ।

ने शिलर के मतों का युक्ति-युक्त खण्डन-मण्डन करते हुए कुरूपता के सिद्धान्त का निरूपण किया । सौन्दर्य-शास्त्र के इतिहास में प्रथम बार कुरूपता का सिद्धान्त एक ठोस आधार पर प्रस्तुत किया गया । इनके मतानुसार सौन्दर्य-शिव का सुखद प्रकटीकरण है ।[1] और कुरूपता अशिव का असुखद प्रकटीकरण । यह कवि गेटे ने सौन्दर्य-विवेचन में वैशिष्ट्यवाद

1. Beauty is the pleasant manifestation of the good.

का सिद्धान्त विधिवत प्रतिपादित किया एवं इसे कला का सर्वप्रमुख तत्व माना । वैशिष्ट्वाद का आशय है कलाकृति में कलाकार की वैयक्तिक विशेषता की अभिव्यक्ति । इन्होंने कला के रूप का भी मार्मिक विवेचन किया । रूप वस्तु का आकृतिमूलक सौन्दर्य है । रूप की सत्ता का महत्वपूर्ण स्थान इस लिए है कि यह वस्तु के उद्गम के साथ ही प्रकट होती है । व्यक्ति के स्वच्छन्द क्रिया-व्यापार में रूपगत सौन्दर्य का दर्शन होता है । मनुष्य का मन भय एवं चिन्ता से ज्यों ही मुक्त हो जाता है, वह अपनी सत्ता के प्रसारण के लिए क्रियाशील हो जाता है । वह जीवन की नीरस व्यापारों को सुन्दर बनाने का प्रयास करता है । सृजनशीलता या कलाकारिता व्यक्ति की जन्मजात प्रवृति है सौन्दर्य की अभिव्यक्ति व्यक्ति की सामाजिक और क्रियाशील भावना है । वैशिष्ट्मूलक कला व्यक्ति की अन्तरात्मा से उत्प्रेरित होकर बाह्य वस्तुओं को संवारती है । व्यक्ति की आन्तरिक अनुभूति के संयोग से कोई भी वस्तु सुन्दर, पूर्ण और सप्राण हो उठती है । उसकी अनुभूति स्वतन्त्र होती है । वह बाह्य व्यवधानों की परवाह नहीं करता । पूर्ण और जीवन्त कला हमारी अर्न्तआत्मा का अन्तरतम प्रकार है । वह सत्यं, शिवं, सुन्दरम को एक साथ अभिव्यक्त कर देता है । शेलिंग ने काण्ट और शिलर के सिद्धान्तों का पूरी तरह मंथन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि दोनों सिद्धान्त दो अतियों पर झूल रहे हैं । क्योंकि एक में बैद्धिक और दूसरे में कलानिष्ठ सहज-प्रज्ञा को अतिशय प्रमुखता मिलती है । बौद्धिक सहज प्रज्ञा दार्शनिकों के तर्क-वितर्क की चीज है । इसमें मतवैभिन्य स्वाभाविक है । इसकी मान्यताएं सार्वजनिक नहीं हो सकती है । सौन्दर्य इसके लिए एक दी हुई विवेच्य वस्तु है । इसके द्वारा सौन्दर्य का भावन नहीं विवेचन होता है । दार्शनिक सिद्धान्त, बुद्धि की द्वैतता पर अवलंबित होने के कारण, सर्वमान्य नहीं हो सकता । लेकिन कलामूलक अनुभूति, अनुभवगम्य होने के कारण आसानी से विश्वजनीय हो जाती है । दर्शन अपने विवेचन के उच्चतम शिखर पर पहुंचकर भी मानव व्यक्तित्व का एक अंश ही हमारे समक्ष रख पाता है । लेकिन कला अपनी भावना शक्ति के द्वारा मानव का पूर्ण-रूप हमारे समक्ष प्रत्यक्ष करती है । शेलिंग का यह मत सत्य के बहुत निकट प्रतीत होता है, क्योंकि शंकर और काण्ट मत सदा विवादास्पद रहेंगे । परन्तु कालिदास एवं शेक्सपियर का भावलोक सदा आनन्ददायक रहेगा ।

शेलिंग के विचार एवं कला का जन्म बौद्धिक तत्व के कारण नहीं बल्कि भाव-तत्व के कारण होता है । तर्क-वितर्क के झमेले से दूर हटकर ही कला अपना रूप संवारती है ।

बुद्धि में स्वतन्त्र मानस का चेतन-व्यापार जारी रहता है । लेकिन कलाकृति के उद्‌भव में प्रकृति का अचेतन व्यापार घटित हाता है । जब कला में पूर्णता आती है तो उसमें अनायास सार्वभौम विचार एवं अचेतन प्रकृति का सामंजस्य घटित हो जाता है । कला के असीम क्रोड में निःसीम खेलता रहता है । कला ससीम-रूप में असीम की सफल अभिव्यक्ति है । असीम एवं ससीम में प्रकटीकरण सौन्दर्य है । यह असीम या अनन्त विश्व के कण-कण में व्याप्त एक चेतन तत्व है । सर्वव्यापी, अखण्ड, एकरस, अरूप, आनन्दघन आत्म जब अपने को सीमा में, रूप में अभिप्रकट करता है तब सौन्दर्य का अनुभव होता है । शेलिंग का यह अनन्त हीगेल के 'एब्सोल्यूट' सा प्रतीत होता है।[1]

फेकवर ने रूपाकृति के सिद्धान्त को हीन बताते हुए मनोवैज्ञानिक आधार पर भाव-साहचर्य के सिद्धान्त को प्रचलित किया । इनका कथन है कि सौन्दर्य की कोई निश्चित सरलरेखा अथवा प्रकृत रूप नहीं होता है । आयताकार, वर्गाकार आदि ज्यामितिक चित्रों में सौन्दर्य का कारण उनका बाह्य रूप नहीं, बल्कि दृष्टा की आन्तरिक मनस्तुष्टि है । किसी वस्तु की बाह्य रेखाकृति उसकी आन्तरिक रेखाकृति की अपेक्षा कम सुन्दर होती है । बाह्य रूप में विकर्षण, तिरस्करण एवं बिलगाव की भी प्रवृत्ति रहती है । इसके विपरीत अभ्यन्तर रूप में आकर्षण, ग्रहणशीलता और सम्मिलन की भावना रहती है । मुलायम गद्दे अपने बाहरी रूप के कारण नहीं बल्कि बैठने वाले को आमन्त्रित करने के कारण सुन्दर प्रतीत होते हैं । इसलिए सुन्दर होते हैं कि बैठने वाले को वहां सुरक्षा की अनुभूति होती है । व्यक्ति के अपने भाव-साहचर्य के कारण ही कोई वस्तु सुन्दर या असुन्दर प्रतीत होती है । इस सिद्धान्त को विस्तृत करते हुए इन्होंने प्रकृति के विभिन्न रंगों की भी भाव-परक व्याख्या की है । इन्होंने लाल, नीले और हरे रंग को क्रमशः विपत्ति, शान्ति एवं उर्वरा शक्ति का प्रतीक माना है । पीला रंग रक्तहीनता का, इसलिए उदासीनता का द्योतक है ।

सौन्दर्य विवेचन में इनका दूसरा सिद्धान्त 'मितव्ययिता (Law of Economy) का है । जिस वस्तु में तनिक भी फालतूपन नहीं होगा, वह वास्तव में सुन्दर होगी । कम से कम सामग्री में अधिक से अधिक भाव या रूप का सृजन ही कला है । सुन्दरता का निवास मितव्ययिता में है । किसी सुन्दर वस्तु को देखकर इसलिए प्रसन्नता होती है कि हमारा मन अल्पतम श्रम द्वारा उसके निहित भाव को शीघ्र ही समझ लेता है । काव्य में प्रयुक्त-उपमा, रूपक आदि अलंकार

1- तुलसी ने मानस में एक स्थल पर कहा है कि सरोवर में अनायास खिले हुए कम ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण हो उठा हो । 'फूले कम सोइ सर कैसा, निर्गुन ब्रहम सगुन भए जैसा असीम जल ससीम कमल-रूप में अपने सौन्दर्य को व्यक्त करता है ।

भाव को तत्काल हृदयंगम कराने के लिए ही प्रयुक्त होते हैं । कम से कम प्रयास में भाव का प्रत्यक्षीकरण हो जाय इसी में काव्यगत बिम्बों की सफलता है । मितव्ययिता द्वारा श्रम-लाघव की प्राप्ति होती है । प्लेटों ने अंश एवं पूर्ण की सामंजस्यता का उल्लेख करते हुए कहा है कि कोई अंश तभी तक पूर्ण का अंग कहा जायेगा, जब तक वह सार्थक एवं अनिवार्य हो । कोई निरर्थक अंश पूर्ण का अंग कभी नहीं कहला सकता ।

सौन्दर्य शास्त्र के प्रणेताओं में हार्टमैन का नाम भी एक विशिष्ट स्थान रखता है । इन्होंने अपने 'एस्थेटिक' में सौन्दर्य की परिभाषा इस प्रकार की है - सौन्दर्य प्रेम का प्राण है । यह अपना आधार और उद्देश्य दोनों आत्म में प्राप्त कर लेता है ।[1]

यहां ध्यान देने की बात यह है कि सौन्दर्य-क्षेत्र में प्रेम का प्रवेश हो जाता है लेकिन इस प्रेम का लक्ष्य आत्म है, यानि, घुमाफिरा कर यह परिभाषा भी हीगेल के आत्म तक हमें पहुंचा देती है । हीगेल ने सौन्दर्य की पहली परिभाषा बहुत कुछ इसी प्रकार की थी ।[2] हार्टमैन ने रूपगत सौन्दर्य का गंभीर विवेचन करते हुए उसके छः भेदों का निदर्शन किया है :-

(क)- **अचेतन रूपगत सौन्दर्य** - इसमें इन्द्रियजलित आनन्द की प्राप्ति होती है ।

(ख) गणितमूलक एवं गतिमूलक रूप ।

(ग)- सोद्देश्य आनन्द देने वाला निष्क्रियात्मक रूप ।

(घ) वह रूप जो जीवन का अविच्छिन अंग हो ।

(ङ)- जाति-विशेष में पाये जाने वाले किसी प्राणी का रूप ।

(च)- वैयक्तिक विशिष्टता का अभिव्यन्जना का रूप ।

रूपगत सौन्दर्य का यह अन्तिम भेद कलागत सौन्दर्य ही परिलक्षित होता है हार्टमैन के अतिरिक्त शेस्लर, सोलजर, शेसनक्रांज आदि जर्मन विचारकों में कलागत सौन्दर्य पर अपने विभिन्न प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं ।

1. "Beauty is the life of love appreehending its own ground and purpose in the idea."

2. Beauty is the presentation of truth to sence and fancy.

सौन्दर्य-शास्त्र के क्षेत्र में 19वीं शताब्दी में जर्मनी के विचारकों में कैसी दुंदुभी बजती रही, यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है । ब्रिटेन एवं फ्रांस के कुछ विचारकों ने आगे चलकर इस शास्त्र की समीक्षा को कुछ और विस्तृत किया । रस्किन, डार्विन, स्पेन्सर, विलियम-मॉरिस, टर्नर, पेन्टर, कांलरिज, वर्ड्सवर्थ आदि विचारक ब्रिटेन में हुए और रेसीन, कार्नील, मोलिए आदि फ्रान्स में । रूस में टॉलस्टॉय ने कला का विस्तृत विवेचन किया। इटली के क्रोचे के मत का हम आगे चलकर उल्लेख करेंगे । मार्क्सवादी कॉडवेल का मत भी उल्लिखित किया जायेगा । फ्रायड एवं यंगु के बाद इधर प्रयोगवादी मनोवैज्ञानिकों ने भी सौन्दर्य की विविध व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं । इनमें प्रमुख हैं - एक्सनर, कल्पे, काल्किन्स, वफर, मैक्ड्गल, मार्टिन शूल्जे आदि । इन्होंने प्रभाव-विधि, वर्णन-विधि आदि द्वारा सौन्दर्य अस्वादन के अवसर पर रसिक के शरीर, हृदय, रुधिर-संचरण, श्वासोच्छवास तथा मानसिक प्रभावों का अध्ययन किया है । प्रायोगिक सौन्दर्य-विधान इस क्षेत्र में अभिनव प्रयोग कर रहा है ।

सौन्दर्य एवं अन्य - शास्त्र

सौन्दर्य एवं भारतीय काव्य - शास्त्र (सम्प्रदाय)

अलंकारवाद - आचार्य दण्डी ने अलंकार को काव्य का शोभाकारक धर्म- 'काव्यशोभा-करान धमनि अलंकारान प्रचक्षते' कहा है । मम्मट ने उसे शब्द एवं अर्थ की शोभा बढ़ाने वाला अस्थिर वाह्य धर्म कहा है । जिस प्रकार नासामणि, कर्णफूल आदि अलंकारों से रमणी की शोभा बढ़ती है, उसी प्रकार उपमादि अलंकारों से कविता की । रुय्यक, मम्मत, दण्डी, भामह, अप्पय-दीक्षित, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि आचार्यो ने अलंकार के भेदोपभेद का सूक्ष्म विवेचन किया है ।

अलंकारवादी काव्य - शोभा का मूल कारण अलंकार मानते हैं । लेकिन उक्त मत के विरुद्ध कहा जा सकता है कि वाल्मीकि एवं कालिदास में, सूर एवं तुलसी में ऐसे अनेक पद हैं जिनमें कोई अलंकार नहीं फिर भी काव्य - दृष्टि में वे अत्यन्त उत्कृष्ट हैं । अलंकारवाद के समर्थकों ने ऐसे वर्णनों में भी अलंकार खोज निकाला और उसे स्वभावोक्ति कहा । काव्य की उत्पत्ति के साथ अलंकार भी साथ ही उत्पन्न होते हैं, लेकिन सहृदय को उनके नाम रूप का पता नहीं रहता । जिस प्रकार व्याकरण शास्त्र से परिचित हुए बिना भी हम भाषा का प्रयोग कर मनोनुकूल लाभ उठाते हैं, उसी प्रकार अलंकार शास्त्र से अपरिचित रहकर भी काव्य का सृजन एवं आस्वादन हो सकता है और होता भी है । शुद्धशास्त्र की दृष्टि से अलंकार का अध्ययन भले ही उपयोगी न हो लेकिन यह रसास्वादन में कहां तक सहायक होता है - यह विवादास्पद है ।

रीति - सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य वायन है ।

इन्होंने रीति को काव्य की आत्मा-'रीतिरात्मा काव्यस्य-' कहा है । विशिष्ट पद - रचना ही रीति है । पदरचना की यह विशिष्टता काव्य-गुणों पर अवलौकित है । अर्थात गुणों का आश्रय लेकर रीति टिक पाती है । रीति - सम्प्रदाय को गुण - सम्प्रदाय भी कहा जाता है । रीति शब्द का कोशगत अर्थ है - गमण प्रणाली, यानि - जिससे जाया जाए, गतिशील हुआ जाए । अतः मार्ग, प्रणाली, पद्धति, शैली आदि रीति के पर्याय हैं । वामन ने रीति के तीन भेद माने हैं - वैदर्भी, गौडीय, पांचाली । वैदर्भी रीति - समग्र गुणों से युक्त, दोषरहित एवं वीण - स्वर सदृश मधुर होती है । - 'समग्र गुण गुफिला, विपञ्ची स्वर सौभाग्य ---- ।'

गौड़ीय रीति ओजपूर्ण एवं कान्तिमय होती है । इस मधुरता और सुकुमारता का अभाव रहता है । इसकी पदावली में उग्रता एवं सामासिकता होती है । पांचाली रीति माधुर्य एवं सुकुमारता से सम्पन्न

होती है । इसमें सुन्दरता, शिथिलता एवं शीतलता रहती है । आचार्य कुंटक ने वामन के मत का खण्डन करते हुए रीति की स्थापना कवि - स्वभाव के अनुरूप की है । इनका मत अधिक स्वाभाविक एवं वैज्ञानिक है । इनके अनुसार रीति के तीन मार्ग हैंय - सुकुमार और विचित्र गुणों का सामन्जस्य है । इन्होंने सुकुमार एवं विचित्र के अन्तर्गत चार गुणों की प्रतिष्ठा की है - माधुर्य, लावण्य, प्रसाद एवं अभिजात्य । कुन्टक का लावण्य शब्द सौन्दर्य - शास्त्र की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है । आनन्दवर्द्धन, मम्मट आदि ने गुण को रस का उपकारक धर्म माना है और औचित्य के आधार पर रीति का संस्थापन किया है । इस प्रसंग में इन्होंने विषयौचित्य, रसौचित्य, वाच्योचित्य आदि की चर्चा की है ।

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुन्टक ने वक्रोक्ति को काव्य का जीवन कहा है । इन्होंने सभी अलंकारों में मूल में वक्रोक्ति की सत्ता स्वीकार की है । वक्रोक्ति कथन की विशेष भंगिमा है, अलंकृति है । इससे उक्ति में चमत्कार एवं चारूता, शोभा का संपादन होता है । कवि की प्रतिमा ही उक्ति में वक्रता का समावेश करती है । कुन्टक ने इसके छः भेद माने हैं :-

वर्ण-विन्यास वक्रता, पद - वक्रता, पदपरार्ध, प्रकरण वक्रता एवं प्रबन्ध वक्रता । वर्ण-विन्यास वक्रता में वर्णो का इस प्रकार गठन होता है जिससे चमत्कार की स्वतः उत्पत्ति होती है । पदवक्रता में व्याकरण सम्बन्धी प्रयोगों में चमत्कार उत्पन्न किया जाता है । इसके अन्दर किसी शब्द के प्रयोग की विच्छित्ति या वैचित्र्य समाहित रहता है । पदपरार्ध वक्रता में पद के परार्ध में प्रकट विशेषताओं का संकेत होता है । यह वक्रोक्ति काल, कारक, संख्या, पुरुष, प्रत्यय तथा वक्रता के रूप में अभिव्यक्त होती है । वाक्य - वक्रता के अन्तर्गत उदार और सुन्दर वस्तु का रमणीय वर्णन आता है । प्रकरण की वक्रता किसी प्रसंग के औचित्य को प्रभावशाली बनाने में है । प्रबन्ध वक्रता सम्पूर्ण प्रबन्ध में वर्तमान रहती है । वक्रोक्ति का यह व्यापक रूप नाटक, प्रबन्ध - काव्य आदि के सम्पूर्ण रूप में देखने को मिलता है । कथा - रूप के किसी अंश की कांट - छांट, विस्तार या संकोच में इस प्रयोग को देखा जा सकता है । इस प्रकार कुन्टक ने वक्रोक्ति के कई भेदोपभेद प्रस्तुत किया है । अभिव्यंजनावाद के प्रसंग में इस पर आगे भी विचार किया जायेगा ।

ध्वनि - सम्प्रदाय

इसके प्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन हैं। इन्होंने ध्वनि को काव्य की आत्मा कहा है । इस सिद्धान्त की व्यापकता ने काव्य के उपर्युक्त वादों को अपने अन्दर समेट लिया है । इसको इन्होंने असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य के रूप में देखा है एवं इसे ध्वनि का एक भेद स्वीकार किया है । ध्वनि - सम्प्रदाय को व्याकरण के स्फोटवाद से पर्याप्त प्रेरणा मिली है । पूर्ववर्ती वर्णों के उच्चारण के संस्कार के साथ अन्तिम वर्ण के उच्चारण के अनुभव से अर्थ की जो अभियक्ति होती है, उसका नाम 'स्फोट' है । कमल शब्द के उच्चारण के समय 'क' या 'म' या केवल 'ल' से अर्थ का बोध नहीं होता है । पूर्ण - वर्ण के संस्कार के साथ जब अन्तिम - वर्ण के उच्चारण के अनुभव का संस्कार मिल जाता है, तभी कमल के अर्थ की अभियक्ति होती है । इसमें अर्थ का क्रमशः प्रस्फुटन होता है, इसलिए इसे स्फोट कहते हैं । ध्वनि सिद्धान्त के अनुसार भी काव्य में अभिधा, लक्षणा, आदि के द्वारा अलग - अलग अर्थ का बोध नहीं होता है । काव्य का मार्मिक अर्थ, आनन्द विधायक अर्थ, अभिधा एवं लक्षणा के विरत हो जाने पर व्यंजना शक्ति द्वारा अभिव्यक्त होता है । घण्टे के आघात की पहली ध्वनि टंकार है । टंकार के बाद भी कुछ क्षणों तक एक झंकार गूंजती रहती है, इसे अनुरणन ध्वनि कहते हैं । काव्य का व्यंग्यार्थ भी अनुरणन - ध्वनि है । वाच्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ से अधिक चमत्कारक व्यंग्यार्थ होता है । सहृदय व्यक्ति इस अर्थ का भावन करता है । व्यंजना के आधार पर ध्वनि - सिद्धान्त में काव्य के तीन भेद किए गए हैं - ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य, अवर । जहां वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारी हो वहां ध्वनि काव्य है । जहां व्यांग्यार्थ कम चमत्कारपूर्ण हो, वाच्यार्थ मुख्य हो वहां गुणीभूत व्यंग्य होता है । व्यंग्यार्थ का जहां अभाव हो वहां अवर काव्य समझना चाहिए । इन तीनों को क्रमशः - उत्तम, मध्यम और अधम काव्य की संज्ञा दी जाती है । व्यंग्यार्थ - वाच्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ पर आश्रित रहता है, अतः ध्वनि भी अभिघा और लक्षणा पर निर्भर है । वक्रोक्ति की तरह ध्वनि के कई भेदोपभेद किए गए हैं ।

ध्वनि - सिद्धान्त ने काव्य की सौन्दर्यानुभूति को शब्दों के स्थल अर्थ से ऊपर उठाया । शब्द टंकार उत्पन्न करके लुप्त हो जाता है और अनुरणन द्वारा व्यंग्यार्थ की उपलब्धि होती है । शब्दों का आघात सहृदय के मानस में विविध भाव - तंतुओं को झंकृत करता है । भाव की एक कड़ी भावना की अनेक लहरियों को उत्पन्न करती है ।

कललोल करती है, एक अपूर्व गुंजन उत्पन्न करती है । इस प्रकार सहृदय की कल्पना - शक्ति जाग्रत होती है और इसके आलोक में अर्थ का इन्द्रधनुष उसे दृष्टिगत होता है । ध्वनि - सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक कसौटी पर भी खरा उतरता है । इसीलिए इस युग में इसका अधिक महत्व है ।

औचित्यवाद

क्षेमेन्द्र ने काव्य की आत्मा का दर्शन औचित्यवाद के रूप में किया है । यह सिद्धांत औचित्य को काव्य-सौन्दर्य का प्रधान कारण मानता है । जिस प्रकार हमारे शरीर की शोभा उसके अंगों के उचित अनुपात में है, उसी प्रकार काव्य की शोभा भी औचित्य में है । यदि कोई कवि किसी पात्र के कान को सूप की तरह एवं दांत को कार की तरह चित्रित करें तो वह हास्यास्पद हो जायेगा किसी चित्र में यदि एक हांथ बहुत लंबा एवं दूसरा बेहद छोटा अंकित किया जाये तो वह आदमी दीख पड़ेगा इसी प्रकार यदि हाथ की कोई अंगुली ज्यादा लम्बी दिखायी जाये तो हाथ ही कुरूप हो जायेगा । छोटे मकान के समक्ष विशाल सिंह द्वार हो या विशाल भवन के आगे छोटा सा फाटक रहे तो ये दोनो भद्दे दिखाई देगें शकुन्तला के कटि पर लताओं को सींचने हेतु कोई बड़ा घड़ा रख दें तो क्या होगा । किस वस्तु को किस मात्रा में किस स्थान पर किस प्रकार रखना चाहिए यह औचित्यवाद के अन्तर्गत है । श्रृंगार, करूण या हास्य कोई रस हो उसका वर्णन एक सीमा तक ही सहृदय को ग्राह्य होता है । किसी रस का आवश्यकता से अधिक विस्तार या संकोच काव्य को विकलांग बना देता है । नाटक के संवाद का विचार किया जाये तो वहां भी प्रत्येक पात्र के मुख से देश, कालानुसार ही भाषा का प्रयोग उचित होगा । इस प्रकार यह औचित्य रस में, शैली, अभिनय में, रूप-चित्रण में सर्वत्र वर्तमान रहता है । औचित्य का मार्मिक प्रयोग कला को सुन्दर बनाता

है । औचित्यवाद के कथन में, यह मानना पड़ेगा कि औचित्य वर्तमान है, फिर भी यह काव्य के बहिरंग पर जितना ध्यान आकृष्ट करता है, उतना अंतरंग पर नहीं ।

काव्य की आत्मा क्या है ? इस विषय पर विचार करते हुए संस्कृताचार्यों ने उपर्युक्त सिद्धान्तों का निरूपण किया है ।

सौन्दर्य एवं पाश्चात्य काव्य - शास्त्र

(1) अभिव्यन्जनावाद - जर्मन दार्शनिक लैंसिग एवं विंकलमान ने कलागत अभिव्यन्जना पर क्रोचे से पहले ही अपना सम्यक विवेचन प्रस्तुत किया है । लेसिंग की दृष्टि में सफल कला, वह है जिसकी अभिव्यंजना आत्म - सौन्दर्य से संवलित रहती है । विंकलमान ने अभियन्जना तत्व को सर्वप्रमुख स्थान दिया है । लेकिन अभिव्यंजना को एक वाद - रूप में प्रस्तुत करने का सम्पूर्ण श्रेय क्रोचे को ही है ।

क्रोचे ने अपने दर्शन में आत्म - तत्व को एकमात्र स्वीकार किया है । हीगेल ने आइडिया को स्वतःपूर्ण और निरपेक्ष माना है । लेकिन क्रोचे ने उसे एक गत्यात्मक शक्ति रूप में स्वीकार किया है । आत्म - तत्व, इनके मतानुसार एक सतत् क्रियाशील, चिर विकसित एवं प्रतिक्षण परिवर्तनशील प्रवाह है । आत्मा को क्रिया के दो भेद दीखते हैं - कलामूलक एवं तार्किक व्यावहारिक व्यापार के भी उसी प्रकार के दो भेद हैं - अर्थमूलक और नैतिक । ज्ञान आत्मा का सैद्धान्तिक एवं इच्छा या संकल्प उसका व्यावहारिक व्यापार है । ज्ञान का अपने आप में कोई महत्व नहीं है, वह इच्छा में प्रतिफलित होने के लिए ही रहता है जो ज्ञान इच्छा या संकल्प में परिणत नहीं हो पाता, वह ज्ञान ही नहीं है । यही कारण है कि कोई भी इच्छा बिना ज्ञान के नहीं टिक सकती है । प्रत्येक इच्छा में ज्ञान समाया हुआ है ।

क्रोचे ने ज्ञान के दो रूप स्वीकार किए हैं - वह या तो स्वंय प्रकाश है या तर्क मूलक, कल्पना द्वारा उपलब्ध ज्ञान या बुद्धि द्वारा उपलब्ध ज्ञान, विशेष का ज्ञान अथवा सामान्य का ज्ञान, विशिष्ट वस्तुओं का अथवा उनके पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान, वास्तव में, यह या तो बिम्बों का या प्रभा का उत्पादन होता है ।[1]

स्वंय - प्रकाश या सहज ज्ञान से सामान्य या जाति का ज्ञान उपस्थित नहीं होता है । इससे विशेष या व्यक्तिवाचक वस्तु का ज्ञान होता है । सहज - ज्ञान कल्पना के माध्यम से उपलब्ध होता है, इसीलिए इसे कल्पनाभूलक ज्ञान भी कहा जाता है । इसमें बुद्धि या तर्क से तनिक भी सहायता नहीं मिल पाती है । सहज ज्ञान बिना तर्क के कोई निष्कर्ष निकाल सकता है । आत्मा के सामने बिना किसी प्रयास के यह ज्ञान स्वंय प्रकाशित होता है, इसीलिए इसे स्वंय - प्रकाश ज्ञान भी कहते हैं । आत्मा के चार व्यापार हैं - सहजमूलक,

1. "Knowledge has two forms - It is either intuitive or logical. Knowledge, Knowledge abtained through the imagination or obtained through the intellect, Knowledge of the individual or knowledge of the universal of individual things of the relations between them, It is, in fact productive either of images or of concepts." Aesthiti P. 1

बुद्धिमूलक, अर्थमूलक और नीतिमूलक ।[1] इन चारों में सहज - ज्ञान आत्मा का प्रथम व्यापार है, प्रथम स्तर है । ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह मूलतः सहज - ज्ञान होता है ।

पुष्प, लेखनी, पुस्तक आदि जो कुछ हम देखते हैं वे सभी सहज हैं । साथ ही जिन वस्तुओं के बिम्ब हमारे मानस में प्रकट होते हैं, वे भी सहज ज्ञान कहे जाते हैं । यथार्थ - वस्तु का इन्द्रियमूलक ज्ञान जब स्पष्ट, एकतान और विम्बमूलक होता है तभी सहज - ज्ञान की कोटि में आता है । हमारे चित्त पर बहुत से प्रभाव पड़ते रहते हैं, लेकिन वह प्रभाव जो किसी विशेष विम्ब - रूप में प्रकट होता है, निश्चय ही, सहज - ज्ञान है । यदि हमारे चित्त पर किसी संस्कार या प्रभाव की छाप पड़ती है तो उसका बिम्ब रूप मैं अभिव्यक्ति होना अनिवार्य है । जो प्रभाव बिम्ब में ढल जाने के कारण सहज - ज्ञान हो जाता है, उसमें पूर्तिमत्ता आ जाती है, वह ठोस रूप में प्रकट होता है, उसमें वस्तुनिष्ठता आ जाती है । जब शब्द सुनने से हमारे मन में दुनिया के सभी प्रकार के जल का बोध होता है, लेकिनयदि - ' यह जल ' कहा जायेगा तो किसी खास नदी या कुंए या लोटे का जल समझा जायेगा । केवल जब सामान्यबोधक है, ' यह जल ' विशेष - बोधक । सामान्य के द्वारा किसी स्पष्ट, वास्तविक या खास चीज का बोध नहीं होता है । सामान्य प्रमा (कॉनसेप्ट) का क्षेत्र है । विशेष यह जब, यह फूल, यह आदमी के द्वारा कोई खास बिम्ब सामने आता है । यह सहज ज्ञान का क्षेत्र है । कलामूलक ज्ञान सहज-ज्ञान है । इसलिए कला विशिष्ट वस्तु के बिम्ब-विधान द्वारा कल्पना के माध्यम से ज्ञान प्रदान करती है । विज्ञान या शास्त्र तर्क के आधार पर वस्तु का सामान्य ज्ञान देता है । कला कल्पना या बिम्ब के आधार पर वस्तु का विशिष्ट ज्ञान प्रदान करती है ।

सहज-ज्ञान और इन्द्रियानुभूति में थोड़ा अन्तर है । ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से चित्त पर जो अस्पष्ट धूमिल, अनमिल प्रभाव पड़ते हैं, वे सभी इन्द्रियानुभूति या संवेदन की कोटि में आयेंगे । लेकिन जब उन प्रभावों में से कुछ प्रभाव बिम्बों के प्रकट होते हैं तब वे धूमिल संवेदन न रहकर सहज ज्ञान बन जाते हैं । कहने का आशय यह है कि इन्द्रियानुभूति में रूप या बिम्ब का अभाव सा रहता है और सहजानुभूति में बिम्ब-विधान होता है । इन्द्रियानुभूति या संवेदन एक तरह का कच्चा-माल है । आत्मा अपनी क्रियाशीलता द्वारा उसे रूप प्रदान करती है । आत्मिक व्यापार में कच्चा माल (संवेदन) पक्का सहज ज्ञान हो जाता है । संवेदन को रूपायित करना सहज का काम है । रूपविहीन पदार्थ या संवेदन बेतरतीब रहता है, यांत्रिक होता है, उसमें स्थूलता, जड़ता या पाशविकता रहती है । लेकिन यह विरूप स्थूल संवेदन ज्यों ही आत्मा

1. Aesthetic, Logical, Economic, Ethical.

की प्रक्रिया में आ जाता है, वह विशेष रूप एवं सक्रियता ग्रहण कर लेता है । इन्द्रियानुभूति अपने आप में पाशविक है, रूप में ढलने से ही वह आध्यात्मिक और मानवीय होती है । रूप (फार्म) पदार्थ (मैटर) की नग्नता को ढकता है, आच्छादित करता है, उस पर विजय प्राप्त करता है । वस्तु की भिन्नता के कारण सहजानुभूतियों के बीच अन्तर स्थापित होता है । वस्तु परिवर्तनशील है और शाश्वत है । रूप मानव की आत्मा का धर्म है, व्यापार है । इस प्रकार संवेदन का रूपायित होना सहज-ज्ञान है ।

क्रोचे ने अभिव्यंजना को सहज-ज्ञान का अविच्छेद धर्म माना है । पहले कहा जा चुका है कि प्रभाव या संवेदन का बिम्ब के रूप में व्यक्त होना अभिव्यंजना है । संवेदन या प्रभाव का रूपायित होना सहज-ज्ञान है और इस प्रकार से रूपायित होना अभिव्यंजना है । यानि, सहज - ज्ञान अभिव्यंजना है । चित्त पर पड़े किसी संस्कार या प्रभाव की अभिव्यक्ति अवश्यम्भावी है यदि प्रभाव पड़ा तो अभिव्यंजना होगी । जहां-जहां प्रभाव है वहां-वहां अभिव्यंजना है । जो प्रभाव सहज-ज्ञान के आलोक में पड़ेगा वह मूर्ति में ढलकर प्रकाशित होगा । अभिव्यंजना स्वयं प्रकाश ज्ञान का स्वभावसिद्ध धर्म हे । हमारे मन में स्थूल स्तर पर दुनिया का ऊपरी रूप दिखाई पड़ता है । जगत का यह सूक्ष्म रूप प्राकृतिक तथ्य है मन का वासनात्मक स्तर है । स्थूल इन्द्रिय संवेदन के प्रवाह से आत्मिक रूप की सत्ता भिन्न है । हमारी आत्मा मन के गोचर प्रवाह को विशेष रूप से ढालती है । संवेदन का रूप में ढलना, रूपायित होना अभिव्यंजना है । सहजानुभव करना अभिव्यक्त करना है । सहजानुभूति ही अभिव्यक्ति है ।[1] सहज ज्ञान अभिव्यक्त-ज्ञान है । यह बौद्धिक व्यापार से स्वतंत्र एवं स्वतः पूर्ण है ।[2]

क्रोचे हर प्रकार की सहजानुभूति में गुण, विकास, सौन्दर्य और लक्ष्य इन चार तत्वों का दर्शन किया है । प्रत्येक सहज ज्ञान में उसका स्वाभाविक धर्म या गुण अवश्य निहित रहता है । वह गतिशील होता है, ज्ञान का उत्पादक होता है । वह वस्तु को प्रकाश में लाता है । सहज-ज्ञान स्थिर नहीं रहता, उसमें आन्तरिक विकास निरन्तर जारी रहता है । सहजानुभूति सफल अभिव्यक्ति होने के कारण स्वतः सुन्दर होती है । सहजानुभूति सौन्दर्यानुभूति ही है । सहज-

1. The entuition or representation is distinguished as form from what is feel and suffered from the any or wave of sensation or from psychic matter and this form, this taking passession is expression to intuite is to express and nothing else, (nothing more, but nothing less) than to express.

2. वही पृष्ठ 11

ज्ञान निरूद्देश्य नहीं होता । इसका कोई लक्ष्य होता है । यह प्रभाव का बिम्ब-विधान करता है, आत्मा को आनन्द प्रदान करता है ।

क्रोचे की दृष्टि में कला पूर्णतया एक आन्तरिक व्यापार है । कलाकार के मानस में जब कोई प्रभाव बिम्ब रूप में प्रकाशित होता है, बस उसी समय अभिव्यंजना भी हो जाती है । यह व्यापार चित्त की जिस अन्तर्वृत्ति के कारण घटित होता है, उसे सहज कहेंगे और इसके द्वारा जिस ज्ञान की उपलब्धि होती है, उसे सहज-ज्ञान की संज्ञा देंगे । सहज-ज्ञान की निष्पत्ति में बुद्धि और तर्क का कोई सहयोग नहीं रहता है । यह अनायास स्वतः ही उद्‌भूत होता है, यह स्वयं है । सहजानुभूति ही सच्ची अभिव्यंजना है और यही कला का शुद्ध रूप है । कलाकार के मानस में प्रभाव का बिम्ब-विधान हुआ कि अभिव्यंजना हुई और कला भी वहीं फलवती हो गयी । ऐसी स्थिति में, कला का यह आध्यात्मिक केवल कलाकार ही देख सकता है, पाठक श्रोता या दर्शक कदापि नहीं । कला कलावंत के अन्तर्मानस की अभिव्यक्ति होती है और अपना सौन्दर्य उसके अन्तःकरण में ही विकीर्ण कर तत्काल विलीन हो जाती है । किसी ने चांद या फूल देखा और कल्पना में उसके प्रभाव का रूपांकन किया कि वह कलाकार हो गया । क्योंकि उसके मानस में सहजानुभूति के द्वारा फूल के प्रभाव की बिम्ब-मूलक अभिव्यक्ति हो चुकी है । इस प्रकार क्रोचे के मतानुसार, प्रत्येक व्यक्ति जिसे सहजानुभूते होती है, कलाकार है । कलाकार का परम अनुग्रह है कि वह अपनी आध्यात्मिक अभिव्यक्ति को शब्द, रेखा, गति, नाद आदि के माध्यम से हम सबों के लिए बाह्य रूप में पुनः अभिव्यक्त करता है । मनुष्य भ्रान्तिवश कला के बाह्य रूप को कला ही कहकर पुकारता है । कला का शुद्ध वास्तविक रूप केवल कलाकार के मानस में अभिव्यंजित होता है । कला के बाह्य-रूप को कविता, चित्र, मूर्ति, संगीत को - कला कहना एक औपचारिक प्रयोग है । बाह्य कलाकृति आन्तरिक शुद्ध कला की एक प्रतीक है । प्रतीक मूल वस्तु का प्रतिनिधि हो सकता है, मूल वस्तु कदापि नहीं । शब्द के माध्यम से लिखित मेघदूत असली कला नहीं है, वास्तविक मेघदूत तो कालिदास की कल्पना में रूपायित हो चुका है । लिखित मेघदूत कल्पना में अंकित मेघदूत की अनुकृति है ।

ऐन्जेलो, रैफेल, पिकासो आदि चित्रकारों के मूर्त चित्रों में असली कला नहीं है, शुद्ध कला तो उनकी कल्पना में ही अवतरित हुई । कला अभिव्यंजना है, कलाकृति तो अभिव्यंजना की अभिव्यंजना कही जा सकती है ।

क्रोचे ने कलागत सुन्दरता को अभिव्यंजना से भिन्न नहीं माना है । उनके मतानुसार सफल अभिव्यंजना ही सुन्दरता है, क्योंकि असफल अभिव्यंजना, अभिव्यंजना नहीं कही जा सकती है ।[1] सुन्दरता अपने को सदा एकता या अन्विति रूप में अभिव्यक्त करती है एवं कुरूपता स्वयं को अनेक तत्वों के वेमेलपन में प्रकट करती है ।[2] कई तत्वों का सामंजस्य सुन्दरता है एवं उसका वैषम्य कुरूपता ।[3]

वस्तु या मैटर आत्मा की स्थितिमूलक अवस्था है और रूप या व्यंजना उसकी क्रियामूल अवस्था । आत्मिक व्यापार चित्त पर पड़े हुए अनेक प्रभावों को रासायनिक प्रक्रिया में ले जाकर उन्हें एकीभूत कर देता है । स्थूल या प्राकृतिक प्रभावों की ज्यों ही अभिव्यक्ति होती है, उनकी जड़ता या निष्क्रियता विलीन हो जाती है । रूपायित होने के कारण वस्तु का भार समाप्त हो जाता है । आत्मा प्रकाश का अनुभव करने लगती है । प्रकाश या आनन्द की अनुभूति सौन्दर्य की अनुभूति है । यह प्रकाश अभिव्यंजना का व्यापार है, इसलिए सौनदर्य मात्र अभिव्यंजना है ।

क्रोचे फूल, तितली या इन्द्रधनुष में सुन्दरता की सत्ता नहीं स्वीकार करते । सुन्दरता किसी वस्तु में नहीं रहती, वह वस्तु के प्रभाव की सफल अभिव्यंजना में रहती है । किसी वस्तु में सुन्दरता द्रुस्टा की विशेष मनोदशा के कारण प्रकट होती है । उदास मन चांद में रमणीयता नहीं पाता है एवं प्रफुल्ल मन पाता है । इससे यह प्रमाणित हुआ कि प्राकृतिक वस्तु द्रुष्टा की चित्तदशा के अनुकूल कभी सुन्दर एवं कभी कुरूप होती रहती है । इस प्रकार सुन्दरता प्राकृतिक वस्तु में नहीं द्रुष्टा की चित्त-दशा में है । द्रुष्टा की कल्पना-शक्ति के कारण प्रकृति सुन्दर प्रतीत होती है । कल्पना विहीन व्यक्ति शकुन्तला में भी लावण्य का, नवमधु का दर्शन नहीं कर सकता है । सौनदर्य के लिए दुष्यन्त द्रुष्टि चाहिए । सांसारिक लाभ-हानि में उलझी हुई द्रुष्टि प्राकृतिक द्रुश्य का अवलोकन नहीं कर सकती है । संसार के झंझटों से बिल्कुल ऊपर उठकर केवल कल्पना लोक में सौन्दर्य का आस्वादन किया जाता है । रोजमेर की नजर से प्रकृति वासी मालूम पड़ती है । केवल कलाकार के नयन में प्रकृति सुन्दर दीखती है । कल्पना की सहायता के बिना प्रकृति का कोई अंग सुन्दर प्रतीत नहीं होता । इसीलिए सुन्दरता द्रुष्टा की कल्पना में है, उसकी क्रियाशीलता में है, उसकी आध्यात्मिक शक्ति में है

1. Beauty as successful expression is unsuccessful expression, Expression when it is not successful is not expression.
2. The beautiful presents itself as unity, the ugly as multiplicity-
3. Expression is a synthesis of the various or multile, in th one.

इस संबंध में इनकी दूसरी मान्यता यह है कि सौन्दर्य में श्रेणियां नहीं होती, श्रेणियां कुरूपता में पायी जाती हैं ।[1] जो कलाकृति सुन्दर है, उसे हम सुन्दर ही कहेंगे । वह कुछ अधिक सुन्दर हो सकती थी ऐसा सोंचना युक्तियुक्त नहीं । जो बात सत्य है, वह सत्य हे वह अधिक सत्य हो सकती है - ऐसा कहना गलत होगा । इसी प्रकार जो सुन्दर है, वह सुन्दर है, वह सुन्दरतर नहीं हो सकता है । सुन्दरता की अनुभूति अखण्डता, पूर्णता और ऐक्य की अनुभूति है । इसीलिए सौन्दर्य-बोध में बढ़िया और घटिया का सवाल नहीं उठाया जा सकता सौन्दर्य में श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम का विचार नहीं किया जा सकता है । श्रेणियों का बोध कुरूपता में आसानी से हो सकता है । कलाकृति में कुरूपता का बोध तभी होता है जब उसके विभिन्न तत्वों के बीच वैषम्य बना रहता है, सामंजस्य नहीं हो पाता है । लेकिन सौन्दर्यानुभूति में सुन्दर वस्तु के साथ तादात्म्य हो जाता है चित्त-वृत्ति में एकरूपता, एकाग्रता आ जाती है, इसलिए यहां खण्ड और अंश की अनुभूति नहीं हो पाती । पूर्ण की अनुभूति में मात्रा या श्रेणि का बोध स्वयं समाप्त हो जाता है । कुरूपता की अनुभूति में चित्त एकाग्र नहीं रहता, इसीलिए ध्यान की अस्थिरता के कारण उसके कई स्तर, कई भंगिमाएं दिखाई पड़ती है । कुरूप या असफल वृत्ति के कुछ दोषों को घटाया जा सकता है और इसे कुछ कम कुरूप दिखाया जा सकता है । सुन्दर या सफल-वृत्ति तो एक साथ ही दृष्टा या श्रोता को सद्यः आनन्द विभोर बना देती है । इसलिए इसमें श्रेणी या मात्रा के बोध का अवकाश नहीं रहता ।

कलागत सौन्दर्य हेतु यह आवश्यक है कि उसमें कुछ कुरूपता भी वर्तमान रहे । कलाकृति में सुन्दर और कुरूप दोनों प्रकार के तत्वों के बीच संघर्ष चलता रहता है । सुन्दर कुरूप पर विजय प्राप्त करना चाहता है, यानी वेषम्य का विनाश और साम्य का सर्जन होता है । कुरूप तत्व अन्त में अपने को सुन्दर में विलीन कर लेता है । उसकी अवस्थिति सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए अनिवार्य है । जिस प्रकार अंधकार पर विजय प्राप्त करने से प्रकाश की महिमा निखरती हे, उसी प्रकार कुरूप पर विजय प्राप्त कर सुन्दर अपनी श्री-वृद्धि करता है । लेकिन जहां कुरूप अंत तक संघर्षरत रहता है, वहां सुन्दर के चरणों में नत सिर नहीं

1. The beauty does not passess degrees for there is no conceiving a more beautiful that is on expression that is more expressive, on adequate that is more them adequate. Vgliness on the other hand, does passess degrees from the rather (or almost beautiful) to the extremely ugly.

होता है, वहां मिश्रता या भिन्नता का बोध बना ही रहता है । पूरी अन्विति के बिना अभिव्यक्ति सफल नहीं होगी एवं सुन्दरता का आस्वादन भी नहीं होगा । इसलिए सुन्दर का असफल संघर्ष ही कुरूप है । सफल कलाकृति में सुन्दरता की भवानी कुरूपता के महिषासुर पर विजय प्राप्त कर सौम्य स्मित की किरणें बिखेरती है ।

क्रोचे ने कुरूपता की एक ऐसी स्थिति की भी कल्पना की है जहां वह अपने आप में पूर्ण है । यानि कुरूप जब शत-प्रतिशत कुरूप ही रहे, उसमें सुन्दरता का एक अणु भी विद्यमान न रहे, तब उस स्थिति को हम क्या कहेंगे ? इसी का अंतर है कि तब वह कुरूप नहीं रह सकता है । परस्पर विरोधी धर्म, सुन्दर और कुरूप के संघर्ष में कुरूप की सत्ता का बोध होता है । यदि संघर्ष नहीं है यानि कुरूप स्वयं पूर्ण है, तो वहां कुरूपता की अनुभूति नहीं होगी । कुरूपता का अवगुण निर्गुण हो जायेगा, अपमूल्य अमूल्य हो जायेगा । इस स्थित में जड़ और चेतन का, निष्क्रिय और सक्रिय का द्वन्द्व समाप्त हो जायेगा, सक्रियं का अन्तर्धान हो जायेगा, निष्क्रियि उसके आसन पर विराजमान होगा । पूर्ण कुरूपता पूर्ण अंधकार है, जड़ता का पूर्ण साम्राज्य है । यदि वह पूर्ण है, तो फिर कुरूप नहीं है, क्योंकि वहां वैषम्य नहीं है । क्रोचे की पूर्ण कुरूपता का दर्शन किसी कलाकृति में किया जा सकता है या नहीं, मै नहीं कह सकता । इस विषय पर कुछ और विचार - 'कुरूपता कहां रह' उपशीर्षक के अन्तर्गत आगे किया है ।

कला का सौन्दर्य जब सफल अभिव्यंजना में निहित है, तो भयानक, भयंकर, वीभत्स और विद्रूप भी सफलतापूर्वक अभिव्यक्त होकर सुन्दर हो सकता है । हमारे यहां रौद्र, वीभत्स, करूण आदि रस सुन्दर ही माने गए हैं, क्योंकि उनके द्वारा आनन्दानुभूति होती है बूढ़े की झुर्रियां चित्रकला में सुन्दर हो जाती है । किसी कलाकृति में पूर्ण कुरूपता का दर्शन कठिन है । महाकाव्य का कोई भी पात्र, मंथरा हो या लेडी मैकबेथ, पूर्णतया सदोष नहीं कहा जा सकता है ।

लगता है, कि, कला में पूर्ण - कुरूपता की भावना क्रोचे का कोई कल्पित आदर्श ही है । क्योंकि इन्हीं के मतानुसार प्राकृतिक वस्तु न सुन्दर है न कुरूप ही । तो सुन्दरता या कुरूपता सहृदय की विशेष चित्त अवस्था की अनुभूति ही कही जा सकती है । इसीलिए पूर्ण कुरूपता का बोध, यदि वह है, तो, विशेष चित्तदशा में ही सम्भव है लेकिन, यह हम जानते हैं, कि कोई भी संस्कार तभी तब कुरूप है जब तक वह सहजानुभूति में रूपायित नहीं हुआ है । कुरूप प्रभाव की अभिव्यंजना में आकर सुन्दर हो उठता है, क्योंकि अभिव्यंजना एक आध्यात्मिक व्यापार है, दैनिक लाभ - हानि के जगत से वह निर्लिप्त है । कला - सृजन की प्रक्रिया में कुरूपता केवल सुन्दरता के उत्कर्ष के लिए आती है ।य कलासृजन की प्रक्रिया में क्रोचे ने निम्न चार चरणों का उल्लेख किया -

(1) आन्तरिक संस्कार या प्रभाव । रूपहीन संवेदना ।

(2) अभिव्यंजना या आध्यात्मिक कलामूलक अचिति ।

(3) सौन्दर्य की आनंदानुभूति ।

(4) कलाकार की मूल अभिव्यक्ति या पुनः पूर्त आधार द्वारा अभिव्यंजन ।
अर्थात मूल - अभिव्यक्ति का प्रकृतिक तत्वों में अनुवाद ।

मनोविज्ञान की इस शाखा के प्रमुख प्रवर्तक फ्रायड ने मानव - जीवन में काम का सर्वोपरि स्थान स्वीकार किया है । काम का वह शक्ति - श्रोत, जिससे मनुष्य की सारी प्रवृत्तियां संचालित होती हैं, लिबडो के नाम से पुकारा जाता है । यंगु ने एक जगह लिबडों की तुलना उपनिषद के ब्रह्म से की है । जीवन की इस मूल धारा को जिस नाम से पुकारा जाय - ब्रह्मा, आत्मा, प्राण, काम, चेतना जो भी इसे कहा जाय, मतलब एक ही है । छान्दोम्य उपनिषद में प्रणान को मन सहित सभी इन्द्रियों का ज्येष्ठ और वशिष्ठ कहा गया है ।

प्राण के उत्क्रमण करने पर नेत्र, श्रवण, रसना और मन ये सभी निरर्थक हो जाते हैं । जीवन के प्रत्येक क्रिया - व्यापार के मूल में प्राण ही है । प्राण प्रत्येक व्यापार में अपनी अभिव्यक्ति करता है । फ्रायड का लिबडो भी मनुष्य की प्रत्येक क्रिया का प्रेरक है । फ्रायड ने नवजात शिशु में भी काम - वृत्ति का अविष्कार किया है । प्रत्येक शिशु ज्यो - ज्यों बढ़ता है, उसके अन्दर ईडीपसकाम्लेक्स भी जटिल होता जाता है । इस ग्रन्थि के भली प्रकार सुलझने पर ही उसका भविष्य सुन्दर हो सकता है । माता - पिता की अनभिज्ञता, सामाजिक रूढ़ियों और वर्तमान परिस्थितियों के कारण शिशु या बालक की कामवृत्ति का बुरी तरह दम - अवदमन (रिप्रेशन) हो जाता है । अवदमित काम व्यक्ति के अवचेतन में विकृत रूप धारण कर उसके मानस को रुग्ण बना देता है । इसलिए इस प्रवृत्ति का विधिवत नियमन या उदस्तीकरण (सबिलमेशन) होना चाहिए । कलाकार की कामवृति का उदात्तीकरण उसकी कला - कृतियों में देखा जा सकता है । साधारणतः व्यक्ति अपने यथार्थ जीवन में अपने मनोनुकूल यश, धन या प्रेम की उपलब्धि नहीं कर सकता । उसका यह सदैव सुखोपभोग की ओर दौड़ता है, लेकिन उसके जीवन - पथ में सामाजिक परिस्थितियों के कारण अनेक रोड़े उपस्थित होते हैं । व्यक्ति के सुखवाद को समाज के यथार्थवाद से लड़ना पड़ता है । जब उसकी अधिकांश अभिलाषायें अधूरी रह जाती हैं, तब निराश होकर, बाहरी दुनिया से अपने को समेटकर, भीतरी दुनिया यानि अपने मन के किले

में, वह लौट आता है । तब वह दिवा - स्वप्नों या ख्याली पुलाव द्वारा अपने मन की अतृप्त अभिलाषाओं की काल्पनिक पूर्ति कर सुख प्राप्त करता है । जो व्यक्ति अपने काल्पनिक जगत के चित्र को किसी माध्यम के द्वारा पुनः उसे मूर्त रूप में व्यक्त करता है, वह कलाकार है । कलाकार अपनी कृति में किसी भी मनचाही प्रेमिका से जी भरकर प्यार करता है । वह स्वच्छन्दं होकर अपनी कल्पना में स्वर्गीय सुख भोगता है । वह स्वनिर्मित कल्पना - लोक में राजा होता है, शासन करता है, शत्रुओं को पराजित करता है, उन्मुक्त प्रेम करता है ।

फ्रायड के तर्क की कसौटी पर कालिदास का श्रृंगार काव्य उनकी अतृप्त काम - वासना की मानसिक पूर्ति का प्रतीक समझा जायेगा । फ्रायडवादी आलोचक एक ही लाठी से सूर - मीरा और रवि - महादेवी को हां कर देते हैं । ऐसे लोगों के लिए एकोरसः सेक्समेंव निमित्त भेदात - - ।[1]

व्यक्ति का अहं अपने सुख की प्राप्ति हेतु बाहरी दुनिया का चक्कर लगाता है । जो वस्तु उसके सुख में सहायक सिद्ध होती है वह सुन्दर है, एवं जो बाधक, वह कुरूप है । सुखदायक, सुन्दर वस्तु को अपने अधीन करना, या उसके अधीन होना एक ही बात है । काम - सुख सभी सुखों से बढ़कर है । इसीलिए काम को उत्तेजित करने वाली सबसे सुन्दर समझी जाती है । 'षोडशी' रमणी है । इसीलिए वह सुन्दर है । प्राकृतिगत सुन्दरता प्रत्यक्ष सेक्स अपील है । कलामूलक सुन्दरता अतृप्त सेक्स की कल्पना -मूलक परितृप्ति है ।

सुन्दरता की अनुभूति सेक्स की या सेक्स जैसी अनुभूति है । सुन्दरता की व्याख्या के लिए 'सेक्स अपील' जैसे पद के प्रयोग पर लारेंस अफसोस प्रकट करता है । वह कहता है कि सुन्दरता जीवन - ज्वाला का एक स्फुलिंग है। उसकी दृष्टि में सेक्स और सौन्दर्य दोनों एक ही चीज है, ज्वाला और अग्निकी तरह ।[2] यदि आपको सेक्स से नफरत है तो सौन्दर्य से भी है । सेक्स मूल और सौन्दर्य फूल है।[3]

1. फ्रायड ने अपनी पुस्तक सियोनार्डो द विन्सी, साइकोसेम्सुअल स्टडी ऑफ एन इनकैण्टाइल रेमिनिर्सेस ' ये विंची के मानस की एक अजीब व्याख्या प्रस्तुत की है।
2. Sex and beauty are one thing like and
3. Sex is the root......beauty is the flower.

कोई युवती इसलिए सुन्दर है कि उसके मुख पर सेक्स की ज्योति जल रही है । वह मुझमें कामोत्तेजना भर रही है । इसीलिए सुन्दर है । बहुत सी नारियां मुंह की बनावट और रंग-रूप के कारण सुन्दर कही जाती है, लेकिन उन्हें सुन्दरी न कहकर रूपवती कहा जाए तो उपयुक्त होगा । सुन्दर ता वे हैं जो शीघ्र ही हममें कामाग्नि प्रज्ज्वलित कर देती है । पुरूष का क्यों न हो, काम-शिखा कभी नहीं बुझती है । ज्योति मलिन हो सकती है, लेकिन मौका मिलने पर तुरंत जगमगा जाती है । राह चलते ऐसी अनेक नारियां दिखाई पड़ती हैं, जो हममे उत्तेजना नहीं भर पातीं, वारेन्स की दृष्टि में ऐसी सभी नारियां व्यर्थ हैं । उनके मतानुसार सुन्दर एक अनुभूति है सजावट, चेहरे की बनावट या रूप-रंग में सुन्दरता नहीं रहती । सुन्दरता दिल को दूने वाली, महसूस की जाने वाली कोई चीज है । यह कोई चमक है, तेज है, बताफत है, जो हम तक पहुंचायी जाती है । सुन्दर रमणी एक अनुभूति है, और कुछ नहीं

'सौन्दर्य-संभोग-सुख का उद्दीपन मात्र है ।' फ्रायडवादियों के इस कथन से लारेन्स को काफी चिढ़ है । मोर अपनी मोरनी को कामोत्तेजित कर प्रसन्न करने के लिए सुन्दर पंख धारण करता है, मुर्गा अपनी माशूका को रिझाने के लिए मुकुट धारण करता है, नाइटिंगल अपनी प्रेमिका को लुभाने के लिए गाता है - आदि बातें लारेंस की दृष्टि में सरासर झूंठ हैं । भोसी - वह कहता है, शायद नीले, पीले रंग का फर्क भी नहीं जानती होगी । मुर्गी को अपने आशिक की खूबसूरती का शायद ही पता हो । संभोग-सुख या प्रजनन हेतु कोई सुन्दर वेश धारण क्यों करेगा ? यह काम तो अंधेरा में ही चलता है । और फिर मुर्गी ही अपने मांथे पर लाल चोटी गूथकर बनठन कर क्यों नहीं निकलती है ? सौन्दर्य को केवल प्रजनन-सुख का कारण या साधन मानना, लारेन्स के विचार से अन्याय है ।

लारेन्स के मत की समीक्षा

यह दुर्भाग्य की बात है कि लारेन्स जैसा उत्कृष्ट कलाकार प्रकृतिगत और कलागत सौन्दर्य में कोई भेद नहीं देख सका । कलागत सुन्दरता एक नवीन कल्पना है, एक अभिनव सृजन है, एक लोकोत्तर आनन्द है । इस तथ्य का उसे पता नहीं था । उसने सुन्दरता के प्रत्यक्ष रूप को देखा, कल्पना के सौन्दर्य को नहीं । किसी का मत है - सुन्दर तो केवल नेत्र का ही क्षेत्र नहीं है । श्रवण, नासिका, जिव्हया द्वारा अनुभूत सौन्दर्य को क्या सुन्दर नहीं कहेंगे ? माना कि, कामोत्तेजित करने वाली युवती मेरे लिए सुन्दर है, तो क्या, नारी केवल पुरूषों को सेक्स उभारने के लिए है वात्सल्य, दया, मातृत्व, स्नेह - इन सबों का जीवन में कोई स्थान नहीं ? क्या सुन्दरता केवल सेक्स भरी जवानी में ही है ? क्या मैं 'पै पै चढ़ती बार' ही सुन्दर है ? शिशु की दुधिया मुस्कान और बूढ़ी दादी की जालीदार झुर्रियां क्या सुन्दर नहीं हैं ? सिंह के बच्चे से खेलता हुआ भरत ही दुष्यन्त के लिए सुन्दर है ? रूपगर्विता पार्वती शंकर

को प्रसन्न नहीं कर सकी लेकिन तपस्विनी उमा के वे स्वयं क्रीतदास हो गये, 'तवस्मि दासः क्रीतः तपोभिः ।' सेक्स की अनुभूति सुन्दर है, इसे हर कोई स्वीकार करेगा, लेकिन सौन्दर्य केवल इसी में है और कहीं नहीं इसका समर्थन कोई भला आदमी नहीं, करेगा । कला की दृष्टि में कोष्वर एवं कब्रिस्तान दोनों सुन्दर हैं ।

लारेन्स का कथन सत्य है, लेकिन जीवन के अंश को लेकर, सम्पूर्ण को लेकर नहीं । यदि प्राकृतिक सौन्दर्य घुमाफिराकर सेक्स की ही अनुभूति है तो इसे सेक्स नहीं प्रेम कहो, हिम्मत हो तो परमात्मा कहो ।

दर्शन

पुराने दार्शनिकों में से किसी ने सौन्दर्य को आत्म का प्रकटीकरण कहा, किसी ने वस्तु के स्वरूप का स्थायी गुण कहा, किसी ने उसे देखने वाले के भीतरी मन का गुण बतलाया । किसी ने सौन्दर्य का श्रृंखला, अनुसारत्व, सामंजस्यादि में दर्शन किया, किसी ने उसे शिव या सत्य का पर्याय बताया, किसी ने ईश्वर या धर्म-रूप में देखा, किसी ने उसे सुखानुभूति या निरूद्देश्य आनन्द के नाम से पुकारा, किसी ने किसी नाम से । निम्नलिखित दार्शनिकों के मत संक्षिप्त में उल्लिखित हैं -

सौन्दर्य-विवेचन को एक स्वतंत्र शास्त्र का रूप प्रदान करने का श्रेय काण्ट को है । कुछ के लिए उनके विचार अत्यन्त प्रौढ़ और गम्भीर हैं और कुछ के लिए वाक् वितंग मात्र हैं । रसेल ने काण्ट को हतभागा तक कह दिया, 'ए मियर मिसकार्चुन ।' अच्छा हो या बुरा काण्ट कुछ है अवश्य । उर्दूजुबां की तरह वह आते-आते आता है । उसके दार्शनिक विचार तीन भागों में प्रकाशित हैं -

1. द क्रिटीक ऑफ योर रीजन,
2. द क्रिटीक ऑफ प्रैक्टिकल रीजन,
3. द क्रिटीक ऑफ द पॉवर ऑफ जजमेंट ।

पहले ग्रंथ में प्रकृति एवं आत्म के सार्वभौमिक नियमों का विवेचन है । दूसरे में व्यावहारिक जगत की रीति-नीति का विचार है । तीसरे में अनुभूति से उत्पन्न विषयीगत सौन्दर्य का विश्लेषण है । ये तीनों क्रमशः प्राकृतिक, नैतिक एवं सौन्दर्यमूलक पद्धति का आलोचन प्रस्तुत करते हैं । प्रकृति और नैतिक जगत के तथ्यों में भिन्नता है । पहला विचार और तर्क का दूसरा इन्द्रिय-बोध जगत का । शंकराचार्य के शब्दों में इन दोनों को हम क्रमशः पारमार्थिक सत्ता जहां सब ब्रम्ह है एवं व्यावहारिक सत्ता सुख दुःखमय प्रत्यक्ष द्वन्द्वात्मक जगत् कहेंगे । मनुष्य किसी उद्देश्य या इच्छा से प्रेरित होकर प्रकृति के साथ सम्पर्क स्थापित करता है । उसकी क्रिया में उसके ज्ञान और इच्छा पक्ष का मिलन हो जाता है । जगत् के साथ व्यावहारिक रूचि दिखाने से व्यक्ति में सुख-दुःख

की अनुभूति उत्पन्न होती है । विशुद्ध सैद्धान्तिक दृष्टि से सत्य, ईश्वर, धर्म, सदाचार आदि की कोई आवश्यकता नहीं, लेकिन व्यावहारिक जगत में इन सबों की आवश्यकता हम महसूस करते हैं ।

निर्णयात्मिका शक्ति (पॉवर ऑफ जजमेंट) व्यक्ति के समझने की प्रक्रिया या बोधवृत्ति और तर्क (रीजन) को मिलाने वाली बीच की कड़ी है । इसके द्वारा वह विभिन्न वस्तुओं में, उसकी खास-खास खूबियों को प्रत्यक्ष देख पाता है । हमारे मन में बहुत सी बातें बिखरी होती हैं, खंडशः पड़ी रहती है । इन अनुभव खण्डों को, जो पूर्ण के ही रूप हैं, यह शक्ति संश्लिष्ट रूप प्रदान करती है । यह इस जगत को सोद्देश्यता, लक्ष्यतामूलकता की दृष्टि प्रदान करती है । हम यह समझते हैं कि जगत के जितने व्यापार हैं, वे सभी निश्चय ही किसी महान् लक्ष्य, किसी परमोद्देश्य की पूर्ति के लिए घटित हो रहे हैं । इस सम्पूर्ण सृष्टि का कोइ लक्ष्य है । यह निर्णयात्मिका शक्ति इस लक्ष्य का उद्घाटन करती है । यह दो रूपों में प्रकट होती है - प्रथम रूप किसी उद्देश्य से बंधकर प्रकट होता है और दूसरा विशुद्ध आनंद में, बिना किसी खासे मतलब के रमता दिखाइ देता है । दूसरे का कोई स्पष्ट, उपयोगितामूलक लक्ष्य नहीं दिखाई देता है । काण्ट ने इसे ऐसा उद्देश्य कहा है जिसका यथार्थ उद्देश्य से कोई संबंध नहीं । सौन्दर्यमूलक विशुद्ध आनन्द में व्यक्ति की इच्छा और ज्ञान की कुछ विशेषताएं भी मौजूद रहती हैं । साधारण सुख की उपलब्धि में व्यक्ति का आत्मपरक उद्देश्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है । कल्याण एवं धर्म की भावनाओं में भी उसका ध्यान साधन और साध्य की ओर लगा रहता है । किन्तु हम प्रायः वस्तु को दो दृष्टियों से देखते हैं - ब्रम्ह रूप से हम उसकी व्यावहारिक उपयोगिता का ख्याल रखते हैं, और आन्तरिक रूप से हम उसके मूल की व्यापकता पर ध्यान यदेते हैं लेकिन ये सारी बातें व्यावहारिक जगत् की है । सौन्दर्य के आनंद में हम ऊपर सारी विशेषताएं नीति, धर्म, मूल्य, उपयोगिता, लक्ष्य आदि भूल जाते हैं । सौन्दर्य विशुद्ध आनन्द का क्षेत्र है । सौन्दर्य के विवेचन में काण्ट ने निम्नलिखित तथ्यों की

ओर हमारा ध्यानाकृष्ट कराया है -

क. सुन्दरता से कोई व्यवहारिक या उपयोगी काम नहीं सधता है

ख. सुन्दरता एक ऐसा लक्ष्य है, जिसमें कोई सांसारिक उद्देश्य नहीं रहता है ।

ग. सुन्दर में निखिलता का तत्व रहता है । हमें सुन्दर की आवश्यकता महसूस होती है ।

घ. सुन्दर की अनुभूति में कार्य-कारण का, पूर्वापर संबंध का कुछ पता नहीं चलता है ।

हिगेल ने आत्म को विश्व का मूल तत्व माना है । कला-जगत का सार सौन्दर्य है । वास्तविक सुन्दर तो चेतन सत्ता है, जो कला के माध्यम से मूर्त रूपों में प्रकट हो रही है । आत्म, सुन्दर, चेतन, सत्य - ये एक तत्व के विभिन्न नाम हैं । कलाकृति में सौन्दर्य का दर्शन उसी स्थल पर होता है, जहां किसी आत्म (आइडिया) की अभिव्यक्ति होती रहती है । माता के वात्सल्य, प्रेमिका के प्रणय एवं शत्रु के क्रोध में सर्वत्र वही आत्म अभिव्यक्ति पा रहा है । आत्म कला के रूप में बंधकर आदर्श तो हो जाता है । कलामूलक आत्म में तीन गुण प्रत्यक्ष दीखते हैं - सार्वभौमिकता, वैयक्तिकता एवं व्यापकता कला का सौन्दर्य-दिव्य, सत्य आत्म की अभिव्यक्ति है ।

सौन्दर्य और नैतिकता

टॉलस्टाय और रस्किन के सौन्दर्य के प्रति नैतिकतावादी दृष्टिकोण का प्रसंगवश उल्लेख जहां रस्किन कला का उद्देश्य नैतिक सत्यों को व्यक्त करना मानते हैं, वहां स्पिंगार्न का कहना है कि शुद्ध काव्य के भीतर सदाचार, दुराचार ढूंढना वैसा ही है जैसा रेखागणित के समत्रिकोण त्रिभुज को सदाचार पूर्ण कहना और समद्विबाहु त्रिभुज को दुराचारपूर्ण कहना । यहां यह प्रश्न विचारणीय है कि सौन्दर्य और नैतिकता में क्या संबंध है ? कला-क्षेत्र का यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है । साधारणतः चिन्तकों ने सौन्दर्य और नीति को परस्पर पूरक या अन्योन्याश्रित न मानकर विरोधी

मान लिया है । अनेक विद्वानों का तो कहना है कि कला-क्षेत्र से नीति का बहिष्कार कर देना चाहिए । यह भी माना जाता है कि कला सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है अतः सौन्दर्य के सन्दर्भ में भी नीति का उल्लेख व्यर्थ है ।

जिस प्रकार सौन्दर्य की सर्वमान्य व्याख्या नहीं दी जा सकती, उसी प्रकार नीति को परिभाषित करना अत्यन्त कठिन है । देश और काल के परिवर्तन के साथ ही सौन्दर्य और नैतिक मूल्य बदल जाते हैं । सौन्दर्य यदि सात्विकता की ओर चेतना को अग्रसर करने में सहायक हैं तो नैतिक नियमों का निर्माण भी इसी हेतु होता है । सत्य एवं शिव से समन्वित कला या काव्य का सौन्दर्य सात्विकता की ओर ले जाने वाला होता है । अतः नीति एवं सौन्दर्य में इस उद्देश्य की दृष्टि से कोई विरोध नहीं प्रतीत होता है । परन्तु नीतिवादी और कलाकार की कार्य-पद्धति में अंतर है । नीतिवादी हमारे कार्यो को प्रभावित करना चाहते हैं और कलाकार हमारे भावबोध को जगाता है ।[1]

नैतिक नियमों से व्यक्ति और समाज का उत्थान होता है और सौन्दर्य-चेतना भी मानव-मन की परिष्कृति की परिचायक होती है । केवल भौतिक सौन्दर्य इन्द्रिय जनित वासनाओं पर अवलम्बित सौन्दर्य चेतना से मनुष्य का पतन हो जायेगा नीतिि एवं कला के संघर्ष का यह रूप चिन्तक को उद्वेलित करता रहा है । इसीलिए सौन्दर्य के प्रसंग में सुरुचि का उल्लेख किया गया है । मनोविश्लेषणवादी यह स्वीकार करते हैं कि कला-सृजन के पीछे दमित वासनाएं होती हैं । उनका प्रभाव मानव-समाज के लिए हितकर नहीं माना जायेगा, चाहे वह कितने ही सौन्दर्यपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त हुई हो । यह नहीं भूल जाना चाहिए कि सत्य एवं मंगल से रहित ऐसी सौन्दर्य-सृष्टि मानव-जीवन के लिए महत्वहीन ही है । डॉ0 रामरतन भटनागर ने नीति और सौन्दर्य दो एकदम विभिन्न और स्वतंत्र स्तरों की चीजें नहीं हैं । भावना, व्यवहार एवं कल्पना का परिष्कार ही नैतिकता का आधार है । इस परिस्कार का आरम्भ इन्द्रियजन्य संवेदना के संस्कार से ही होना है कला द्वारा हमारे इन्द्रियजन्य संस्कार

1. The function of the moralist is to exhart, that of the artist is to exhibit. the aim of the one is to inffuence action, the aim of the other is to perception- Scott James

ही परिस्कार को प्राप्त होते हैं । अतः मूल रूप में कला हमारी जीवन-चेतना की संवर्द्धक है और सूक्ष्म तथा सौन्दर्यमयी जीवन-चेतना ही 'नीति' है । श्रेष्ठ कलाकार सौन्दर्य-चेतना 'नीति' को पुष्ट करती है । एवं 'नीति' सौन्दर्य-चेतना द्वारा कलात्मक अभिव्यंजना को प्राप्त करती है ।[1]

नैतिक मूल्य दो प्रकार के होते हैं - व्यक्तिगत और सामाजिक नैतिक मूल्य । जिस प्रकार सौन्दर्य व्यक्तिगत और वस्तुगत माना गया है, उसी प्रकार नैतिक मूल्य भी । सौन्दर्य का संबंध दोनों ही प्रकार के नैतिक मूल्यों से है । नैतिकता का नियंत्रण व्यक्ति की सौन्दर्य-चेतना को विकृत होने से रोकता है और सौन्दर्य व्यक्ति को प्रेरणा देकर आनंद की ओर ले जाता है । कलाकार के लिए भी नैतिक मूल्यों का महत्व है । उनकी अवहेलना से जिन कलाकृतियों की सृष्टि की जाती है, वे उच्चकोटि की नहीं मानी जाती है ।

नैतिक मूल्यों का निर्माण जीवन के उत्थान हेतु किया जाता है । और कला का लक्ष्य भी जीवन की व्याख्या है । यह व्याख्या विकासोन्मुख होने की प्रेरणा देती है, पतोन्मुख होने के लिए नहीं कहती है । नीति-मंगल विधायनी है और कला-सौन्दर्य भी शिव से समन्वित होता है । इसलिए सौन्दर्य या कला सौन्दर्य को नीति विरोधी मानना, हमारी दृष्टि में न्याय-संगत नहीं है । कला एवं नैतिकता का विरोध कला-कला के लिए सिद्धांत के रूप में फ्रांस में प्रारम्भ हुआ और फिर इंग्लैंड में भी विकसित हुआ । बहुत पहले 'प्लेटो' के 'रिपब्लिक' में कल्पना-प्रिय अलंकारों के अनियंत्रित प्रभाव को सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से अवांछनीय माना गया था । बूचर का विचार है कि अरस्तु ने सर्वप्रथम सौन्दर्य शास्त्र से नीति-शास्त्र को अलग किया और बतलाया कि परिस्कृत आनंदानुभूति ही काव्य-कला का परमोद्देश्य है । परन्तु अरस्तु प्लेटो की विचारधारा का तिरस्कार न कर सके ।

ब्रेडले ने नैतिक-पक्ष को कविता में गौण स्थान देते हुए उसे कविता की श्रेष्ठता का नियामक नहीं स्वीकार किया लेकिन आइ0 ए0 रिचर्ड्स ने इस धारणा का खण्डन अपने ग्रंथ 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' में सैद्धान्तिक आधार

1. समालोचक, सौन्दर्य-शास्त्र विशेषांक - पृ0 154

पर किया ।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार भी 'जहां रसानुभूति जीवन से परांगमुख न होकर जीवन को अंतर्योजित करने में समर्थ हो जाती है, अथवा उच्च्य नैतिक भूमियों का उद्घाटन करने लगती है, वहां वह अपनी सीमा का विस्तार ही करती है । उत्कृष्ट कला का स्थायीमान मानवीयता है, जिसमें लोकमंगल नीतिमयता का समाहार है ।'[1]

सौन्दर्य के अधिष्ठान

विषयगत या विषयीगत

एक को अपना एकपन अखरने लगा, तो लीला के लिए स्वयं को उसने दो भागों में बांट लिया । सत्य दो हैं या एक ? हम कहेंगे दोनो । क्योंकि दो में एक समाया रहता है और एक, अनेक सुरों में बजता है । विषय और विषयी दोनों ।

दोनों में एक ही पानी बह रहा है । कभी इसका पानी उसमें, कभी उसका पानी इसमें, कभी दोनों का दोनों में । अपनी इन्द्रियों के जरिये हम जो कुछ देखते हैं, वह वस्तु जगत है, और अपने मन के अंदर हम जो कुद सोंचते हैं अनुभव करते हैं और इच्छा करते हैं वह भाव जगत है यानि मेरा मन विषयी हे और वस्तु विषय । और बाहर ये दो जगत कहने के लिए हुए । प्रश्न है - सौन्दर्य विषयगत है या विषयीगत ? वह मुझमें, बाहर वस्तु में है या मेरे भीतर भाव में है । शुक्ल जी इस प्रकार की चर्चा को गड़बडझाले के सिवा कुछ नहीं समझते हैं । योरोपीय वालों के लिए यह एक बड़ी ऊंची उड़ान है या दूरी की कौड़ी समझी गई है । जैसे वीर कर्म से पृथक, शुक्ल जी का कथन है, वीरत्व कोई पदार्थ नहीं वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं । ... भीतर बाहर का भेद व्यर्थ है । जो भीतर है वही बाहर है ।[2]

कॉलरिज ने 'पाइग्राफिया सिटरारिया' ने विषय और विषयी को एक ही प्रक्रिया के दो रूप माने हैं । नाम के लिए भले ही दोनों दो है, लेकिन तत्वतः

1. हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 209।
2. कविता क्या है ? आचार्य शुक्ल - पृ0

ये एक है । जानना एक सक्रियता है, एक सृजन व्यापार है । मन जब जानने की क्रिया में होता है, तो विषय-विषयी का भेद मिट जाता है । मन विषय को जानता है और विषय फिर मन का अंग बनकर उसमें समा जाता है । तो मन, अपने आपको ही, मन को जानता है । जानना कॉलरिज का मत है अपने आप में एक गतिशील क्रिया है ।[1]

विषय या विषयी, चेतन या जड़ यह कोई सत्य नहीं। सत्य है, विषयी का, विषय में अन्तर्व्यापन, जड़ और चेतन का परस्पर समागम । एक अनवरत सक्रिय व्यापार ही सत्य है । कॉलरिज के उक्त मत का वैज्ञानिक प्रतिपादन ह्वाइटहेड के ग्रंथों में देखा जा सकता है ।[2] ह्वाइटहेड की मान्यता है कि प्रकृति हमारे मन के भीतर और बाहर दोनों ओर प्रवाहित होती है । मन से बाहर बहते बहते समय प्रकृति विषयी या दृष्टा द्वारा परिवर्तित एवं परिष्कृत भी होती चलती है । जैसे प्रकृति का वह विभाजन भासमान एवं पदार्थ भ्रान्त धारणा पर आधारित है, उसी प्रकार विषयगत एवं विषयीगत विभाजन भी भ्रान्तिमूलक है । ज्ञान एवं कर्म या दोनों दो नहीं, बल्कि पहला दूसरे का दूसरा पहलू का मात्र है ।[3]

सैद्धांतिक दृष्टि से विषय और विषयी का, ज्ञेय और ज्ञाता का अभेद सिद्ध किया जा सकता है । लेकिन व्यवहार दृष्टि में दोनों के भेद का अनुभव होता है समदर्शी पण्डित ब्राम्हण एवं चाण्डाल में, गो एवं श्वान में भले ही भेद न माने, परन्तु यथार्थ जगत में बिना भेद माने काम नहीं चलता । उच्च नीच, छोटा-बड़ा पापी-धमात्मा, स्त्री-पुरूष आदि का भेद मानना ही पड़ता है ।

शंकराचार्य कहेंगे कि द्वैत का यह आभास अविधा के कारण है, माया जनित है । ऐसा कहकर भी उन्होंने पारमार्थिक सत्ता के अतिरिक्त व्यावहारिक सत्ता भी स्वीकार की है ।

दर्शक के मन में पड़ी हुई छापों के बीच जहां समानता पायी जाये, वहां उसे हम विषयगत कहेंगे और जहां रूचि या वैयक्तिकता के कारण भिन्नता पायी जाये,

1. To know is in its very essence a verb active.
2. Process and Reality, Nature and life.
3. Knowledge is merely the other side of action.

वहां उसे विषयीगत कहेंगे । अर्थात् वस्तु का बाहरी समानता को वस्तुपरक गुण एवं आन्तरिक विभिन्नता को आत्मपरक कहेंगे ।

मार्क्सवादी विचारक कॉडवेल के मतानुसार सौन्दर्य सार्वभौमिक तत्व नहीं, बल्कि एक विशिष्ट सामाजिक उत्पादन है । जिस प्रकार मौसम में पैदा होने वाली गर्मी बाहरी प्रभावों द्वारा वस्तुपरक द्वारा निर्धारित होती है । गर्मी का अनुभव होना एक घटना है, यह वस्तुपरक है इसमें नवीनता है, यह हमारे खास उपयोग के लिए है । सौन्दर्य भी गर्मी की तरह, सामाजिक तत्वों द्वारा निर्धारित विषय और विषयीगत तत्वों से संघटित, उनसे उत्पन्न एक नवीन विशिष्ट यथार्थ शक्ति है ।

हम प्रायः इस तरह बोलते हैं कि वह चीज के सुन्दर हैं, मैं सुखी हूं... दुःखी हूं.. । इसका मतलब यह हुआ कि सुन्दरता किसी चीज के अन्दर है और सुख-दुःख मेरे अंदर है । विचार करके देखा जाय तो सुख-दुःख की अनुभूति का सकरण उस व्यक्ति के अहं और उसके चतुर्दिक की अनुभूति का पारस्परिक संघर्षण है । बाहर का वातावरण व्यक्ति के अहं के साथ अन्तर्भेदन करता है । मान लीजिए एक सप्ताह के बीच किसी व्यक्ति को कई बार सुख-दुःख का झोंका सहना पड़ता है । वह व्यक्ति देखता है कि एक सप्ताह के बीच प्रकृति में काफी परिवर्तन हुआ, कभी दिन, कभी रात, कभी आंधी, कभी पानी, कभी धूप इत्यादि... लेकिन उसके मन का दर्द ज्यों का त्यों बना रहा । तब वह व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि सुख-दुःख व्यक्ति के अंदर की चीज है और जाड़ा गर्मी बाहर की, वस्तु के अंदर की चीज है । गर्मी को किसी वस्तु से निकलते हुए भी हम दखते है । गरम चीज से दूर हटते जाइये तो गरमी घटती जायेगी । उस चीज से बिल्कुल अलग हो जाइये, तो गर्मी का पता नही चलेगा । गरमी बाहर की वस्तु है, उसी प्रकार सुन्दर चीज के निकट रहने से सुन्दरता का । सुन्दर वस्तु आंखो से ओझल हो जाती है तो सुन्दरता भी गायब हो जाती है । तो यह सिद्ध हुआ कि गर्मी वस्तु में एवं सुन्दरता समाज में रहती है । सामाजिक वातावरण में अदल-बदल होने से सुन्दरता के मानदण्ड में परिवर्तन होता रहता है । कॉडवेल का निष्कर्ष यह है कि सौन्दर्य एक सामाजिक उत्पादन है । सौन्दर्य भावना सामाजिक

सामाजिक परिवेश से व्यक्ति को उपलब्ध होती है । समाज सौन्दर्य का निर्माता है, नियंता है । सौन्दर्य सामाजिक तत्व हे, क्योंकि यह मुझसे अलग समाज में रहता है ।[1]

उपर्युक्त कथन को और अच्छी तरह समझने के लिए उसे अग्र लिखित 4 अंशों में रखा जा सकता है -

क. गर्मी बाहर पदार्थ से और सुन्दरता सामाजिक प्रक्रिया से द्रवीभूत होने वाली चीज है, इसलिए यह विषयगत है ।

ख. गर्म पदार्थ या सुन्दर वस्तु से दूर हटने पर गर्मी या सुन्दरता का बोध घटता जाता है, निकट आने पर वह बढ़ता जाता है । इसलिए सुन्दरता गर्मी की तरह विषयगत है ।

ग. सुख मुझमें है, लेकिन सुन्दरता मुझसे अलग समाज में है । इसलिए सुखानुभूति विषयीगत एवं सुन्दरता विषयगत है ।

ग. सुन्दरता सामाजिक उत्पादन है । इसका मूल्य, अन्य सामाजिक मूल्यों की तरह परिवर्तनशील है । अतः सौन्दर्य विषयगत है ।

कॉडवेल के इस विचार से मैं कुछ अंशों में असहमत हूं । उन्होंने सुन्दरता की उपमा गर्मी देकर फिर उसके गुण एवं लक्षण को गर्मी पर घटा दिया है । दो वस्तुओं में थोड़ा सा सादृश्य दिखाकर तुरन्त मनचाहा निष्कर्ष खींच लेना ठीक नहीं । ऐसे तो कोई सुन्दरता की उमपा इन्द्रधनुष से देकर उसे अवास्तविक कह दे और दूसरा चुम्बक से देकर उसे खींचने वाला बतावे । सुन्दरता कोई बिजली का चूल्हा नहीं है जो नजदीक से सेंकने पर गुर्म, दूर से ठण्डा मालूम हो । सुन्दर वस्तु तो आंखों से दूर हटने पर मन में और गहरी धसती जाती है । किसी वस्तु के ध्यान की गहरी तन्मयता उसके प्रतिरूप को सामने खड़ा कर देती है । सुन्दरता प्रत्यक्षीकरण और कल्पना दोनों में निवास करती है । कल्पना के रूप गढ़ने की बिम्ब-विधान की अद्भुत शक्ति है ।

'सुतलि छलहुं हम धरबा रे' में नायिका ने स्वप्न में अपने पहुं का प्यार पाया है । सुनी हुई रागिनी कीट्स कहता है, मधुर होती है, लेकिन नहीं सुनी मधुरतर । यह नहीं सुनी कल्पना से सुनी जाती है । फिर कॉडवेल का यह कहना कि सुन्दरता मुझसे दूर समाज में है - इसी प्रकार है, जैसे नाखून अंगुली से दूर शरीर में है । समाज

1. It is objective because it lives a part from me in society.
   - Further studies in a dying sculture.

की व्यक्ति से भिन्न कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है । व्यक्ति समाज का आवयविक अंग है । आहार, निद्रा, भय, मैथुन की तरह सौन्दर्यानुभूति जन्मजात प्रवृत्ति है । यह प्रवृत्ति व्यक्ति में भले ही सोती रहे, मरती कभी नहीं । सौन्दर्यानुभूति वस्तु एवं भाव का विषय और विषयी का अन्तर्मिलन है । कॉडवेल ने सौन्दर्य को व्यक्ति एवं वातावरण के संघर्ष से उत्पन्न तत्व कहा है । पता नहीं फिर उसे व्यक्ति से अलग क्यों बताया ? बात है कि पार्टी स्पिरिट में आ जाने पर व्यक्ति पार्टी को पकड़ता है, स्पिरिट को छोड़ता है

सौन्दर्य व्यक्ति और समाज दोनों का उत्पादन है । समाज उपकरण प्रदान करता है, व्यक्ति अपनी कल्पना से उसमें रूप-रंग भरकर नवीन सृष्टि करता है ।

कॉडवेल के विपरीत क्रोचे का मत है कि 'सुन्दर कोई पदार्थगत तत्व नहीं, यह वस्तुओं में नहीं रहता, बल्कि व्यक्ति के क्रिया-व्यापार में, आत्म-शक्ति में वर्तमान रहता है ।' जीव-वैज्ञानिकों की दृष्टि में सौन्दर्य का कोई महत्व नहीं । वे किसी पक्षी या पुष्प का सारा हुलिया बता सकते हैं, लेकिन यह नहीं बता सकते कि सुन्दर क्या है ? बिना कल्पना की क्रियाशीलता के प्रकृति का कोई भाग सुन्दर नहीं दीख सकता।[1] क्रोचे सौन्दर्य को व्यक्ति के मन में उत्पन्न मानता है, क्योंकि वस्तु स्वयं में सुन्दर नहीं, वह व्यक्ति की कल्पना या भावना के कारण सुन्दर होती है । क्रोचे सौन्दर्य को शत-प्रतिशत विषयीगत मानते हैं, विषयगत बिल्कुल नहीं ।

सांतायना का कथन है - वह सौन्दर्य है, और जो मुझमें है, वह मेरा प्रक्षिप्त मूर्त आनंद है । विषय सौन्दर्य का बाह्य-रूप है और विषयी का मन उसका अन्तः स्वरूप । विषय और विषयी के संयोग से सौन्दर्य का जन्म होता है ।

सापेक्ष्यवाद के आधार पर विषय और विषयी का विचार करने से इन दोनो से पृथक सत्ता नहीं रह पाती क्योंकि विषय की कल्पना बिना विषयी के हो ही नहीं सकती और विषयी सदैव विषय के साथ ही रहेगा । दोनों की सत्ता एक दूसरे की अपेक्षा करती है । आइंस्टिन ने देश और काल को 'देशकाल' या 'दिक्काल' कहा है । क्योंकि इनकी सत्ता का पृथक निरपेक्ष ज्ञान असंभव है । इस प्रकार हम विषय एवं विषयी के द्वित्व को हटाकर उन्हें 'विषयी-विषय' ही कहेंगे ।

1. Without the did of the imagination on part of the nature is beautiful-

यदि सुन्दरता को वस्तु के अंदर का कोइ गुण विशेष मान लिया जाय तो उस गुण का असर हर दृष्टा पर होना चाहिए । बात यह है कि वस्तु की सुन्दरता विषयी की सहृदयता, कल्पनाशक्ति, भावसाहचार्य मनःस्थिति एवं प्रतिभा पर भी बहुत अंशों में निर्भर करती है । एक से एक रूपवान राजा स्वयंबर में पधारे थे, फिर इन्दुमती ने यज को ही जयमाला क्यों पहनायी ? इन्दुमती की मन-कल्पित भावना राजा अज पर प्रक्षिप्त हुई ।

जिस सौन्दर्य ने दृष्टा के मानस पर आनंदानुभूति उत्पन्न नहीं की, वह उसके लिए सुन्दर नहीं है । सौन्दर्यानुभूति के लिए आलंबन और आश्रय, वस्तु एवं भाव दोनों की सत्ता अपेक्षित है । विषय और विषयी के अन्तर्मिलन से सौन्दर्य का भाव उद्‌भूत होता है । निष्कर्ष यह निकला कि सौन्दर्य न केवल विषयगत है और न केवल विषयीगत वह विषय-विषयीगत है । विषयी अपने अहं को अपनी सांसारिक उलझनों को भूलकर दृश्य (सुन्दर-वस्तु) के साथ जितना ही तदाकार होता है, उतना ही वह सुन्दरता का अनुभव करता है । शुक्ल जी का मत है कि जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार परिणति जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर होगी, प्रो0 दुकासे ने कहा है कि सौन्दर्य वस्तु का गुण है और इसकी सार्थकता विषयी के हृदय में आनंद उत्पन्न करने में है । दुकासे ने यह भी कहा है कि जैसे कोई आर्सेनिक खाए या नहीं, उसकी गरलता उससे दूर नहीं होती । उसी प्रकार सुन्दर वस्तु कोई देखे या नहीं, उसकी सुन्दरता उसमें बनी रहती है । लेकिन यह उनका यह तर्क भी सर्वांगतः सत्य नहीं है, क्योंकि कोई भी वस्तु अपने आप में न सुन्दर है न कुरूप, वह केवल वस्तु है । सुन्दर या कुरूप तो वह विषयी के सम्पर्क में अपने होती है । सुन्दरता की व्याख्या विषय और विषयी के समवेत सम्पर्क न विषयीगतय, वह विषय-विषयीगत है

सौन्दर्य एवं कल्पना

कल्पना ही वह तत्व है, जिससे कलाकार को नूतन सृजन और अभिनव रूप-व्यापार विधान की शक्ति प्राप्त होती है । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कल्पना कलाकार की सृजन शक्ति है ।

व्युत्पत्ति -

(क्लृप अन आ) की दृष्टि से भी कल्पना का शाब्दिक अर्थ 'सृष्टि करना' ही है । 'इमेज' से बना 'इमेजिनेशन' शब्द अंग्रेजी में इसी कल्पना का पर्याय है ।

लित्रे -

'ए फैकल्टी दै वी हेव ऑव रिकॉलिंग विविड्ली, एड ऑव सीइंग, सो इ स्पीक, आब्जेक्ट्स दैट आर नो लौंगर विफोर साइज ।'

बेस्टर ने भी कल्पना को द्विविध अर्थापन किया है । इनके अनुसार कल्पना का एक अर्थ यह है कि कल्पना एक चित्रविधायिनी शक्ति है । इसके द्वारा व्यक्ति पूर्व-प्रत्यक्ष वस्तुओं अथवा पूर्वानुभूत प्रत्ययों या भाव स्थितियों का पुनर्भावन करता है दूसरे अर्थ में कल्पना एक पुनरूत्पादन या पुनः प्रत्यक्षाधायक शक्ति है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने अनुभव अथवा अनुमान से प्राप्त सामग्रियों का नवीन संयोजन, क्रम या रूप-विधान प्रस्तुत करता है ।

कल्पना के मुख्यतः छः अर्थ या प्रयोजन प्रचलित है -

1. जीवन्त चित्र-विधान, विशेषकर दृश्य अथवा गोचर प्रतयक्षीकरण से संबंधित
2. अलंकृत भाषा का प्रयोग, जिसमें प्रकृष्ट प्रेक्षणों से काम लिया गया है ।
3. दूसरे को मनःस्थिति का सहानुभूतिपूर्ण कथन । इस प्रकार की कल्पना भाव-सम्प्रेषण की आवश्यकता से उद्भूत होती है ।
4. सादृश्य-विधान या अप्रस्तुत योजना, अर्थात् ऐसी वस्तुओं में पारस्पर्यास्थापन या संबंध-निबंधन करना, जो सामान्यतः नहीं मिलता हो ।
5. उदाहरणों का संचयन । इस प्रकार की कल्पना विज्ञान के लिए उपयोगी है । इसे हम किसी दृश्य या वस्तु के प्रति अपनी क्रमबद्ध अनुभूतियों को एक क्रम से और निश्चित उद्देश्य के लिए अनुशासन में बांधना कह सकते हैं । इसमें अनुभूतियों का यथातत्य रहता है । कला की शिल्पीय उपलब्धियां भी इसी प्रकार की कल्पना के फल हैं ।
6. कल्पना वह केन्द्रशील एवं जाइभरी शक्ति है जो विरोधी अतिवादों या कोटिवादों के बीच सन्तुलन उपस्थित करती है और परिचित अथवा प्राचीन वस्तुओं में भी असाधारण भाव-बोध के कारण नवीनता का आधान करती है ।

प्राचीन काव्यशास्त्र और संस्कृत साहित्य में 'कल्पना' शब्द के अनेक प्रयोग मिलते हैं, किन्तु सर्वथा भिन्न अर्थ में । यहां कल्पना का अधिकतर प्रयोग मिथ्याज्ञान या मिथ्या-रचना के लिए हुआ है । संस्कृत साहित्य में कहीं-कहीं 'कल्पना' का व्यवहार गिद्ध और हाथी के सजाने के अर्थ में भी हुआ है । शुक्ल जी के अनुसार काव्य का सारा रूप-विधान कल्पना पर निर्भर रहता है । इस कल्पना का अविर्भाव प्रकृति तथा मन के पारस्परिक संबंधों से होता है ।

कल्पना के प्रसंग में संवेदन (सेंसेशन) पर भी विचार करना आवश्यक है, क्योंकि कल्पना में संवेदन का प्रचुर महत्व है । संवेदन के सहारे ही कल्पना जीवन्त होती है । इसलिए कल्पना चाक्षुष, श्रावण अथवा स्पर्शिक संवेदनों का प्रायः साथ नहीं छोड़ती है । वास्तविकता यह है कि हमारी ऐन्द्रिय, अनुभूतियों की अनुकूल एवं प्रतिकूल वेदना ही जो हमारे संवेदनों के मूल रूप हैं, कल्पना को गति प्रदान करती है ।

सौन्दर्य एवं कुरूपता

सौन्दर्य विवेचन में कुरूप की चर्चा अत्यावश्यक है, क्योंकि कला के 'कुरूप' में भी सौन्दर्य रहता है । पाश्चात्य सौन्दर्य-चिन्तन में अरस्तु के काल से कुरूप के संबंध में विमर्श होता रहा है और दिनानुदिन उसे अधिक व्यापकता प्रदान की जाती रही है । अरस्तु ने तो कुरूप में हास्यास्पद की भी गिनती की है, जिसके उदाहरण स्वरूप उन्होंने 'कैरिकेचर' (विडम्बन) को प्रस्तुत किया है । कुरूप के संबंध में उनकी मुख्य धारणा यह है कि अनुकरण के माध्यम से कला में प्रवेश पाने के कारण वह कुरूप, सुन्दर अतः सुखद हो जाता है । रोजेन्क्रा ने और भी स्पष्टता के साथ यह मन्तव्य व्यक्त किया है कि कुरूपता सौन्दर्य का भावात्मक-निषेध है ।

हीगेल के अनुसार - कुरूप में कुछ न कुछ विकृति अवश्य रहती है, जैसे कुरूप चर्चा में 'कैरिकेचर' का उदाहरण देते हुए इन्होंने चरित्र-चित्रण को निर्दिष्ट किया है ।

सौन्दर्य के साथ कुरूपता का निरन्तर वैपरीत्य है । सौन्दर्य का विपरीतार्थक अथवा प्रतीप असौन्दर्य नहीं, बल्कि कुरूपता है । कुरूपता भी हमारी सौन्दर्य-चेतना से संबंधित है । व्यपदेश-निर्धारण की दृष्टि में हम यह कह सकते हैं कि कुरूपता उस वस्तु में है, जो चाक्षुष, श्रावण या अन्य ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष के उपरान्त आश्रय की बोध-वृत्ति या इन्द्रियों को अरुचिकर प्रतीत होती है । संसर्ग, सम्पर्क अथवा पूज्यभाव के आरोपण से कुरूप भी आकर्षक बन जाता है या उसकी अरुचिकरता घट जाती है । पुनः विशिष्ट आन्तरिक गुण के कारण काली कोयल और पाण्डित्य के कारण-अष्टावक्र स्मरणीय हैं

जो हो कुरूप को कला में अवश्य स्थान मिलना चाहिए, क्योंकि पूर्णता अपूर्णता से श्रेयस्कर है, और यदि कल-कुरूपता के प्रति अडिग वर्जना का भाव रखेगी तो उसकी पूर्णता अवश्यमेव विघटित होगी । दूसरी बात यह है कि सुन्दर और कुरूप एक-दूसरे के मूल्यों एवं सीमाओं का निर्धारण करते हैं ।

वाल्मीकि ने राम के सौन्दर्य को अधिक प्रभविष्णु एवं सूर्पणखा की कुरूपता को अधिक विकर्षण बनाने के लिए सौन्दर्य एवं कुरूपता का समानान्तर वर्णन किया है

> सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी,
> विशालाक्षं - विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रन्भूर्धजा ।।
> प्रीतिरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वरा ।
> तरूणं दारूणं वृद्धा दक्षिणं वाम-भाषिणी ।।

वाल्मीकि रामायण

सारांश यह है कि कुरूपता के प्रति शिथिलता हमारी सौन्दर्य-चेतना के लिए अशोभन है और कुरूपता के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया हमारी सौन्दर्य-चेतना के लिए शुभंकर

साहित्य में सौन्दर्य का महत्व

काव्य में सौन्दर्य -

सृष्टि में सर्वत्र सौंदर्य की सत्ता है । इसका कर्ता है - ईश्वर । काव्य का सौन्दर्य मानवीय सृष्टि है काव्य में सौन्दर्य की सत्ता एकान्त भिन्न कोई वस्तु नहीं है । प्रकृति और मानव के बाह्यान्तर सौन्दर्य से प्रेरित काव्य-सृजन होता है । कॉडवेल का विचार है कि कविता तो मनुष्य के मन का एक प्राथमिक सौन्दर्य व्यापार है ।[1]

यह प्रश्न विचारणीय है कि काव्य में सौन्दर्य से क्या अभिप्राय है ? आचार्य शुक्ल ने इस विषय पर विचार करते हुए लिखा है कि - काव्य में सुन्दर और कुरूप ये दो ही पक्ष हैं । अन्य शब्द जैसे - पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ, मंगल-अमंगल और उपयोगी अनुपयोगी इत्यादि काव्य-क्षेत्र के बाहर के हैं ।[2] उनके अनुसार 'कवि की दृष्टि तो - 'सौन्दर्य की ओर जाती है, चाहे वह जहां हो - वस्तुओं के रूप रंग में अथवा मनुष्यों के मन, वचन, कर्म में ।[3] और 'कविता केवल वस्तुओं के रूप-रंग के सौन्दर्य की छटा नहीं दिखाती प्रत्युत् कर्म औरि मनोवृत्ति के सौन्दर्य के भी अत्यन्त मार्मिक दृश्य सामने रखती है ।[4] कवि सौन्दर्य की सृष्टि एवं खोज करता है । एडगर एलन पो ने कविता को सौन्दर्य की तथात्मक सृष्टि कहा है ।[5]

भारतीय विचारकों में श्री अरविंद ने अपने ग्रंथ 'दि फ्यूचर पोयट्री' में कला, सौन्दर्य और आनंद के विषय में उदात्तापूर्वक विचार किया है । उनकी दृष्टि में कला सौन्दर्य की खोज और अभिव्यक्ति है । कला का उद्देश्य सौन्दर्य को साकार करना एवं आनंद प्रदान करना है । कलाकार के लिए सौन्दर्य और आनंद का चन्द्रमा सत्य के सूर्य से भी महान् है ।[6] सौन्दर्य और आनंद की अराधना का दिन हमारी मुक्ति का दिवस होगा ।[7] क्योंकि इसके बिना काव्य और कला में माधुर्य और सौन्दर्य नहीं आ सकता है । उनके विचार से कवि सुन्दर भाषा का ही निर्माता नहीं, कल्पना पुत्र ही नहीं वह सर्वाधिक सौन्दर्य एवं आनंद का सृष्टा और वक्ता भी है ।[8]

काव्य में सौंदर्य का अध्ययन दो भागों में विभक्त करके किया जा सकता है - आनुभूतिक एवं अभिव्यक्तिगत सौंदर्य । प्रकृति एवं जीवन के दर्शन से कवि के हृदय में सौंदर्य की अनुभूति को

1. Poetry is of the earlist aesthetic activitees of the human mind. When it can not be found existing as a separate product in the early literary art of peole. It is because it is then caincidont with literature as a whole the common vchide for history, religion, magic and even law" Illusion and Reality P. 11
2. चिंतामणि, भाग I, पृ0 167
3. वही, पृ0 67
4. चिंतामणि, पृ0 166
5. "The creation of beauty." - quoted from 'An introduction to the study of literature'- W.H.Hudson.

वियोग की तल्लीनता मानव तक ही व्याप्त न समझना चाहिए । विश्व का कण-कण उस परम तत्व के विरह में घूमता रहता है । प्राणियों का लौकिक वियोग इस परम-वियोग का आभास मात्र है ।[1]

ऐकान्तिक साधारण प्रेम उदात्त बनकर भक्ति का रूप धारण करता है । इसीलिए बताया गया है कि भगवान से प्रेम करने का सबसे सरल उपाय यह है कि विश्व के प्रत्येक पदार्थ से प्रेम किया जाय । जो लोक में परमात्मा की व्यक्त प्रकृति का सरल आभास नहीं पा सकता, वह कैसे कह सकता है कि उसे ईश दर्शन की अभिलाषा है लोक की भलाई के लिए सब कुछ सहने को तैयार व्यक्ति ही भक्त कहे जाने की इच्छा का अधिकारी है । गोस्वामी जी ने इसी भक्त-जीवन की इच्छा की थी ।[2]

विरह में जब प्रेम चरम-सीमा को पहुंच जाता है तब प्रेमी दुःख की अनुभूति से परे हो जाता है एवं उसकी सारी वेदना प्रिय को भुगतनी पड़ती है । भगवान को यार्त्त-भक्त प्रिय होने का कारण यही है । यह अवस्था योगियों के परकाय-प्रवेश जैसी है । प्रेम का क्षीर सागर अपार और अगाध है । विरहाग्नि से तृप्त प्रेम द्वारा प्राप्त दृष्टि सर्वथा आनन्दमयी और निर्मल हो जाती है । विरह नाव पर आरूढ़ प्रेमी जब इस शुभ एवं निर्मल क्षीर-सागर को पार करने लगता है, तब उसे चारों ओर सौन्दर्य का विकास एवं प्रसार दिखाई देने लगता है । शुभ्रता के प्रभाव से विरही 'जीव-संज्ञा' को त्याग गर शुद्ध आत्म-स्वरूप हो जाता है ।

अत्याधिक विरह का जन्म दूरारूढ़ प्रेम में प्रिय-दर्शन के अतिरिक्त और कोई कामना शेष ही नहीं रह जाती है । लौकिक सुखों की तो चर्चा ही क्या, स्वर्ग की इच्छा एवं नरक का भयादि भी विलीन हो जाते हैं ।

निष्कामता का यह भाव पारलौकिक पक्ष में अपनी चरमावस्था का सहज ही प्राप्त हो जाता है । परमात्म-तत्व के दर्शन के सम्मुख तीनों लोकों का सुख, राज्य, मोक्ष, पद सब कुछ अग्राह्य हो जाते हैं ।

1. पद्मावती वियोग खण्ड (18), पद्मावत- जायसी। पद सं0-78, विनय-पत्रिका- तुलसीदास।
2. पद संख्या- 162, विनय-पत्रिका- गोस्वामी तुलसीदास

प्रेम की अत्याधिकता के कारण हृदय में फिर किसी अन्य भाव के लिए स्थान रह ही नहीं जाता । जिस हृदय में विरह की बेलि फैल रही हो वहां दूसरी चर्चा क्यों कर समा सकती है ? विरहिणी ब्रज-लताओं ने इसी कारण उद्धव के ज्ञानोपदेश से मुंह फेर लेता था ।

पारलौकिक पक्ष के विरह को इस लोक में व्यक्त करने में विरहिणी गोपिकाएं विशेष समर्थ सिद्ध हुए हैं । उनके विरह-वर्णन का हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व है । श्रीमद भागवत में वर्णित 'रामलीला' एवं 'उद्धव-गोपी संवाद' को लेकर हिन्दी में 'रास-पंचाध्यायी' और भ्रमरगीत संबंधी अनेक रचनाएं लिखी गई हैं । इस विषय को लेकर प्राचीन, अर्वाचीन समस्त महाकवियों ने अपनी रसना पवित्र की । सूरदास, नन्ददास सोमनाथ, रत्नाकर, कविरत्न सत्यनारायण, हरिऔध आदि कवियों ने इस प्रेम-पयस्विनी की दिव्य-धारा में जी खोलकर अवगाहन किया और मनमोहन की मुरली की मधुर देन सुनी । उस बांसुरी की टेर क्षण-क्षण नवीन एक मधुरतर ही प्रतीत होती रहती है। उसे सुनते-सुनते किसी का जी नहीं अघाता । बस 'तनिक और' यही इच्छा लगी रहती है ।

लौकिक दृष्टि से रास-पंचाध्यायी संभोग श्रृंगार की एक सजीव रचना है, जिसमें कृष्ण और गोपियों की रास-क्रीड़ा का वर्णन किया गया है । ज्योत्स्ना विमंडित रात्रि में सुधावर्षिणी मुरली की टेर सुनकर गोपियां अपने-अपने घरों से निकल पड़ती हैं । कृष्ण-दर्शन के लिए व्याकुल हो जाती हैं । अनन्यता और तल्लीनता के कारण उन्हें लोक-मर्यादा का ध्यान नहीं रहता और वे जाकर कृष्ण को चारो ओर से घेर लेती हैं । री कृष्ण उन्हें पतिव्रत धर्म आदि की शिक्षा देते हैं । उन्हें अपने घर लौट जाने को कहते हैं । इस व्यवहार से गोपिकाओं के हृदय को ठेंस लगती है और वे मुरझा जाती हैं । सानिध्य होते हुए भी प्रेम के अभाव के कारण विरह से सताई जाने लगती है । गोपिकाएं कुल ललनाएं हैं । लौकिक दृष्टि से उनका यह आचरण नितान्त गर्हित प्रतीत होता है । उनका कृष्ण क साथ विहार करना निर्लज्जता की पराकाष्ठा है । लोक में उक्त

शंका उत्पन्न होगी, ग्रन्थकार को इसका पूर्वज्ञान था । किशोर कृष्ण को रास-क्रीड़ा में मग्न देखकर ब्रह्मादि देवताओं को पराजित करने वाला कामदेव उस समय वहां आता है, कृष्ण उल्टे उसी के मन का मंथन कर डालते हैं ।

काम का पराभाव इस लौकिक श्रंगार को साधारण कोटि के ऊपर उठा देता है । भक्तजनों ने कृष्ण और गोपियों के प्रेम के पारलौकिक पक्ष ही ग्रहण किया है । वैष्णव कवियों ने कृष्ण को परम ब्रम्ह परमात्मा के रूप में ही अंकित किया है । गोपिकाओं का विरह साधारण लौकिक विरह नहीं, वह परमात्मा से आत्मा का वियोग है । कृष्ण एवं गोपिकाओं का मिलन साधारण संयोग नहीं । वह परमात्मा के साथ अनेक आत्माओं का एकीकरण है । पुरूष-रूप में परमात्मा और स्त्री रूप में आत्मा की कल्पना भारतीय दार्शनिकों के दीर्घकालीन चिन्तन का फल है ।

प्रेम परलोक की वस्तु नहीं, वह उसी लोक की वस्तु है, वह हमारे हृदय में जन्म से ही विद्यमान है । पारलौकिक प्रेम का मार्ग भी इसी लोक में होकर जाता है । अपने प्रिय में परमात्मा की झलक पाकर ही हम परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का दर्शन कर सकते हैं । संसार के सुख और शान्ति से जीवन व्यतीत करने का एक मात्र आधार प्रेम है । हम या तो किसी को अपना बना लें अथवा किसी के हो जावें । प्रत्येक दशा में अनन्यता अपेक्षित है । प्रेम का वास्तविक आनन्द स्वरूप हमारे सम्मुख तभी प्रकट हो सकेगा । जब हम अपने प्रेम को विश्व-व्यापी बना लें

सायं, प्रभात नित्य अनेक मेघ-खण्ड रक्तवर्ण होते दिखाई देते हैं, परन्तु वे किस अनुराग से लाल हैं, इस पर विरले ही ध्यान देते हैं । परन्तु वे प्रेम के परमधाम को प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं । प्रकृति और पुरूष के इस चिर विचोग का अनुभव ही मानव-जीवन और उसकी अनेक रचनाओं का सर्वोपरि फल है ।

पृथ्वी और स्वर्ग, जीव एवं ईश्वर दोनों एक थे । न जाने किसने उनके बीच भेद डाल दिया है ?

काम का विवेचन

प्रेम के मूल में 'काम' मानने वाले सिद्धांत को मानने वालों में फ्रायड योनि-भावना को विश्व के समस्त क्रिया-कलापों का मूल माना है । उनके मतानुसार योनि-भावना बालक में क्षुधा

वृत्ति के समान जन्मजात होती है एवं वही समस्त क्रियाओं का मूल है । डॉ0 हैवलोक एलिस ने भी योनि-भावना की समस्या को सबसे अधिक महत्वपूर्ण और मननशील समस्या बताया है । गा0 मैक्डूगल के मतानुसार यह भाव बालक में लगभग 8,9 वर्ष की अवस्था में उत्पन्न होता है ।

काम सिद्धांत के प्रवर्तक फ्रायड के मतानुसार जीव की सबसे अधिक मूल-प्रवृत्ति काम है । अर्थात् मैथुन का मनोवेग हमारे हृदय में जन्मजात होता है । काम-वृत्ति अथवा मैथुन के मनोवेग को फ्रायड ने अत्याधिक व्यापक बना दिया हे । उसने मानव-जीवन की अनेक कुत्साओं का वर्णन करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि माता-पुत्र, पिता-पुत्री, भाई-बहिन सब के प्रेम और स्नेह के मूल में योनि भावना ही काम करती है । माता द्वारा अपने बाल के ममत्वपूर्ण थपथपाने में भी फ्रायड ने लैंगिकता का उभार देखा है । फ्रायड ने बोध-वृत्ति, ज्ञान तथा भावना को भी काम-वृत्ति के साथ सम्बन्धित माना है ।[1]

प्रजनन प्रवृत्ति के सिद्धांत का विचारकों के ऊपर बहुत ही व्यापक प्रभाव पड़ा यथा-सृजन सम्बन्धिनी प्रेरणाओं से जाग्रत होकर ही मैदान अपनी सब्जी दिखाते हैं, फूल अपने सौन्दर्य और सुगन्ध को प्रकट करते हैं । पक्षीगण अपने चमकीले से चमकीले पंख धारण करते हैं तथा मधुर से मधुर गीत गाते हैं । झिल्ली की झंकार, कोयल की कूक अपने जोड़े के आह्वान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । मैदान एवं वनों की निस्तब्धता को भंग करने वाले जो ये नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव सुनाई पड़ते हैं ये सभी प्रेम के ही असंख्य गीत हैं । मनुष्य की वर्ण-प्रियता, उसका कला और संगीत के सौन्दर्य और माधुर्य पर प्रेम, कविता पर अनुराग, यह सब ईश्वरदत्त उस प्रेम के कारण हैं, जिसके कारण केवल सुन्दरता के प्रति प्रीति ही नहीं उत्पन्न होती वरन् समग्र सुन्दर और आनन्ददायिनी वस्तुओं का ज्ञान और स्वीकार भी होता है ।

संसार प्रकृति पुरूष की रंग-स्थली है । नारी पुरूष की प्रकृति पुरूष की बड़ी प्रीति का प्रतिबिम्ब मात्र है । क्षितिज पर आकाश और पृथ्वी का सतत् एवं निरन्तर मिलन भी चिरन्तन प्रेम का द्योतक है ।[2]

1. Basic wrigl writting of sigmond fraide, Contribution- 91
2. रस-कलश-भूमिका-तृतीय संस्करण-पृ0 संख्या 83 अयोध्या सिंह उपाध्याय।

सृष्टि का सूत्रपात होते ही जब एकता बिखरने अथवा निखरने लगी, तब सर्वप्रथम बुद्धि का प्रादुर्भाव हुआ । इन दो प्रभूतियों में पारस्परिक प्रत्याकर्षण होने एवं एकत्व को पुनः स्थापित करने की अभिलाषा के कारण प्रकृति का नहीं अपितु संसार का सारा व्यापार एवं व्यवहार चल रहा है । इनके नाम विद्वानों ने अपनी-अपनी धारणा, कल्पना और ध्येय के अनुसार भिन्न-भिन्न रख लिये । प्रधानता उन्हें जीव एवं प्रकृति या स्प्रिट और मेटर नाम से अभिहित किया गया, जब उक्त कल्पना को मानुषी रूप दिया गया तब वे पुरूष एवं स्त्री कहे जाने लगे, जीव और प्रकृति अपने प्रणेता के मोह में खेलते-कूदते रहे, वे सृष्टि काल से लेकर लगातार आकर्षण-विकर्षण अथवा संयोग और वियोग की धूप-छांव में सुख-दुःख की लहरों में उठते और गिरते हुए ज्ञात अथवा अज्ञात प्रेरणा द्वारा एकत्व की ओर बहते अथवा बढ़ते चले आए हैं ।[1]

हमारा विचार है कि उक्त पंक्तियां केवल भावावेश के कारण ही लिख दी गई हैं । इनमें काम और प्रेम, लौकिक तथा ईश्वर-विषयक, दोनों को एक ही धरातल पर रखकर देखा गया है, काम और प्रेम सर्वथा भिन्न हैं । यहां तो विचारणीय बात यह है कि आकाश और पृथ्वी क्या वास्तव में कहीं मिलते हैं । आप असहमत होंगे कि वे मिलते हुए प्रतीत ही होते हैं ।

यह निर्विवाद है कि विश्व में नर-नारी के संयोग का महत्वपूर्ण स्थान है सृष्टि रचना के लिए दो की आवश्यकता होती है, वह भी एक स्वयं-सिद्ध तथ्य है । इसी कारण प्रारम्भ से ही स्त्री और पुरूष दोनों में एक की अनुपस्थिति में संसार को अपूर्ण माना गया है । आर्य साहित्य में देवताओं के साथ उनकी पत्नियों का वर्णन किया गया है । इतना अवश्यक है कि आर्य-साहित्य में स्त्री-पुरूष का सम्बन्ध केवल शारीरिक आवश्यकता न रहकर नैतिक एवं धार्मिक कर्तव्य के रूप में भी स्वीकार किया गया था ।

आधुनिक मनोविज्ञान शास्त्रियों ने काम को केवल अत्यधिक महत्व ही नही दिया है, वरन् उसे योनि-भावना के समकक्ष रखकर कलुषित भी बना दिया है । उनके मत में मनुष्य, पशु-पक्षी सभी में काम के बीच जन्मजात होते हैं तथा इसके उपभोग में समस्त इन्द्रियां अपना-अपना सर्वांग व्यापार करती हैं ।

1. पृ0 1, भूमिका। डॉ0 रामप्रसाद त्रिपाठी। ब्रजभाषा साहित्य का नायिका- भेद, प्रभुदयाल मित्तल, द्वितीय संस्करण।

इन मनोवैज्ञानिकों के मत में -

1. काम-जीवन का सर्वाधिक प्रबल मनोवेग है ।

2. यह सबसे अधिक व्यापक है ।

3. जीव के समस्त कार्य-कलापों के मूल में काम ही है ।

भारतीय विद्वानों द्वारा काम का विवेचन

काम का विवेचन भारतीय विद्वानों एवं दार्शनिकों के चिन्तन का विषय रहा है । इस विषय का विवेचन करते समय भारतवर्ष के आर्य-ऋषियों ने अपने सम्मुख सदैव यह दृष्टिकोण रखा था कि -

1. काम कहीं कामुकता का पर्याय न बन पाये ।

2. प्रेम और विलासिता पृथक-पृथक ही बने रहे ।

उनके मत में काम एक मूल प्रेरक-भाव है । उनकी सिद्धयासिद्ध, राग-द्वेष अथवा सुख-दुःख का कारण बनती है । कामदेव को अनंग कहकर उन्होंने सर्वसाधारण को सावधान किया कि काम अपने अंशरूप में ही उत्पन्न होने पर । अथवा तनिक सा काम उद्भूत होकर चित्त को विचलित कर देता है, मन को मथ डालने की शक्ति से समन्वित होने के कारण ही वह मन्मथ है । इस विचार में यथा समय विकृति आती रही और कई बार ऐसे समय आये जब । नारी केवल काम-तृप्ति का साधन-मात्र रह गई । हिन्दी के रीतिकालीन केवल काम तृप्ति का साधन-मात्र रह गई । हिन्दी के रीतिकालीन ग्रंथ और आधुनिक युग की रचनाएं इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं ।

इस विषय को सर्वप्रथम महादेव के अनुचर नन्दिकेश्वर ने लिया ऐसी जनश्रुति है । किसी भी ग्रंथ में उनका नाम उपलब्ध नहीं है । इस विषय के सर्वप्रथम लेखक हैं - उद्दालक त्रषि के पुत्र श्वेतकेतु । श्वेतकेतु के पश्चात् विद्वानों ने इस विषय के एक-एक अंग पर विचार किया । इनमें वाभ्रत्य, चारायण, सुवर्णनाम, घोटकमुख, गानदीप, गोणिका-पुत्र, दत्तक और सुकुमार के नाम उल्लेखनीय हैं ।

विषय को ग्रंथ रूप में व्यवस्थित करने का श्रेय वात्स्यायन को है । वात्स्यायन विरचित कामसूत्र ही आजकल इस विषय का सबसे अधिक प्रचलित एवं सर्वमान्य ग्रंथ है । इसकी रचना चन्द्र

गुप्त के काल मे हुई थी ।[1]

जीवन का मौलिक भाव ठहराते हुए वात्स्यायन ने काम की इस प्रकार की व्याख्या की है काम ही प्रेम है, काम ही सुख है, काम ही आनन्द की प्राप्ति एवंसन्तुष्टि है । पांचों ज्ञानेन्द्रियों के योग का नाम 'काम' है । इस भोग में मस्तिष्क एवं हृदय, अन्तरात्मा सहायक होते हैं। इस भोग में इन्द्रियां एवं भोग्य पदार्थ के बीच एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है । इसी आनन्दानुभूति का नाम काम है ।[2] इस प्रकार उनके द्वारा की गयी काम की परिभाषा बहुत ही व्यापक हो जाती है । वह केवल लैंगिक सुख में सीमित नहीं है । काम में जीवन का सम्पूर्ण कलापक्ष अन्तर्भूत हो जाने से काम का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक बन जाता है, तथा कामजन्य आनन्द रसानुभूति के समकक्ष या जाने से सत्वगुण समन्वित भी हो जाता है ।

वात्स्यायन ने भी काम की स्थिति जन्मजात स्वीकार की है । इतना ही नहीं उन्होंने काम की सिद्धि को जीवन का एक अनिवार्य तत्व भी बताया है । पंच-ज्ञानेन्द्रियां द्वारा प्राप्त सुख, रूप, गंध, शब्द एवं स्पर्श वस्तुतः काम-सिद्धि के सहायक अथवा उद्दीपन मात्र है । इनकी सहायता से जिस आनन्द की अधिकता प्राप्त होती है वह है - स्त्री-पुरूष का संभोग । अतः स्त्री-पुरूष संयोग-जन्य अधिकतम आनन्द का नाम काम है । यह समस्त जीवधारियों के मन पर राज्य करता है, काम की सिद्धि जीवन के लिए उतनी ही अनिवार्य एवं उपयोगी है जितनी भोजन प्राप्ति द्वारा क्षुधा निवृत्ति ।[3]

वात्स्यायन ने 'काम' के 'साधारण-काम' और 'विशेष-काम' दो भेद किए हैं और उनके लक्षण निर्धारित किए हैं ।[4]

वात्स्यायन ने काम को जन्मजात मानते हुए यौवन में उसके सेवन की अनिवार्यता स्वीकार की है ।[5] परन्तु विशेषता यह है कि उन्होंने काम का सेवन करते समय संयम और सतर्कता की महत्ता का भी प्रतिपादन किया है । उन्होंने ब्रम्हचर्य को काम सेवन का सर्वोत्तम साधन बताया है ।[6]

वात्स्यायन के अतिरिक्त पतंजलि, भर्तृहरि, प्रभृति चिन्तकों ने इसका जीवनेच्छा के समकक्ष स्वीकार किया है । संस्कृत ग्रंथों में काम का जो विवेचन हुआ है, उसके आधार

1. डॉ0 पी0 सी0 बागची। कामसूत्र सं0 डॉ0 वी0 एस0 वसु, नवम संस्करण।
2. पाठ संख्या- 2, कामसूत्र, वात्स्यायन, वही। 3. पाठ संख्या-2, कामसूत्र, वात्स्यायन, वही।
4. सूत्र सं0- 11-12, अध्याय 2, वात्स्यायन के कामसूत्र। 5. सूत्र सं0- 31-32, वही।
6. सूत्र सं0- 20, अध्याय-3, वही।

पर हम कह सकते हैं कि -

1. साधारण रूप में इच्छा मात्र काम है । जीवनेच्छा का ही दूसरा नाम काम है । विशिष्ट अर्थ में स्त्री-पुरूष के स्वाभाविक बन्धन को ही काम कहा गया है ।
2. क्षुधा के समान काम एक मूल-वृत्ति एवं व्यापक भाव है । वह जन्मजात एवं आत्मा से सम्बद्ध है । अपने गोत्र का विस्तार ही काम है । बिना काम के संसार का कोई कार्य सम्भव नहीं है ।
3. काम सेवन में संयम की शिक्षा देकर उसे मोक्ष प्राप्ति का एक साधन बताया गया है एवं अर्थ तथा धर्म से समन्वित करके उसके उज्ज्वल स्वरूप को ही सामने रखा गया है । इस प्रकार यौन-भावना जैसे कलुषित रूप का सर्वथा परिहार ही हो गया है ।

   भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ और काम तीनों को ही महत्व दिया गया तीनों का सन्तुलन तथा अविरोध वैयक्तिक और सामाजिक जीवन का आदर्श है । वही मोक्ष और आनन्द का विधायक होता है । मर्यादा पुरूषोत्तम श्री रामचन्द्र जी ने तीनों के अविरोध सेवन का ही उपदेश मातृभक्त परायण भरत को दिया है ।[1]
4. काम को सत्वगुण समन्वित करके उसे समस्त सद्गुणों को उत्पन्न करने वाला बताया है । काम ही साहित्य क्षेत्र का स्वामी एवं देवता है । देवत्रयी ब्रम्हा, विष्णु, महेश कामदेव के ही स्वरूप विशेश हैं । संसार का प्रत्येक पदार्थ जड़, चेतन काम से ही उत्पन्न होता है और काम में ही लय हो जाता है ।[2]
5. काम के आध्यात्मिक स्वरूप की आख्या इस प्रकार की जा सकती है - ब्रम्हा अथवा पुरूष विश्व की एकमात्र सत्ता हैं, जो अपने आपको जीव एवं प्रकृति में विभक्त कर लेता है ।

इन्हें इस प्रकार आत्मा और अनात्मा कहते हैं । आत्मा का स्वभाव है अपना विस्तार करना अथवा आत्म का अनात्म का अधिकृत करना ही जीवन है । आत्म सक्रिय है और अनात्म निष्क्रिय । इसी कारण पुरूष को आत्म एवं नारी को अनात्म रूपा कहा गया है । पुरूष रूप आत्म

1. श्लोक सं0- 362-63 अयोध्या काण्ड- बाल्मीकि रामायण
2. पाठ सं0- 8, धर्म-संहिता- शिवपुराण।

जिन क्रियाओं द्वारा स्वविस्तार करता है, उनमें प्रमुख है - प्रजनन । अतः प्रजनन हेतु वह अनात्मा रूपा नारी के साहचार्य की कामना करता है । दाम्पत्य-भाव इसी आध्यात्मिक क्रिया का प्रतिबिम्ब मात्र है ।

निष्कर्ष यह है कि संस्कृत साहित्य में किया गया 'काम' का विवेचन वैज्ञानिक होने के अतिरिक्त व्यवहारिक जीवन को उदात्त करने में सहायक होता है ।

सौन्दर्य-प्रतीति का आधार प्रियता अथवा प्यार

प्रेमी को इस बात में कोई भी संदेह नहीं रहता कि उसका प्रेमास्पद चाहे वह फूल हो या बालिका हो अथवा ईश्वर, उसके प्यार के योग्य है । उसका ध्यान अपनी जड़ीभूत मनोदशा की ओर केन्द्रित नहीं होता, अपितु प्रेमास्पद के उन गुणों में केन्द्रित होता है जिनसे उनमें वह मानसिक अवस्था उत्पन्न हुई ।

अन्तःकरणीय भूंख अथवा आकांक्षा की तृप्ति

सेंट टॉमस अविवनाज ने कहा है कि 'सौन्दर्य वह है जो दृष्टिगोचर होने पर दृष्टा को प्रसन्न करें। किन्तु, यह कथन तात्विक दृष्टि से संगत नहीं है । विचारणीय यह है कि किस प्रक्रिया ने यह आनन्द उत्पन्न किया, आंखा की रेटिना पर पड़ने वाली एक प्रतिमा क्यों कर मानस में आनन्द की भावना में बदल गई ? निश्चय ही आंख तो प्रसन्न होती नहीं, प्रसन्न तो मनुष्य का अन्तःकरण ही हो सकता है । केवल एक ही वस्तु आनन्द उत्पन्न कर सकती है या बढ़ा सकती है । वह है किसी आकांक्षा की पूर्ति । उस वस्तु को देखकर प्रसन्न होने वाला व्यक्ति कोई चीज चाहता था अर्थात उसको एक 'भूंख थी और वह भूंख तृप्त हुई है ।

अतएव आनन्द किसी आकांक्षा की तृप्ति का परिणाम है । मनुष्य के मन के भीतर कुछ आकांक्षाएं अतृप्त रूप में लिपटी हुई हैं जिनसे वहां शून्यरिक्ता (बैकुअम) उत्पन्न हो गई । अतएव जो वस्तु उसके भीतर की खाली जगह को सही भर देगी जो वहां सटीक बैठ जायेगी, वहीं उस व्यक्ति के लिए सच्चा सौन्दर्य है ।[1]

1. इरित- न्यूटन, दी मीनिंग ऑफ ब्यूटी (1950), पृ0 22

आकांक्षाओं का वास

आकांक्षाएं आकस्मिक नहीं होती । वे अभ्यास से प्रसूत या प्रभावित होती हैं प्रकाश के अनुभव से विहीन व्यक्ति प्रकाश के लिए किसी भूख का अनुभव नहीं कर सकता तथा इसी कारण उसे प्रकाश से किसी आनन्द की उपलब्धि नहीं होगी । जिस मनुष्य ने कभी पादपों को नहीं देखा, वर्षा के बाद पृथ्वी की गंध को कभी सूंघा, कोयल की काकली अथवा सरिताओं की आकांक्षा कभी नहीं कर सकता । उसकी आकांक्षा उसके अनुभव की प्रसूति है । अर्थात उसकी सौन्दर्य भावना उन वस्तुओं की स्मृति पर आधारित है जिन्हें उसने देखा, सुना, सूंघा, स्पर्श किया या आस्वादित किया था ।[1] इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति का आधार अभ्यास है, जिसे भारतीय आचार्यो की शब्दावली में 'वासनात्मक' कहा जा सकता है ।

'रम्याणि वीक्ष्यनिशक्य मधुरासश्च शब्दान' वाले प्रसिद्ध श्लोक में कालिदास ने रमणीयता की रसानुभूति के वासनात्मक आधार ही की विज्ञप्ति की है । किन्तु, यह अभ्यास किसी निश्चित जलवायु में अर्जित होता है । इसी कारण, मनुष्य की प्रियताएं प्रायः भिन्न भिन्न होती हैं, जिससे सौन्दर्य के प्रतिमान भी देशकाल सापेक्ष बन जाता है । अनुभव के सामान्य, सर्वनिष्ठ संचित कोष के अभाव में सौन्दर्य का वैसा परिनिष्ठित मानदण्ड नहीं निरूपित किया जा सकता जिसे सभी जातियां सभी कालों में समान-भाव से स्वीकार कर सकें ।[2]

श्रृंगार एवं सौन्दर्य

श्रृंगार में सौन्दर्य का स्वरूप -

परवर्ती युगों में हमारी सौन्दर्य की आध्यात्मिक धारणा में परिवर्तन हुआ और भौतिक धरातल पर उसके वर्णन एवं आस्वादन में आनन्द की उपलब्धि होने लगी । क्लासिकल युग में गीवणिगिरा के रचयिताओं ने सौन्दर्य के इन्द्रिय-ग्राह्य पटल का नितान्त मृदुल एवं सूक्ष्म व्याख्यान किया । 'औपनिषदिक ऋषियों तथा क्लासिकल कवियों दोनों की सौन्दर्य सृष्टियां निश्चय ही मधुर हैं, लेकिन इनके माधुर्य में वही विभेद किया जाना चाहिए जो मधु एवं शर्करा माधुर्य में होता है ।[3] तथापि यह स्मरण रखना आवश्यक है, भारतीय सौन्दय-दृष्टि कभी भी दिव्यता एवं अलौकिकता के संस्पर्श से विहीन नहीं हुई ।

श्रृंगार-सुलभ सौन्दर्य -

1. भोज एवं गोस्वामीने इसे "वैषयिकी रति" कहा है।
2. वही, पृ0 22-23
3. स्टडीज इन संस्कृत एस्थेटिक्स, पृ0 16

श्रृंगार सुलभ सौन्दर्य -

श्रृंगार में जिस सौन्दर्य का चित्रण सामान्यतः हुआ है, वह मानव-रूप का सौन्दर्य है । उसमें भी वह अधिकता स्त्री-रूप का सौन्दर्य है । भारतीय चिन्तकों की मूलगत सौन्दर्य-भावना ने कवियों के रूप-वर्णन को अत्यधिक प्रभावित किया है । दो बातें इस सम्बन्ध में परिलक्ष्यणीय हैं- पहली यह कि मानव रूप के सौन्दर्य में दिव्यता एवं अलौकिकता का समावेश रहा है तथा दूसरी यह है कि प्रकृतिगत सौन्दर्य ही इसका आदर्श रहा है । रूप सौन्दर्य के घटक तत्वों का नीचे निरूपण किया जा रहा है -

वीर्य - क्षोभ की क्षमता -

भारतीय कवियों ने नारी रूप को जो स्वस्थ, मांसल आयाम दिये हैं, उसमें सूक्ष्म अग्राह्यता के साथ कामोद्दीपन की शक्ति का अद्भुत पाणिग्रहण हुआ है । कुमारसम्भव में प्रसंग आया है कि भगवान शंकर की समाधि भंग होने पर पार्वती ने कण्ठ में माला पहना दी और उसी समय कामदेव ने भी सम्मोहन नामक अचूक बाण धनुष-बाण धनुष पर चढ़ा लिया । जैसे चन्द्रमा के निकलने पर समुद्र में ज्वार आ जाता है वैसे ही पार्वती को देखकर शंकर की शीलवृत्ति भी चंचल हो उठी । किन्तु उन्होंने तत्काल अपने इन्द्रिय क्षोभ को नियंत्रित कर लिया और उस चित्त-विकार के कारणों की खोज हेतु सचेष्ट हो गए -

अथेन्द्रियक्षोभमयुम्भवनेवः पुनर्वशित्वा द्बलवशिगृहृय ।
हेतुं श्वचेतो विकृतेर्दिदृक्ष्युर्दिशाभुपान्टव ससर्ज दृषम ।।

यहां दृष्टव्य यह है कि शंकर जेसे अखण्ड योगी को भी पार्वती का अनवध रूप-सौन्दर्य देखकर 'इन्द्रिक्षोभ' हो गया । फिर वही 'इन्द्रियक्षोभ' उत्पन्न करने की जितनी क्षमता वर्तमान होगी, वह उतनी ही सौन्दर्यशालिनी समझी गई । सौन्दर्य की वीग्र-क्षोभ शक्ति की व्यंजना ही कालिदास ने प्रकारान्तर से, उर्वशी के सौन्दर्य के सम्बन्ध में यह कहकर की है कि विषय विलास से विमुख रहने वाले वृद्ध ऋषि नारायण ऐसा रूप क्यों कर बना सकते हैं ।

भरत के रस सिद्धांत के सबसे उदभट् व्याख्याता अभिनवगुप्त ने कालिदास प्रेरणा ग्रहण कर श्रंगार रस से चित्रित स्त्री-सौन्दर्य का परिपूर्णता के सम्यक उन्मूलन को अनिवार्य

ठहराया - 'विषयसभ्यारपूर्णताभिमान जैन रतिः उचिता ।' संभार की पूर्णता हेतु अभिनवगुप्त 'वीर्य-क्षोभ' की क्षमता को ही चमत्कार धायक मानते हैं । साथ ही वे सहृयतता की कसौटी भी उसे ही मानते हैं कि रूप-दृष्टा में सौन्दर्य के संनिकर्ष से वीर्य-क्षोभ उत्पन्न हो जाये अन्यथा वह जड़ तथा वीर्य-विहीन ही होगा निम्न पंक्तियां दृष्टव्य हैं -

> नयनोरपि हि रूपं तदवीर्य विक्षोभात्मक महाविसर्ग विश्लेषण -
>
> युवत्या एवं सुखदायि भवति । श्रवणयोश्चमधुर गीतादि ।
>
> सर्वतो हि अचमत्कारे जड़तैव । अधिक चमत्कारान्वेरा एवं वीर्यक्षोभात्मा सहृदयता उच्यते ।

यथोचित संश्लिष्ट संधिबन्ध -

आचार्य क्षेमेन्द्र ने काव्यगत सौन्दर्य के लिए 'औचित्य' को अपरिहार्य ठहराया है जिसके भीतर पाश्चात्यों के सामंजस्य सममातृत्व एवं समान तत्व सन्निविष्ट हो जाते हैं ।

रूप-वर्णन में भी कवियो ने इस औचित्य को सौन्दर्य की सृष्टि हेतु आवश्यक बतलाया है । रूप गोस्वामी ने सौन्दर्य की परिभाषा इस प्रकार की है -

अंग-प्रत्यंग संश्लिष्ट संधिबंध युक्त यथोचित सन्निवेश ही सौन्दर्य कहलाता है । इसी आदर्श की रक्षा के लिए नरवशिख प्रणाली का उद्भव एवं विकास हुआ। प्लाटिनस का कथन है कि यदि समग्र सुन्दर है, तो यह आवश्यक जान पड़ता है कि अवयवों को भी सुन्दर होना चाहिए। कुरूप वस्तुओं के समन्वय से सौंन्दर्य नहीं उत्पन्न हो सकता। नख-शिख प्रणाली सौंदर्य की इस समग्रता हेतु आवश्यक है। वास्तव में, प्राचीन कवियों का उद्देश्य सौन्दर्य को लोक-ग्राह्य एवं लोक-संवेद्य बनाना रहा हैऔर यह कार्य केवल कल्पना के वायवीय ताने-बाने से सम्पन्न नहीं हो सकता था।स्थूलाधारों को छोड़ देने से सौंदर्य की प्रेतात्मा निर्मित हो जाती जो मानवीय प्रकृति के नित्य-प्रति आस्वादन के लिए अत्यन्त दुर्लभ वस्तु हो गई थी।

लावण्य-

मोतियों में छाया की अभ्यांतर तरलता के समान अंगों में चमकने वाली वस्तु 'लावण्य' कही गयी है। इसका संस्कृत -कवियों ने बड़ी सूक्ष्मता एवं सजगता से वर्णन किया है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल में वियोग-विह्वल-दुष्यन्त ने अत्यन्त सावधानी पूर्वक शकुन्तला का चित्र खींचा

था, तो भी उसे यह कसक बनी रही कि रेखाओं के भीतर उस देवी का लावण्य बन्दी नहीं बनाया जा सका-

'यद्यत्साधु न चिते स्यात्क्रियते तत्तदन्यथा।

तथापि तस्या लावण्य रेखया किंचिदन्वितम्।।'

प्रतिक्षण भासमान नवलता-

सौंदर्य की एक प्रमुख विशेषता रही है, उसकी प्रतिक्षण भासित होने वाली नवालता। इस तत्व की विज्ञप्ति पहले-पहल कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में की थी। जब अग्निमित्र से परिचय होने पर भी, गण दास का उसके रूप में प्रतिक्षण उत्पन्न होने वाली नवीनता का भान हुआ था।

'सलिलनिधिरिव प्रतिक्षणं मे भवति स एव नवो नवो त्यमक्ष्णोः।'

कविकुल गुरू कालिदास की इस उद्भावना को ग्रहण कर, माघ ने रैवतक पर्वक की रमणीयता में जिस 'क्षणे-क्षणे नवता' की प्रतिष्ठा कर दी है, वह आज सम्पूर्ण समाज में निरन्तर स्मरण की आस्पद बन गई है-

दृष्टो पि शैलः सुमुहुर्मुहरारेरेपर्वतद्दिस्मयमात् तान।

क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।।

-शिशुपाल वध। 4/10

रमणीयता वही है जो प्रतिक्षण नवता को ग्रहण करे, अनुरक्षण किसी नवीन छटा -छवि का उन्मीलन तथा बार-बार दर्शक अथवा भावक को नये-नये ढंग से आकर्षित आवर्जित करे। रमणीयता की इस परिभाषा में सौंदर्य का वही धर्म सूचित किया गया है जो वर्ण एवं आकार कही सीमाओं का अतिक्रमण कर अपनी सूक्ष्मता एवं अग्राह्यता से प्रेक्षक को चमत्कृत करता रहता है।

अवस्था निरपेक्ष रमणीयत्व-

माधुर्य-सौन्दर्य एक अन्य गुण की ओर संस्कृत कविता में हमारा ध्यान रह-रहकर आकर्षित होता है। वह है-'अवस्था निरपेक्ष रमणीयत्व' आचार्यों ने इसी को 'माधुर्य' की

आख्या से अभिहित किया है-

'सर्वपास्थाविशेषेकु माधुर्य'

(सा0 द0)

कालिदास ने अपनी नायिकाओं की इस विशेषता का बार-बार उल्लेख किया है-

'यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम्।

न षट्पद श्रेणिभिरेव पंकज सशैवलासंगमपि प्रकाशते।।'

जटा रख लेने पर भी पार्वती का मुख वैसा ही प्यारा लगाता था जैसा वह वेणियों से सज्जित होने पर लगता था, क्योंकि भ्रमरों से कमल सुन्दर नहीं लगता अपितु सेवार से लिपटा होने पर भी सजीला दिखाई पड़ता है ।

स्वयं पूर्णत्व एवं स्वनिर्भत्व -

सौन्दर्य की एक अन्य विशेषता होती है, उसका स्वयं में स्वतः पूर्ण होना, अन्य किसी बाह्य उपकरण की पूर्ण अनापेक्षा । वल्कल वस्त्र धारण करने पर भी शकुन्तला दुष्यन्त को अधिक मनोज्ञ दिखाई पड़ रही है । जैसे सेवार से आवृत्त होने पर भी कमल सुन्दर दिखाई और चन्द्रमा में पड़ा कलंक भी उसकी शोभा बढ़ाता है । कालिदास कहते हैं -

'किमिव हि मधुराणां मडनं नाकृतीनम् ।'

यहां कवि ने यही ध्वनित किया है कि सौन्दर्य स्वतः पूर्ण है । स्वभावतः सुन्दर वस्त्र अन्य किसी उपादान की अपेक्षा नहीं रखती ।

प्रेम विवेचन

सामान्य निरूपण

अर्थ की व्यापकता

प्रेम अत्यन्त अर्थगर्भित शब्द है । इसमें नाना प्रकार के अर्थ समाहित हैं । साधारण प्रियता व पसन्द लेकर किसी वस्तु की बारंबार मांग तक अनेक अर्थो का इससे ध्वनन हो सकता है । इसी प्रकार, मनुष्य के आचरण पर पड़ने वाले, कृपालुता से लेकर अदमनीय आत्मोत्सर्ग तक, सैकड़ों प्रकार के बण्डल हैं जो मानव आचरण के प्रत्येक पक्ष में उलझे हुए हैं । उद्यान के खोदते जैसे साधारण व्यापार से लेकर चित्र रंगने, किसी नगर का लूटने तथा साम्राज्य की

स्थापना करने जैसे प्रत्येक कार्य में इन धागाओं में से एक न एक का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है ।

आलम्बन का द्विघात्वः

प्रकृत प्रेम -

प्रेम में दो पक्ष अनिवार्यतः वर्तमान रहते हैं - एक प्रेम करने वाला दूसरा प्रेम किया जाने वाला । शास्त्रीय शब्दावली में कहे तो प्रथम पक्ष 'आश्रय' है द्वितीय 'आलम्बन' आलम्बन की दो काटियां हो सकती हैं - पहली प्रकृति के पदार्थ तथा पशु-पक्षी इत्यादि जो आश्रय की भाव-प्रवणता को या तो समझ नहीं सकते या यदि समझते हैं तो उसका उचित प्रत्युत्तर नहीं दे सकते, दूसरी मनुष्य जो आश्रय के समान बुद्धि एवं कल्पना से समन्वित प्राणी है तथा जो उसकी भावकता का समुचित अभिशंसन कर सकते हैं एवं उसका समुचित प्रतिदान भी दे सकते हैं । जो शकुन्तला ने दुष्यन्त के प्रेममूलक आचरण का दिया था। अतएव प्रकृत प्रेम द्विध्रवी या व्यापार है तथा स्वभावतः अन्योन्याश्रित है । अर्थात आश्रय एवं आलम्बन दोनों प्रेम की कविता के सर्जन एवं आस्वादन में समान भाव से कार्यशील होते हैं । अर्थात प्रेम में प्रमाता एवं प्रमेय दोनों का 'मनुष्य' होना आवश्यक है जिससे रागात्मक प्रवाह दोनों दिशाओं से उद्गमित एवं प्रवाहमान हो सके ।

प्रेम की परिभाषा -

'हरि भक्ति रसामृत सिन्धु' में रूपगोस्वामी ने प्रेम की परिभाषा इस प्रकार की है-

'सम्य मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशर्षाकितः ।
भाव स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगधते ।'

(पूर्व-विभाग, चतुर्थ लहरी)

जिससे हृदय अतिशय कोमल हो जाता है, जिससे अत्यन्त ममत्व उत्पन्न होता है वही प्रगाढ़ भाव पण्डितों द्वारा 'प्रेम' कहलाता है । भरत मुनि के अनुसार चित्त की द्रवावस्था ही प्रेम है । सत्वोद्रेक की अवस्था में जब मानव-मन प्रयोजन निरपेक्ष होकर द्रवीभूत हो जाये और आलम्बन को अपनी ममता का दान देने लगे तब प्रेम का प्रादुर्भाव हुआ समझना चाहिए

द्रवीभवन और तदाकार -

द्रवीभवन और तदाकार-

नैयायिकों की आपत्ति है कि चित्त तो निरअवयव है, अतः उसमें अवयव-शैथिल्य क्यों आयेगा, क्योंकि अवयव-शैथिल्य ही द्रव (पिघलना) है । इस आपत्ति के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि सावयव है, क्योंकि एक-एक सत्व के अंश से एक-एक इन्द्रियां उदय लेती हैं और इन ज्ञानेन्द्रियों के मिलने से ही अन्तःकरण की उत्पत्ति कही जाती है । पुनश्च मृत बछड़े के निःसार चर्म के अवलोकन के विक्रय या प्रभाव से मूर्खों द्वारा भी अल्प दूध वाली गाएं दुह ली जाती हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि गाय उस चर्म के अवलोकन से द्रवित हो गयी, तभी तो दूध देती है । अतएव चित्त या अन्तःकरण द्रवशील है ।

काम-क्रोध इत्यादि तापकों से मन जब तदाकार (कामादि के ही आकार का) हो जाता है, तो उसका अर्थ यही है कि वह द्रव के कारण ही पूर्वाकार छोड़कार नवीन ग्रहण कर लेता है, अर्थात् तदाकार हो जाता है । इस सम्बन्ध में दृष्टांत यह लिया जा सकता है कि- मूषा में (कूसिविल) रखा हुआ तांवा अभिदाह से पिघलकर मूषा का ही रंग ग्रहण कर लेता है । अतः द्रवित होने का अर्थ है- तदाकार हो जाना ।

अतः अन्तःकरण का आलम्बन के साथ ममत्वपूर्ण तदाकार ही प्रेम है।

प्रेम का प्रस्तुत विविक्षितार्थ -

मानव सापेक्ष प्रेम की भी कई कोटियां होती हैं, यथा भाई-भाई का प्रेम, माता-पुत्र का प्रेम आदि । किन्तु, प्रस्तुत प्रबन्ध का विवेचनीय वह प्रेम है जो श्रंगार का उपजीव्य है, जो उत्तम प्रकृति वाले युवक-युवती के युग्म के परस्पर द्रवीभूत कर रति-भाव के पीयूष-प्रवाह में सर्वात्मना नियज्जित कर देता है । जिस धर्म का आश्रय लेकर आध रस अर्थात श्रंगार बनता है, उसे श्रेष्ठ विद्वान प्रेम कहते हैं ।

प्रेम विषयक कतिपय मत -

वैज्ञानिकों ने प्रेम के विषय में विभिनन मत उपस्थित किए हैं। ने सर्वप्रथम 'साइकोलाजी ऑफ दी इमोशंस' में यह प्रतिपादित किया कि मनुष्य का प्रेम प्रजनन का साधारण शारीरिक मनोवेग नहीं है अपितु वह अनेक मनोवृत्तियों का सम्मिश्रण है जिसमें कोमलता, सहानुभूति

तथा पितृत्व-मातृत्व की भावनाएं अपेक्षाकृत अपरिष्कृत काम-संवेगों के साथ मिली होती है हेनरी ड्रमण्ड ने 'दि असेंट ऑफ नैन' में प्रेम की जटिल प्रकृति का उल्लेख करते हुए, कामवेग की अपेक्षा मातृत्व मनोवृत्ति को इसका आधार बताया है ।

फ्रान्सीसी मनोवैज्ञानिक राउक्स ने 'साइकॉलाजी ऑफ दी इंस्टिक्ट सेक्युअल' में एक नितान्त भिन्न मत व्यक्त किया है । उनका कथन है कि अपनी सहचारिणी के लिए मनुष्य का प्रेम पूर्णतया, ऐन्द्रिय विषय है, जो जीवपिंड की शारीरिक आवश्यकताओं पर आधारित है और वासनात्मक आनन्द की एषणा से उसमें नई शक्ति का संचार होता है । इस मत के अनुसार प्रजनात्मक अवयवों में उत्पन्न संवेदन

काम आवेग की जननी है । किन्तु रूप, गंध, श्रोत तथा स्पर्श के संवेदनों में प्रेम का वास्तविक स्वरूप केन्द्रित होता है । इस प्रकार केशों की सुगंध, रूप-सौन्दर्य, वाणी तथा चुम्बन विधि प्रेमी के चुनाव में निर्णायक कारक होते हैं ।

ब्लाक ने अपने विशद ग्रंथ 'दि सेक्सुअल लाइफ ऑफ अवर टाइम' मे मानव के प्रेम जीवन के सम्बन्ध मे ऐसा ही मत व्यक्त किया है, किन्तु यह भी कहा है कि ये विभिन्न वासनात्मक संवेदन अपेक्षाकृत आध्यात्मिक विचारों एवं भावनाओं से संयुक्त हो जाते हैं । जिससे प्रेमास्पद का व्यक्तित्व उसके शरीर के माध्यम से अर्चना का पात्र बन जाता है ।

हेनरीफिंक ने 'रोमांटिक लव एण्ड पर्सनल ब्यूटी' में कहा है कि सम्पूर्ण शारीरिक व्यक्तित्व का आकर्षण न कि लैंगिंग आवेग, वह कसौटी है जिससे प्रेम को काम से पृथक किया जा सकता है । प्रेम को संगीत के उस स्वर प्रवाह से तुलित किया जा सकता है जिसमें लिंग मूल-ध्वनि है तथं धीमी सुनाई पड़ने वाली उच्चतर ध्वनियों वे अन्य वस्तुएं हैं जो वैयक्तिक पसंद को निश्चित करती हैं । आदिम प्रेम पाशविक आवेग मात्र था जब कि रोमांटिक प्रेम के युग मेसं ही विरोधी लिंग के सदस्यों के प्रति एक निःस्वार्थ एवं उदात्त भावना का उदय हो सका । इस कोटि का प्रेम सहानुभूति एवं मातृ-पितृत्व मूलक भावनाओं के सन्निवेश पर ही नहीं, अपितु मानवी रूप एवं मुखाकृति के सौन्दर्यो के रसात्मक आस्वादन पर भी आधारित होता हे । नारी के जलीलेपन तथा उसके सौन्दर्य से उत्पन्न आनन्द ने मनुष्य में उसके प्रति

एक प्रकार का निष्ठा-भाव विकसित कर दिया है जिसमें कामुकता का पाशविक तत्व मंद पड़ गया है और उसकी प्रशंसा एवं आदर उसकी प्रेमल भावनाओं के प्रमुख तत्व बन गए हैं

एडवर्ड कारपेंटर के मतानुसार प्रेम का केन्द्रीयतत्व समागम की एषणा है और यह समागम आत्माओं के उस गहरे संमिलन का प्रतीक है जो प्रत्येक सच्चे प्रेमी-युग्म में वर्तमान होता है, नारी पुरूष की तुलना में इस प्रकार के प्रेम का अधिक अनुभव करती है । मैटेगेजा ने 'बुक आफ लव' में ऐसा ही मत स्थापित किया है । तथा इस बात पर बल दिया है कि प्रेमी संम्मिलन इन्द्रिय एवं आत्मा दोनों का संयोग है और नारी प्रेम की प्रधान-पुरोहित है । जबकि पुरूष लिंग के शारीरिक आवेगों से संतुष्ट होता है ।

प्रेम के विषय में 'वैज्ञानिकों' ने जो विचार ऊपर व्यक्त किये हैं उनके अवलोकन से निम्न तथ्य प्रकाश में आते हैं -

1. प्रेम का घनिष्ठ संबंध काम या लैंगिक आकर्षण से है ।
2. प्रेम कामावेग को अतिक्रान्त कर प्रेमियों को परस्पर सूक्ष्म भावात्मक या आध्यात्मिक सूत्रों में बांध देता है ।
3. प्रेम इन्द्रियों का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण व्यक्तित्व का एकांत मिलन है ।
4. प्रेम मातृत्व-पितृत्व मूलक कामना से अनुप्राणित है ।
5. प्रेम का कोमल प्रकाश संकीर्णता का अतिक्रमण कर लोक-व्यापी बन जाता है ।

प्रेम का कला-पक्ष

प्रेम की कला -

बेकन का कथन है कि प्रकति में जब मनुष्य का कर्तृत्व मिल जाता है तब कला का प्रादुर्भाव होता है ।[1] प्रकृति चित्रकार को चित्र निर्माण के लिए सामान्य उपादान प्रदान करती है । जैसे - वृक्ष, समुद्र, प्रकाश, मनुष्य इत्यादि । कवि या चित्रकार इन उपादानों को सुरूचिपूर्वक इस प्रकार संघटित एवं व्यवस्थित करता है कि उसकी कलाकृति मानव-मन को परितृप्त करती है और उसके मर्म को स्पर्श करती है, प्रेम भी ऐसी ही कला है । प्रेम में भी प्रकृति केवल सामान्य मौलिक उपादान प्रस्तुत करती है

1. 'आर्ट इज मैन एडेड इ नेचर' (बेकन)

वह मनुष्य जाति को स्त्री एवं पुरूष दो लिंगों में विभक्त कर देती है, यौन आकांक्षा उत्पन्न कर उन्हें समागम एवं प्रजनन के लिए एकत्र ला उपस्थित कर देती है । किन्तु मनुष्य अपनी कल्पना एवं मस्तिष्क का उपयोग कर, इ मौलिक सामग्री का इतनी निधुणता एवं शालीनता से नियोजन करता हे कि एक बर्बर मनोयोग अत्यन्त रसमान एवं नाना संभावनाओं से गर्भित साहसिक अभियान बन जाता है । पशुओं के प्रेम को देखें और एक अच्छा प्रेम-पत्र पढ़ें तो हमें इस बात का अनुमान हो जायेगा कि प्रेम के संबंध में प्रकृति एवं कला परस्पर कितनी दूर हैं । मानव-प्रेम की विशेषता यह हे कि अभिलाषा अथवा वासना के ऊपर यह अत्यन्त रमणीय एवं जटिल रागात्मक महलों का निर्माण करता है । प्रेम-चेष्टाएं जिन्हें कालिदास ने 'प्रणय की अग्रइतियां' कहा है, प्रेम कला की अनिवार्य अंग हैं । भर्तृहरि ने स्त्रियों की प्रेम-कला का अपने स्वाभाविक ढंग से, रूपक की भाषा में, इस प्रकार लिखा है -

'स्मितेन भावेन च लज्जया भिया,
परांगमुखैरर्द्ध कटाक्षवीक्षणैः ।
बचौभीरीर्ष्या कहाहेन लीलया,
समस्त भावैः खलु बन्धनै स्त्रियः ।
भ्रू चातुर्याकुंचिताक्षाः कटाक्षाः,
स्निग्धा वाचौ लज्जिताश्चैव ह्रासाः ।
लीलामदं च स्थितं प्रस्थितं च,
स्त्रीणाभेतद् भूषणं चायुधं च ।।

प्रेम की विवध कोटियां एवं अवस्थाएं

श्रृंगार के सन्दर्भ में रति, काम और प्रेम प्रायः समानार्थी हैं । सामान्य व्यवहार में प्रेम की तुलना में काम संकीर्ण और रति उससे भी संकीर्ण अर्थ का द्योतक करता है । काम-सूत्र में प्रीति, भाव, राग, वेग, तथा सामप्ति को रति का पर्याय माना गया है, स्नेह की उत्पत्ति के कारण 'प्रीति में कामुक हूं और वह कान्ता है ।' इस प्रीति के कारण 'भाव तथा चित्त का मनोरंजन होने के कारण 'राग' रति के पर्याय होते हैं ।

'वेग' और 'समाप्ति' इनका संबंध प्रकृत प्रसंग व संप्रयोग से है । अतः इन्हें हम रति के समानार्थ नहीं समझते हैं । रति को संकीर्ण अर्थ में ग्रहण करने से तीन ही शब्द हमारे प्रकृत प्रयोजन के बच जाते हैं - प्रीति , भाव तथा राग । तीनों प्रेम के पर्याय रूप में प्रयुक्त होते हैं ।

राग के साथ 'अनुराग', स्नेह तथा प्रणय' का भी प्रयोग प्रचलित है । अतएव साधारणतः इन सभी शब्दों, प्रीति, भाव, अनुराग, राग, स्नेह तथा प्रणय का व्यवहार केवल प्रणय को छोड़कर जो प्रायः स्त्री-पुरूष के रत्यात्मक संबंध का द्योतन करता है, प्रेम के सामान्य व्यापक अर्थ में भी होता है । तथापि श्रंगार के संदर्भ में सभी रत्यात्मक संबंध के सूचनार्थ व्यवहृत होते है । किन्तु, आचार्यो ने इन शब्दों के अर्थो में कभी-कभी सूक्ष्म अन्तर किया है ।

प्रेम रसायन का वर्गीकरण - हार्द्द, सौहार्द्द प्रेम

'पेमरसायन' नामक पुस्तक में प्रण्डित प्रवर विश्वनाथ ने प्रेम का विवेचयन किया है । जिसमें अने प्रेम-संबंधी ग्रंथों का उल्लेख हुआ है । विश्वनाथ श्रंगार को आद्य रस मानते हैं और प्रेम को उसका आश्रयभूत धर्म मानते हैं ।

सत्वगुण रूपी जल जिसमें शोभ देता है, ऐसे चित्त रूपी समुद्र मे दृष्टि, परिचय, हार्द्द एवं प्रेम इनकी उर्म्मि-परंपरा उत्पन्न होती है । दृष्टि का परिणाम, परिचय, परिचय का परिणाम हार्द्द और हार्द्द का परिणाम प्रेम होता है ।

चलायमान चित्त की उदासीन वस्तुओं में जो अनिवारणीय वृत्ति होती है, उसे 'दृष्टि' कहते हैं । चलचित्त की संस्कार धायिका वृत्ति परिचय कहलाती है । दोष को न देखने वाली चित्त वृत्ति हार्द्द है । निजी वस्तुओं में हार्द्द में हार्द्द की बहुलता सौहार्द्द है । यही हार्द्द या सौहार्द्द जब भोग पर्यवसित होता है, तब वह प्रेम कहलाता है ।

अभिनवगुप्त ने 'इच्छा-विशेष' को प्रेम कहा है । किसी काम्य वस्तु के लाभ (प्राप्ति) से भी जो इच्छा निवृत्त न हो, वह 'इच्छा-विशेष' हे । वह इच्छा-विशेष यदि दोष दर्शन से नष्ट हो जाये, तो वह हार्द्द कहलाती है । यदि वह अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति से नष्ट हो जाय, तो सौहार्द्द है । हार्द्द एवं सौहार्द्द दोनों से विलक्षण जो इच्छा-विशेष है तथा जो दोष दर्शन अथवा विषय लाभ किसी से नाश्य नहीं है, वैसा दुर्लभ एवं अकथ्य राग 'प्रेम' कहा जायेगा ।

उपर्युक्त मतो में हार्द्द एवं सौहार्द्द की परिभाषाओं में कोई मौलिक अंतर नहीं प्रतीत होता । दृष्टि तथा परिचय के फलस्वरूप जो वृत्ति चित्त में उदित होगी, वह इच्छ-विशेष ही होगी । प्रथम मत मे जो दोष को देखे ही नहीं, वह हार्द्द है, किन्तु यदि दोष दिखाई ही पड़ जाय, तब इच्छा-विशेष नष्ट हो ही जायेगी । इसी प्रकार हार्द्द की बहुलता सौहार्द्द है । अतएव, वह दोष दर्शन मात्र से नष्ट नहीं होगी और अभीष्ट की प्राप्ति तक टिकी रहेगी । प्राप्ति के बाद वह इच्छा-विशेष नष्ट हो सकती हे । अतएव, वह सौहार्द्द कही जा सकती है । इसी प्रकार प्रथम मत में प्रेम को भोग-पर्यवसायी बताया गया है, जिससे ऐसा भास होता है कि भोग के बाद वह नष्ट हो सकता है, लेकिन यह कथन संगत नहीं प्रतीत होता है क्योंकि प्रेम में भोग प्रासंगिक है, भो प्रेम का लक्षण नहीं हो सकता । अबएव ये ही कथन अधिक समीचीन है कि हार्द्द एवं सौहार्द्द दोनों को अतिक्रान्त करने वाली इच्छा-विशेष 'प्रेम' है ।

प्रेम के द्वादश भेद -

प्रेमरसायनकार ने प्रेम की बारह अवस्थाएं बतायी हैं -उप्त, यत्त, ललित, दलित, मिलित, कलित, छलित, चलित, क्रान्त, विह्वत, गलित और संतृप्त ।

1. **उप्त** श्रवण इत्यादि से चित्त में जो दर्शनोत्सुकता उत्पन्न होती है, 'उप्त' है
2. **यत्त-** कृष्णकल्पद्रुम के अनुसार कपटपूर्ण प्रश्न से व्यक्त हो जाने पर उप्त 'यत्त' कहलाता है । किन्तु कपट-प्रश्न उपलक्षण मात्र है । दर्शनोत्सुकता यदि किसी तरह व्यक्त हो जाए तो यत्त होता है । इस प्रेम के चरित्र अर्थात् आचरण रूपी फलक पर छल का पाण्डुलेख अर्थात् प्रथमारम्भ होता है । पहले नायिका के आचरण में छल नहीं था, पर अब उसमें छल का आरम्भ पहले-पहल होता है । अबएव वह कपटपूर्ण प्रश्न सखी आदि करती हैं ।
3. **ललित** निपुण छल से उत्पन्न हुए अवलोकन रूपी जल से सिक्त होकर यह ललित कहलाता है इसमें बारम्बार देखने रूप में धृष्टता का आरम्भ होता है तथा आगे चालकर प्रिय के निरन्तर देखते रहने की इच्छा से नेत्रों में खुजली उत्पन्न हो जाती है । धार्ष्टय तथा कण्डति (खुजली) इन दो के उत्पन्न होने पर 'अव्यक्त

ललित' होता है और श्वेद, स्तम्भ, रोमांच स्वरभंग तथा कम्प इन पांच के उत्पन्न हो जाने पर व्यक्त ललित हो जाता है ।

4. **दलित** किसी प्रकार के दृष्टि विच्छेद होने पर ललित 'दलित' हो जाता है । निमेष के कारण भी दृष्टि-विच्छेद दलित होगा । यद्यपि तंत्रामृतकार के अनुसार, निमेषमूलक दृष्टि विच्छेद ललित दलित उभयात्मक होता है और गुणाकार के अनुसार यह केवल दलित का आभास है । वैवर्ण्य, प्रलय इत्यादि अनुभव इसमें भी हो सकते हैं । इसकी विशिष्ट अवस्था यह है लोचनों में तीक्ष्णता, प्रेमविषयक (प्रेमास्पद) से अतिरिक्त वस्तुओं के विषय में कान में कुद नहीं सुनने की प्रवृत्ति, अन्य पदार्थों में प्रिय की भ्रान्ति, विनिद्रता इत्यादि दशाएं दलित में होती हैं । इस प्रेम में चित्त प्रायः द्रवित होता है ।

5. **मिलित** वियुक्त प्रेम-पात्र के स्वच्छन्द भाव से अवलोकन रूपी लाभ से द्रवित चित्त में जो आकार पुनः आ जाये, वह 'मिलित' कहलाता है । यह ललित के समान होता है । ललित प्रेम मे व्याजावलोकन से प्रिय प्रेक्षण होता है । मिलित में स्वच्छन्द भाव से बीक्षण होता है । स्तम्भ, रोमांच, स्वर-भंग, वैवर्ण्य इत्यादि 'मिलित' प्रेम में व्यक्त होते हैं । ऐसा दलित प्रेम के परिणाम रूप में घटित होता है । कतिपय आचार्यो के मतानुसार मिलित में नायक को उपालम्भ देने की अभिलाषा का पाण्डुलेख, अर्थात् आरम्भ होता है ।

6. **कलित** उपभोग से चित्त का द्रवित हो जाना 'कलित' प्रेम है । प्रेम विषय यानि प्रेमास्पद में कर्मेन्द्रियों का अभिमुख हो जाना 'उपभोग' कहलाता है । कर्मेन्द्रिया के व्यापार कामिनियों से संबंधित होने के कारण 'हाव' कहलाते हैं । भक्ति रत्नाकर में कहा गया है कि पहले तो प्रेम उत्पन्न नहीं होता , उत्पन्न होता है तो नष्ट नही होता यदि वह नष्ट हो जाये तो वह प्रेम नहीं, राग है ।

7. **छलित** प्रेम-रोष से संयुक्त प्रेम को 'छलित' कहते हैं । इसमें गर्व एवं याचना का

आरम्भ हो जाता है । तंत्रामृतकार प्रेम रोष को उभयनिष्ठ (नायक-नायिका) दोनो में मानते हैं । हरिदास नायक में प्रेम-कलह का वर्णन उचित नहीं मानते, किन्तु नायिका के मान करने के बाद नायक में प्रेम-रोष दिखाने का वे अनुमोदन करेंगे ।

8. **चलित** भरण समय में उत्थित चिन्ता से जो द्रवित होता है, दूसरे जन्म में उसका 'चलित' नामक प्रेम होता है । इसमें लज्जा के विनाश का आरम्भ होता है ।

9. **क्रान्त** चलित दशा में पूर्वोक्त प्रफुल्लित चित्त वाले यत्त सदृश प्रतिक्षण नयनों के मूंदने से जो प्रेम व्यक्त होता है, वह 'क्रान्त' है । एक छोटी सी मानसूचक चेष्टा से चित्त जो पिघल जाता है, उसे 'विक्रान्त' कहते हैं । यही क्रान्त विलक्षणावस्था को प्राप्त कर 'संक्रन्त' कहलाता है । अनुक्षण परिताप से जब चित्त द्रुत हो जाता है, तो उसका नाम संक्रांत है । यह प्रेम जन्म साफल्य का हेतु है ।

10. **विहृत** संक्रांत नामक प्रेम बढ़कर विहृत कहलाता है । चिन्ता से चित्त का द्रवित होना संक्रान्त का रूप होता है । वही दूसरे जन्म में बढ़कर विहृत नामक प्रेम हो जाता है । इसमें चित्त की सदा द्रवावस्था होती है, काठिन्य स्वल्पकालिक होता है ।

11. **गलित** विहृत दूसरे जन्म में बढ़कर 'गलित' हो जाता है । गलित में फूल सदृश सुकुमारता आ जती है । इसे पूर्ण जड़ावस्था माना जाता है ।

12. **संतृप्त** गलित बढ़कर संतृप्त हो जाता है । तंत्रामृतकार की टिप्पणी है कि अनेक जन्मों से सिद्ध संतृप्त हृदय वाला सुधी जीवन-मुक्त दशा को प्राप्त होता है । इसके लिए कोई कर्तव्य इष्ट नहीं है ।

रति की उत्पत्ति हेतु

कामसूत्र में प्रीति उत्पन्न होने के चार प्रकार बताए गए हैं -

1. **अभ्यासजन्य** आखेट, नृत्य, गीत, वाद्य इत्यादि क्रियाओं में कर्माभ्यास से उत्पन्न होने वाली प्रीति अभ्यासिका है ।

2. **संकल्पजन्य** -

2\. **संकल्पजन्य** किसी कार्य में अपने अभीष्ट कार्य के सुख की कल्पना करने से उत्पन्न होने वाली प्रीति आभिमानिकी है

3\. **स्मरणजन्य** अन्य नायक नायिका के साथ लण करने पर भी उसमें अभीष्ट नायक नायिका की कल्पना करने से संप्रत्ययात्मिक प्रीति है ।

4\. **इन्द्रियजन्य** भिन्न-भिन्न कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उनके विशिष्ट विषयों का अनुभव विषयात्मिका प्रीति है । यथा प्रसंग में स्त्री-पुरूष सभी इन्द्रियों द्वारा सुखानुभूति करते हैं ।

वात्स्यायन ने कहा है कि स्त्री-पुरूष अपनी रूचि के अनुकूल इन चारों प्रकारों में से आचरण का सुखानुभव करें ।

रूपगोस्वामी के मतानुसार 'मधुरारति' अभियोग से विषय से संबंध से, अभिमान से, तदीय विषय से, उपमा से तथा स्वभाव से उत्पन्न होती है ओर इनमें यथोत्तर होती है ।

1\. स्व या पर से भाव (अनुराग) की उत्पत्ति अभियोगजा है । 'स्व' में नायक-नायिका को बिना अन्य व्यक्ति के माध्यम क अपने ही अनुराग होता है । 'पर' में सखी इत्यादि माध्यम होते हैं ।

2\. रूप, शब्द, स्पर्श, इत्यादि पांच विषयों से उत्पन्न होने वाली रति वैषयिकी है ।

3\. कुल, रूप, शौर्य, सौशील्य इत्यादि की समग्रता की प्रतीति से उत्पन्न रति 'संबंधजा' है ।

4\. अनेक रमणीय पदार्थो के रहते हुए भी किसी एक विशेष की प्रार्थना या अभिलाषा 'अभिमानजा' या 'अभिमानिकी' हैं ।

5\. पद-चिन्ह, गोष्ठ तथा प्रिय सखा-सखी इ यादि 'तदीय विशेष' हैं । इनके संसर्ग से भी रति उत्पन्न होती है ।

रति की अभिव्यक्ति के ये प्रकार भोजराज के 'सरस्वती कण्ठामरण' से लिए गये प्रतीत होते हैं, क्योंकि भोज ने भी ये भेद गिनाए हैं ।

रति की कोटियां -

रति की तीन कोटियां कहीं गयी हैं - साधारणी, समंजसा, समर्था । ये क्रमशः कुब्जादि में, महर्षियों में तथा गोगुल की देवियों में होती हैं । ये क्रमशः मणि सदृश नातिसुलभ, चिन्तामणि के समान सुदुर्लभ तथा कौस्तुभमणि के समान अनन्य काम होती है ।

1. **साधारणी रति** - हरि के साक्षात दर्शन से उत्पन्न होती है तथा संभोग की समीहा से युक्त रहती है । संभोगेच्छा के ह्रास होने पर इस रति का भी ह्रास होता है ।

2. **समंजसा रति** गुणादि के श्रवणादि से पत्नी भाव से उत्पन्न होती है । जिसमें संभोग-तृष्णा कभी-कभी खण्डित हो जाती है ।

3. **समर्था रति** विशेषता को प्राप्त रति है । इसमें संभोगेच्छा तादात्म्य प्राप्त कर लेती है । इस रति में सबसे अद्भुत विकास की लहर के चामत्कार उत्पन्न होते हैं और यह सदैव संभोग इच्छा से पूर्ण रहती है । समर्था मे कृष्ण के सौख्यार्थ ही निरन्तर उद्यम होता है । जबकि समंजसा में स्वसुख के लिए भी उद्योग होता है ।

यही समर्था रति (प्रेम, स्नेह इत्यादि के परिणाम से) प्रौढ़ होकर 'महाभाव' दशा को को प्राप्त होती है जो श्रेष्ठ भक्तों तथा विमुक्तो द्वारा है । उद्दीपन प्रकरण में रूप-गोस्वामी ने कहा है कि साधन भक्त-जन ब्रजदेवियों के कृष्ण विषयक भाव को स्वरूप लक्षण से और कृष्ण के ब्रजदेवि विषयक भाव को तटस्थ लक्षण से आस्वादित करते हैं ।

इन तीन भेदों के अतिरिक्त अवस्था भेद से उत्पन्न उत्कर्ष की विशिष्टता से रति के ये भेद कहे गये हैं -

प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग तथा भाव या महाभाव ।

प्रेम की कोटियां तथा लक्षण -

ध्वंश का कारण होने पर भी जब पारस्परिक भाव-बन्धन ध्वंश-रहित होता है, तब वह प्रेम कहलाता है । चित्त रूपी दीप को ज्वलित करने वाला प्रेम स्नेह जिसे है, हृदय को द्रवित करने के कारण ही, यह संज्ञा मिली है । इसमें दर्शनादि की बार-बार इच्छा होती है। स्वरूपतः यह स्नेह दो प्रकार का होता है - धृतस्नेह तथा मधुर स्नेह । उत्कृष्टता की प्राप्ति से नवीन माधुर्य ग्रहण करने वाला वह स्नेह जो अनुदारता व वामता धारण कर लेता है, मान कहलाता है (मान प्रेम की निचली अवस्था में नहीं होता) विस्तंभ अर्थात् विश्वास को ग्रहण करने वाला मान प्रणय है । चित्त में प्रणय के उत्कर्ष से जब अधिक दुःख भी सुख के समान लगता है, तब वह राग कहलाता है । राग के नीलीराग, श्यामाराग, कौसुम्भराग तथा मंजीष्ठ राग ये चार प्रकार के होते हैं । राग अहार्य (अनाश्य) अनन्यसापेक्ष (अन्य की अपेक्षा न रखने वाला) है तथा जिसकी कान्ति वर्धनशील होती है, वह मंजीष्ठ राग माना जाता है ।

प्रेम का कल्पनाशील रहस्यात्मक स्वरूप

एक - प्रेम के स्थायित्व के लिए प्रेमियों में परस्पर निष्ठा अत्यावश्यक है निष्ठा तभी उत्पन्न होती है जब उनमें से प्रत्येक दूसरे के लिए रहस्य के आवरण से आवृत्त हुआ करता है । अत्यन्त निकट के साहचर्य एवं समागम के बाद भी प्रेमी अपने प्रेमास्पद की मानसिक किंवा आध्यात्मिक सम्भावनाओं के सम्बन्ध में जिज्ञासा एवं विस्मय की अभिवृत्तियां बनाये रहता है । परिचय से अवज्ञा उत्पन्न होने वाली लोकोक्ति यहां चरितार्थ नहीं होती ।

टोर्ड का कथन है - 'प्रेम का स्थायित्व प्रेमास्पद व्यक्ति के चारो ओर एक खोज की यात्रा के अतिरिक्त और कुछ नहीं, है । अधिक से अधिक निष्ठावान व्यक्ति भी लगातार दो दिनो तक एक ही स्त्री को एक समान प्यार नहीं करता इस कथन का अभिप्राय यही है कि सामान्य प्रेम का प्रवाह पारस्परिक यौन मनोवृत्ति की अगणित सम्भावनाओं की शाश्वत खोज है और इसमें सफलता प्राप्ति हेतु एक-दूसरे की रूचियों, भावनाओं एवं पसन्दों के प्रति अत्यन्त सुकुमार, सहानुभूति तथा प्रेम की कला एवं टेकनीक में यथेष्ट अभिज्ञता परमावश्यक है ।

प्रेम के आनन्द की स्थिरता हेतु समाज एवं जीवन के कठोर यथार्थ से निकलकर तनिक समय तक प्रणयी युग्म का कल्पना के स्निग्ध सुकुमार संसार में रमण करना भी आवश्यक हो जाता है । सामाजिक जीवन में जो मनोरथ भग्न हो जाते हैं उनकी उपलब्धि प्रेमियों के ऐकान्तिक जीवन मे अत्यन्त सुखद भाव से होती है । प्रेमी राजकुमार आकर्षण होता है और प्रेमिका राजकुमारी अप्सरा होती है । पूर्वराग के दिनों में यथार्थ की दीवारें गिर जाती हैं एवं अभिलाषाएं एवं आकांक्षायें अज्ञात रूपों एवं स्थितियों की मनोमयी सृष्टि करती है । कार्लग्रूस का कथन है कि - अन्तवृत्तियां क्रीड़ा के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति एवं पुष्टि करती हैं जिससे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्राणिशास्त्रीय उद्देश्य की सिद्धि होती है । उसी प्रकार , जो परिपक्व अन्तवृत्तियां बाह्य संसार में अपने लिए कोई तात्कालिक उपयोग नही पा सकती हैं, वे प्रेमियों के लीलामय आचरण में उनकी कल्पना तरंगों तथा मनारचनाओं में अभिव्यक्ति प्राप्त करती हैं । प्रेम की कविता में प्रेमियो की नाना उमंगों, नाना अभिलाषाओं एवं मनः सृष्टिओं का जो प्रचुर चित्रण उपलब्ध होता है, उसका रहस्य यही मनोवैज्ञानिक तथ्य है ।

दो - गहरे प्रेमियों के जीवन में एक ऐसा सोपान भी आता है जब वह सम्पूर्ण सौन्दर्य एवं प्रेम जो वे प्रेमविषय में स्थापित कर चुके होते हैं, उनके लिए उससे सर्वथा स्वतंत्र एक मानसिक मूर्ति बन जाता है । यही कारण है कि कुछ व्यक्ति जो संख्या में अल्प ही होते हैं वे प्रेम का वह तन्मयतापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं जिसकी वास्तविक परिपूर्ति बाह्य संसार में नही हो पातीं यह इस कारण घटित होता है कि प्रेमास्पद का भौतिक व शारीरिक धरातल से निकालकर एक मानसिक प्रतिमा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया जाता है ।

अतः स्पष्ट है कि गहरे प्रेमी रहस्यवादी बन जाते हैं और गहरी प्रेमानुभूमि में प्रेम-विषयक रहस्यमयता के हिरण्यमय पात्र में आवृत्त हो जाता है । ऐसे प्रेम का स्वरूप अत्याख्येय और उसका आस्वाद गूंगे के गुण सदृश अकथनीय है । किसी विरले पात्र में ही वह प्रकाश करता है, वह गुण रहित, कामना रहित, प्रतिक्षण वर्धमान, अविच्छन्न, सूक्ष्म अनुभव रूप है । इस प्रेम को पाकर प्रेमी इसे ही देखता है, इसे ही सुनता है, इसी का वर्णन करता है, इसका ही चिन्तन करता है ।

अध्याय – ३

{कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में सौन्दर्य}

आंगिक सौन्दर्य वर्णन :

पुरूष एवं स्त्री सौन्दर्य

द्वितीय अध्याय में सौन्दर्य का विस्तृत विवेचन करते हुए ये कहा जा चुका है सौन्दर्य मुख्यतः वस्तुगत सत्ता है । यह सत्ता प्रकृति एवं मनुष्य दोनों में समान रूप से प्राप्त होती है । प्रकृतिगत सौन्दर्य ऐन्द्रिक चेतना को जाग्रत करता है तो मानवी सौन्दर्य वस्तुगत विबोध के साथ भाव जगत के सौन्दर्य का अंकन करता है । इसी सन्दर्भ में यह प्रश्न उठाया गया है कि सौन्दर्य दृष्टि में है या दृष्टा में अथवा वह वस्तु में है या मूल्य में उसकी भौतिकवादी, भाववादी और आध्यात्मवादी स्वरूप की व्याख्या करते हुए निष्कर्ष यह निकाला गया है कि पाश्चात्यवादी सौन्दर्यदर्शन में वस्तु और दृष्टि दोनों का महत्व है तो भारतीय मतानुसार इससे एक पग आगे बढ़कर सत्यं शिवं का समन्वय कर उसे मूल्यवादी दृष्टि बताया है ।

प्रस्तुत अध्याय में हम कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में चित्रित स्त्री-पुरूष सौन्दर्य के बाह्य पक्ष एवं आन्तरिक पक्ष का सम्यक मूल्यांकन करेगें ।

भारतीय सौन्दर्य शास्त्रियों ने स्त्री और पुरुष सौन्दर्य के लिऐ उपमानों का समान रुप से प्रयोग करके यह दृष्टि दी है कि बाह्य सौन्दर्य के साथ आन्तरिक सौन्दर्य या शील ही चरित्र का मूल आधार है नाट्यशास्त्र के आचार्य ने नायक और नायिका विवेचन में गुण प्रकृति, शील आदि के आधार पर उत्तम मध्यम, अधम, धीरोंद्धान्त, धीरललित, धीरोद्धात, धीरप्रशास्त एवं नायिकाओं के विवेचन क्रम में प्रकृति अवस्था, आचरण, शील कामदशा इत्यादि का आधार स्वीकार किया है यहाँ मोटेतौर पर पुरुष-स्त्री सौन्दर्य के लिए हम जिस आधार को लेकर यह विवेचन प्रस्तुत करेगें वह बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य है ।

कालिदास एवं भवभूति के समय में पर्याप्त अन्तराल है फिर भी युगीन आवश्यकताओं के अनुरुप पुरुष सौन्दर्य की जो रुपरेखा इन नाटककारों ने प्रस्तुत की है वह यद्यपि सूक्ष्म-रूप से अंकित है किन्तु उसमें युगीन सौन्दर्य बोध की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है यहाँ आलोच्य नाटककारों के द्वारा वर्णित पुरुष सौन्दर्य की यत्किचिंत झांकी चित्रित की जा रही है ।

कालिदास के तीनो नाटकों में दुष्यन्त, पुरुरवा और अग्निमित्र नायक है कालिदास के तीनों नायकों के बाह्य सौन्दर्य का अंकन कहीं प्रत्यक्ष कहीं परोक्ष रुप में संवादो के माध्यम

से व्यंजित किया है । दुष्यन्त धीरोदात नायक है उसके पुरुषोचित सौन्दर्य बिम्ब का अंकन करते हुए नाटककार ने लिखा है अहर्निश प्रत्यंचा खीचनें से उनका शरीर कठोर हो गया है निर्बल अंग वाले है वो, वे पर्वती हाथी के समान विशाल देह वाले है सेनापति कहता है

अनवरत धनुर्ज्यास्फातनकूरपूर्व
रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैरभिन्नम् ।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं
गिरिचर इव नागः प्राणसारं विभर्ति ।।[1]

कालिदास ने पुरूष शोभा का कोई क्रमबद्ध-अंगप्रत्यंग के अनुसार वर्णन नहीं किया है । इस प्रकार शरीर गठन के वर्णन से दुष्यन्त तीस वर्ष से अधिक आयु का सुदर्शन युवक प्रतीत होता है उसका शरीर लम्बा सुदृढ़ हैं उसके सम्पर्क में आने वाले प्रायः सभी लोगों पर उसके व्यक्तित्व का अच्छा प्रभाव पड़ा है

प्रियंवदा कहती है -

"अनुसूये, को न खल्वेषे चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन्प्रभाववानि लक्ष्यतों[2]"

तात्पर्य यह कि कालिदास ने दुष्यन्त के प्रत्यक्ष सौन्दर्य की अपेक्षा परोक्ष माध्यम से रूप सौन्दर्य का चित्रांकन किया है जो अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है ।

पुरुरवा विक्रमोर्वशीयम् का नायक है उसके भव्य-सुदर्शन, मोहक व्यक्तित्व से स्वर्गीय सुषमामण्डित उर्वशी भी रूपासक्त हो गयी वह कहती है कि यदि चन्द्रमा से अमृत की वृष्टि हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है । ध्यातव्य यह है कि मुखमण्डल की उपमा प्राचीन काल से ही चन्द्रमा से की जाती रही है ।

उर्वशी (अपवार्य) अभिजातंखल्वस्य वचनम् । अथवा चन्द्रादमृतमिति किमत्राश्रर्यम्[3] ।

उर्वशी के वियोग में उनके अंगों का शैथिल्य वैवर्ण्य अश्रुशिक्त नेत्रों की अभिलाषा का यत्र-तत्र चित्रांकन कालिदास ने किया है ।

1. अभिज्ञान शाकुन्तल 2/4
2. अभिज्ञान शाकुन्तल
3. विक्रमोर्वशीयम् प्रथम अंक पृष्ठ 2।

मालविकाग्निमित्रम् में नायक अग्निमित्र है जो धीरललित श्रेणी का नायक है वह अन्त:पुर विलासी नायक है नाटककार ने उसके बाह्य सौन्दर्य का चित्रांकन नगण्य रूप में किया है । तात्पर्य यह कि कालिदास ने नायकों के अतिरिक्त पुरुष पात्रों के रूप में अमात्य, पुरोहित ब्राह्मण, साधु, संत राजकीय सेवक, दास गण, ऋषि, विदूषक आश्रम के शिष्यगण रंगशाला के सहायक पुरुषों का उल्लेख किया है यद्यपि इनके शारीरिक सौन्दर्य का अंकन नहीं हुआ तथापि रूप वेषभूषा, गुण, शील आचरण आदि से ये सभी पुरुष पात्र नायक के बाह्य सौन्दर्य के चित्रांकन में सहायक हुए हैं ।

भवभूति ने कालिदास की अपेक्षा पुरुष सौन्दर्य का अधिक स्पष्ट वर्णन किया है । नाटककार भवभूति ने बाल सौन्दर्य एवं पुरुष सौन्दर्य के बहुविध चित्र बिम्बात्मक रूप में प्रस्तुत किया है । इन भाव चित्रों को देखकर यह सहज ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भवभूति की सौन्दर्य विषयक दृष्टि अत्यन्त व्यापक और क्रमबद्ध रूप में प्रत्यक्ष गोचर होती है बाल पौगअंग, कुमार, युवा एवं तेजोदीप्त रुप का बिम्बांकन अपने नाटकों में किया है सबसे पहले बाल सौन्दर्य का निरुपण यहाँ किया जा रहा है ।

बाल सौन्दर्य :-

उत्तररामचरित में राम के उत्तरार्ध जीवन की कथा है । जिसके अश्वमेघ प्रकरण में अयोध्या की सेना के साथ लवकुश का सामना होता है । लक्ष्मण, चन्द्रकेतु, जनक, कौशिल्या, प्रभृति सभी आवान वृद्धि नर नारी लवकुश के नैसर्गिक सौन्दर्य को देखकर आकृष्ट होते हैं ।

कौशिल्या इन बालकों को देख, इनमें राम की छवि प्रति छवि ढूढती है -

कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डने
वटुपरिषदं पुष्यश्रीकः श्रियैव समाजयन ।
पुनरपि शिभुर्भूतो वत्सः समे रघुनन्दनो,
झटिति कुरूतेदृष्टः कोअयं दृशोरमृतांजनम्[1] ।।

उनके ब्रह्मचारी रूप का वर्णन करते हुये जनक कहते हैं कि पीठ के दोनो ओर

1. उत्तररामचरित 4/19

शिखाओं से चुम्बित वाणपक्षों वाले दो तरकस लटक रहे हैं । थोड़ी सी भस्म के पवित्र चिन्ह से युक्त वक्षस्थल पर सस मृग का धर्मधारण किये हुये हैं । नीचे की ओर मजीष्ठ रंग की धोती मूंज के कमरबन्द से आबद्ध और हाथ में धनुष रूद्राक्ष से युक्त धागे का कंगन और पीपल का दण्ड विराजमान है । नाटककार भवभूति पौगण्य अवस्था जन्य सौकुमार्य एवं क्षत्री धर्म का साक्षात वेष प्रस्तुत श्लोक में इस प्रकार अंकित किया है -

चूड़ाचुम्बितकर्क पन्नमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्तोकपवित्रलांछनमुरो धत्ते त्वचं रौखीम ।
मौर्व्या मेखलया नियत्रितमधो वासश्चमाजिष्ठकं
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोअपरः पैप्पलः ।।[1]

भवभूति ने बालसौन्दर्य के आकर्षण का मनोवैज्ञानिककार निरूपित करते हुये लिखते है कि बालक की महनीयता विनयशीलता के कारण एवं मौग्धा मृसणता है । जिस प्रकार अयस्कान्त (चुम्बन) का छोटा सा टुकड़ा लोहे के धातु को अपनी ओर खीच लेता है, उसी प्रकार शिशु सौन्दर्य भी । कौशिल्या ऊर्ध्यकान्ति और कमल केसर रग लेने के कारण मधुरकंठयुक्त राजहंस को गम्भीर वाणी का प्रत्यक्ष दर्शन एवं श्रवण लवकुश के माध्यम से कर रही है । तात्पर्य यह कि क्रमशः वयः सन्धि में परिवर्तित होने वाले आगिक, कायिक विकारों का वर्णन भवभूति ने बड़े सूक्ष्मरीति से किया है । वह कहती है -

अहो ! न केवलं दरविस्फुष्टकुवलयमॉस लोज्वलेन देहबन्धनेन,
कवलितारविन्दकेसरकषायकठहंसयोष घर्घरानुनादिना स्वरेण च
रामभद्रमनुसरति ।।[2]

भवभूति ने लवकुश के ब्रह्मचारी मुनिरुपधारी एवं नयनानन्द देने वाले कोमल रूप का ही नहीं वर्णन किया है, अपितु अनेक प्रसंगो में उनके कठोर रौद्ररूप का भी चित्रांकन किया है । यह चित्रांकन यज्ञास्व पकड़ने के उपरान्त अयोध्या सेना से युद्ध करते समय का है । इस सौन्दर्य निरुपण की यह विशेषता है कि जो सौन्दर्य आकर्षण एवं चुम्बक की भॉति खीचने वाला हो, निर्दोष चन्द्रमा के समान जिसका मुखमण्डल अत्यंत लावण्ययुक्त हो । क्रोधाविष्ट होने पर वह कैसा तेजोदीप्त एवं

1. उत्तररामचरित 4/20 2. उत्तररामचतिर पृष्ठ 106

दर्यस्फीतयुक्त होगा । इसकी सहज कल्पना पाठकों को आकर्षित करती है । आगे के कुछ प्रसंगो में कोमल मृसण सुचिकण एवं रौद्र रूप में भृकुटी निक्षेप आरक्त नेत्रों का चित्रांकन संक्षिप्त रूप में किया जा रहा है सुमन्त्र लवकुश के इस रूप का चित्रांकन करते हुये कहते है -

क्रोधेनोद्धतधूतकुन्तलभरः सर्वांगजो वेपथुः
किंचित्कोकनदच्छदस्य सदृशे नेत्रे स्वयं रज्यतः ।
धत्ते कान्तिमिदं च वक्त्र मनयोर्भंगे न भिन्नं
भ्रुवोश्चन्द्रस्योद्भटलांछनस्थ कमलस्योद्भ्रान्तभृंगस्यच ।।[1]

राम को भी लव निखिल ब्रह्माण्ड की सुरक्षा के लिये धर्म का मूर्ति मंत्र रूप लगा उनके आलिंगन से कृतार्थ हो गये । जिसमें कमल पखुड़ी की तरह शुचि कणता और चन्दन के सदृश शीतलता का संयोग था -

परिणतकठोरपुष्करगर्भच्छदयीनमसृण्सुकुमारः ।
नन्दयति चन्द्रचन्दननिष्पन्दजउस्तव स्पर्शः ।।[2]

भवभूति ने कुश के श्यामल वर्ण को नीलम की भाँति एवं ध्वनि को मेघ गर्जना से उपमित किया है

नवनीलनीरधरधीरगर्जितक्षणबद्धकुन्द्रमलकदम्बउम्बरम्[3] ।

लव और कुश को एक साथ देखकर उनकी आकृति वेषभूषा, शील, आचरण, आंगिक विकार आदि में राम अपने कुमार अवस्था के प्रतिछवि देख रहे हैं कविभवभूति ने युवक द्वय की शारिरज सहज सिद्ध सुन्दरता, वृषभ स्कन्धु, कयोतकष्ठ, श्रींग शावक दृष्टि प्रियमातासीता के समान सद्य स्फुटित कमल कान्ति श्वेत शुभ्र निर्मल दन्तछवि एवं कर्णो का विस्तार इत्यादि को तटवत देखकर जिस अनिर्वचनीय सुख की प्राप्ति की थी । भवभूति ने ऐसे भावी रघुवंश दीपको का सौन्दर्य निरुपण युवकोचित रूप में किया है -

वपुरवियुतासिद्धा एवं लक्ष्मीविलासाः
प्रतिकलकमनीयां कान्तिमुदभेदयति ।

1. उत्तररामचरितम् 5/35
2. उत्तररामचरितम् 6/13
3. उत्तररामचरितम् 6/17

अमिलनवि चन्द्रं रश्मय: रचे यथा वा

विकसितमरविन्दं विन्दवो माकरन्दा: ॥ ॥ ॥

करोरपारावत कण्ठमेचकं वपुर्वषस्कन्धसुबन्धुरासयो:

प्रसन्न सिंहस्तिमितं च वीक्षितं ध्वनिश्चमागंलरूमृदमासलं

अपिजनक सुतायास्तच्च तच्चानुरूपं

स्फुमिहं शिशु युग्मे नैयुणोन्नेयमस्ति ।

ननुपुनरिव तन्मे गोचरीभूतमक्ष्णो ।

रविनवशतपल्लश्रीमदास्यं प्रियाया: ॥ 2 ॥[1]

मालती माधव में पुन: स्मरण के रूप में मालती के शिशु सौन्दर्य का संक्षिप्त निदर्शन हुआ है जिसमें उसके कोमल दुग्ध दन्तो और मनोमोहनी वाणी उल्लेख है ।

अनियतरुदितस्तिम् विराजत्कतिण्य कोमलदन्त कुड्.मलाग्रम

वदनकमलमं थिसोस्मरामिस्खलदसमंजस मुग्धजल्पिंतते[2] ।।

महावीर चरित में भवभूति ने राम में कुमार पौग्डय और युवावस्था के अनेकचित्र अंकित किये है । बाल्य और कुमारावस्था के मध्यका राम का सौन्दर्य देखिये जिसे देखकर जनक जैसा विदेह भी आकृष्ट हो रहा है । यहाँ उल्लिखित करना पिष्टपेषण नहीं होगा कि ऐसा ही सौन्दर्य समान शब्दावलीमें लवकुश का सौन्दर्य निरुपण उत्तररामचरित में नाटककार ने किया है । सम्भवत: नाटककार की यह दृष्टि रही है कि राम की इस अवस्था में लवकुश भी समान रूपाकृति शील एवं गुणधर्म में रहे होगें ।

तात्पर्य यह है कि कालिदास के नाटकों में बाल-सौन्दर्य का चित्रांकन नहीं हुआ है । इसका कारण यह है कि उनके नाटकों के घटना-व्यापार में बालकों की उपस्थिति नगण्य रही है, जबकि भवभूति के महावीर चरित एवं उत्तरराम चरित में कथा को नाटकीय मोड़ बालकों के माध्यम से दिया गया है । इसीलिए भवभूति ने शिशु सौन्दर्य का निरुपण वय: क्रमानुसार रूप में किया है । साथ ही बाल सौन्दर्य निरुपण में अवस्था अनुसार अंग-दीप्त के वर्णन का विरोध ध्यान रखा है । नाटककार ने शिशु रुप में उनकी सुकुमारता, सुचिक्कणता, मसृणता एवं कोमलता

1. उत्तररामचरितम् 6/24-25, 26 2. मालतीमाधव 10/2

का विशेष ध्यान रखा है । जबकि अघपकी या वय:सन्धि में वृषभ-स्कन्ध, भृकुटि-कौटिल्य, आयताकार नेत्र, उल्लेख है । ब्रह्मचारी लवकुश के कमनीय लावण्य एवं सघः प्रस्फुटित कठोरता के संयोग से उत्पन्न नूल सौन्दर्य का विशिष्ट चित्रांकन नाटककार ने किया है ।

भवभूति के नाटको में पुरुष सौन्दर्य :-

कालिदास के तीनो नाटकों दुष्यन्त, पुरुरवा एवं अग्निमित्र के सौन्दर्य का निरुपण करते हुए यह कहा जा चुका है कि नाटककार कालिदास ने अपने नाटकों में जिन घटनाओं का वर्णन किया है उसमें प्रेमकथा का आधिक्य, पौरुष-पराक्रम युद्ध-प्रियता आदि पुरुषोचित सौन्दर्य निरुपण की घटनाएं संक्षिप्त रूप में हैं । अतः कालिदास के नाटकों की बाह्य आंगिक शोभा एवं आन्तरिक दानवीरता, दृढ़ता, चातुर्य, शूरवीरता इत्यादि का संक्षिप्त निदर्शन हुआ है ।

यहाँ हम भवभूति के नाटकों में प्राप्त पुरुषोचित सौन्दर्य का वर्णन कर आलोच्य नाटककारों की एतद् विषयक दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे ।

उत्तररामचतिर में राम के बाह्य-सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक मनोभावों का सूक्ष्म चित्रण है । चित्रवीथिका में अंकित राम के श्यामल वर्णयुक्त सुपुस्ट शारीरिक सौन्दर्य का चित्रांकन इस प्रकार हुआ है, सीता कहती है -

> अहो, दलन्नवनीलोत्पलश्यामलस्निग्धमसृणशो-
> भमानमांसलेन देह सौभाग्येन विस्मयस्तिमितता-
> वद्दृश्यमानसौम्य सुन्दर श्रीरनादरत्रुटितशंकरश-
> ससनः शिखण्डमुग्धमुखमण्डल आर्यपुत्र
> आलिखितः ।[1]

उनके आन्तरिक वियोग का वर्णन नाटककार ने उनके आन्तरिक दुःख की प्रतिछवि मुखाकृति में कराकर नाटककार ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है ।

मुरला कहती है -

> अभिर्थिन्नो गम्भीरत्वादन्तर्गूढ़ धनत्वयः ।
> पुटपाक प्रतिकाशो रामस्य करुणो रसः ।।[2]

1. उत्तररामचरित 1/12 पृष्ठ
2. उत्तररामचरित 9/1

इस प्रकार अत्यधिक कष्टावरोध करने वाली सुदीर्घ दुःख पंरपरा से रामचन्द्र के दुर्बल रूप भी वर्णन है[1] ।

संगूपवध के लिए पंचवटी पहुंचे राम के वैवर्ण्य, दुर्बल, पाण्डुर वर्ण, की रूपाकृति किन्तु आन्तरिक गम्भीरता के प्राकट्य का वर्णन नाटककार ने इस प्रकार किया है -

(दिष्टया कथं प्रभातचन्द्र मण्डलापाण्डर परिक्षाभदुर्वलेन
कारणे निजसौम्य गम्भीरानुभामवात्रप्रत्यभिज्ञेय एवार्यपुत्रो भवति ।

इसी प्रसंग में वासन्ती भी राम की परिवर्तित अवस्था का निरुपण करती है, जिसमें कहा गया है कि नूतन नीले कमलों के समान चिकनें अंगो से नेत्रों का उल्लास प्रदान करते हुए दर्शनीय, क्षण-क्षण नूतन प्रतीत होने वाले रामभद्र शोक के कारण विह्वल इन्द्रियो वाले तथा थूसरित निर्बल राम कठिनाई से ही पहचाने जाने हैं - नाटककार ने राम के आन्तरिक सौन्दर्य, एकपत्नीव्रत, गाढ दाम्पत्य प्रेम, अनन्यता एवं निर्दोश सीता को प्रजा रक्षणार्थ, परित्याग करने की विवशता के कारण जो आन्तरिक मनोवेग है, उसकी प्रतिच्छवि बड़ी कुशलता से अंकित की है -

नवकुवलयस्निग्धैरंगेर्ददन्नयनोत्सवं
सततमपि नः स्वैच्छादृश्यो नवो नव एव सः ।
विकलकरणः पाण्डुच्छायः शुचा परिदुर्बलः
कथमपि स इत्युन्ने तव्यस्तथापि दृशोः प्रियः ।[2]

यद्यपि राम के जीवन में घटित कार्यक्रमानुसार सौन्दर्य निरूपण के लिए अपेक्षित यह था कि पहले महावीर चरित में उनके सौन्दर्य का निरूपण कर तब उत्तररामचरित के सौन्दर्य का निरूपण स्वाभाविक प्रतीत होता किन्तु नाटक के आधार के साथ ही महावीर चरित में पुरुषोचित सौन्दर्य की कई दृष्टियाँ प्रतीत होती हैं, जिसमें एक ओर उनका बाल रूप है तो दूसरी ओर महापुरूष बनने की कथा के आवश्यकतानुसार उनके युवकोचित कठोर सौन्दर्य का निरूपण साथ ही अन्य पात्रों में प्राप्त कोमल, कठोर सौन्दर्य के साथ विरुत सौन्दर्य को भी स्थान प्राप्त हुआ है, जिसके कारण भवभूति की सौन्दर्य विषयक दृष्टि अपने चरम रूप में निदर्शित होती है । अतः सर्वप्रथम उत्तररामचरित में प्राप्त

1. उत्तर रामचरित 9/1
2. उत्तरराम चरित 3/22

राम के बाह्य एवं आन्तरिक गुणों का संक्षिप्त निदर्शन कर तदुपरान्त महावीर-चरित में उनके सौन्दर्य के विविध रूपों का चित्रांकन कर नाटककार की एतद्-विषयक दृष्टि की समीक्षा होगी ।

महावीर चरित के नायक राम है, जिनके कोमल एवं कठोर दोनों सौन्दर्य रूपों का चित्रांकन अनेक स्थलों पर हुआ है । उनके ब्रह्मचारी रूप का चित्रांकन, शिशु सौन्दर्य निरूपण के अन्तर्गत किया जा चुका है । यहाँ उनके युवकोचित सौन्दर्य का निरूपण किया जा रहा है । राम ने अपने अतुलनीय पराक्रम से मारीच सुबाहु का नाश ही नहीं किया प्रत्युत् अतिशय कठोर, गुरू शिव के धनुष को भंगकर अपने पराक्रम का परिचय भी दिया है । इसीलिये पृथ्वीतल में उनका यश सभी गाते हैं -

उत्पत्त्यैव हि राघवः किमपि तद् भूतं जगत्यद्भुतं
भव्यत्वेन किमस्य यस्थ चरितं देवासुरैर्गीयते[1] ।

भवभूति ने महावीर चरित में राम के चरित्र के शक्तिशील, एवं सौन्दर्य का अप्रतिम चित्रण किया है । उनके सौन्दर्य के सम्मुख आत्मीय कुटुम्बी सहृदय मित्र नहीं अपितु शत्रु भी स्तब्ध अभिभूत है - सूर्पणखा जैसी स्त्री भी उनके शारीरिक संगठन को देखकर अभिभूत हुए बिना नहीं रहती । वह कहती है -

अहो समग्रसौभाग्य लक्ष्मीपरिग्रंहण लोचनरसायनं
सौमाम्यस्य शरीर निमणिम यदिदानी ।

सौन्दर्य-निरूपण करते समय हमने द्वितीय अध्याय में सौन्दर्य प्रतीत के आधार आकर्षण, आकांक्षा एवं वासना का संक्षिप्त विवेचन करते हुए लिखा है कि-इनके मूल में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का महत्वपूर्ण हाथ है । किन्तु, यह कहना निर्भ्रान्त सत्य नहीं कि - शुचिक्कणता, कोमलता, मसृणता में ही सौन्दर्य का अधिभाष है । उसका एक दूसरा पक्ष भी है जिसमें पौरुषता है, कठोरता, निर्दयकुरूपता भी है । ऐसा सौन्दर्य आश्रय में भय एवं आतंक पैदा करता है किन्तु दर्शक, पाठक या श्रोता के मन को अपने काठिन्य के कारण अभिभूत भी करता है । भवभूति की सौन्दर्य-विषयक दृष्टि का चित्रांकन गत् पृष्ठों में किय गजा चुका है । यहाँ उसके द्वितीय पक्ष का यत्किंचित उद्घाटन कर एतद्-विषयक भवभूति की दृष्टि का विहंगावलोकन भी करेंगे । रामकथा की पात्रगत विशेषता

1. महावीर चरित 2/6

यह है कि उसमें शिशु कोमल, कठोर युवक, क्रूर निर्दय दैत्यदि पौरुषवृत्ति प्रधान पात्र भी है । सौन्दर्य के कठोर पक्ष का चित्र ऐसे ही पात्रों में मिलता है । परशुराम के दर्धर्ष रूप का चित्रांकन भवभूति ने निम्न प्रकार किया है -

सख्यः हा ! एष दीप्ययानदिनकरालोकदुस्प्रेक्ष्यजरठदेह प्रमापरिक्षेपभासुरो ज्वलन्तं परशुं धारयन्विश्रंखलोद्वलहुवह-शिखासहस्त्रसंदिग्धजटाप्रभभाआमरः सुदूरविक्षेपपाविद्धविटोरुदण्ड निर्भराभिघातविह्वलित वसुन्धरः परागत एव सकलंक्षत्रियमहा-राक्षसः[1]

भवभूति ने प्रत्यक्ष सौन्दर्य चित्रण की अपेक्षा उसके प्रभाव का वर्णनकर अपनी सौन्दर्यविषयक दृष्टि का परिचय दिया है । राम ने जब परशुराम को देखा तब उनके तेजस् समूह, तपस्या के मूर्तिमान विग्रह, प्रचण्डघमण्ड को प्राप्त वीर रस, भयंकर मूर्ति को धारण कर अर्थ की भाँति सुशोभित हो रहे थे । इस प्रकार उसमें स्वच्छन्दता तथा विचित्रता का अद्भुत मिश्रण दिखायी देता है । उनके भीषण सौन्दर्य का निदर्शन निम्न प्रकार है -

ज्योतिर्ज्वालाप्रचयजटिलो भाति कण्ठे कुठार
स्तूणीरोडसे वपुषि च चटाचापचीराजिनानि ।
वाणौ वाणः स्फुरित वलयीभूतलोलाक्षसूत्रे
वैषः शोभां व्यतिकरवतीयुभ्रशान्तस्तनोति ।।[2]

मालती-माधव प्रेम-प्रधान रूपक है । इसका नायक माधव है । उसके सौन्दर्य का निरूपण धीरोदान्त नायक रूप में हुआ है । उसका मुख पूर्ण शरद कालिक चन्द्रमा सदृश है, जिसने बाल्यावस्था में ही सभी विधाओं को प्राप्त कर लिया था कामदन्की कहती है -

तत उदयगिरेरिवैक एष स्फुरितगुणद्युतिसुन्दरः कलावान ।
इहि गति महोत्सवस्य हेतुर्नयनवतामुदियाय बालचन्द्रः ।[3]

1. महावीर चरित पृष्ठ 433
2. महावीर चरित, 2/26
3. मालती माधव 2/10

इस नाटक में माधव के सौन्दर्य-सम्बन्धी अनेक पक्ष या रूपों का उद्घाटन हुआ है । कहीं उसके कोमल, मसृण, सौकुमार्य रूपों का चित्रण है तो कहीं विरहजन्य वैवर्ण्य प्रधान रूप का । मालती के विरह में माधव प्रियंगु की लता-सदृश श्यामल वर्ण की देह-कान्ति से युक्त होकर किंचित पीले एवं श्वेत रंग का होकर शरीर अत्यन्त रमणीय प्रतीत होता है -

प्रियंगश्यामंगप्रकृतिरपि चापाण्डु मधुरं
वपुः क्षामं क्षामं वहति रमणीयश्च भवति[2] ।।

मालती-माधव में सौन्दर्य-विषयक एक अन्य विशिष्टता परिलक्षित होती है । उसमें नायक के स्वरूप एवं कुरूप (भीषण) रूप का चित्रांकन एक साथ किया गया है । जबकि ऐसा कम स्थानों में ही मिलता है । बात यह है कि सौन्दर्य के कोमल पक्ष हेतु नायक और उसके भीषण-पक्ष हेतु प्रतिनायक का चयन किया जाता रहा है ।

माधव में सुरूप-कुरूप दोनों का समन्वय उस समय मिलता है, जब वह मालती से निराश होकर मांस-विक्रेता बनता है -

तत्कोअयमतिगम्भीरमधुराकृतिरून्तम्भितकुटिलकुन्तलभारः कृपाणपाणिः
श्यशानमवतरित । य एषः कुवलयदलश्यामोअप्यंग दघत्परिधूसरं
ललितविकटन्यासः श्रीमान्मृगांकनिभाननः । हरति विनयं वामो
यस्य प्रकाशितसाहसः प्रपिगलदसृक्पंक पाणिर्लल्नन्नरजांगलः[2] ।।

कुरूपता सौन्दर्य का भावात्मक निषेध है । इससे जहाँ कवि की सूक्ष्म मेक्षिका दृष्टि का परिचय मिलता है, वहीं दूसरी ओर अतिशय शचिक्कणता, कोमलता, सौकुमार्य की आवृत्ति के कारण जो अरुचि उत्पन्न होती है, उसे विरुप सौन्दर्य के द्वारा नया आयाम दिया जाता है । मालती-माधव में श्मशान चित्रण के समय अशिव, विरूप सौन्दर्य का चमत्कारिक वर्णन हुआ है । एक-दो दृश्य अवलोकनीय है -

कणश्यिर्णदिपीर्णसृक्कविकटव्यादानदीप्तम्निभि
र्दृष्ट्राकोटिविरांकटैरित इतो घावद्रिभराकीर्यते ।
विद्युतत्पुंजनिकाशकेशननयमूश्मश्रुजालैनभो
लक्ष्यालक्ष्यविशुष्कदीर्घवपुषामुल्कामुखानां मुखैः ।।[2]

1. मालती माधव 5/5 2. मालतीमाधव 5/12

पृथुचलरसनोग्रमास्यगर्त
दघति विदार्य विशीर्णशुष्कदेहाः ।
चलदजगरघोरकोटराणां
द्युतिमिह दग्धपुराणरोहिणानाम् ।।[1]

निष्कर्ष यह है कि भवभूति ने शिशुबाल कुमार, पौग्डय युवावस्था के विभिन्न चित्रों का अंकन अपने नाटक में किया है । बाल एवं कुमारावस्था के सौन्दर्य चित्रांकन में कोमलता, लालित्य एवं मांसलता का वर्णन हुआ है । जबकि युवा-पुरुष सौन्दर्य चित्रांकन में सत्य, शील, सौन्दर्य गुणो से समन्वित कोमल रूप का ही चित्रांकन हीं हुआ अपितु देह-दृष्टि, अंगकान्ति, समानुपातिक अवयव-विस्तार, सौष्ठव, दृढ़ता इत्यादि गुणों का उल्लेख हुआ है । इन गुणों की महत्ता विपरीत गुणधर्म स्वभाव के परिप्रेक्ष्य में अंकित की गयी है ।

बात यह है कि सौन्दर्य या गुण सापेक्षावस्था का नाम है । जब तक विरोधी-भाव प्रबल नहीं होगा तब तक उज्जवल-पक्ष अपेक्षाकृत मन्द रहता है ।

इसीलिए भवभूति ने सौन्दर्य के साथ कुरूपता का भी अंकन अपने चरम रूप में किया है ।

कालिदास ने सौन्दर्य विषयक रूप-लिप्सा, आकांक्षा, वासना आदि को आधार बनाकर पुरुषोंचित सौन्दर्य का निरुपण कामशास्त्र एवं काव्यशास्त्र रूप से किया है । उनके नाटक दुष्यन्त, पुरुरवा, अग्निमित्र धीरोदान्त, धीरललित नायक हैं जिनके बाहृय सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य का अधिक चित्रांकन हुआ है । इसके विपरीत भवभूति की सौन्दर्य विषयक दृष्टि अत्यन्त व्यापक, विस्तृत एवं बहुआयामी है । उसके धीरोदान्त, धीर-प्रशासन्त, धीरोद्धत, धीरललित भी हैं । उनके आन्तरिक गुणों का चित्रांकन जितने विस्तृत रूप में हुआ है । उतने ही विस्तार से नेत्र, मस्तक, भौंहे, कण्ठ, स्कन्ध, वक्षस्थल, कटि, जांघ एवं आंगिक कान्ति, शोभा इत्यादि का वर्णन भी हुआ है । यदि कालिदास के सौन्दर्य में कोमलता, मसृणता है तो भवभूति के पुरुष सौन्दर्य में सत्य, शील, सौन्दर्य है एवं इनको पूर्णावस्था में पहुंचाने का सर्वाधिक श्रेय उनके द्वारा वर्णित विरूप सौन्दर्य को है । कालिदास के सौन्दर्य में गम्भीरता एवं लालित्य है तो भवभूति की दृष्टि स्फीत एवं विस्तृत है ।

1. मालती माधव 5/15

स्त्री सौन्दर्य

कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में प्राप्त बाल एवं पुरुष सौन्दर्य के निरुपण करते हुए यह लिखा जा चुका है कि दोनों नाटककारों की दृष्टि समान रही है । यहाँ नारी के आंगिक-सौन्दर्य का निरूपण नख-शिख पद्धति से किया जा रहा है । कहना नहीं होगा कि विधाता की सर्वश्रेष्ठ सुन्दर रचना नारी के आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य का चित्रांकन परम्परित रूप में साहित्यकार करते चले आ रहे हैं । इस चित्रांकन का मूलभूत सम्भार प्रकृति ही रही है । सम्भवतः इस उपादान ग्रहण के पीछे जहाँ एक ओर कवि की प्रकृति से आत्मीयता स्थापित करने की भावना परिलक्षित होती है, वहीं दूसरी ओर वह सौन्दर्य को वस्तु, दृष्टि, सृष्टि तथा मूल्य रूप में निरूपित करना चाहता है । शकुन्तला, उर्वशी, मालविका, सीता और मालती के सौन्दर्य का निरूपण इस प्रकार किया जा रहा है -

केश :-

केश सौन्दर्य-प्रसाधनों में केश अलंकरण का विशेष महत्त्व है नाटककारों ने लम्बे, काले, सुचिक्क केशों का उल्लेख किया है ।

कालिदास ने विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी के केशों का वर्णन निम्न प्रकार से किया है -

मृदपवनविभिन्नो मत्प्रियायाविनाशाद्
धन रुचिरकलापो निःसपत्नोअस्य जातः ।[1]

अपराधिनि मयि दण्डं संहरसि किमुद्यतं कुटिल केश ।[2]

भतिमुक्तक ग्रथित केसरावली सतताधिवाससुभगर्तितस्नमम् ।[3]
पतनु विरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै[4]

मुख :-

नारी का मुखमण्डल पुरुष के आकर्षण का केन्द्र रहा है । इसके अन्तर्गत केश,

1. विक्रमोर्वशीयम् 4/22
2. मालविकाग्निमित्रम 3/22
3. उत्तररामचरित 1/20
4. मालती माधव 5/8

शिखा, नेत्र, भृकुटी, कपोल एवं अधर, एवं दाँतों के सौन्दर्य का अंकन किया है ।

कालिदास ने मुख के लिए सरसिन, कान्ति हेतु मयंक का उल्लेख किया है -

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति[1]

असुलभा सकेन्दु मुखी च सा किमपिचेदन[2]

उल्लसितपुलकपक्ष्मलकपोलधूमानसंततानन्दबाष्पस्तबकमीषद्विषमनिष्पन्द-
मन्थतारोन्तान मसृणमुकुलायमानेनत्रनीलोव्पलमविरत्रोद्भिननस्वेदजल
बिन्दुसुनदर निटिलचन्द्रलेखामनोहरंमुग्ध मुखपुण्डरीकमुद्धन्ती[3] ।

रमिनवशतपत्त्रश्रीमदास्यं मो प्रियायाः[4]

भवभूति ने मुखमण्डल के अन्तर्गत ललाट, केशपाश एवं उज्जवल कपोलों का संश्लिष्ट चित्र अंकित किया है -

श्रमाम्बुशिशिरीभवत् प्रसृतमन्दमन्दाकिनी
मरुत्तरलिता काकुलललाटचन्द्रद्युति ।
अकुडकुमकलंकितोज्जवलकपोल मुत्प्रेक्ष्यते
निरामरणसुन्दरश्रवणपाशमुग्धं मुखम्[5]

भौह

यदि हंस गता न ते नतभ्रूः
सरसो रोघसि दर्शनं प्रिया मे[6]

तरंग भ्रू भगांक्षुमित-विहग-श्रोणि-रसना[7]

1. शाकुन्तल 1/20
2. विक्रमोर्वशीयम्
3. मालती माधव/3/पृ 236
4. उ0राम0च0 6/26
5. उ0रा0च0 6/36
6. विक्रमोर्वशीयम् 4/32
7. विक्रमोर्वशीयम् 4/28

उत्तररामचरित में सीता के चंचल और मनोहर भृकुटि निक्षेप का सुन्दरता पूर्वक वर्णन हुआ है -

> भ्रमिषुकृतपुरान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः
> प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैर्यण्डयन्त्या ।
> करकिसलयतालैर्मुग्ध्या नर्त्यमानं सुतमिव
> मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि [1] ।।

मालतीमाधव के अनेक स्थलों पर भ्रकुटि निक्षेपयुक्त कटाक्ष का विस्तृत वर्णन है इनका वर्णन नेत्रों के अन्तर्गत किया जा रहा है । इस अवसर पर व्यापार विरत तिरछे मनोहर स्नेह भरे दीर्घ भौंहों वाली सुन्दरी तिरछे मनोहर स्नेह भरे दीर्घ भौंहों वाली सुन्दरी के चंचल कटाक्ष रूपी शराघात का वर्णन निम्न प्रकार है -

> अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दै-
> रधिकंविकसदन्तर्विस्पय स्मेरतारैः ।
> हृदयंशरणं में पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षै-
> रपहृतमपविद्धं पीतमुनमूलितं च [2] ।।

भवभूति ने अभिलाषायुक्त दीघयित् नेत्रों का भी उल्लेख इस प्रकार किया है -

> प्रत्युप्त दयिते तृष्णादीर्घस्य चक्षुषः [3] ।।

नेत्र :-

सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं नेत्र ही वह द्वार है जिससे अन्तः बाह्य सौन्दर्य की झांकी दृष्टिगोचर होती है । नेत्र विलास सौन्दर्य के बहुविध चित्र आलोच्य नाटककारों में प्राप्त होते हैं । चितवन की अनेक भंगिमाएं जहाॅ आश्रय के आनतरिक मनोभावों का दर्पण है, वही दर्शक के आकर्षण का केन्द्र भी । तरल, स्निग्ध, आर्द्र, मदालस्य, लज्जा आदि अनेक दृष्टि छवियां नाटककारों की

1. उत्तररामचरित 3/19
2. मालतीमाधव 1/29
3. उत्तररामचरित 3/46

रचनाओं में मिलती है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

तदेतदुन्मीलय चक्षुरायतं
महोत्पलं प्रत्युषसीव पद्मिनी [1] ।।

दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्ति वदनं बाहू नटावसयोः [2] ।।

उन्मीलनमुकुलकरालकुन्दकोशप्रच्योतद्घनमकरन्दगन्धवन्धो [3] ।।

ईषतिर्यग्वलनविषमं कूणितप्रानतमेत
त्प्रेमोद्भेदस्तिमितललितं किंचिदा कुंचित भ्रू [4] ।।

त्रस्तैक हायनकुरंग विलोलदृष्टिराश्लिष्टवत्यमृतसंवलितैरिवांगैं [5] ।।

कपोल :-

कपोलो से मुख की शोभा द्विगुणित होती है । मुख सौन्दर्य में नेत्रों के पश्चात् कपोलों का ही अधिक महत्व है । चंचल, अनिर्याय, आयताकार गम्भीर नेत्रों से यदि आन्तरिक मनोभावों का प्रकाशन होता है तो कान्तियुक्त कपोलों द्वारा भी उनका प्रतिफलन होता है ।

कालिदास एवं भवभूति ने लज्जारूप कलोपों के आकर्षक रूप का वर्णन किया है । भवभूति ने लिखा है कि कामाधिक्य के कारण मालती के कपोल सद्रह खण्डित हाथी दाँत एवं कलंक विहिन चन्द्रमा के समान सुन्दर है ।

भवभूति ने कपोलों की शुचिक्कणता, रक्तिमा एवं कामावेग के कारण पाण्डुवर्णयी कपोलों का वर्णन किया है ।

कलयति च हिमांशोर्निष्कलंकस्य लक्ष्मी
मभिनवकरिदन्तच्छेदकान्तः कपोलः [6] ।।

वाष्पाम्भसा मृगदृशो विगलः कपोलः [7] ।।

1. विक्रमोर्वशीयम् 1/5
2. मालविकाग्निमित्रम 2/3
3. मालतीमाधव 1/39
4. मालतीमाधव 4/2
5. मालतीमाधव 4/8
6. मालतीमाधव 1/23
7. मालतीमाधव 8/5

अधर :-

कामशास्त्र में इस विवाद को बहुत दूर तक खींचा गया है कि नारी के आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु नेत्र है या अधर । साहित्यकारों ने यदि नेत्रों में काम का वास कहा है तो उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति ईषत्, हास्य युक्त, अनुराग रंजित अधरों से अधिक सम्भव है । आलोच्य नाटककारों ने किसलयराग से युक्त रंजिताधर एवं उसके पीछे शुक्ल स्पच्छ दातों की विद्युत छटा अत्याधिक कमनीय एवं मनमोहक रेखांकित है -

अधर किसलयरागः कोमल विटपानुकारिवौ बाहू [1] ।।

शुक्लाच्छदन्तच्छविसुन्दरीयं सैवोष्ठमुद्रा स च कणेपाशः [2] ।।

येनोद्गच्छ द्विस किसलयस्निग्धदन्तांकुरेण [3] ।।

दॉत :-

भवभूति ने दूध के दॉत एवं युवावस्था में पुनः निकल दॉतो की उज्जवल पंक्ति का वर्णन अनेक स्थानों पर किया है -

र्दशनकुसुमैर्मुधालोकं शिशुर्दधती मुखम् [4] ।।

शुक्लाच्छदन्तच्छविसुन्दीयं सैवोस्ठमुद्रा स च कर्णपाशः [5] ।।

त्कतिपयकोमलदन्तकुअमलाग्रम [6] ।।

बाहु :-

सौन्दर्य शास्त्र में पुरुष हाथो को कठोरता एवं कर्म कुशलता के रुप में देखा गया है तो स्त्री की भुजाओं को कोमलता के रुप में ।

1. शाकुन्तल
2. उत्तररामचरित 6/26
3. उत्तररामचरित 3/15
4. उत्तररामचरित 1/20
5. उत्तररामचरित 6/17
6. मालतीमाधव 10/2

कालिदास ने बाहु-द्वै के लिए कोमल तरुशाखा, कमल का विवरण दिया है । किन्तु भवभूति ने जीवनदायक बाहुओं का विवरण दिया है । यदि कालिदास ने बाहुओं की बाह्य रूप-रेखा, लम्बाई एवं कोमलता का उल्लेख किया है तो भवभूति ने आलिंगबद्ध करने वाली भुजाओं को हार एवं तृप्तिदायक कहा है -

कोमलविटपानु कारिणौबाहु [1] ।।

अलक्ष्यपत्रान्तरमिद्धरागया नवोषसा भिन्नमिवैपंकजम् [2] ।।

भवभूति ने बाहु के अन्तर्गत भुजाएं, हथेलियां, हाथ इत्यादि का उल्लेख किया है, जिनमें शुचिक्कणता, कोमलता एवं लालिमादि गुणों का उल्लेख किया है -

बाहुरैन्दवमयूखचुम्बितस्यान्दिचन्द्रमणिहार विभ्रमः [3] ।।

करकिजलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमानं सुतमिव [4] ।।

परिभृदितमृणालीम्लानमंग प्रवृत्तिः [5] ।।

स्तन :-

कालिदास एवं भवभूति दोनों नाटककारों ने अपनी नायिकाओं के उरोजों का बहुविध वर्णन किया है । इसके लिए श्री फल, कुड्मल इत्यादि उपमान रूप में प्रयुक्त हैं ।

कालिदास ने संयोग एवं वियोग कालिक अवसरों पर स्तनों के कोमल एवं काठिन्य का वर्णन किया है । शकुन्तला एवं मालविका के वक्ष-प्रदेश का सौन्दर्य-चित्रांकन इस प्रकार किया है -

विपुलं नितम्बदेशे मध्ये क्षामं समुन्नतं कुचयोः [6]

1. अभिज्ञान शाकुन्तल 1/18
2. अभिज्ञान शाकुन्तल 7/16
3. उत्तररामचरित 1/34
4. उत्तरराम चरित, 3/19
5. मालतीमाधव 1/23
6. मालविकाग्निमित्रम 3/7

स्वौ हस्तौ नयति स्तनावरणतामालिंगयमाना बलात [1] ।।

स्तन्यस्तोशिरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं [2] ।।

भवभूति ने स्तनों की शुभ्रता विशालता एवं आकार की विकसित कालिमा की उपमान प्रस्तुत किया है -

स्तनविनिहितहस्तस्वस्तिकाभिर्वधूभिः [3] ।।

निर्भुम्नपीनकुचकुड्मलयनपा मे [4] ।।

यावन्मध्यः स्तनमुकुलयोनर्द्रिभावं जहाति [5] ।।

उन्नद्धस्तनयुग्मकुड्मलगुरुश्वासावभुम्नस्थ ते
मध्यस्य त्रिवलीतंरंगकजुषो भंगः प्रिय मा च भूत [6] ।।

कटि और नितम्ब :-

प्रायः सौन्दर्यशास्त्र में समानुपातिक देहयष्टि के विकास का बहुविध वर्णन है तथा सूक्ष्म और विस्तार का परिभाषित करते हुए उन्नत उरोज, क्षीणकटि और गुरु नितम्बों का वर्णन एक विशेष क्रम से किया है ।

कालिदास ने स्थूल नितम्बों के साथ क्षीण कटि का भी उल्लेख किया है । इसमें कवि की दृष्टि प्राचीन लक्षणों के अनुधावन की ओर विशेष रही है -

विपुलं नितम्बदेशे मध्ये क्षामं समुन्नतं कुचयोः [7] ।।

मालतीमाधव सौन्दर्य निरुपण का अगाध समुद्र है नाटककार भवभूति ने कहीं मुखर तो कहीं व्यंजना के रुप में स्त्री सौन्दर्य के अंग प्रत्यंगों का कामशास्त्रोक्त वर्णन किया है जिसमें मध्य (कटि) प्रदेश की क्षीणता एवं कोमल स्थूल और विशाल नितम्ब द्वौ के कारण मन्द-मन्द

1. मालविकाग्निमित्रम् 4/15
2. शाकुन्तल 3/6
3. मालती माधव 4/10
4. मालती माधव 6/12
5. मालती माधव 8/2
6. महावरी चरितम 2/21
7. मालविकाग्निमित्रम् 3/6

पाद विक्षेप का वर्णन कर मूर्तिकला में शाल मंजिकाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं नाटककार लिखता है -

मरालजघनपरिवाहोद्वहनमन्थरोरुभरविंसंस्थुलस्खलितचरणसंचरणा [1] ।।

कालिदास ने भी नितम्बों की गुरुता का वर्णन किया है गमनरता उर्वशी के नितम्बो का वर्णन इस प्रकार हुआ है

गुरुनितम्बबतया ततोऽस्या [2] ।।

नितम्बोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव [3] ।।

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीयम् में नितम्बों की स्थूलता और कृशोदरी का उल्लेख नाटककारों ने इस प्रकार किया है

सुरसुन्दरी जघनभरालसा पीनोतुंगघनस्तनी
स्थिर यौवना तनुशरीरा हंसगतिः
रक्ताशोक कृशोदरी क्व नु गता त्वक्त्वानुरक्तं जनं [4] ।।

जंघा :-

प्रायः सौन्दर्य शास्त्र में कटि नितम्ब श्रोणि आदि जंघाओं का वर्णन एक साथ हुआ है यहाँ हम कालिदास और भवभूति के नाटकों में श्रोणि और ऊर सौन्दर्य का निरुपण करेगें दोनों नाटककारों ने इसके लिए कहीं रम्भोरु कहीं करभोरु का वर्णन किया है जिसमें आकार तथा शुचिकणिका या मृसणता की व्यंजना होती है -

अपराधी नामाहं प्रसीद रंभोरु विरम् संरम्भात् [5] ।।

सरले साहस रागं परिहर रम्भोरु ! मुंच संरम्भव [6] ।।

1. भवभूतिग्रन्थावली पृष्ठ 230
2.
3. अभिज्ञानशाकुन्तल 3/2
4. विक्रमोर्वशीयम् 4/59-62
5. विक्रमोर्वशीयम् 2/20
6. मालतीमाधव 6/10

विघटनमान विह्वलमेखलावलयसंधार्यमाणपीवरोरुप्रतिषिद्धविप्रतीपगमनां [1] ।।

गति एवं चरण :-

वय:सन्धि एवं उसके पश्चात् शरीर में काम के प्रवेश से जो अधिकार-परिवर्तन होते हैं - उनमें नेत्र, उरोज, कटि एवं चरण प्रमुख हैं । शैशव गति चंचलता का परित्याग का चरण नेत्रों की पूर्वकालिक अवस्था धैर्य को धारण कर लेते हैं । इस प्रकार युवतीजन अपनी कृत्रिम या अयत्नज गति का प्रदर्शन चरणों के माध्यम से ही करती है । आलोच्य नाटककारों ने चरणों की कोमलता, अलंकार रूप में नूपुर एवं सौन्दर्य-विस्तार हेतु आलक्तक से रंजित चरणों का उल्लेख किया है । कहीं-कहीं कामशास्त्रों पद्मिनी नायिकाओं के वामचरण प्रहार से अशोक के फूल खिलने का भी उल्लेख किया है ।

दोनों नाटककारों ने चरणों के लिए ऐन्द्रिय वस्तु एवं स्पर्श से ध्वनि बिम्बो का उपयोग कर नेत्रों एवं कानों को आध्यायित किया है ।

अनेनतनुमध्यया मुखरनूपुराविणा
नवाम्बुरुहकोमलेन चरणेन संभावित: [2] ।।

अनुचितनूपुरविरहं नार्हसि तपनीय पीठिकालम्बि ।
चरणं रुजापरीतं फलभाषिणि मां च पीडयितुम [3] ।।

चरणान्तनिवेशितां प्रियाया: सरसांपश्य वचस्य रागलेखाम [4] ।।

सखि अरुणशतपत्रमिव शोभते ते चरण [5] ।।

कलहंसविभ्रयाभिरामचरणसंचरणरणरणायमानमंजुमंजीररणिता [6]

सूक्ष्म सौन्दर्य

पूर्व पृष्ठों में कालिदास एवं भवभूति के नाटकों के पात्रों के बाह्य आंगिक सौन्दर्य

1. मालतीमाधव 7/3। पृष्ठ
2. मालविकाग्निमित्रम् 3/17
3. मालविकाग्निमित्रम् 4/3
4. मालविकाग्निमित्रम् 3/289
5. मालविकाग्निमित्रम् 3/293 पृष्ठ
6. मालतीमाधव 1/पृष्ठ 196

का चित्रांकन करते हुए हमने देखा है कि दोनों नाटककारों ने पुरुष सौन्दर्य की अपेक्षा नारी सौन्दर्य का अधिक वर्णन किया है ।

कालिदास के आंगिक सौन्दर्य में रुप का आकर्षण अधिक है तो भवभूति में आन्तरिक और बाह्य सौन्दर्य की विशेष प्रधानता है । यहाँ सौन्दर्य निरुपण में नख से लेकर शिख तक की कोटि में आने वाले अंग-प्रत्यंगो का विवेचन सौन्दर्य की वस्तुवादी या ऐन्द्रिक गोचर दृष्टि का बाहुल्य रहा है, किन्तु सौन्दर्यमात्र वस्तु नहीं दृष्टि नहीं इसकी भाववादी व्याख्या करने के साथ इसे मूल्य की सीमा तक का विवेचन यहाँ किया जा रहा है ।

सूक्ष्म सौन्दर्य वर्णन से हमारा तात्पर्य यह है कि आंगिक सौन्दर्य में जो तरलता, सौकुमार्य, लावण्य, विमुक्तकारिणी भ्रान्ति होती है उसका निरुपण का तदुपरान्त दोनों कवियों की सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टि का मूल्यांकन विश्लेषण किया जायेगा । यद्यपि सूक्ष्म सौन्दर्य की व्याख्या व्यक्ति सापेक्ष रुचि वैभिन्न पर निर्भर करती है क्योंकि भिन्न देश, भिन्न काल, भिन्न परिस्थिति में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की सौन्दर्य बोध और मूल्यों में परिवर्तन होता है यह एक सतत् विकासशील प्रक्रिया है रुप का रमणीयत्व क्षण-क्षण परिवर्तन में है तथापि कुछ निश्चित मानदण्डों के आधार पर सूक्ष्म सौन्दर्य का विश्लेषण किया जा रहा है । अतः सौन्दर्य के इन मानदण्डों में कान्ति, दीप्ति, तरलता इत्यादि स्वीकृत मानदण्ड है ।

कान्ति एवं दीप्ति :-

प्रत्येक मनुष्य चाहे वह पुरुष या स्त्री हो अपना एक निश्चित प्रभामण्डल रखता है अवस्था विशेष में यह प्रभामण्डल कहीं कोमलता तो कहीं प्रखरता के रुप में प्रस्फुटित होकर दृष्टि के अविभूत करता है । इस प्रभामण्डल को ही कान्ति कहा जाता है आन्तरिक उल्लास मस्तिष्क में जन्म लेने वाली लिविडो (जीजिविषा) यौवनागम के कारण मुख मण्डल सहित सम्पूर्ण देह यष्टि में एक ऐसी कान्ति आ जाती है जो मोती की तहर तेजोदीप्ति रहती है ।

कालिदास ने शकुन्तला के चल चंचल गतिशील एवं स्थिर सौन्दर्य के साथ उसके शरीर से निकलने वाली कान्ति को शरद्ज्योत्स्ना रत्वत् कहा है वह दुष्यन्त सोचता है कि मनुष्य जाति में जन्म लेकर ऐसी मनोहर कान्ति कहाँ सम्भव है क्योंकि चंचल चमक से युक्त बिजली पृथ्वी के अन्दर से नहीं निकल सकती

मानषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः ।

न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् [1] ।।

अनाविद्ध रत्न के समान कान्ति युक्ति शकुन्तला स्त्री रत्न के समान है ऐसा कालिदास ने कहा है क्योंकि उसकी आंगिक कान्ति के लिए उपमान रुप में सिवार से घिरे नैसर्गिक कान्ति युक्त कमल का उपमान अथवा काला कलंक के चतुर्दिक कान्ति महत्ता से युक्त चन्द्रका का उपमान अपने शाब्दिक अर्थ में ही नहीं अपितु अनेक अर्थ देता हुआ शकुन्तला की दैहिक कान्ति का उदाहरण प्रस्तुत करता है -

सरसिजमनुबिद्धं शैवलेनापि रम्यं

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति [2] ।।

विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी की देहकान्ति का बहुविध वर्णन नाटककार ने किया है कान्ति सम्बन्धी जितनी भी उक्तियां उपलब्ध होती है उनके विवेचन में यह बात सहज ही स्पष्ट हो जायेगी कि कालिदास ने भिन्न दशाओं में कान्ति के विभिन्न रुपों का उल्लेख किया है सबसे पहले हम उसके उस कान्ति की उस अवस्था का उल्लेख कर रहे हैं जिसमें मूर्च्छिता उर्वशी की कान्ति ग्लान और विवर्ण हो गयी है किन्तु संज्ञा प्राप्त करते-करते उसकी कान्ति अपनी स्वाभाविक आकृतिम दशा को प्राप्त कर लेती है नाटककार कहता है कि जिस प्रकार चन्द्रोदय हो जाने के अनन्तर अंधकार से मुक्त रात्रि अथवा धुएं की रेखा से विमुक्त रात्रि की अग्नि की लपट अथवा गंगाजल के समान निर्मल जल के समान यह उर्वशी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त हो गयी है ।

आविर्भूते शशिनि तमसा मुच्यमानेव रात्रि

नैशस्यार्चिर्हुतभुज इव च्छिन्नभूयिष्ठधूमा ।

मोहेनान्तर्वरतनुरियं रक्ष्यते मुक्तकल्पा

गंगा रोधःपतन कलुषा गच्छतीव प्रसादम् [3] ।।

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1/19
2. विक्रमोर्वशीयम् 1/9
3. विक्रमोर्वशीयम् 1/10

कालिदास ने उर्वशी की उत्पत्ति का वर्णन कर उसकी अलौकिक देह कान्ति से अप्सराओं को लज्जित हुआ बताया गया है नाटककार ने व्यंजना के माध्यम से उर्वशी कान्ति युक्त चन्द्रमा रुपी विधाता की ही सृष्टि हो सकती है अथवा जड़ नीरस शुष्क काव्यदर्शक कह कर नीरस ऋषियों की ऐसी कान्तिमयि उर्वशी किस प्रकार उत्पन्न हो सकती है कवि कहता है -

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः [1] ।।

द्वितीय अंक में नाटककार ने पुरुरवा के किंचित पूर्वराग जनित शोक का वर्णन करता है जिसमें आलम्बन की देह कान्ति कहीं चन्द्रमा के माध्यम से कहीं कुरवरक पुष्प अथवा सघः प्रसूत अशोक वृक्ष के अंकुरण या पराग के मूर्तमान रुप का स्थिरीकरण किया गया है ।

अग्रे स्त्रीनखपाटलं कुरवकं श्यामं द्वयोर्भागयोः
वालाशोकमुपोढ़रागसुभगं मंदोन्मुखं तिष्ठति ।
ईषद्बद्धरजःकणाग्रकपिशा चूते नवा मंजरी
मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये मुधुश्री स्थिता ।।

मम कुसुमितास्वपि सखे नोपवनलतासु नम्रविटपासु [2] ।।

मालविकाग्निमित्रम् भी श्रृंगार प्रधान रचना है जिसमें नायक अग्निमित्र एवं नायिका मालविका के प्रणयगाथा उपनिबद्ध है । नाटककार ने आश्रय और आलम्बन दोनों की आंगिक छटा देहकान्ति एवं दीप्ति का सरस वर्णन किया है चित्र में अंकित कुमारी मालविका के वयः सन्धि प्रौढभूत आकर्षण से अग्निमित्र आबद्ध हो गया है ।

नाटककार ने मालविका की देहयष्टि के साथ आंगिक दीप्ति के लिए शरत् कालिक चन्द्रमा का उपमान उपस्थित किया है [3] ।।

इसी परिप्रेक्ष्य में नाटककार ने प्राकृतिक उपादानों से ग्रहित मालविका के अंगो की शोभा किस प्रकार क्रिया है दृष्टव्य है जिसमें विम्बाफल अशोकपुष्प शितासित रंगो के लिए

1. विक्रमोर्वशीयम् 1/10
2. विक्रमोर्वशीयम् 2/7-8
3. मालविकाग्निमित्र 2/3

कुरवरक पुष्प भ्रमर इत्यादि का उल्लेख किया है ।

रक्ताशोकरुचा विशेषितगुणो विम्बाधरालक्तकः
प्रत्याख्यातविशेषकं कुरवकं श्यामाबदातारुणम ।
आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लग्नद्विरेफांजनैः
सावज्ञेव मुखप्रसाधकविधौ श्रीर्माधवी योषिताम् [1] ।।

यहाँ पर दृष्टव्य है कि पूर्वराग जनित देहयष्टि के वर्णन में कालिदास का अधिक मन रमा है क्योंकि ऐसे सौन्दर्य निरुपण में लावण्य, शोभा, सुकुमारता, दीप्ति मन को अधिक आकृष्ट करती है ऐसे स्थलों पर आश्रय या आलम्बन की हृदयस्थ अनुराग उल्लसित उमंगित होकर मुख्य से प्रतिबिम्बित होने लगता है एक अजीब मस्ती अह्लाद का अतिरेक मुखमण्डल का विचित्र ही कान्तिमहत्ता से युक्त कर देता है इसके विपरीत विरहावस्था में म्लानता औदासीन्य आलस्य और एक सरसता रहती है जिसका प्रतिबिम्ब निश्चय ही मुखमण्डल पर पड़ता है फिर भी सौन्दर्य वादी कालिदास की दृष्टि ने इस प्रकार के सौन्दर्य का निरुपण किया है जो विरहजन्य है शरीर में विवर्णता आ जाने के कारण जो आलस्य और मिलन की कामना से जो उन्माद रहता है ऐसे मिमिश्रत देहकान्ति का वर्णन भी नाटककार को अभीष्ट है ऐसे स्थलो पर शारीरिक कृशता म्लानता के साथ पाण्डुरता का विचित्र विरोधाभास ही सौन्दर्य आलम्बन के मन में जिज्ञासु कौतूहल और अनुराग को उद्दीप्त कर देता है -

शरकाण्डपाण्डुगण्डस्थलेयमाभाति परिमिताभरणा ।
माधवपरिणतपत्रा कतिपयकुसुमेव कुन्दलता [2] ।।

भवभूति ने सीता और मालती के साथ यत्र तत्र राम के अन्तः सौन्दर्य का भी वर्णन किया है । यहाँ अन्तः सौन्दर्य का सम्बन्ध आत्मा के वैशिष्ट्य बताने वाले गुणों का न वर्णन कर शरीर में ही जो मोती की तरह दीप्ति कान्ति तरलता प्रतिछवि होती है उसी का विवेचन उपेखित है । वयः सन्धि एवं यौवनागम होने पर नायिका के देहयष्टि में जो परिवर्तन, परिवर्धन आता है,

1. मालविकाग्निमित्रम् 3/5
2. मालविकाग्निमित्रम् 3/8

उसका चित्रांकन कवि बड़े सजगता से करते है क्योंकि अंग विशेष की क्षीणता या स्फीत के साथ प्रतिभावित होने वाली कान्ति ही में रमणीयत्व होता है जो आकर्षण का मूल है ।

सबसे पहले एक दो उदाहरणों में राम की कान्ति का वर्णन कर तदुपरान्त नारीजन्य दैहिककान्ति का उल्लेख करेगें, वासन्ती उत्तरामचरित में राम की रुप सृष्टि का वर्णन करते हुए कहती है -

नवकुवलयस्निग्धैरंगैर्ददन्नयनोत्सवं
सततमपि नः स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव सः
विकलकरणः पाण्डुच्छायः शुचा परिदुर्बलः
कथमपि स इत्युन्नेतव्यस्तथापि दृशोः प्रियः [1] ।।

इसी प्रकार कौसल्या भी सीता के वधूवेष को देख जिस रुप में प्रभावित हुई थी अनेक वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी वह छिटकी हुई चांदनी के सदृश्य दीप्तमान मुखमण्डल उन्हें बाम्बार स्मरण आता है -

स्मरामि ते नवविवाहलक्ष्मीपरिग्रहैकमंगलं संफुल्लमुग्धमुखपुण्डरीकमारोहल्कौमुदीचन्द्रसुन्दरम् [1] ।।

भवभूति ने कान्ति एवं दीप्ति का सुकोमल शुचिक्कण ही रुप नहीं प्रस्तुत किया अपितु उसके दूसरे रुप को भी प्रस्तुत कर अपनी सौन्दर्यवादी दृष्टि को एक नया आयाम दिया है ।

प्रश्न है क्या कोमलता में ही आकर्षण है मृसणजन्य दीप्ति ही क्या हृदय को प्राति कर लगती है । भवभूति का विचार है कि ऐसा ही नहीं है यत्र-तत्र उन्होंने आरक्त नेत्र स्फुटित अधर आवेशजन्य मुखमण्डल की लालिमा भी एक ऐसी दीप्ति और स्फूर्ति उत्पन्न करती है जिससे शत्रु और मित्र दोनो ही अर्विभूत हुए बिना नहीं रहते युद्ध भूमि में कुश-लव को देख उने कुपितानन में वीररस किस प्रकार उर्जिसित हुआ है इसे सुमन्त से अधिक भला कौन जान सकता है सम्भवतः उनकी दृष्टि में राम लक्ष्मण की नव वय कान्ति बिजली की तरह कौंध गयी होगी

1. उत्तरराम चरित 3/22
2. उत्तररामचरित 4/पृष्ठ 100

श्चन्द्रस्यो टलांछनस्य कमलस्योदभ्रान्तभृंगस्य च [1] ।।

यदि उत्तरराम चरित में युवकोचित अंग कान्ति का बहुविध वर्णन है तो मालतीमाधव में स्त्री सुलभ लावण्य दीप्ति का चित्रांकन अनेक प्रसंगो में हुआ है मकरन्द का विचार है कि संसार में अनेक पदार्थ मन को अह्लादित करते है किन्तु मालती की मुखचन्द्र छटा महोत्सव के समान है -

मम तु यदियं याता लोके विलाचनचन्द्रिका
नयनविषयं जन्मन्येक: स एव महोत्सव: [2] ।।

मालती और माधव के संयोग की अपेक्षा वियोग की घटनायें मालतीमाधव में बाहुल्य है सम्भवत: कवि संयोग की अपेक्षा वियोग को महत्ता देकर तदजन्य अभिलाषायें एवं नायिका की क्षण-क्षण परिवर्तित देह कान्ति जो आशा और निराशा में विविध रुपा होकर प्रतिभाषित होती है चित्रांकन कर यह बताना चाहता है कि प्रिय मिलन के समय में जो वासना वेग की कान्ति अत्यन्त क्षीण और क्षणिक होती है जब कि विरह में यह कान्ति कभी ग्लान तो कभी अपने नैसर्गिक रुप में आकर नायक को मोहती रहती है मृगनयनी मालती के मुख से पहले वाले आश्रुओं से उसका मुखमण्डल परिमार्जित होकर कैसी कान्ति उत्पन्न कर रहा है ऐसी आवर्जक-मुखमण्डल की कान्ति को देख भला कौन प्रेमी प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं करेगा -

वाष्पाम्भसा मृगदृशो विमल: कपोल:
प्रक्षाल्यते सपदि, राजत एषयस्मिन् ।
गण्ड्षपेयमिव कान्त्यमृतं पिपासु
रिन्दुर्निविशितमयूरवमृणालदण्ड: [3] ।।

उपर्युक्त क्रम में कुछ आशाजन्य परिस्थिति के कारण मुखमण्डल में परिवर्तित कान्ति का वर्णन किया गया है यहाॅ नैराश्य की अवस्था में क्रमश: क्षीयमान दीपवर्तिका की कान्ति सदृश्य लंवगिका के मुखमण्डल की निराशा भी उत्नी ही दर्शनीय है जितना संयोगकालिक आवेगजन्य स्फूर्ति

1. उत्तररामचरित 5/35
2. मालतीमाधव 1/37
3. मालतीमाधव ८/5

स्तन्यत्यागात्प्रभृति सुमुखी दन्तपांचालिकेव
क्रीडायोगं, तदनु विनयं प्रापिता बाधिता च
लोकश्रेष्ठे गुणवति वरे स्थापिता, त्वं मयैव
स्नेहो मार्तुमयि समधिकस्तेन युक्तस्तवापि [1] ।

तात्पर्य यह है कि भवभूति ने राम सीता लवकुश मालती के सूक्ष्म आंगिक कान्तिजन्य सौन्दर्य का बहुविध वर्णन किया है कमल मृणालदण्ड चन्द्रमा भ्रमर आदि जैसे उपमान लाकर नाटककार ने नैसर्गिक सुषमा इन उपमानो से प्राप्त गुण धर्मजन्य दीप्ति का वर्णन किया है जिसमें आशा का अह्लाद है तो निराशा का अवसाद भी कोमलता और गतिशीलता है तो परुसता भी ।

भवभूति ने इन सूक्ष्म सौन्दर्य का निरुपण कर एक नयी द्रृष्टि भी दी है कालिदास ने जिस अंग कान्ति का वर्णन किया है वह कोमल परिस्थितजन्य अथवा अन्त:पुर में चलने वाले प्रणयव्यापार के विविध रुप है जबकि भवभूति की नारी पुरुष की देह कान्ति बाह्य व्यापार और आन्तरिक मनोत्यथा संघटन से निष्पन्न हुई है ।

तरलता :-

पिछली पंक्तियों में आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य का निरुपण करते हुए यह कहा जा चुका है कि सौन्दर्य ही वह बीज है जिसमें प्रेम भावना अंकुरित पल्लवित एवं पुष्पित होती है । वस्तुतः सौन्दर्य में ऐसी चुम्बकीय शक्ति होती है जो संवेदनशील हृदय को अपने निकट आकृष्ट करती है । इस आकर्षण के मूल में आंगिक सौन्दर्य के साथ ही सूक्ष्म सौन्दर्य का विशेष योगदान है अभी तक कान्ति दीप्ति लज्जा अन्त: सौन्दर्य का निरुपण सैद्धान्तिक और व्यवहारिक रुप में किया गया है यहाँ उसके तरलता गुण एवं तद्जन्य प्रेमोउल्लास तथा प्रेमोन्माद से उत्प्रेरित चंचल अल्लहषा सौन्दर्य का निरुपण किया जा रहा है । सौन्दर्य शास्त्रीयों में यह मान्यता निभ्रान्त रुप से स्थापित की है कि मोती में जिस प्रकार एक आन्तिरिक तरलता होती है उसी प्रकार स्त्री-पुरुषो के सौन्दर्य, में आर्द्रता सौकुमार्य तरलता और आलक्ष्य का भाव रहता है इसे ही पारिभाषिक रुप में तरलता कहा जाता है ।

कवियों ने नायिका निरुपण के सन्दर्भ में कान्ति दीप्ति के साथ तरलता का बहुविध वर्णन किया है - कवि नाटककार कालिदास ने अभिानशकुन्तल विक्रमोर्वशीयम् और मालविकाग्निमित्र में क्रमशः शकुन्तला, उर्वशी और मालविका के निर्दोष निरुपम् तरल सौन्दर्य का ऐसा हृदयावर्जक चित्रण किया है जिसके कारण तीनों नायिकायें संस्कृत साहित्य में अनुपम सिद्ध हुई है विशेष रुप

1. मालतीमाधव 10/5

से शकुन्तला का जो नैसर्गिक सौन्दर्य आश्रम में निवास करने से विकसित हुआ है उसमें सहज स्वाभाविक तरलता वर्णित है ।

प्रथमदर्शन के समय दुष्यन्त ने शकुन्तला के यौवनमण्डित कान्ति युक्त जिस सौन्दर्य का निमिमेष रसपान किया है उसके वर्णन में कालिदास ने अनाबिद्ध रत्न और निषकलुष चन्द्रमा को उपमान रुप में ग्रहण कर शकुन्तला के तरलायित सौन्दर्य का ही चित्रांकन किया है ।

कालिदास ने शकुन्तला के निष्पाप किन्तु मुग्धानायिका के तीक्षण अपांग एवं मनसिज जागरण के कुछ चित्र अंकित किये है - जिसमें कान्ति, दीप्ति, तरलता और चंचलता साथ-साथ दिखाई पड़ती है एक दो उदाहरण देखिए -

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोअपि नयनें यत्प्रेरयन्त्या तया [1] ।।

स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तस्तदेन्यतेजोअभिभावद्धमन्ति [2] ।।

अनाबिद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादिरसम् [3] ।।

शकुन्तला के मुग्धा स्वरुप में जितनी नैसर्गिक तरलता थी ज्ञात यौवना बनने पर कामावेग की प्रवलता से उसका चंचल सौन्दर्य कुछ विवर्ण सा हो गया है फिर भी कालिदास ने मुरझायी हुई माधवी लता का उपमान प्रस्तुत कर उसके सौन्दर्य में जो लावण्य आ गया है उसका बिम्बधर्मी गुण इस प्रकार दिखाया गया है -

तात्पर्य यह कि कालिदास सौन्दर्य के दोनों पक्षों का चित्रांकन करते हुए यह निरुपित करना चाहते है कि मुग्धत्व सौन्दर्य में जो आलस्य और चंचलता है वय: सन्धि के आते ही उसमें एक अनोखी मस्ती नूतन आलस्य जन्य लावण्य के आगमन से प्रेमी को आकृष्ट करने की अद्भुत क्षमता होती है - मालतीमाधव का उपमान और सूखे हुए कपोलों से जिस सौन्दर्य की सृष्टि हुई है उसमें शकुन्तला के मन में दुष्यन्त के प्रति अतीव अनुराग की व्यंजित हुआ है प्रिय के समीप्य से सौन्दर्य में जो तरलता आती है कवि कालिदास ने उसका निरुपण किया है -

पत्रणमिव ... ... मारुता[4] ।।

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2/2
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 2/7
3. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 2/10
4. अभिज्ञान शाकुन्तलम्

इसी प्रकार षष्ठ अंक में कवि कालिदास ने विदूषक और राजा के संवाद के माध्यम् से चित्र में उटंटकित शकुन्तला के जिस सौन्दर्य की झलक दिखाई गई है उसमें कुछ आलस्य कुछ श्रम तथा इन दोनों के मिश्रण से उत्पन्न तरल सौन्दर्य का चित्रांकन कालिदास ने किया है जिसमें सद्यः सिंचित आम्र तरु का उल्लेख शकुन्तला के तरल सौन्दर्य के लिए ही हुआ है -

सम्भवतः कालिदास की सौन्दर्य विषयक दृष्टि के सम्बन्ध में यह निरुपित किया जा सकता है कि कवि आलस्य और औदासीन्य के मिश्रण से बने मदालस्य भाव को श्रेष्ठ सौन्दर्य के रुप में निरुपित करना चाहता है । मदालस्य सौन्दर्य में एक तरफ मस्ती चंचलता और उल्लास तो दूसरी तरफ अपने रुपगर्विता होने के साथ उसकी उपेक्षा का छद्म प्रदंशन जिस सौन्दर्य की सृष्टि करता है उसे एक शब्द में हम तरलावस्था का सौन्दर्य कहते है कालिदास ने लिखा है -

तर्कयामि यैषा शिथिलकेशबन्धनोद्वान्तकुसुमेन केशान्तेनोद्
भिननस्वेदविन्दुना वदनेन विशेषतोंअपसृताभ्यां बाहुभ्यामव
सेक स्निग्धतरुणपल्लवस्य चूतपादपस्य पार्श्व
ईषत्परिश्रान्तेवालिखिता सा शकुन्तला इतरे सख्याविति [1] ।।

तरलता का रुप निरुपित करते हुए यह कहा जा चुका है कि प्रायः कवियां ने नारी सौन्दर्य का निरुपण करते है तरलता मूलतः द्रव का गुण है किन्तु सौन्दर्य शास्त्र के अर्थ में वह सूक्ष्म सौन्दर्य है जो मोती की कान्ति की तरह एक अभिनव शब्दातीत ऐसा गुण धर्म होता है जो नेत्रो के आकृष्ट करता है ।

कालिदास ने निरलंकृत आभरण रहिता शकुन्तला की कान्ति दीप्ति से युक्त सौन्दर्य की तरलता का जो वर्णन किया है वह निश्चय ही आकर्षण का विषय था । भवभूति ने सीता की अपेक्षा मालती के यौवन मण्डित पुष्पराग से परिवेष्टित सौन्दर्य का जिस रुप में चित्रांकन किया है उसमें तरलता का बहुविध हाथ है एक बात अवश्य है कि कालिदास ने तरलता निरुपण के लिए कान्तियुक्त उपमानों का प्रयोग किया है साथ ही मदालस्यजनित देहकान्ति का जो निरुपण किया है वह विशिष्ट कोटि की तरलता ही है -

यहाँ भवभूति के कुछ पात्रों में प्राप्त तारल्यजनित सौन्दर्य का संक्षिप्त दिग्दर्शन

1. अभिज्ञान शाकुन्लत 6/पृष्ठ 107

कराया जा रहा है । मूर्च्छित राम को अदृश्य सीता के स्पर्श से जो शीतलता और स्पर्शजनित आनन्द विहवलता प्राप्त हुई थी । उसमें सीता के सौन्दर्य की तरलता का ही हाथ है -

आश्च्योतनं नु हरिचन्दन पल्लवानां
निष्पीडितेन्दुकरकन्दजजो नु सेकः ।
आतप्त जीवितमनः परितर्पणोअयं
संजीवनौषधिरसौ हृदि नु प्रसक्तः [1]।।

इस स्पर्शजनित सुशीलता का अनुभव राम कर आप्यायित होते हैं उनका एक तरफ धनीभूत वियोग द्रवीभूत हो रहा है तो दूसरी स्नेहाधिक्य से आर्द्र होने के कारण शीतल स्पर्श मूर्तिमान अनुग्रह की भाँति राम को अभी आनन्दित कर रहा है -

प्रसन्नं सौजन्याद्दयित करुणौगढिकरुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव ।।
प्रसाद इव मूर्तस्ते स्पर्शः स्नेहार्द्रशीतलः
अद्याप्यानन्दयति मां, त्वं पुनः क्वासि नन्दिनि [2] ।।

भवभूति ने सीता की अपेक्षा मालती के सौन्दर्य वर्णन के अनेक प्रकरणों की सृष्टि की है नाटककार ने वियोगदशा का अन्तराल इतना लम्बा खींचा है तथा भावाभाष के स्थलों का ऐसा निरुपण किया है जिससे नाटककार को सौन्दर्य वर्णन के लिए पर्याप्त अवसर और वातावरण उपलब्ध हो सके ।

कालिदास की निसर्ग कन्या शकुन्तला एवं रतिक्रीड़ा निपुण उर्वशी एवं द्यमवेश धारिणी मालविका के सौन्दर्य जनित शोभा दीप्ति तरलता का वर्णन विभिन्न परिस्थितियों में किया अवश्य है किन्तु शकुन्तला और मालविका प्रेम के क्षेत्र में गोपन में विश्वास रखती है तो उर्वशी उसके मुखर रूप में जब कि राजकीय परिवेश में पली मालती अपने सौन्दर्य की शक्ति से भलीभाँति परिचित भी है क्योंकि उसे उसकी शक्ति और सीमा में विश्वास है माधव इस रमणीयत्व जनित तरलता के विषय में कहता है कि जिस प्रकार चन्द्रमा समीप चन्द्रकान्तमणि तरलतामय विकाय युक्त होती

1. उत्तरराम चरित 3/11
2. उत्तरराम चरित 3/13-14

जाती है उसी प्रकार मालती के मुखचन्द्र का दर्शन कर उसका चित्त भी तरलायित होता जाता है यहाँ स्मरणीय है कि नाटककार कालिदास ने नायिकाओं के तारल्य निरुपण में प्रत्यक्ष कथन शैली का उपयोग किया है जबकि भवभूति ने तरलता वाचक ऐसे उपमानों को प्रयोग के साथ ही साथ उसके प्रभाव का विशिष्ट वर्णन किया है एक उदाहरण देखिए -

> आश्चर्यमुत्पलदृशो वदनामलेन्दु
> सांनिध्यतो मम मुहुर्जदिमानमेत्य ।
> जात्येन चन्द्रमणिनेव महीधरस्य
> संधार्यते द्रवमयो मनसा विकारः [1] ।।

यौवनोन्माद :-

कालिदास ने स्थूल सौन्दर्य के साथ उसके सूक्ष्म सौन्दर्य का भी चित्रांकन अनेक स्थानों पर किया है । यह सूक्ष्म सौन्दर्य आंगिक कान्ति दीप्ति तरलता उन्माद आदि गुणों एवं भावों से व्यक्त हुआ है यहाँ स्मरणीय है कि कान्ति दीप्ति और तरलता नायिका के अंगो से प्रकाशित होता हुआ वह गुण है जिसमें नायिका का कोई हाथ नहीं है । यौवनोन्माद उससे भिन्न वह गुण है जिसके अन्तर्गत क्रमशः वृद्धिगत यौवन तद्जन्य आकर्षण की अनुभूति उसके रुप का गर्व एवं भावनाओं के कारण आन्तरिक परिवर्तन आता है । उसका निरुपण इसके अन्तर्गत किया जाता है ।

अभिज्ञानशाकुन्तल कालिदास का अमर काव्य है उसकी नायिका शकुन्तला मानवी सौन्दर्य से परे अलौकिक कान्ति से युक्त है यहाँ उसके यौवनोन्माद का संक्षिप्त वर्णन कर रहे है-

शकुन्तला के यौवन कलश जो वल्कल से अनियन्त्रित हो रहे थे प्रिय का समागम प्राप्त कर किस प्रकार शिथिल हो गयेहै नाटककार कालिदास ने इस प्रकार के वियोगजनित उन्माद का वर्णन ही नहीं किया अपितु नायिका के आंगिक वैवर्ण्य का भी निरुपण किया गया -

> स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैकवलयं
> प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम् ।
> समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरो -
> र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु [2] ।।

1. मालती माधवम् 3/5
2. अभिज्ञान शाकुन्तलं 3/7

कालिदास ने कहीं प्रत्यक्ष तो कही परोक्ष व्यंजना के रूप में इन यौवनोन्माद का वर्णन किया है उसकी सूक्ष्म दृष्टि कितनी मार्मिक और वस्तु को पकड़ने वाली है दृष्टव्य हैं लतामण्डप के द्वार पर पीली बलुका में आगे उठी हुई किन्तु पीछे घसी हुई एड़ी के चिन्ह का चित्रांकन जघन गौरव को अभिव्यंजित कर रहा है -

अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढ़ा जघनगौरवात्पश्चात् ।

द्वारेअस्य पाण्डुसिकते पदपड्.क्तिर्दृश्यतेअभिनवा [1] ।।

दुष्यन्त के प्रथम दर्शन से उसके हृदय में कामदेव का अधिकार हो गया शकुन्तला अपने कामावेग का सखीयों से वर्णन कर राजर्षिक्र की कृपा दृष्टि के प्राप्त करने के उपायों की प्रार्थना करती है - पत्र रचना के माध्यम से वह अपने उन्माद का वर्णन और राजा द्वारा उसकी व्यथा की अनुभूति की अभिव्यंजना अत्यन्त सटीक रुप में हुई है ।

संदष्टकुसुमशयनान्याशुक्लान्तविसभंनसुरभीणि ।

गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति [2] ।।

विक्रमोर्वशीयम् में पुरुरवा और उर्वशी की प्रणय गाथा वर्णित है ।

कालिदास ने यौवनोन्माद जनित आवेग का बहुविध वर्णन किया है कालिदास ने पुरुरवा के उन्माद की अभिव्यक्ति व्यंजना के माध्यम से किया है । उद्यानों में विकसित होती हुई नवीनकिसलय की भांति राजा के मन में आन्तरिक कामना और प्रेम का आवेग इसी प्रकार प्रस्फुटित होता वर्णित है - स्मरणीय है कि सघ प्रस्फुटित कलियां राजा के अभिलाषा में ही प्रतीक रूप में प्रतीत है -

विविक्षोर्यदिदं नूनमुद्यानें तापशान्तये

स्त्रोतसेवोह्नमानस्य प्रतीपतरणं महन्त् [3] ।।

उर्वशी के लतावन जाने पर पुरुरवा का विलाप अपने आप में लघु विरह काव्य है इसमें पुरुरवा के उन्माद का यथार्थ चित्रण हुआ है इस चित्रण से पुरुरवा का उर्वशी के प्रति अनन्य प्रेम व्यंजित है प्राकृतिक जीव जन्तुओं के माध्यम से पुरुरवा के क्रिया कलापों का वर्णन

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 3/6
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 3/16
3. विक्रमोर्वशीयम् 2/5

इस प्रकार हुआ है इसके अन्तर्गत उर्वशी के अंग प्रत्यग की कान्ति चुराने वाले उपमानों के वर्णन से पुरुरवा के प्रेम की व्यंजना हुई है -

जैसे - सूर चन्द्र को उलहना देता हुआ पुरुरवा कहता है -

सरसि नलिनीपत्रेणापि त्वमावृतविग्रहाम्

ननु सहचरीं दूरे मत्वा विरौषि समुत्सुक :

इति च भवतो जाया स्नेहात्पृथक्स्थितिभीरुता

मयि च विधरे भावः कान्ताप्रवृत्तिरागमुखः [1] ।।

अनत में पार्वती के चरणराग से उत्पन्न संगमनीय मणि धारका से उर्वशी की प्राप्ति हुई तात्पर्य यह है कि कालिदास ने उर्वशी और पुरुरवा के यौवनागम एवं तदजन्य उन्माद का अत्यन्त सूक्ष्म चित्रांकन किया है । इस उन्माद वर्णन से यह उल्लेखनीय है जिसके माध्यम से कवि ने एक ओर नायक या नायिका के क्षीण, पुष्ट तथा उन्नत आंगिक सौन्दर्य का बहुविध वर्णन किया है तो दूसरी ओर प्रेम में अनन्यता अतिशय अनुराग और उद्दाम भावों की ऐसी अभिव्यक्ति की है कि नायक और नायिका का सौन्दर्य द्विगुणीत हो उठा है -

लज्जा :-

लज्जा आन्तरिक मनोभाव है भारतीय काव्यशास्त्र में संचारीभावों के अन्तर्गत वीडा और अवहित्था का उल्लेख आचार्यो ने किया है अवहित्था में अंगो के गोपन का भाव प्रमुख रहता है लज्जा भाव का यह बाह्य क्रियात्मक रूप है

कालिदास ने श्रृंगार रस के प्रकरण में स्त्री पुरुष या नायक-नायिका दोनों के सौन्दर्य निरुपण में लज्जा का विशेष महत्व निरुपित किया है आन्तरिक रति के स्फरण सम्बन्धी मनोद्वन्द का मनोवैज्ञानिक निरुपण कालिदास ने किया है किन्तु हमारा लक्ष्य नायक-नायिका के आन्तरिक सौन्दर्य का विश्लेषण है अतः सबसे पहले दुष्यन्त के मन में उठने वाले लज्जा जनित द्वन्द का निरुपण किया जा रहा है जिससे दुष्यन्त के आन्तरिक सौन्दर्य का उद्घाटन यत् किंचित् रु मेंहो सके विवाहित दुष्यन्त जब निष्कलुष सौन्दर्य को देख हतप्रभ हो जाता है उसके हृदय में वासना का प्रार्दुभाव नहीं हुआ कौतूहल जनित राग उसके मन पर छा जाता है कवि कालिदास ने दुष्यन्त के

1. विक्रमोर्वशीयम् 4/39

कामी रुप का चित्रण न कर विवेकशील प्रेमी के रुप में किया है जिसके मन में एक ओर तो शकुन्तला के सौन्दर्य ने जिज्ञासा उत्पन्न की है तो दूसरी तरफ अपरिचय जनित लज्जा का आवेग भी कालिदास ने लिखा है कि राजा को शकुन्तला के विषय में जानने की तीव्र आकांक्षा थी और वह भयभीत शकुन्तला सहित सखियों को आश्वस्त करता है । इसके विपरीत शकुन्तला के मन में प्रथमदर्शन जन्य कामावेग लज्जा का रुप धारण कर जिज्ञासा पर मर्यादा का बंधन तो लगाता है किन्तु उत्सुकता के कारण लज्जावेग अपने तीव्र रुप में मुखरित होता है परिचय के समय नतावमुखी होकर शकुन्तला का खड़ा रहना मनोद्वन्द और अनुसूया के प्रश्न अपने वांछित चाह का वह रुप देखती है कालिदास ने इस अवसर पर शकुन्तला के आन्तरिक सौन्दर्य तथा लज्जा के कारण जो मुखाकृति में परिवर्तन हुआ है उसका निरुपण इस प्रकार किया है । राजा के पूछने पर लज्जा विभूत शकुन्तला का रुप देखिये -

शकुन्तला साध्वसावनतमुखी तिष्ठति ।

हृदय मा उत्ताम्य । एषा त्वया चिन्तितान्यनसूयामन्त्रयते [1] ।।

अनुसूया के उत्तर को सुनकर शकुन्तला की लज्जा किस प्रकार मूर्त्तमन्त हुयी है शब्द शिल्पी कालिदास ने एक शब्द का प्रयोग कर लज्जा के पूर्ण स्वरूप की परिकल्पना दर्शको पर छोड़ दी है ।

शकुन्तला श्रृंगार लज्जां रुपयति [2] ।।

तात्पर्य यह कि प्रथमदर्शन शकुन्तला दुष्यन्त का परिचय प्रेमांकुरण और मिलन इन सभी घटनाओं के पीछे एक तरफ दुष्यन्त का अधीर प्रेम तो दूसरी तरफ सुन्दरी शकुन्तला की लज्जा जनित मर्यादित प्रेमाभिव्यक्ति और उसकी कायिक चेष्टायें हैं सम्भवतः कालिदास लज्जा के मनोभाव के सम्बन्ध में यह व्यंजित करना चाहते है कि दूसरे के मन में अपने प्रति के मनोभावों को जानकर जो आंगिक चेष्टायें की जाती है वही लज्जा है । शरीर की बाह्य सुन्दरता तो चाक्षुष गोचर होती है किन्तु सूक्ष्म सौन्दर्य आन्तरिक मनोभावों पर ही आधारित रहता है ।

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् पृष्ठ 19
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 3/पृष्ठ 51

विक्रमोर्वशीयम् कालिदास का प्रेमप्रधान नाटक है जिसमें अप्सरा उर्वशी और पुरुरवा की प्रणयगाथा विन्यस्त है । यद्यपि अप्सरायें किसी एक पुरुष की न होकर रुप व्यापार कर्त्री कहलाती है फिर भी नाटककार ने मानवी सौन्दर्य की महत्ता निरुपित करने के लिए इस प्रणय गाथा की व्यथा-कथा वर्णित की है ।

प्रथम दर्शन में ही अनुरक्त उर्वशी आकाशगामी विमान से अन्यन्त्र जा रही थीं । जिसका चित्र अन्यमनस्क था इस अवस्था पर चित्रलेखा उपालम्भ देती है तभी पुरुरवा के प्रेम में स्मृति से उर्वशी लज्जारुढ़ हो जाती है और अपनी अमनस्कता का एक काल्पनिक कारण बताती है -

उर्वशी (मदनवेदनपभिनीय सलज्जम्) (सखि तदा हे भकूट शिखरे लता विटपेन क्षण विहि नताकाशगमनां मामुपहास्य किमिदानी पृच्छसि क्व गम्यते इति ।)[1] ।।

इसी प्रकार लज्जा का परित्याग कर पुरुरवा के पास जाने वाली उर्वशी तिरस्कारिणी विधा से छिप कर प्रेमी के मन की वास्तविक स्थिति का अनुसंधान करती है तथा राजा की अपने प्रति अनन्यता को देख हर्ष और लज्जा से झूले में झूलती हुई हृदय को समास्वसित करती है -

उर्वशी (सहर्षमात्मगतम्) हीनसत्व हृदयं समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

प्रिय के उपालम्भ से व्यथित उर्वशी आगे बढ़कर उसका प्रतिकार करना ही चाहती थी कि अचानक सखी चित्रलेखा को देख वह कुछ बीडा, कुछ लज्जा के कारण वचनों से आत्मव्यंजना में व्यस्त होने के कारण भोज पत्र पर लिख कर देने की बात करती है ।

विदूषक :- एवं वक्तुकामोअस्मि मा भवानगं दृढ़ं खलु त्वयि वद्धभावा उर्वशी न सा इतोगतमनुरागं शिथिलयति - इति ।)

राजा
ममाप्येतदार्शसि मनः । तया खलु प्रस्थाने ।
अनीशया शरीरस्य स्ववशं हृदयं मयि ।
स्तनकम्पक्रियालक्ष्यैर्न्यस्तं निःश्वसितैखि [2] ।।

प्रत्यक्ष रुप से न कर व्यंजना रुप में की है जो बहुत ही स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक है -

1. विक्रमोर्वशीयम् पृष्ठ 51
2. विक्रमोर्वशीयम् 2/पृष्ठ 176

उर्वशी (हां धिक् हा धिक्) मामेवमवगच्छति । सखि असमर्थास्म्यंग्रतो भूत्वास्य प्रतिवचनस्य । तत्प्रभावनिर्मितेन भूर्जपत्रेण संपादितोत्तरा । भवितुमिच्छामि:)

द्वितीय अंक में भी उर्वशी पुरुरवा के मिलन पर नाटककार ने उर्वशी के आह्नाद आन्तरिक प्रसन्नता प्रियदर्शन की लालसा किन्तु युवावस्था जन्य लज्जा वाचिक अभ्यर्थना तक ही सीमित रह पाती है -

उर्वशी ससाध्वसं राजानमुपेत्य प्रणम्य च सव्रीअम जयतु जयतु महाराज:

नाटककार कालिदास ने उर्वशी के आचरण से यह निरुपित करने का प्रयास किया है कि वे देवताओं के आधीन है पृथ्वीवासी पुरुष से उसका प्रेम असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है इसीलिए पुरुरवा से अलग होकर स्वर्ग जाते समय अपने हृदय की मनोव्यथा और कामावेग की अभिव्यक्ति उर्वशी ने अपने उच्छवास और तद्जन्य स्तनों के कम्पन से व्यंजित किया है ।

तृतीय अंक के प्रारम्भ में वेलव और मालव के संवाद से यह सूचित किया गया है कि लक्ष्मी और वारुणी की भूमिका उर्वशी और मेनका कर रही थी नृत्य के समय अचानक मेनका ने उर्वशी से पूछा कि इस अवसर पर (स्वयंवर के समय इस अवसर पर तीनों लोकों के सुन्दर पुरुष लोकपाल एवं स्वयं विष्णु उपस्थित है उर्वशी का किसके प्रति प्रगाढ़ प्रेम है ।)

आन्तरिक मनोभावों के अभ्यास के कारण उर्वशी पुरुषोत्तम के स्थान पर पुरुरवा कह गयी थी जिसका उसे दण्ड भी मिला अचानक शब्द भ्रंश से उसके आन्तरिक प्रेम का प्रकाट्य हो गया था अत: लज्जामुखी उर्वशी महेन्द्र के सामने खड़ी होकर उनसे प्रियतम प्राप्ति का आर्शीवाद ग्रहण करती है ।

येन ममोपदेशस्त्वया लघिंतस्तेन न ते दिव्यं स्थानं भविष्यति इति उपाध्यायस्य शाप: । महेन्द्रेण पुन: प्रेक्षणावसाने लज्जावनतमुखी सा एवं भणिता - यस्मिस्त्वं बद्ध भवासि तस्य मे रणसहायस्य राजर्षे: प्रियमत्र करणीयम् ।

कालिदास ने श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति करते समय लज्जाभाव को दो रुपो में व्यक्त

किया है । लज्जा का एक अभिद्या परक रुप है जिसके अन्तर्गत नाटककार ने अनेक स्थानों पर प्रेमी-प्रेमिका के मिलते समय लज्जा शब्द का प्रयोग कर उसके अभिनय की कल्पना पाठक या समाज पर छोड़ती है । ऐसे स्थलों पर लज्जा भाव की वास्तविक अभिव्यक्ति अभिनय करने वाले तत् पात्रों पर छोड़ दिया गया है कि वह किस प्रकार कायिक अभिनवों के द्वारा इस भाव को अभिव्यक्त करता है ?

लज्जा का दूसरा स्वरुप उन स्थलों पर प्राप्त होता है जहॉ पर नाटक का एक पात्र दूसरे पात्र की लज्जा का उसकी मुखाकृति आंगिक चेष्टायें इत्यादि का वर्णन अन्य पात्र से करता है । कहना नहीं होगा कि विक्रमोर्वशीयम् में लज्जा के दोनों रुप उल्लखित हैं । मेरी दृष्टि में लज्जा का प्रथम रूप वाचिक और स्थूल है जबकि द्वितीय रुप दूसरे पात्र के हृदय में श्रृंगार रस की निष्पति करता है साथ ही पाठक भी उससे प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता है । उर्वशी और पुरुरवा के भेट के समय प्रथम रुप का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है जबकि द्वितीय रुप का वर्णन अपेक्षाकृत कम स्थानों पर हुआ है ।

अभिज्ञान शाकुन्तल और विक्रमोर्वशीयम् की भांति मालविकाग्निमित्रम् भी प्रेम कथा प्रधान नाटक है जिसमें श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति केलिए लज्जा को भी एक ससक्त माध्यम बनाया गया है कुमारी मालविका के मन में विवाहित अग्निमित्र का प्रेम प्रस्फुटित हुआ है इसमें लज्जा के दोनों स्थलों में अपनी प्रशंसा सुनकर मालविका के मनोभाव को व्यंजित किया गया है ।

महारानी इरावती के चरणों में चोट लगने के कारण दोहद क्रिया को मालविका उनके प्रतिनिधि के रुप में सम्पन्न करती है ऐसे अवसर पर वकुलावलिका द्वारा मालविका के चरणों में अलक्तक लगा कर प्रिय के ओर संकेत करने पर मालविका लज्जाभिभूत हो उठती है -

वकुलावलिका (मालविकायै चरणं दर्शयन्ती) (अपि रोचते ते रागरेखा विन्यास:)

मालविका (सखि आत्मनश्चरण इति लज्जे एवं प्रशंसितुम । केन प्रसाधनकलायानमिनीतासि ।)

इसी तरह तृतीय अंक में राजा और विदूषक संवादों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रुप से मालविका की प्रशंसा की जाती है जिसे सुन कर वह लज्जालु बनती है -

राजा (विहस्य)

किसलय मृदोविलासिनि कठिने निहतस्य पादपस्कन्धे चरणस्य न ते वाधा संप्रति वामोरु वामस्य ।

(मालविका लज्जां नाटयति)

काव्य शास्त्र में लज्जा संचारी भाव की सीमा में आने वाला ऐसा भाव है जिससे रस की अभिव्यक्ति अपने चरम रुप में होती है जबकि सौन्दर्य निरुपण के सन्दर्भ में लज्जा वह विशिष्ट भाव है जिसमें आन्तरिक अभिलाषा की विवृति न हो सकने के कारण मुखमण्डल में ऐसा विशेष परिवर्तन हो जाता है जिससे न कुछ कहने पर भी बहुत कुछ कहा हुआ समझा जाता है लज्जा आन्तरिक मनोभावों का प्रकटीकरण सूक्ष्म साधन है । कालिदास और भवभूति ने लज्जा के बहुविध रुपों को विभिन्न कायिक विकारों या अभिव्यंजना प्रणालियों से अभिव्यक्त किया है । इतना अवश्य है कि अभिज्ञान शाकुन्तल में निर्सग कन्या शकुन्तला जब नागर रसित दुष्यन्त के प्रणभतर्सात मनोभावों से परिचित होती है तो उसे इसमें कुछ भी अस्वभाविक नहीं प्रतीत होता है यद्यपि उसके आन्तरिक मनोभाव लज्जा ने उसके द्विविध किग्रा-कलापों का कालिदास ने वर्णन किया है किन्तु भवभूति ने विवाहित सीता के प्रणय व्यापार गर्भास्था सीता के पाण्डुर वर्णनीय चेहरे से गर्भवती होने की स्वीकृत में तथा मालतीमाधव के अनेक प्रणय-प्रसंगो में लज्जा मनोभाव का वर्णन कर तद्जन्य आंगिक विकारों का आकर्षक वर्णन किया है । कुछ उदाहरण देखिये -

उत्तररामचरित में वासन्ती तमसा, सीता के संवादों के माध्यम से नाटककार ने सखीयों या गुरुजनों के मध्य पति की प्रकाड्य क्रीडा से हर्षिता किन्तु लज्जिता सीता का जो आन्तरिक सौन्दर्य निरुपण किन्तु उसके नाटककार ने पुष्पित कदम्ब का ऐसा उपमान उपस्थित किया है जिसमें राम के युवा शरीर के स्पर्श से सर्वांग सिहरता सीता का शरीर और आवेग के कारण अचानक लज्जित होने का भाव कितना मनोमुग्ध कारी रहा होगा इसे कोई सहृदय पाठक समझ सकता है -

सस्वेदरोमांचित कम्पितांगी जाता प्रिय स्पर्श सुखेन वत्सा
मरुन्नवारभः परिघूतसिक्ता कदम्बयष्टिः स्फुट कोरकेष ।
अवशेनैतेनात्मना लज्जापितास्मि भगवत्या तमसया [1] ।।

1. उत्तररामचरित 3/42

प्रियदर्शन आलिंगन मिलन इत्यादि से भिन्न लज्जा का एक और स्वरुप भवभूति ने दिखाने का प्रयास किया है गर्भस्थ सीता के क्रमशः होती मुख क्लान्ति और इस रहस्य की जानकारी पति के होने पर लज्जारुण सीता के अन्तः सौन्दर्य का अनुभव कितना स्वाभाविक और विचित्र है इसकी विवृति भवभूति ने इस प्रकार की है -

किंचित लज्जा, किंचित प्रेम, किंचित विश्वास इन सब के संजोग से जिस मातृत्व एवं प्रेम जनक लज्जा का प्रार्दुभाव हुआ होगा उसका चाक्षुष बिम्व भवभूति ने इस प्रकार प्रकट किया है -

चरां कोटि स्नेहे परिचय विकासादधिगते
रहो विस्त्रब्धाया अपि सहजलज्जा जड़दृशः [1] ।।

इसी प्रकार मालतीमाधव में लज्जा जनित परिवर्तित सौन्दर्य का वर्णन नाटककार ने अनेक स्थान पर किया है प्रथम परिचय नितान्त लज्जा के कारण वाक् व्यापार से यदि रहित होता है तो अन्य अवसरों पर दिदृक्क्षा अपांग विस्तार हृदयाकांक्षा जहाॅ अनेक कायिक चेष्टाओं से अभिव्यक्त होती है वही लज्जा इनकी वर्जना में लग जाती है । इससे नायिका का सौन्दर्य द्विविध मनोभावग्रस्त हो जाने के कारण अलौकिक और अत्यन्त नयनाभिराम बन जाता है भवभूति ने साकांक्ष लज्जा का कितना आवर्जक रुप उपस्थित किया है मालती की कुछ क्रियायों में दृष्टव्य है -

स्तिमित विकसितानामुल्लसद्भ्रूलतानां
मसृण मुकुलितानां प्रान्त विस्तार भाजाम्
प्रतिनयन निपाते किंचिदाकुंचितानां ।।
अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दै -
रधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारैः
हृदयमशरणं मे पाक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षै -
रपहृतमपविद्धं पीतमुन्मूलितं च [2] ।।

1. उत्तररामचरित 6/28
2. मालतीमाधव 1/28-29

व्रीडा और अवहित्था में अंग छिपाने का भाव प्रमुख होता है जबकि लज्जा में आन्तरिक मनोभावों की प्रबलता होती है इसमें देहकान्ति में एक नयी आभा दीप्ति और नेत्रों में चंचलता के स्थान पर मदालस्य या मस्ती आ जाती है ऐसे ही कुछ मिश्रित भावों की लज्जा का वर्णन कामन्दकी में हुआ है जिसमें भौंहों की सरलता एवं वक्रिमा चंचलता एवं निवूचलता पक्ष्मों की शिथिलता कुछ-कुछ रति समागम सुख जनित लज्जा व्यजित हो रही है -

ईषत्तिर्यग्बलनविषमं कूणितप्रन्तमेत-

त्प्रेमोभ्देदस्तिमितललितं किंचिदाकुंचत भ्रु ।

अन्तर्मोदानुभवमसृणं स्त्रस्तनिष्कम्पपक्ष्म

व्यक्तं शंसत्यचिरमनयोर्दृष्टमाकेकराक्षम् [1] ।।

इसी प्रसंग में मदयन्तिका अपनी प्राणाधिक्त सखी लवंगिका से मकरन्द के प्रथम ईषत् मिलन का जिन शब्दों में वर्णन करती है वे प्रणय व्यापार को तो व्यंजित ही करते है किन्तु उनका चाक्षुष प्रत्यक्षीकरण सहृदय सामाजिक को कितना रस विभोर करता है इसे मंच में ही देखा और समझा जा सकता है ।

मदयन्तिका कहती है - किंच तस्मिन्दिवसे कुसुमाकरोधान पर्यन्तरथ्यामुखसमागमे स विभ्रमोल्लसित कौतूहलोल्फुल्ल परिसरोद्वेल्लमानस - विलासमसृण स्निग्धसंचरण चारुतारकाविसृम्भमाणानंग श्रंगाराचार्यसर्वागमोपदेश निर्मितवैदग्ध्य मुग्ध मनोहर मया न निरुपिता एतयोर्दृष्टि संभेदाः [2] ।।

तात्पर्य यह कि सौन्दर्य वह रुपकर्षण है जो चक्षुरेन्द्रिय से क्रमशः मन में जाकर अधिकार करता है जिस प्रकार ब्रह्म की सृष्टि में मनुषेतर प्रकृति में सर्वत्र दिखायी देता है उसी प्रकार कवि या साहित्यकार के रचना संसार में यह सौन्दर्य पद-पद पर विकीर्ण दिखाई देता है अन्तर इतना है कि सृष्टि विषयक सौन्दर्य को हम द्रष्टा या भोक्ता की स्थित से अनुभव या भोग भी करते है जबकि साहित्यिक रचनाओं में वर्णित विविध पात्रों के सौन्दर्य का दर्शन जरित अस्वाद ही लेकर अप्यायित होते रहते हैं बात यह है कि विधाता की रचना से कवि का संसार वैशिष्टयपुर्ण होता है बारम्बार उसके सौन्दर्य का चवर्ण करने से भी तृप्ति नहीं होती है ।

1. मालतीमाधव 4/2
2. मालतीमाधव 7/308 पृ0

तात्पर्य यह कि सौन्दर्य वह रुपाकर्षण है जो चक्षुरेन्द्रिय से क्रमशः मन में जाकर अधिकार करता है जिस प्रकार ब्रह्म की सृष्टि में मनुष्त्तर प्रकृति में सर्वत्र दिखायी देता है उसी प्रकार कवि या साहित्यकार के रचना संसार में यह सौन्दर्य पद-पद पर विकीर्ण दिखाई देता है अन्तर इतना है कि सृष्टि विषयक सौन्दर्य को हम द्रष्टा या भोक्ता की स्थिति से अनुभव या भोग भी करते है जबकि साहित्यिक रचनाओं में वर्णित विविध पात्रों के सौन्दर्य का दर्शन जनित अस्वाद ही लेकर अप्यायित होते रहते हैं बात यह है कि विधाता की रचना से कवि का संसार वैशिष्टपूर्ण होता है बारम्बार उसके सौन्दर्य का चवर्ण करने से भी तृप्ति नही होती है ।

आलोच्यनाटककार कालिदास और भवभूति के नाटकों में आंगिक और सूक्ष्म आन्तरिक सौन्दर्य के निरुपण करते हुए हमने देखा है कि कालिदास ने अपने नाटकों में जिन नायकों का सौन्दर्य निरुपित किया है वे पूर्व विवाहित नायक होते हुए भी परकीया नायिकाओं के सौन्दर्य पर मुग्ध है कालिदास ने उनके बाह्य सौन्दर्य का कम ही निरुपण किया है । यत्र-तत्र वृषभ स्कन्ध, धनुष आस्कलन से दृण भुजाऐं एवं वियोग की अवस्था में अंग दैर्वल्य का विशेष चित्रण किया है जबकि भवभूति के नायक प्रथम प्रेमी एक निष्ठ पत्नी व्रत है अतः भवभूति ने पुरुष सौन्दर्य के अन्तर्गत लवकुश के रुप में ऋषि-मुनि कुमार या पौग्डय अवस्था में परिवर्तित कायिक विस्तार और संकुचन का अत्यन्त तेजस्वी और प्रभावशाली रुप का चित्रांकन किया है नायकों के आन्तरिक सौन्दर्य निरुपण में कालिदास ने शास्त्रोक्त धीर-धीरोद्धन्त धीरललित, एवं तदजन्य प्रेम द्रढता, आशक्ति अनन्यता आदि श्रृंगार को आबद्ध करने वाले गुणों का वर्णन परिस्थितियों के अनुसार किया है जबकि भवभूति ने सौकुमार्य आर्वज, मृदुता अंग दीप्ति एवं यत्र-तत्र कठोर रौद्र भयानक सौन्दर्य निरुपण कर विरोधी गुणों के विकास में सौन्दर्य भावना में विकसित किया है । यहाँ भवभूति के सौन्दर्य विषयक द्रष्टि का स्मरण कराना अत्यन्त प्रासंगिक होगा कि बिना विरोधी रुप या गुणों के सकारात्मक पक्ष अपना स्वरुप और प्रभाव नहीं छोड़ पाता जितना विरोधी भाषी गुणों के परिप्रेक्ष्य में होता है -

सम्भवतः कालिदास के नायक ललित प्रधान होते हुए भी कठोरता तक ही सीमित रहे जबकि भवभूति की सौन्दर्य विषयक द्रष्टि अत्यन्त विस्तृत और आयामी है उसमें विरुप कुरुप अशिव सौन्दर्य का भी निरुपण कर यह एक नयी द्रष्टि दी है कि कुरुपता में भी अपना आकर्षण है, नैत्रेन्द्रिय संनिष्कर्ष से उत्पन्न यह प्रभाव अधिक मनोरम तब सिद्ध होता है जब इसके संनिकर्ष, कोलता, शुचिकणता, गत्यात्मक्ता और मसृणता खड़ी हो ।

नारी अंगो का निरुपण करते हुए हमने बहुप्रचलित नख-शिख परम्परा के आधार पर आलोच्य नाटककारों की रचनाओं में प्राप्त नायिकाओं के सौन्दर्य का निरुपण किया है जिसमें वेणी, शीश, मांग, ललाट, भौंह, मुख, अधरोष्ठ दॉत, बाहु, स्तन, कटि, नितम्ब, उरु, पैर चरण इत्यादि का क्रमशः सोदाहरण विवेचन कर यह देखा है कि कालिदास की दृष्टि इस परम्परा पर नाटकों में रमी नहीं । उन्होंने यत्र-तत्र कामचलाऊ विकसित अविकसित आंगिक शोभा विस्तार वाले कुछ अंगो का वर्णन बहुविध रूपों में किया है जबकि भवभूति ने नारी के वयःसन्धि के अन्तर्गत नेत्रों की चंचलता छोटे से बड़े होते हुए उरोज, आलक्त चरण और प्रायः सभी अंगो का विशेष रुप से वर्णन कहीं स्वतन्त्र रूप में तो कहीं अंगो के गुण धर्म के रूप में तो कही प्राकृतिक उपमान के माध्यम से नारी के अंगो की क्षीणता या पीरवता जघनता का ऐन्द्रिय परक वर्णन किया है ।

दोनों नाटककारों ने नारी के बाह्य सौन्दर्य के साथ ही साथै आन्तरिक सूक्ष्म सौन्दर्य का विशेष वर्णन किया है । नायिकाओं की कान्ति, दीप्ति, तरलता, लज्जा, यौवनोन्माद का हृदयद्रावक रसपेशत निरलंकृत सौन्दर्य निरुपण किया है कालिदास की दृष्टि यौवन जनित देह मण्डित सौन्दर्य निरुपण में विशेष रमी है तो भवभूति ने आंगिक सौष्ठव कामशास्त्रोक्त विविध प्रकार के रति विलास जनित आन्तरिक मनोविकारो के कारण रक्तिमा भृकुटी निर्क्षेप यौवनदीप्ति और मदालस्य का जो तेजोदीप्ति वर्णन किया है वह सचमुच ही नेत्रों को बांधता है कालिदास की नायिकाओं की अन्तःसौन्दर्य मनोमुग्धकारी है तो भवभूति का अन्तः सौन्दर्य नयनाभिराम है ।

कालिदास और भवभूति की सौन्दर्य दृष्टि की तुलना साम्य वैषम्य :-

ऊपर कहा जा चुका है कि कालिदास प्रकृति का सौन्दर्य का सुकुमार कवि है उसकी नायिकायें या तो निसर्ग कन्यायें है जिनका अन्तः बाह्य सौन्दर्य मनोमुग्धकारी है वृक्ष की आड़ से छिप कर देखने वाला रस लोलुप दुष्यन्त जिस रुप सौन्दर्य का दर्शन करता है उसमें चारुता है शोभा विद्यायक्ता है कालिदास की सौन्दर्य विषयक दृष्टि प्रधान है भोक्ता जिसका प्राथमिक गुण है जबकि भवभूति की सौन्दर्य विषय दृष्टि विस्तृत और आयाम वाली है । कालिदास ने प्रकृति के कण-कण में व्याप्त सौन्दर्य का राशिभूत एकत्रीकरण नारी सौन्दर्य में किया है तो भवभूति ने अंगो के विस्तृत विरुपता और अशिव के साथ शिव का संयोग कर वयःसन्धि से क्रमशः युवावस्था

तक विकसित होने वाले अंग छटा का कामशास्त्रीय वर्णन किया है । कालिदास में यदि भोक्ता की दृष्टि दिखाई पड़ती है तो भवभूति में द्रष्टा की, निरपेक्ष भाव से यदि समीक्षा करने पर यह कह देना ही पर्याप्त है कि सौन्दर्य चाहे वह कालिदास का हो या भवभूति का आकृष्ट दोनों का ही कहता है इसे हम साम्य-वैषम्य के रुप में दिखा सकते हैं ।

(क) साम्य :-

1. दोनों के नायक धीरोद्धात और धीर ललित है
2. दोनों के नायक सुन्दर कर्मकुशल है ।
3. दोनों नाटककारों के नायक प्रेमी है
4. दोनों के आन्तरिक और बाह्य प्रकृति में समता है ।

(ख) वैषम्य :-

1. कालिदास के नायक पूर्व विवाहित भी है जबकि भवभूति के ऐसे नहीं है ।
2. कालिदास के नायकों के बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा भवभूति के नायकों का विस्तृत वर्णन है उसमें बाल्य सौन्दर्य और युवा सौन्दर्य का विशेष वर्णन है ।
3. कालिदास के पुरुष सौन्दर्य में कोमलता है तो भवभूति के नायकों (पात्रों) में कोमलता परुषता और उद्धत्ता हे ।
4. कालिदास की नायिकायें अविवाहित प्रेम के प्रथम अनुभव का बोध नायक के मिलन से होता है जबकि भवभूति की बोध नायिकायें ज्ञात यौवना है ।
5. कालिदास की नायिकायें आन्तरिक सौन्दर्य गुण वैशिष्ट्य वाली है तो भवभूति की नायिकायें दोनों गुणों से सम्पन्न है ।
6. भवभूति ने कुरुपता को भी सुन्दरता में परिव [illegible]

अध्याय – ४

{कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में चित्रित प्रेम}

द्वितीय अध्याय में प्रेम का स्वरूप उसके प्रयार्य वाची कामप्रेम एवं सौन्दर्य तथा प्रेम की विविध दशाओं का निरुपण करते हुये यह कहा गया है कि हृदय में प्रवाहित उस शीतल स्नेह धारा को प्रेम कहते है जिसमें सात्विकता का प्राधान्य रहता है जो अत्यन्त पवित्र होती है जिसमें सहज आकर्षण रहता है । उसमें दिव्य सौन्दर्य की श्रोतस्विनी प्रवाहित होती है । ऐसे प्रेम में नैसर्गिक उष्मा रहती है जो ज्ञान के आलोक से देदीप्यमान रहती है । वह लोक और परलोक में श्रेय प्राप्ति का साधन होता है ऐसा प्रेम वासना से सर्वथा भिन्न होता है क्योंकि वासना में तामसी प्रवृत्ति की प्रधानता रहती है जबकि प्रेम में सात्विक प्रवृत्ति का कोमल आलोक रहता है । वासना में स्वार्थ का साम्राज्य रहता है, लोभ एवं लालच की कालिमा रहती है, प्रेम में शुचिता पवित्रता की कान्ति रहती है । वासना में भौतिक चाह विद्यमान रहती है । वह पन के गर्त में ले जाती है इसके विपरीत प्रेम में आध्यात्मिकता की दिव्य आभा प्रादभूत होती है । इस प्रकार प्रेम जीवन की शाश्वत भावना है । हृदय का अगर संगीत है मन की सात्विकवृत्ति है बुद्धि का चेतन विलास है और अन्तःकरण का दिव्य आलोक है यहाॅ हम कालिदास, और भवभूति के नाटकों में चित्रित प्रेम विषयक दृष्टि का मूल्यांकन न कर उनके नाटकों में प्राप्त वर्गित अभिव्यंजित निरुपित प्रेम के स्वरूप का दिग्दर्शन कराने का यत् किंचित् प्रयास किया जायेगा ।

कालिदास की प्रेम भावना के सम्बन्ध में डा0 रामशंकर तिवारी[1] का मत है । कालिदास की काव्य तंत्री से मुख्यतः सौन्दर्य एवं प्रेम की ही ध्वनियां मुखरित होती है नयनाभिराम रूप की मादक ध्वनियों की भावना से वे जैसे एकदम चमत्कृत हो जाते है वेसे ही प्रणय रस की अत्यन्त मद्र, अत्यन्त मादक तथा अत्यन्त गम्भीर श्रोतस्विनी प्रवाहित करके वे सहृदय भावकों को सर्वथा आत्मविभोर कर देते है लेकिन वे प्रणय को सर्वातिशायी महत्व प्रदान नहीं करते उसे ही जीवन का चरम साध्य स्वीकार नहीं करते कालिदास की सावधान काव्य सरस्वती प्रेम की मूलपर्तिनी वृत्तियों तथा सुधाओं को जगाती हुयी भी अन्तः उन्हें शिव की नियामक मर्यादाओं में बांध देती है वस्तुतः काम की खुमारी तथा संयम की कठोरता दोनों के नितान्त आवर्जक एवं प्रयनिष्ठा चित्र उनके कालो में उपलब्ध होते हैं ।

कालीदास ने प्रेम के मूल्य में मारक मन मोहक चिताकर्षक सौन्दर्य को माना है नारी का रूप लावण्य निराकलुष सौन्दर्य अपरुष तथा दिव्य देहकान्ति उसके नायकों को आकृष्ट

करती है कामाभिभूत बनाती है और विवाहित होने के बावजूद वे ऐसे सौन्दर्य की प्राप्ति तीव्र काम वेदना मदनज्वर का अनुभव करते है और वे उसे प्राप्त करने के लिये अनेक प्रकार के नैनिक अनैतिक कार्यो, में भी संलग्न प्रतीत होते है । अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम् में ऐसी ही भावनायें प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से निरूपित की गयी है । किन्तु नैतिक, अनैतिक कार्यो, से मर्य्रादा का उल्लंघन मान कर नाटककार ने उसके परिमार्जन प्राच्छलन हेतु दण्ड विधान भी स्वीकृत किया है बिना पिता की सहमति के सर्वस्व विस्मृति शकुन्तला को दण्डित करने के लिये दुर्वासा शाप राजा की विस्तृति शकुन्तला को निर्वासन अपमानित, प्रताड़ित और लाञ्छित होना कालिदास को उतना ही अपरिहार्य प्रतीत होता है । जितना की कामी दुष्यन्त को मर्यादा का अतिक्रमण कर गान्धर्व विवाह से शकुन्तला की प्राप्ति के पश्चात् उसके दारुण वियोग का सहन क्रमशः विस्मृति वंश परम्परा के लुप्त होने का असहय दुःख एवं अन्त में काम को श्रेष्ठ उज्जवल शुचि के मध्य रुप में पर्यवसित् होते देख शकुन्तला की पुनः प्राप्ति इसी बात का पुष्ट प्रमाण है । कवि नाटककार कालिदास का प्रेम मात्र पंकिल वासना का फल है वह विषयी लोलुप निर्सग कन्या शकुन्तला के अधरामृत का पान करना उतना सार्थ, नहीं प्रतीत हुआ जितना दुष्यन्त के मन में वात्सल्य या पितृत्व भावना का परोज्जवलित रुप दिखाना है । पराकर्तन भारतीय मतानुसार नाटककार कालिदास ने पितृ ऋण शोधार्थ, वंश परम्परा को आगे बढ़ाने के लिये प्रेम प्रार्दुभाव का मुख्य लक्ष्य स्वीकार किया है ।

प्रणयानुप्रणित चिन्त में कैसी दीप्ति कैसा विष्कार एवं कैसा उल्लास नर्तन करता है, वह प्रेम विविध प्राक्कीडाओं रति दशाओं से आंकुरित पल्लिवित होकर युग रूप में प्रतिफलित हुआ है ऐसा चिंत्राकन कालिदास को अभीष्ट है । विक्रमोर्वशीयम् में भी हृदय को प्रणय दीप्ति के प्रज्जवलित हो जाने पर कैमी ललित इन्द्रधनुषी कोमल किरणे मिश्रित होती है । अपनी विवाहिता नारियों का परित्याग कर (वेश्या तुल्य) उर्वशी जैसे अप्सरा के प्रेमपाश में आबद्ध होकर उससे चिरा रति क्रीडाजन्य सुख प्राप्त करने के लिये राज काज पुरजन का परित्याग कर गन्धमादन पर्वत पर पहुंचना कितना नैतिक और अनैतिक है । यह तो विवाद का विषय हो सकता है कितना प्रजारंजन की मर्यादा का अतिक्रमण है इसीलिये उर्वशी का लता रुप में परिवर्तित होना और अन्तिम अंक में पुत्र आयु के प्राकट्य से कालिदास ने इसी उक्ति तथ्य की पुष्टि की है कि सन्तानोद्भव के

मूल में प्रेमोद्वेग ही है ।

मालविकाग्निमित्रम् में अन्त:पुर के षडयंत्रो के मध्य पल्लवित प्रेम के विविध पक्षों का मूल्यांकन एवं चित्रांकन कालीदास ने किया है । यहाॅ कालिदास के प्रेम के एक दूसरे पक्ष का भी मूल्यांकन करना आसमीचीन न होगा प्राय: उन्होंने नारीयों में प्रेम का आंकुरण पहले वर्णित किया है सम्भवत उनकी यह बाह्यमूलक धारण है कि नारी निर्सगत: दयालु, ममतालु, स्निग्ध होती है जो प्रेम अंकुरण के लिये उपर्युक्त पृष्ठभूमि है नारी हास का स्वभाविक आभ्यान्तिरक गुण है । प्रेम में पिघलना और उसमें दु:ख प्राप्त करना इसीलिये युवावस्था के उद्दाम उद्वेलित रक्त प्रवाह से तथा दैहिक सौन्दर्य से विजित होकर प्रेम के प्रार्दुभाव का चित्रांकन कालीदास ने अपने सभी नाटकों में समान रूप से किया है और विषयानन्द की संकटोन्मुखता एवं रागात्मक सुकुमारता से उपलब्ध होने वाली शान्ति का चित्रांकन भी कालिदास के प्रेम निरुपण का मुख्य लक्ष्य था निष्कर्ष यह है कि कालिदास ने बन्धन विहीन प्रेम की तीव्र शक्ति का अनुभव कराकर कर्तव्यचित्त या अधिकार से प्राप्त असंगत प्रेम संभोग को वे मंगलमय नहीं मानते उन्होंने प्रेम को सौन्दर्यमय धर्ममयख शान्त एवं संयत रूप में तथा पवित्र श्रेष्ठ बन्धन के रुप में चित्रित करना चाहा है । ऐसा ही प्रेम सौन्दर्य श्री और कल्याण से उद्भासित है दुर्गम प्रेम के प्रलंयकारी वेग से विजडित विचलित मानवमन को मर्यादा की श्रंखला में बांधकर उसे एक नये आध्यात्मिक धरातल में प्रतिष्ठित किया है ऐसे ही प्रेम विषयक दृष्टि का निरुपण चित्रांकन और अभिव्यंजन कालिदास ने अपने नाटकों में किया है ।

भवभूति ने उत्तररामचरित मालतीमाधव, महावीर चरित्र नाटक की रचना की है जिसमें महावीर चरित राम के जन्म, सीता विवाह, वन गमन, सीता हरण, रावण वध प्रत्यागमन तथा उत्तररामचरित में जनापवाद के कारण अनन्त काल के लिये सीता का निर्वासन लवकुश उत्पत्ति राम सीता का पुर्न मिलन चित्रित हुआ है ऐसी राम कथा में कामजन्य विकार प्रधान विषयानन्द या इन्द्रिय चांचल्ययुक्त प्रेम का निरूपण के लिये कम ही स्थान रहा है राम और सीता में विवाह के उपरान्त ही सामीप्य के कारण प्रेम का प्रार्दुभाव हुआ है भवभूति ने बड़ी कुशलता से सीता और राम के प्रारम्भिक प्रेम प्रसंगो का निरुपण उत्तररामचरित में किया है, जहाॅ मुग्धा, कुछ ज्ञात यौवना सुन्दरी सीता के अविकसित वचकाने कोमल दैहिक अंगो के प्रति माता कौसल्या सहित राम की उत्सुकता, यत्र तत्र वनवास प्रसंग में परस्पर आलिंगनबद्ध होकर अव्यवस्थित रूप में मन को उद्वेलित

करने वाले अस्फुट वाक्यों में ही रात्रि व्यतीत करना, तथा यदा-कदा गर्भभार से अलसायी सीता के लिये राम की भुजाओं का तकिया बनाने का उल्लेख करना, ऐसे ही कुछ प्रणय सम्बन्धों को प्रगाढ़ करने वाले प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष चित्रों का अंकन कर भवभूति ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि वास्तविक प्रेम साहचर्य जन्य प्रेम ही होता है जिसमें दैहिक आकर्षण का प्रावल्य तो होता ही है प्रेम की अन्तस स्त्रोतस्विनी, दिव्य मन्दाकिनी के रूप में प्रकट होती है जिसमें सम्मुख विश्व के श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम सुन्दर व्यक्ति आकर्षक रूप और श्रेष्ठ विलास सामग्री भी रसहीन शुष्क और अग्राह्य प्रतीत होती है ऐसी प्रेम मन्दाकिनी में निमाज्जित होकर पात्र अत्यन्त पवित्र दिव्य अनुभूतियों का भावुक बन जाता है और वह अहरनिशि प्रिया के चिन्तन में रत रहता है ।

उत्तररामचरित में सीता निर्वासन के पश्चात् राम का गम्भीर व्यक्तित्व कितना एंकाकी और सीता के प्रति अनन्य हो जाता है । उसका अनुभव भवभूति ने पग-पग पर कराया है और सीता निर्वासन का प्रायश्चि लवकुश की प्राप्ति में समाप्त होता है जहाॅ राम मात्र प्रणयी न रहकर वात्सल्य से आपलावित श्रेष्ठयिता हो जाते हैं ।

मालतीमाधव में मालती और माधव के प्रेम कथा का विन्यास भवभूति ने काव्य शास्त्रानुसार सोपानबद्ध रूप में किया है जहाॅ न तो कोई कथा में किसी प्रकार का पूर्वाग्रह है न ही किसी प्रकार के मर्यादाओं में किसी प्रकार का निषेध, दो मित्रो के मध्यह प्रतिज्ञा हुयी थी कि आगामी जीवन में यदि उनके पुत्री-पुत्र हुये तो वे सहर्ष, उन्हें वैवाहिक बंधन में बांधकर अपनी मित्रता को सम्बन्धों का अन्जाम देगें । अतः चित्र दर्शन और प्रत्यक्ष दर्शन से उत्पन्य यह कायिक आकर्षण आशा निराशा के द्वन्द्व में झूलता रहता है माधव और मालती के आन्तरिक अभिलाषाओं बाध्य कायिक चेष्टायें एकान्तिक मिलने की तीव्रतम इच्छाओं का निरुपण तथा इसमें सहायकों का श्रमसाध्य प्रयास अपने वलवत्र रुप में अभिव्यञ्रित हुआ है किन्तु पूर्व मिलने के अभाव में स्वप्नावस्था में ही मिलन के रति क्रीड़ाओं के अनेक ऐसे चित्र भवभूति ने आलोच्य नाटक में चित्रित किये है जिनसे ज्ञात रति आस्वाद युवता मालती की वियुक्त दशायें कायिक आकषर्णो के प्रवलता को ही निरुपित करती है ।

भवभूति ने रुपाकर्षण जन्य विलास की उसके क्रीड़ाओं का निरुपण इस परिप्रेक्ष्य में करके यह दिग्दर्शित कराने का यत् किंचित प्रयास किया कि प्रेम का यह एक नूतन आमनवपरा

जिसकी उपेक्षा बहुत कठिन है ।

निष्कर्ष यह है कि कालिदास और भवभूति ने अपने-अपने नाटकों में प्रेम के मूल में सौन्दर्य भावना को प्राथमिकता दी है अप्रतिम नैसर्गिक अथवा नागर सौन्दर्य को देख नायक उन पर आकृष्ट हुये इस प्रेम के मूल में काम अनिवार्य रुप से सहायक तत्व के रुप में निरुपित हुआ है । दोनो नाटककारों ने प्रत्यक्ष दर्शन चित्र दर्शन अथवा साहचर्य के सहयोग से प्रेम की उत्पत्ति स्वीकार की है । इस तरह जहाँ कालिदास और भवभूति ने प्रेम विषयक दृष्टिकोण में समानता है वही दोनों नाटककारों में पर्याप्त विषमतायें भी है ।

1. कालिदास के नायक विवाहित है उनमें रूपाकर्षण के प्रति तीव्र आसक्ति मात्र कामजनित ही कहा जायेगा । जो आगे चलकर प्रगाढ़ एवं प्रकृष्ट रूप में पर्यवसित हुआ है जबकि भवभूति के नायक या तो नायिका पर अनुरक्त है या पत्नी में ही अनन्य निष्ठा रखा तदजन्य प्रेम की अनुभूति की है ।
2. कालिदास ने दर्शन संक्षिप्त पूर्वगम जनित विरह और पुर्नमिलन चित्रित कर प्रेम को विवाह ने पर्यवसित होता हुआ दिखाया है जबकि भवभूति ने प्रेम के निरुपण में स्थायित्व और अनिश्चित काल के लिए विरहित होने पर ही वियोग का वर्णन किया अथवा दर्शन के पश्चात् वियोग और जिसका समापन विवाह में चित्रित हुआ है ।
3. कालिदास ने प्रेम में दर्शन योग त्याग और दण्ड भूमियो का उल्लेख कर उसके कोमल किन्तु रसपेषल रुप का चित्रण किया है जबकि भवभूति ने इस प्रकार के सोपानों का कोई विवेचन नहीं किया है ।
4. कालिदास के प्रेम में कामज्वर की तीव्रता संताप और वैकलव्य उन्माद कि दशाओं का वर्णन संक्षिप्त समय में ही प्रदर्शित किया है जो बहुत कुछ मनोवैज्ञानिक मितत पर सुदृण रूप से आधारित नहीं है जबकि भवभूति ने मिलन के पश्चात मिलन के मध्य काफी समय का अन्तराल सब उन्माद सन्ताप वैक्लव्य दशाओं के निरुपण का मनो वैज्ञानिक सम्मत आधार प्रस्तुत किया है ।

उधर कालिदास और भवभूति के प्रेम विषयक दृष्टि का विवेचन साम्य वैषम्य का निरुपण कर अब दोनों नाटककारों में प्रेम स्वरूप का वर्गीकरण करने का यत्किंचित् प्रयास किया जा रहा है ।

होता है । यहाँ यह कहना पिष्टपेषण न होगा कि भवभूति ने दोनों के मिलन में बाधा स्वरूप अनेक नाटकीय घटनाओं का ऐसा विन्यास किया है कि मालती और माधव दोनों के आशा-निराशा के द्वन्द में अन्त तक दोलायमान रहते है । इससे एक ओर उनके ऐकान्तिक अनन्य प्रेम की परीक्षा भी हुई तो दूसरी तरफ मानसिक घात-प्रतिघातो, सुख इच्छाओं से ऊपर उठकर प्रेम को अलौकिक सिद्ध करने का भी सफल प्रयास हुआ है ।

प्रेम-प्रादुर्भाव का वर्णन :-

प्रेम-विवेचन के सन्दर्भ में यह लिखा जा चुका है कि मानव सापेक्ष प्रेम की कई कोटियां होती है किन्तु यहाँ प्रेम के उस रुप का वर्णन किया जा रहा है जो उत्तम प्रकृति वाले युवक-युवती के युग्म के परस्पर द्रवीभूत कर रतिभाव के पीयूष प्रवाह को सर्वसम्पूर्ण रूप से कर रहा है ।

अभिज्ञान-शाकुन्तल :-

कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में प्रेम का प्रारम्भ प्रथम दर्शन से किया है । शिकार के लिए निकला दुष्यन्त अचानक कण्व के आश्रम में पहुंच कर छोटे-छोटे पौधों को सींचती हुई वल्कल वस्त्रावेष्ट शकुन्तला के नैसर्गिक सौन्दर्य को देखता है। यहाँ यह बात विचारणीय है स्त्री पुरुष का परस्पर आकर्षण दुष्यन्त के लिए नवीन अनुभूति नहीं थी, उसके अनेक विवाह हो चुके थे । प्रेम क्षेत्र में वह प्रौढ एवं समझदार था । किन्तु शकुन्तला के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर वह उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता । क्योंकि अन्धकार से लिपटा होने पर भी अत्यन्त रमणीय, कलंकयुक्त चन्द्रमा की शोभा सुन्दर ही दृष्टिगत होती है अर्थात् सभी वस्तुएं शकुन्तला की शोभा के निमित शोभा-कारक बन जाती हैं । उसकेलिए किसी बाह्य अलंकार की आवश्यकता नहीं है[1] ।

कालिदास ने प्रणयी में प्रेम-प्रादुर्भाव के पूर्व शुद्ध, पवित्र, उदात्त और आकर्षक सौन्दर्य का निरुपण करके जहाँ एक ओर शकुन्तला की कमनीयता बतायी है । वहीं दूसरी ओर शकुन्तला के प्रति दुष्यन्त के दृढ़तर रूपाकर्षण की प्रतीति भी करायी है । सचमुच नूतन किसलय

1. अभिज्ञान शाकुन्तल 1/19

के समान अधरोष्ठ लता के समान उसकी आंगिक शोभा[1] किस पुरुष को आकर्षित नहीं करेगी । कालिदास ने शकुन्तला के सौन्दर्य निरुपण हेतु निर्मल प्रकृति का आश्रय लिया है । किन्तु तपस्वी कन्या के इस आकर्षण विवेक संचारी भाव के माध्यम से व्यक्त होता है । क्योंकि सन्देह के स्थलों में उत्कृष्ट तथा पवित्र चरित्र वाले व्यक्तियों की अन्तःकरण की प्रवृत्तियां ही प्रमाण होती है[2] । भ्रमर द्वारा त्रस्त किए जाने पर एकाएक दुष्यन्त का पहुंच जाना इतना नाटकीय एवं आकस्मिक था कि सखियों सहित शकुन्तला उसके प्रति विनम्र एवं आकृष्ट हो जाती है । अतिथि सत्कार हेतु घनी छाया वाले सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे सब लोग बैठते हैं । अभी तक यह खेल एक पक्षीय ही रहा है । प्रणयी दुष्यन्त आश्रय, शकुन्तला आलम्बन, उपवन-उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आश्रय का वृक्षों के पीछे छिपकर निर्मिमेष दृष्टि से रुप-सुधापान करना हर्ष, विवेक, दृढ़तादि संचारी भावों से इस प्रथम दर्शन से उत्पन्न प्रेम का वर्णन अत्यन्त मोहक ढंग से हुआ है -

शकुन्तला (ससंभ्रम्) (अम्मो सलिलसेक संभ्रमोद्गतो नवमलिका मुंझित्वा वदनं मे मधुकरोअभिवर्तते) (इति भ्रमरबांधा रुपयति ।)

राजा (सस्पृहम्)

चलापांग दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यामीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः ।
करौ व्याधुन्वत्याः पिवसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ।। ।।

शकुन्तला (पदान्तरे स्पित्वा सदृष्टिक्षेपम्)

(न नष दुष्टो पिरमति । अन्यतेः गमिष्यामि । कथममितो दृष्या गच्छति । हला परित्रायेथां मामनेन दुर्बिनीतेन मधुकरेण अभिभूयमानाम्)

उभे (सस्मितम्)

(के आवां परित्रातुगं । दुष्यन्तयेवाक्रन्द । राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम ।)

राजा अवसरोअयमात्मनं प्रकाशयितुम् । च भेटव्यं न भेटव्यं (इत्यधौक्ते स्वगतम्) राजाभावस्त्वभिज्ञातो भवेत् । भवतु एवं तावदमिधास्ये ।

1. अभिज्ञान शाकुन्तल ।/20।
2. अभिज्ञान शाकुन्तल ।/21।

शकुन्तला (पदान्तरे स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम्)

(कथमितोअपि मामनुसरति)

राजा (सत्वरमुपसृत्या आः)

कः पौखे वसुमती शासति शासितरि दुर्विनीतानाम् । अयमाचरण्य विनयं मुग्धासु तपस्विकन्य कासु ॥ 23 ॥

अनसूया (आर्य न खलु किमप्यत्याहितम् । इयं नौ प्रियसखी करेणाभिभूयमाना काटरीभूता (इति शकुन्तला दर्शयति)

राजा (शकुन्तलाभिमुखो भूत्वा) अंपि तो पर्द्धते ।

(शकुन्तला साहवसावनतमुखी तिष्ठति ।)

कहना नहीं होगा यह प्रथम दर्शन रूपाकर्षण से युक्त था, जिसमें एक ओर काम का स्फुरण, सौन्दर्य प्राप्ति की लालसा है तो दूसरी ओर कुतुहल, जिज्ञासा है । अतिथि संस्कार से परिचय की सीमा तक जाने का कालिदास ने अत्यन्त मनोवैज्ञानिक मत पर आधारित वृत्तियों का निरुपण किया है । बीच-बीच में दुष्यन्त का सुदर्शन रूप, आन्तरिक गुणों का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म रूप में हुआ है । आत्य परिचय का गोपन एवं शकुन्तला के सम्बन्ध में अपने सन्देह निवारण का प्रयास बड़ी विदग्धता से हुआ है ।

राजा भगवान्कण्वः शाश्वते ब्रह्माणि स्थित इति प्रकाशः । इयं च वः सखी तस्यात्मजेति कथमेतत् ।

अनुसूया (श्रणोत्वार्यः । अस्ति कोपि कौशिक इति गोत्र नामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः ।

राजा अस्ति श्रूयते ।

सलज्जा नवयौवना शकुन्तला के अप्सरा गोत्रोत्पन्न की कथा सुनकर दुष्यन्त को मनौवांछित फल सा प्राप्त हो गया । यहाँ यद्यपि कालिदास ने कामदशाओं का चित्रण उल्लास तक ही सीमित रखा है । तथापि रूप-लिप्सा, आकर्षण, मोह, प्राप्ति लालसा के पीछे काम का ही प्राबल्य है ऐसा कहना असंगत न होगा - शकुन्तला अग्नितुल्या न होकर स्पर्श योग्य रत्न निकली ।

कालिदास ने प्रेम के प्रादुर्भाव का वर्णन रूपाकर्षणजन्य करके काम की सीमा में लाकर छोड़दिया है । इस प्रथम-दर्शन का समापन, शकुन्तला को ऋण मुक्त करने हेतु मुद्रिकादान

एवं शकुन्तला के मन में भी प्रथम यौवनोन्भास रति-अंकुरण से हुआ है क्योंकि उसकी बातों को कान लगा कर सुनना, लज्जा अभिभूत शकुन्तला का चर्तुर्दिक दृष्टि फिराकर पुनः दुष्यन्त के आस पास टिक जाना और अन्त में आगे-आगे जाती शकुन्तला का मन - पताका सदृश पीछे दुष्यन्त के पास भागना इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि जहाँ एक ओर दुष्यन्त के मन में शकुन्तला के नैसर्गिक सुषमा से उत्पन्न प्रेम का वर्णन हुआ है । यह रूपासक्ति प्रथम दर्शन में काम के प्रादुर्भाव का कारण बनी । वहीं दूसरी ओर शकुन्तला के मन में रूप, गुण श्रवण एवं प्रथम दर्शन से रति का उद्भव हुआ है । इससे हम यह सहज निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सौन्दर्य, प्रेम एवं काम के प्रति कालिदास की दृष्टि कितनी व्यापक और निष्कलुष है ।

यही प्रथम दर्शन आगे चलकर काम की विविध क्रीड़ाओं, विलास-लीलाओं एवं गन्धर्व विवाह में परिणत होता हुआ दिखाई देता है ।

मालविकाग्निमित्रम :-

कथा-विन्यास और प्रकरण वक्ता की दृष्टि से मालविकाग्निमित्रम् अभिज्ञान-शाकुन्तल की पूर्ववर्ती रचना सिद्ध होती है । क्योंकि अभिज्ञान शाकुन्तल में जिस नैसर्गिक प्रेम की दुर्निवार गति का वर्णन घात-प्रतिघात से हुआ है । मालविकाग्निमित्र में यह प्रेम-प्रस्फुटन अस्वाभाविक गति से उत्पन्न हुआ माना जा सकता है । अस्वाभाविक इस अर्थ में कि उसका नायक विवाहित होते हुए भी अन्तःपुर में अनेक सुन्दर रानियों से परिवृत होकर भी चित्र में मुग्धा किशोरी नायिका को देखकर जिस प्रकार आकृष्ट होता है । उससे अग्निमित्र का चरित्र श्रेष्ठ कोटि का नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इसके एक ओर ईर्ष्या सपत्न्यजन्य द्वेष भय तो दूसरी ओर अपने ही अन्तःपुर के संयन्त्रा में विद्ध राजा विदूषक की सहायता से ही मालविका का दर्शन कर पाता है ।

मालविकाग्निमित्रम् प्रेम-प्रधान रूपक है, जिसमें प्रेम का प्रादुर्भाव चित्र-दर्शन से लेकर प्रथम-दर्शन तक वर्णित है । वस्तुतः कालिदास चित्र-दर्शन के द्वारा औत्सुक्य ही उत्पन्न कर सके हैं । जबकि रतिअंकुरण हेतु प्रथम दर्शन की आवश्यकता उन्होंने तीव्रता से ही अनुभव की थी । सम्भवतः अभिज्ञानशाकुन्तल में इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर उन्होंने नैसर्गिक परिवेश में ही हृदयावर्जक सौन्दर्य की झांकी अंकित की है ।

नाटककार कालिदास ने कुमुदनी एवं वकुलवालिका के संवादों से चित्र-दर्शन से उत्पन्न अग्निमित्र की उत्सुकता का वर्णन इस प्रकार किया है -

कुमुदनी ने वकुलावालिका को उस परिस्थिति का इस प्रकार वर्णन प्रस्तुत किया है -

वकुलावलिका आम् ! सजनो देव्याः पार्श्वमतश्चत्रे दृष्टः ।

कुमुदिनी कथमिव

वकुलावलिका श्रणु, चित्रशालां गता देवी यथा प्रत्यभ्रवर्ण रागां चित्रलेखायाचार्यस्यालोकयन्ती तिष्ठति । भर्ता चोपस्थितः ।

कुमुदिनी तदो तदो (ततस्ततः)

वकुलावलिका उपचारानन्तरमेकाजनोपविष्टेन भर्ता चित्रगताया देव्याः परिजन मध्य गतामसन्नदारिकां दृष्ट्वा देवी

कुमुदिनी किमति

वकुलावलिका अर्श्वेयं दारिका देव्या आसन्ना आलिखिता किंनामघेयेति

कुमुदिनी आकृतिविशेषो वदं करोति । ततस्ततः

वकुलावलिका ततोअवधीरित वचनो भर्ता शंकितो रेवी पुनरप्यनुबन्धुम । तत कुमार्या वसुलदम्याख्यातम । आर्य एषा मालविकेतिः ।

कुमुदिनी सस्मितया (सदृशं खलु वातभावस्या ततोअपरं कथय ।

वकुला किमन्यत साम्प्रत मालविका सविशेषं भर्तुर्दर्शनपथादृक्ष्यतो ।

चित्रदर्शन के औरसुक्य का पर्यवसान प्रथम दर्शन में इस हेतु नाटककार ने रंगमंच में मालविका द्वारा अभिनीत नृत्य का आयोजन किया है ।

मालविका के रंगमंच के प्रथम प्रस्तुतीकरण में प्रस्तुत किए जाने वाले गीत के भावों को समझ कर राजा के हृदय में किस प्रकार का आकर्षण एवं प्राप्त्याशा उसके हृदय में उत्पन्न हुई उसकी पीड़ा वह अपने अन्तरगत भावों के द्वारा ही समझ सकता था । यद्यपि यह प्रेम एक पक्षीय न होकर उभय पक्षीय था । क्योंकि गीत बोल मालविका के अन्तरगत उत्पन्न प्रेम को प्रकट कर रहे थे । मालविका ने मन ही मन राजा को अप्राप्य मानकर उससे मिलने की आशा छोड़ दी ।इस

प्रकार मन ही मन स्वयं को समझाती है । जबकि मालविका का चित्र राजा के प्रति पूर्व आसक्त था ।

गीतकाव्य आंगिक हाव-भावों से परिपूर्ण होने के कारण राजा के प्रति अनुराग को विभिन्न संचारी भावों के माध्यम से प्रकट करता था । रंगमंच में नृत्य-कला प्रस्तुत करते समय ही राजा का चित्त मालविका के प्रति पूर्ण आसक्त हो गया था । राजा ने स्वतः स्वीकार किया कि मुझे मालविका के प्रति इस प्रकार की आसक्ति हुई है कि हमें अपने राजा होने का अभिमान छोड़ देना पड़ा । राजा ने यह भी स्वीकार किया कि यद्यपि मालविका उत्तम गीतिकाव्य एवं नृत्यकला की कलाकार है फिर भी रूप-लावण्य उसमें चार चॉद लगा रहा है और इस प्रकार आलम्बन (मालविका) को देखकर आश्रय (राजा) ने स्वगत कहा कि मेरी ऑखो, को जो देखना था देख लिया । क्योंकि इन नेत्रों ने थोड़े-थोड़े दिखाई देने वालो मालविका के दातों की चमक से विभासित सुन्दर मुख को देख लिया - जो उस विकसित होने वाले कमल के सदृश्य मन्द मुस्कराहट से युक्त थे, जिसके केश अल्पमात्र दिखाई दे रहे हों । प्रेम का वास्तविक रूप क्या है ? यह अज्ञात, प्रच्छन्न एवं दृष्टिगोचर नहीं है ।

प्रथम दर्शन में ही मालविका स्वतः अग्निमित्र पर आसक्त हो जाती है और गीत के माध्यम से अपने मनोगत भावों को राजा तक पहुंचाती है । क्योंकि राजा और मालविका दोनों एक-दूसरे पुनर्मिलन की आकांक्षा रखते है, लेकिन पुनर्मिलन होगा यह असम्भव भी समझते हैं । किन्तु यह प्रथम दृष्टि का प्रेम रूपी बीज धीरे-धीरे अंकुरित होता रहता है । यहॉ तक कि राजा ने यह कहा कि स्वभाव से ही सुन्दर उस मालविका को विधाता ने ललित कला का ज्ञान देकर मेरे लिए कन्दर्प के बाण को विष से बुझा दिया है ।

इस प्रकार हम रूपकातिशयोक्ति न मानते हुए यह कह सकते है कि मालविकारूप सौन्दर्य की मल्लिका होते हुए भी ललित-कला से पूर्ण दक्ष थी, गीत के माध्यम से अपने प्रेम का प्रतिवेदन, आंगिक प्रस्तुतीकरण आदि सब मनोगत भावों का प्रस्तुतीकरण करते हैं । यह कहना समीचीन होगा कि विधाता कितनी सुन्दर वस्तु पैदा कर सकता है यह कोई नही जानता, सुन्दर वस्तु के प्रति आकर्षण सहज ही है । इस प्रकार औत्सुक्य, वियोग-श्रृंगार, आलम्बन सौन्दर्य, विमर्श, मौन स्वीकृति आदि के द्वारा राजा एवं मालविका एक दूसरे के मौन प्रेम के प्रति आश्वस्त से हो

जाते हैं । क्योंकि दोनों विरहग्नि से क्षुब्ध होते हैं । जिसकी प्रतीति राजा के प्रत्यक्ष-दर्शन से होती है । जिसके लिए परिहास के रूप में विदूषक राजा से मालविका के बिन्दु इन की बात को कह भी देता है । इस प्रकार प्रेम एक मौन अभिव्यक्ति है ऐसा शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है

राजा (जानान्तिकम्) वयस्य ।

नेपथ्यपरिगतायाश्चक्षुर्दर्शनसमुत्सकंतस्या ।

संहर्तुयधीरतया व्यवसितमिव में निरस्करणीम् ।।

विदूषक (अपवार्य) (उपस्थितं नयनमधु संनिहितयाक्षिक च तदश्रमवत इदानी पश्य ।)

(ततः प्रविशत्याचार्यवेक्षमाणांगसौष्ठवा मालविका ।)

विदूषक (जानान्तिकम्) (पश्यतु भवाम् । न खल्वास्याः प्रतिछन्दात्परिहीयते मधुरता ।)

राजा (अपवार्य) वयस्य ।

चित्रगतायामस्यां कान्तिविसंवादशंकि में हृदयं ।

संप्रति शिथिल समाधि मन्ये येनेयमालिखिता ।।

गणदास वत्से मुक्ता साहवसा सत्त्वस्था भव ।

राजा (आत्मगतम्) अहो सर्वस्थानानवद्यता रूप विशेषस्य तथाहि ।

दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्ति वदनं बाहू नाटवसयोः

संक्षिप्त निर्विंओन्नतस्तनभुरः पार्श्वे प्रभृष्टे इव ।

मध्यः पणिमितो नितम्बि जघनं पादावरालांगली

छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसि श्लिष्टं तथास्या वपुः ।।

मालविका (उपगानं कृत्वा चतुष्पदवस्तु गायति ।)

(दुर्लभ प्रियो में तस्मिन्भव हृदय निराश यही अपांगो में परिस्फुरित किमपि वायः ।

एष चिरदृष्टः कथं पुनरुपनेतव्यो नाथ मां पराधीनं त्वयि परिगणय सतृष्णाम ।।)

(ततो यथारसमभिनयति ।)

विदूषक (जानन्तिकम् ।) (भो वयस्य । चतुष्पदवस्तुकं आत्म तत्र भवत्या ।)

द्वारीकृत्य त्वं

राजा सखे एवमेव ममापि हृदयम् । अनया खलु ।

जनभिममनुरक्तं विद्धि नाथेति गेये वचनभभिनय-त्याः स्वांगनिर्देशपूर्वम् प्रणयगीतम्

दृष्ट्वा धारिणी संनिकर्षादहमिव सुकुमारप्रार्थनाव्याजमुक्तः ।।

(मालविका गीतान्ते निष्क्रमितुमाख्धा)

विक्रमोर्वशीयम् :-

प्रेम के विवरणात्मक क्रम में यह उल्लेख किया गया है कि प्रेम-क्षेत्र में अनेकानेक अपेक्षित साहचर्य एवं मनोअभिलाषित इच्छाओं के प्रति उस रूप में प्राप्त होती रहती है जिस रूप में नवदम्पत्ति परस्पर आलिंगबद्ध होकर रतिभाव के अमिय-प्रवाह में डुबोकर आत्मसात कर देता है ।

कालिदास ने विक्रमोर्वशीयम् के प्रथम प्रकाट्य में प्रेम का प्रारम्भ किया है । नर के मित्र नारायण की जांघ से उत्पन्न उर्वशी जैसे ही कैलाशनाथ कुबेर की पूजा करके लौट रही थी, उसी समय केसी राक्षक के द्वारा उठा लिए जाने के समय अप्सराओं के द्वारा बार बार रक्षा करने की आवाज को सुनकर राजा पुरुरवा तत्क्षण उर्वशी की सहायता के लिए उद्यत होता है । अप्सराओं से यह कहकर आप लोग मेरी यहीं प्रतीक्षा करें अतीव वेग के साथ हेमकूट पर्वत की ओर पहियों में सवार सम्राट ध्वज के नीचे खड़ा हुआ हेमकूट पर्वत पर जैसे ही पहुंचा मेनकादि अप्सराओं को यह विश्वास हो गया कि ये वही राजर्षि है जिन्होंने केसी जैसे दुर्दान्त अन्य राक्षसों का भी विनाश किया है । इसी बीच राजा, चित्रलेखा के बांहों में लेटी हुई भय से अक्रान्त उर्वशी को देखकर अश्वस्त कराते हैं कि अब उसे किसी प्रकार का भय नहीं है । उस समय उर्वशी की आँखों में जो सहजाकर्शण था वह राजा को हठात् अपनी ओर आकर्षित कर रहा था । इसी बीच उस कमल लोचना उर्वशी को सम्राट वनचारिणी हरिणी के समान, खंजन पक्षी के कजरारे नेत्रों वाली उर्वशी को अपनी आँख खोलने के लिए कहते हैं ।

कोमल मांसल देह तथा लावण्यमयी कान्ति वाली उर्वशी के उस अलौकिक सौन्दर्य को दृष्टिगत करके राजा अपने मन में विचार करता है कि जो निरन्तर वेद अध्ययन भोग-विलास के प्रति निरुत्साहित हो जाते हैं आज वो भी उस मनोहर छवि वाली उर्वशी को देखकर एक बार

उन्मुक्त कण्ठ से इसकी प्रशंसा अवश्यक करेंगे । धन्य है उस ऋषि को जिसने इस प्रकार का अनुपम अद्वितीय, अनूठा, अप्रतिम रत्न इस रत्नगर्भा वसुन्धरा को प्रदान किया है । इसके इन उन्नत उरोजों में पड़ा हुआ वल्कल वस्त्र उस कोमल हृदय को जो पुष्प सदृश है से छुटकारा नहीं पाना चाहता है । अर्थात् उसकी इस लावण्यता से इस बेजान वस्त्र को भी प्रेम हो गया है ।

(निष्क्रान्तो येन च सूतश्च)

सहजन्या — हलागटो राजर्षिः । तद्वयमपि यथा संदिष्टम् प्रदेशं गच्छामः ।

मेनका — सखि एवं कुर्मः ।

इति हेमकूट शिखरे नाट्येनाधिरोहन्ति

रम्भा — अपि नाम स राजर्षि कद्धरति नो हृदयशल्यम

मेनका — सखि मा ते संशयो भवतु

रम्भा — ननु दुर्जया दानवा

मेनका — उपस्थित संपशयो महेन्द्रोअपि मध्यमलोकात्स बहुनाम तमे विवुध विजयायसेनामुखे

रम्भा — सर्वथा विजीय भवन्तु

मेनका — सख्य, समश्वसित समाश्वसित । एष उल्लसितहरिणकेतनस्तस्थ राजेर्षेः सोमदत्तो रथो दृश्यते । नैषोअकृतार्थः प्रतिनिवाष्यति इति तर्कयामि ।

निमितं सूचयित्वावलोकन्त्यः स्थिताः ।)

तत प्रविशति रथारूढ़े राजा सूतश्च । भयनिमीलिताक्षी चित्रलेखा दक्षिण हस्तावलम्बिता उर्वशी च ।)

चित्रलेखा — सखि समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

राजा — सुन्दरि समाश्वसिहि ।

गतं भयं भीक सुरारिसंभवं त्रिलोकरक्षी महिमाहिवज्रिज तछेतदुन्मीलय चक्षुशयत निशावसाने नलिनीव पंकजम् ।।

चित्रलेखा — अहां कथगुच्छवसितमात्रसंमाविजजीविता अघाप्येक संज्ञा न प्रतिपद्यते

राजा भवती परित्रस्ता । तथाहि ।

मन्दार कुसुमदम्ना गुरुरस्या, सूच्यते हृदयकम्यः ।

मुहुरुच्छवसता मध्येपरिवाहवतो पयोधरयोः ।।

चित्रलेखा (सकरुणं) (सखि उर्वशी पर्यवस्थापयात्यानाम्‌अनप्सरेव प्रतिमासि ।)

राजा मुंचति न तावदस्या भपकम्पः कुसुयकोमलं हृदयं । सिचयान्तेन कथचित्स्तनमध्योच्छवासिना

कथिताः ।।

(उर्वशी प्रत्यागच्छति

राजा सहर्षम् चित्रलेखे द्रिष्ट्या प्रकृतिमापन्ना ते प्रियसखी । पश्च ।

आविर्भूते शशिनि तमसा मुच्यमानेव रात्रिर्नैशस्यार्चिर्हुतभुज इव च्छिन्नभूयिष्ठधूमा

मोहेनान्तर्वरतुनुरियं रक्ष्यते मुक्तकल्पा गंगारोधः पतन कलुषा गच्छतीव प्रसादम् ।।

चित्रलेखा सखि उर्वशी विस्तब्धा भ्व । आपन्नानुकम्पिना महाराजेन प्रतिहताः खलु ते त्रिदृशपरिपन्थिनो हताशदानवाः

उर्वशी चक्षुषी उन्मील्य किं प्रभावदर्शिना महेन्द्रेणाभ्युयपन्नास्मि ।

चित्रलेखा न महेन्द्र सदृशानुभावेन राजर्षिणपुरत्वासा ।

उर्वशी राजानमवलोक्य । आत्मगतम ।) उपकृत खलु दानवेन्द्रसंरम्भेण ।)

राजा (उर्वशी विलोक्य) आत्मगतम् ।)

अस्या सर्गविधौ प्रजापतिश्भूच्चन्द्रो नु कान्तिपदः

श्रृंगारैकरतः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।

वेदाभ्यास जडः कथं नु विषय व्यावृत कौतूहलों

निर्मातुं प्रभवेन्यनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ।।

उर्वशी सखि चित्रलेखे सखीजनः कुत्र खलु भवेत ।

चित्रलेखा सखि अभ्यप्रदायी महाराजो जानति ।

राजा उर्वशी विलोक्य महति विषादे वर्तते सखीजनः पश्यतु भवति

यदृच्छया त्वं सकृदप्यबन्ध्ययोः पथि सिथतासुंदरि यस्थ नेत्रयोः ।

यदृच्छया त्वं सकृदप्यबन्ध्ययोः पथि स्थितासुंदरि यस्थ नेत्रयोः ।

त्वया बिना सोअपि समुत्सको भवेतसखी जनस्ते किमुदार्द्र सौहृदः ।।

उर्वशी (आत्मगतम्) अमृतं खलु ते वचनम अथवा चन्द्रामिति किमाश्चर्यम । अत एव मे प्रेक्षितुं त्वरते हृदयं ।

राजा (हस्तेन दर्शयन्)

एताः सुतनु मुखं ते सख्यः पश्यन्ति हेमकूट गताः ।

उत्सुक नयना लोकश्चन्द्रमिवोपरलवान्मुक्तम[1] ।।

उत्तर राम चरितम् :-

कालिदास की रचनाओं का अध्ययन करते हुए हमने देखा है कि इन्होंने प्रेम प्रस्फुटन हेतु पर्वूराग के रूप में प्रथम दर्शन और चित्र दर्शन का सहारा लिया है । वहीं भवभूति ने प्रथम दर्शन के साथ साथ साहचर्यजन्य रति अंकुर का वर्णन किया है । बात यह है कि रूपाकर्षण और रूपलिप्सा उत्सुकतापूर्ण जहाँ है शुचि, पूत और मेध्य होता है । क्योंकि इसमें वासना विलीन होकर मंजीष्ठ राग की ओर अग्रसर हो जाती है जो दम्पत्ति का काम्य है ।

भवभूति ने राम कथा सम्बन्धी महावीर चरित और उत्तररामचरितदो रचनाओं का प्रणयन किया है । उत्तररामचरित शीर्षक से ही यह ध्वनित होता है कि महावरी भवभूति की विश्रुत लेखनी से मिश्रित होकर उत्तररामचरित के रूप में प्रकट हुए हैं । जिसमें प्रजा का पुत्रवत् अनुराग एक ओर है तो दूसरी ओर पत्नी के प्रति साहचर्यजन्य प्रेम ।

यद्यपि उत्तर रामचरित की कथा सीता विवाह, वनवास, रावण-वध, अयोध्या प्रत्यागम के बाद की कथा है । अतः इसमें पूर्वानुराग का कोई स्थान नहीं है । कवि भवभूति ने उत्तररामचरित की कथा का संविधान इस रूप में प्रस्तुत किया है कि इसमें साहचर्ज जन्य प्रेम की हृदयद्रावक झांकी यत्रतत्र अंकित है । अपनी प्राण प्रिया वल्लभा सीता की पुनः प्राप्ति के लिए राम ने जिस असंभव कार्य को संभव किया है उसके पीछे उनकी वीरता के साथ साथ, अन्तरसलिल के साथ साथ साहजन्य प्रेम की वह धारा है जिसमें वे आपदान्मस्तक आप्लावित एवं आप्यायित हैं ।

नाटककार भवभूति ने लोकापवादजन्य सीता निर्वासन की पृष्ठभूमि में उस प्रगाढ़

1. विक्रमोर्वशीयम् पृष्ठ 146

प्रेम का वर्णन किया है जिसका अनुशासन आगे चलकर सीता के लिए सुदृढ़ आधार स्तम्भ बना । प्रथम अंक में ही जनक के चले जाने पर दु:खिता सीता को धैर्य बंधाने हेतु लक्ष्मण ने राम कथा का चित्रांकन प्रारम्भ किया था । ऐसे समय राम ने उसके उस समय के रूप-सौन्दर्य का चित्रण किया है जब वह विवाहोपरान्त अयोध्या वापस लौटी थी ।

इयमपि तदा जानकी　　प्रतनु विरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै

दशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधटी मुखम ।

ललितलतैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै

रकृत मधुरैरम्बानां में कुतूहलमंगकै :[1] ।।

कहना नहीं होगा कि कपोलों पर बिखरी हुई सूक्ष्म एवं विरल मनोहर केशावलि, कुन्द कोरक सदृश रोमावलि की पंक्ति से समन्वित मुखमण्डल अतीव सुन्दर था । मनोहर चन्द्र किरण सृदश कोमल अत्यन्त ललित विलासों से युक्त छोटे अंग अतिशय दर्शनीय थे । ऐसी किशोरी सीता को देखकर माताओं के साथ राम भी उत्सुकतापूर्ण हो गये थे । इसी प्रकार वनवास काल में प्राप्त दुर्लभ साहचर्य परस्पर प्रीति कर निरन्तर नैकट्य लाने वाला सिद्ध हुआ । राम कहते हैं कि सीता का स्पर्श उनके इन्द्रिय समूह को मूढ़ करने वाला है अथवा उस राम के ज्ञान को कभी तिरोहित करता कभी प्रकाशित करता है -

विनश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा

प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविपर्सः किमु मदः ।

तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढ़ेन्द्रियगणो

विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च[2] ।।

तात्पर्य यह है कि भवभूति ने उत्तर रामचरित में सीता के अपरूप सौन्दर्य का श्लाघनीय वर्णन के साथ उनके विशिष्ट गुणों का वर्णन भी किया है । जिन गुणों का अनुभव कर राम तृप्त, परितुष्ट, आप्लावित हो गए हैं । यत्र-तत्र सीता के बाह्य रूप को रेखांकित उन्होंने इसी प्रेम को पुष्ट किया है । सीता को उनके घर की लक्ष्मी है । राम के नेत्रों के लिए अमृत सलाखा है, उसके शरीर का स्पर्श साखात चन्द्रन सदृश है -

1. उत्तररामचरित 1/20
2. उत्तररामचरित 1/35

इयं गेहे लक्ष्मीरियमनमृतवर्तिर्नयनयो
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः ।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमस्तृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ।।

मालतीमाधवम् :-

प्रेम शाश्वत और अनादि काल से निरन्तर चला आने वाला वह नियम है जिसका समाप्त होना प्रायः असम्भव सा है । यह अन्तर एवं बाह्य दोनों जगत में व्याप्त है ।

महाकवि भवभूति ने प्रेम का विवेचन अत्यन्त स्पष्ट एवं सुग्राह्य शब्दों में किया है ।

यह नाटक उभयपक्षीय प्रणय-युक्त है तथा दोनों प्रणयी एक दूसरे के अन्तरग्राही भावो को भलीभाँति जानकर ही प्रणय-सूत्र में बंधते हैं और इस प्रकार प्रणय-युग्म का अभीष्ट अन्ततः उसके पक्ष में जाता है ।

प्रथम दर्शन से ही निरुपय निरुतसौन्दर्य से निरुपित माधव को दूर से देखने पर ही मालती उस पर अनुरक्त हो जाती है और वह उस रूप-सुधा का पान कर अपने को संभाल न सकी एवं उसके स्तम्भ, स्वेद और रोमांचादि सात्विक भावों का भी अर्विभवि हुआ । ऐसा ही नही सखी लवंगगिका के द्वारा मदनोद्यान में मदनोत्सव के समय मालती के वहाॅ ले जाने पर दूर से ही माधव के द्वारा कुसमकली के समान कोमल अंगो वाली विधु-वदनी, कमललोचनां, कीरनसिका उस मालती को देख जाने पर माधव स्वतः अपना आत्म-नियन्त्रण खोकर मालती पर पूर्ण आसक्त हो जाता है ।

इस प्रकार मालती और माधव में परस्पर प्रणय का अंकुरण अन्योन्यानय नेत्र-व्यापार के माध्यम से एक दूसरे के अन्तरभावों का प्रस्फुटन यहीं से प्रारम्भ हो जाता है । दोनों में प्रणयसंचारिका का कार्य कामन्दकी के द्वारा सम्पादित होता है । जिसमें वह सफल होकर अन्ततः मालती को माधव से प्रणयसूत्र के बन्धन में बंधने के लिए भी आबद्ध करा लेती है ।

प्रेम अनुलंघनीय है । प्रेम जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है तो यह नियति की चरम स्थिति तक पहुंच जाता है । इसी प्रकार मालती और माधव का परस्पर मिलन मदनोद्यान

में मदनोत्सव के समय शिवमन्दिर के अन्दर पूर्णरूपेण होता है तथा वहाँ पर दोनों आलिंगनबद्ध भी होते हैं । तत्पश्चात् प्रणयसूत्र के बंधन में अनिष्ट की अशंका व्यक्त करते हुए मालती-माधव के साथ वहाँ से कहीं दूर चले जाने के प्रतिवेदन करती है । इसी बीच माधव का मित्र मकरन्द मालती का वेष धारण कर नमसचिव के साथ पाणिग्रहण कराकर मालती को बचा लेता है । वहीं कामन्दकी मन्दिर के अन्दर मालती माधव का गान्धर्व-विवाह करा देती है ।

मन्दारिका (सहर्षम्) दिष्ट्या उपदर्शित फलं विज्ञानं प्रजापतेः ।

मकरन्द सखि मन्दारिके, यदत्र वस्तु-येषु ते वल्लभः कथयति अपि तन्तथा ।

मन्दारिका महाभाग तत्तथा ।

मकरन्द पुनर्मालिती माधवं प्रागदृष्टवती ।

मन्दारिका लवंगिका भणित वान्तायनगतेति ।

मकरन्द नन्वमात्यभवनासन्नरथ्ययैव बहुशः संचरावहे । तदुपन्नमेतत् ।

मन्दारिका अनुमन्यतां महाभागः । यावदिदं भगवतो देवस्य मदनस्य सुचरितं प्रियसख्यै लवंगिकायै निवेदयिष्यामि

मकरन्द प्राप्तावसरमेतद्भवत्याः ।

(उत्थाय परिक्रामतः)

मकरन्द वयस्य मध्याह्वोअतिवर्तते । तदेहि । संस्त्ययमेव प्रविशावः ।

(उत्थाय परिकामतः)

माधव एवं हि मन्ये ।

धर्माभ्योविसरविवर्तनैनिदानीं
मुग्धास्याः परिजनवा सुन्दरीणाम
तत्प्रातविहित विचित्र पत्र रेखा
वैदग्ध्यं जहति कपोलकुंकुमानि ।।

अपि च

उन्मीलन्मुकुलकरालकुन्द कोशप्रच्योत दनमकरन्दगन्धवन्धो ।
तामीषत्प्रचलविलोचनां नतांगीमालिंगन्पवन मम स्पृशांगमंगया ।।

मकरन्द (स्वगतम्)

अभिद्व न्त हन्त कथमेष माधवं सुकुमारकायमनवग्रहः स्मरः ।

अचिरेण वैकृतविवर्तदारुणः कलमं कठोर इव कूटपाकलः ।।

तदत्र भवती कामन्दकी नः शरणम् ।

माधव (स्वगतम्)

पश्यामि तामित इतः पुप्तश्र पश्रा-

दन्तर्वहि परितः एव विवर्तमानाम ।

उद्बुद्धयुग्धकनकाकाब्जनिभं वहन्ती

यासंगतिर्यगपवर्तितद्रृष्टि ।।

प्रकाशम् वयस्य, मम हि संप्रति -

प्रसरति परिमाथी कोअव्ययं देहदाह

स्तिरपति करणानां ग्राहकत्वं प्रमोहः ।

रणश्णक वृद्धि विभृदावर्तमानं

ज्वलति हृदयमन्तस्तन्मयत्वं च छत्ते ।।

संस्कृति की कृयितों एवं रूपयों में कालिदास एवं भवभूति अद्वितीय हैं ।

भवभूति अपनी प्रगाढ़, प्रौढ, प्रखर, प्रकृश्ट, प्रगलम्भ एवं मनोहर प्रतिभा से मालती-माधव में वैशिष्ट्य के साथ अद्भुत, अलौकिक और भयानक पदार्थ की भी अवतारणा कर पाठकों विद्वजनों के चित्त को आकृष्ट करने में भी भवभूति अपनी मिसाल रखते हैं । मालती-माधव के सप्तम अंक का अर्द्धरात्रि वर्णन कौन सा ऐसा हृदय होगा जिसका कवि ने अपनी लेखनी के द्वारा प्रकृति के माध्यम से हरण न किया हो -

महाकवि ने मालती-माधव में श्रृंगार रस का पूर्ण समावेश किया है । अंग के रूप में अन्यान्य रसों का भी यथास्थान निपुणता पूर्वक उद्बोधन किया है । कवि ने आलम्बन (मालती) एवं आश्रय (माधव) दोनों को अनेकानेक संचारी भावों के माध्यम से प्रणय-प्रसंग में अलौकिक प्रणीय के रूप में विवेचन किया है । इस प्रकार कवि का प्रणय विवेचन अपने में एक अनूठी रचना है ।

कालिदास के तीनो नाटकों में प्रेमपात्र के द्रृष्टिकोंण से यदि वर्गीकरण किया जाये तो यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि उसके नायक विवाहित है और उन्होंने कुमारी कन्याओं से प्रेम किया है । अभिानशाकुन्तल में दोनों का प्रेम अन्त में स्थायी रूप से दाम्पत्य रूप में पर्यवसित हुआ है जबकि विक्रमोर्वशीयम् में पुरुरवा अप्सरा उर्वशी से प्रेम करता है और अन्त में स्थायी रुप से बिछुड जाता है । मालविकाग्निमित्रम् में अग्निमित्र और मालविका प्रेमी-प्रेमिका के रुप में चित्रित हुए है जो अन्त में ही मिलते हैं इस प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तल में प्रणयी दुष्यन्त कामी प्रेमी और दाम्पत्य प्रेम ने उच्च आदर्शो पर अवस्थित होता हुआ दिखाई देता है तो विक्रमोर्वशीयम् में प्रेम का एक भिन्न धरातल जहाॅ उत्तप्दछ्वासोवास उत्तेजित काम विकार निर्वाद स्वच्छन्द काम विकार दैहिक और सुख भोग विलास का उद्दाम वर्णन है तो मालविकाग्निमित्रम में मालविका पर अनुरक्त अग्निमित्र द्वारा उसके प्राप्त करने के प्रयासो का बहुविध वर्णन है इस प्रकार कालिदास ने प्रेमी प्रेयसी और दाम्पत्य प्रेम के विविध रुपो का चित्रांकन दिखाया है ।

भवभूति ने महावीर चरित और उत्तररामचरित में नायक राम और सीता के दाम्पत्य प्रेम का गार्हस्थिक सीमाओं में आबद्ध रहकर प्रणयी राम के क्रीडाओं का वर्णन अत्यन्त संमयित मर्यादा के आवरण में किया है जो गम्भीर और एकान्तिक होकर प्रणयीजनों को काम्य रहा है । मालतीमाधवम् में प्रेषण प्रेमी के विविध सोपानो का क्रमबद्ध रूप से चित्रांकन करते हुयेअन्त में मिलन का वर्णन किया है इस प्रकार भवभूति ने दाम्पत्य प्रेम के साथ प्रेम के दो ही रुपो का उल्लेख किया है

निष्कर्ष यह है कि कालिदास ने सौन्दर्य काम और प्रेम के त्रिआयामी रूपों का निरुपण अपने नाटको में किया है प्रेमिका शकुन्तला गान्धर्व विवाह कर दुष्यन्त को प्राप्त करती है बिछुडती है और पुनः पत्नी रुप में प्रतिष्ठित होती है जबकि उर्वशी प्रेमिका रुप में ही रहकर पुरुरवा को आयु पुत्र देकर सदैव के लिये बिछुड जाती है तो मालविका प्रेयसी से पत्नी बनने की विविध सोपानों को पार करती है जबकि भवभूति की सीता पत्नी और मालती मदयन्तिका प्रेमिका रहकर अन्त में भवभूति दोनों ने ही प्रेम में परकीया स्वरुप प्रेमी-प्रेमिका को चित्रित कर उसका पर्यवसान पत्नीत्व और मातृत्व के रुप में किया है ।

4. प्रेमी के गुण :-

पिछली पंक्तियों में कालिदास और भवभूति के नाटकों में प्रेम प्रार्दुभाव के दृश्यों

का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि चित्र प्रत्यक्ष और साहचर्य से यह प्रेम उत्पन्न हुआ है यहॉ प्रेमी में प्राप्त गुणों का विश्लेषण अत्यन्त संक्षिप्त रुप में किया जा रहा है ।

1. संकल्प :-

प्रेमी में संकल्प गुण का विशेष आवश्यकता होती है क्योंकि यह संकल्प जहॉ एक ओर प्रेम के प्रति अनन्य निष्ठा उत्पन्य करता है वही दूसरी ओर प्रिय पात्र से मिलने के लिये उसके हृदय में उत्पन्न वेदना को सहन करने की शक्ति भी देता है । दुष्यन्त, पुरुरवा, अग्निमित्र, राम और माधव मकरन्द में संकल्प निष्ठा का आदर्श रुप मिलता है अन्तःकरण की वृत्तियों को ही प्रमाण मानने वाला दुष्यन्त कहता है । यह शकुन्तला स्त्री के द्वारा पत्नी के रूप में स्वीकार करने के योग्य है क्योंकि उसका श्रेष्ठ मन इसे चाहता है ।

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा मदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।।[1]

एक बार उसके मन में यह बात अवश्य उठती है कि अनिवर्णीयम् पत्रकलत्रम् या अनार्य परदार व्यवहारः किन्तु वाद में शकुन्तला उसे जब स्पर्श करने योग्य मणि प्रतीत हुई तब उसका संकल्प आदर्श रुप में प्रतिष्ठित होता है और वह शकुन्तला के प्रति तीव्र आसक्ति को अनुभव करता है वह कहता है ।

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्धावदर्शनाश्वासि ।
अकृतार्थेअपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते ।।[2]

कथा विकास क्रम को न कह कर यहॉ इतना कहना अभीष्ट है कि संकल्प के कारण ही दुष्यन्त ने शकुन्तला को प्राप्त किया उसके वियोग में घुलता रहा और पुनः मूलधन के साथ ब्जया रुप में पितृ पद पर अभिसिक्त हुआ ।

विक्रमोर्वशीयम् में राक्षस द्वारा अपहृता उर्वशी की रक्षाकर पुरुरवा स्वयं उसके प्रेमपाश में आबद्ध हो गये अपने प्रिय की प्राप्ति का उपाय उन्हें सूझता नही क्योंकि उर्वशी और पुरुरवा के परिवेश में बहुत अन्तर है मानव पुरुरवा अप्सरा कोटि की स्त्री उर्वशी से प्रेम करता है यह

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1/21
2. अभिज्ञान शाकुन्तल 2/1

तो उसका संकल्प उसकी निष्ठा ही है जिसके कारण उर्वशी को स्वर्ग से धरती पर अवतरित होना पड़ा - उर्वशी के पत्र को प्राप्त कर राजा कितना प्रसन्न हुआ इसका निरुपण कालिदास ने इस प्रकार किया है वह स्वयं चित्र लेखा से कहता है -

पर्युत्सुका कथयसि प्रियदर्शनां तां
आर्त न पश्चसि पुरुरवसं तदर्थ ।
साधारणोअयमुभयोः प्रणयः स्मरस्य
तप्तेन तप्तमयसा घटनाम योग्यम्[1]

मालविकाग्निमित्रम में चित्र दर्शन से अभिभूत राजा मालविका को प्राप्त करने का प्रयास करता है किन्तु सौतन द्वेष में पीड़ित उसकी विवाहिता रानियां बाधा स्वरुप खड़ी होकर उसे प्रेम पथ से वितर करना चाहती है किन्तु अग्निमित्र अपने संकल्प के कारण कृत कार्य होता है वह कहता है कि अन्तःपुर की रमणियों की उपेक्षा उसके हृदय में अधिकारिणी एक मात्र मालविका है ।

सर्वास्तः पुरवनिताव्यापारप्रतिनिवृत्तहदयस्य ।
सा वामलोचना में स्नेहस्यैकामनीभूता[2] ।।

भवभूति में राम विवाहित दम्पती है सीता हरण के पश्चात् रावध वध तक के सभी कार्य राम के संकल्प शक्ति के ही द्योतक है सीता के प्रति अनन्य निष्ठा के कारण ही असम्भव कार्य सम्भव हो सके भवभूति ने अत्यन्त मनोवैज्ञानिक पद्धति पर राम की क्रियाशीलता की पृष्ठभूमि में किसी अचिन्तानीय प्रभाव का उल्लेख किया है मैं समझती हूँ यह अचिन्तिनीय प्रभाव राम का सीता के प्रति अनन्य प्रेम उसे पुनः प्राप्त करने का निरुदयोग प्रयास के मूल में प्रेमी की संकल्प निष्ठा ही जिसके कारण उनका उत्साह तनिक भी शिथिल नही होता इन्द्र कहता है -

एताभ्यां राघवाग्यां सकुतुकमिषुभिश्छिद्यमानेषु मूर्ध ।
स्वेकस्यैकोअप्यनन्तः किमु सरसगुणो वर्णनीयोअपरस्य ।
एतत्संपश्यतोरण्यतिचिरमनयोः कोअप्यचिन्त्यः प्रभावोः
मत्रोत्साहो न धैर्य विरमति न शिरश्छेदतः पत्रिणोअपि[3] ।।

1. विक्रमोर्वशीयम् 2/15
2. मालविकाग्निमित्रम् 2/14
3. महावीर चरितम् 6/61

मालतीमाधव में जिस प्रेम कथा का विन्यास भवभूति ने किया है उसके मूल में ही संकल्प शीलता दिखाई पड़ती है माधव मालती के प्रति अनन्य प्रीति रखता हे वह अहर्निश उसका ध्यान करता है रुपाशक्ति और अपने आकर्षण का चित्रांकन करता हुआ माधव कहता है-

सा मम दर्शनात्प्रभृत्यमृतवर्तिखि चक्षुषोनिरतिशयमानन्दमुत्पादयन्त्यस्कान्त-
मणिशलाकेव लोहधातुमन्तः करमाणुपसंहृतवती । किं बहुना[1]

अनुकूलता :-

प्रेम के क्षेत्र में अनुकूलता का अधिक महत्व है क्योंकि प्रेमी जिस भक्ति से प्रेम करता है यदि पात्र में उसके प्रति अनुकूलता का भाव न हुआ तो ऐसा प्रेम एक पक्षीय और उसका पथ वहाँ अत्यन्त कंटकाकीर्ण हो जाता है । वही काव्य शास्त्र की दृष्टि से भी उसका अपेक्षतया हीनतर स्थान होता है कालिदास और भवभूति दोनों नाटककारों ने अनुकूलता का मनोरम वर्णन किया है दुष्यन्त कहता है कि शकुन्तला उसके वचनों से वचन तो नहीं मिलाती किन्तु बोलते समय उसकी ओर ही कान लगाये रहती है भले ही उसके सामने अभिमुख नहीं होती किन्तु शकुन्तला की दृष्टि अन्य विषयों की ओर नहीं रहती है ।

वाचं न मिश्रमति यद्यपिमद्धचोभिःकर्ण ददात्यभिमुख मयि भाषमाणे ।
कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखीनाभूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः।।[2]

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीयम् में राजा के प्रति आकृष्ट और अनुकूल होकर उर्वशी उससे मिलने के लिये उसके घर जाती है उर्वशी और चित्रलेखा के मध्य हुये संवाद में यह अनुकूलता स्पष्ट रुप से परिलक्षित होती है ।

चित्रलेखा — कि तस्य राजर्षेः पुरुरवसः स प्रकाश प्रतिस्थता पि

उर्वशी — अयं ममापहस्तितलज्जो व्यवसायः

चित्रलेखा — स्वयमेव साधु सम्प्रधार्यता तावत्

उर्वशी — मदनखलु नियोजयति किमत संप्रधार्यते[3]

1. मालती माधव 1/पृष्ठ 195
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1/29
3. विक्रमोर्वशीयम् पृष्ठ 56

मालविकाग्निमित्र में भी परस्पर अनुकूलता का वर्णन अनेक स्थानों पर हुआ है
का के बन्दी बनने पर अग्निमित्र और विदूषक ने षड़यत्र कर उसे कारागार से मुक्त करा लिया वहीं दूसरी
मालविका भी एकान्त स्थल में महाराज के चित्र को देखकर अपनी प्रसौत्र नेत्रों की प्यास बुझा
प्रेमी के प्रति अनुकूलता का भाव प्रगट करती है मालविका कहती है ।

सखि, तदा संभ्रम दृष्टे भर्तृरुपे मथा न वितृष्णास्मि तथाद्यापिमया भवितोअतृष्ण
दर्शनो भर्ता [1] ।

भवभूति ने भी उत्तररामचरित में राम और सीता के दाम्पत्य प्रेम के मध्य पल्लिवत
। वाले परस्पर प्रगाढ़ विश्वास अतीव अनुराग के मूल में अनुकूलता को ही सिद्ध किया है यद्यपि
ा निर्वासन प्रसंग में सीता के मन में कुछ आक्रोश था किन्तु राम की गम्भीर विरह अवस्था, शारीरिक
लता एवं अपने प्रति अनन्य प्रेम देख उसका सारा कालुष तिरोहित हो गया और हर्ष, आनन्द
कारण परित्याग रुपी शल्य पीड़ा से वह विमुक्त हो गयी ।

एते खल्लवगाधमानसदर्शितस्नेहसभ्भारा आनन्दनिष्यन्दिनः सुधामया
आर्यपुत्रस्योल्लापाः । जाने, प्रत्ययेन निष्कारणपरित्यागशल्यियोअपि बहुमतो
मम जन्मलाभः [2] ।

मालती माधव में संयोग की अपेक्षा पूर्वराग जनित विरह की अनेक चिन्तायें अभिलाषाओ
का समुद्र ही उद्धेलित होता है मालती और माधव परस्पर रुपगुण शील पर आकृष्ट ही नहीं है
के मिलन के लिये अनुकूल परिसथित और मनःस्थिति उत्पन्न करते हे । भवभूति ने बहुविध रुपों
में नायक नायिका को अनुकूलता का निर्दशन कराया है प्रथम दर्शन में ही मुग्ध मालती कामवेदना
के कारण कम्पित अंगो के उद्वेग के समानार्थ, माधव का चित्र बनाती है एवं लंबगिका के माध्यम
से मन्दारिका को इस आशये से प्रेषित किया गया है कि वह इसे माधव को दिखाई दे नाटककार
ने जितने संयोग के अवसर हो सकते थे सब को चित्रित कर यह प्रर्दशित करने का प्रयास किया
है कामदेव रुपी गुरू से मालती ने अनुकूलता सम्बन्धी सभी शिक्षायें सिद्ध कर चुकी है अवलोकिता
कहती है -

1. मालविकाग्निमित्रम् पृष्ठ 163
2. उत्तरराम चरित्र 3/63

अवलोकिता - बाढम् । ततस्तयोद्वेगविनोदनं माधव प्रतिच्छन्दकमभिलिखितं । लवंगिकमा मन्दारिकाहस्तेअद्य निक्षिप्त्तं तावत् ।

तात्पर्य यह कि कालिदास और भवभूति ने अपने नायकों में श्रंगारोचित अनेक गुणो का उल्लेख किया है यदि नायिकायें अप्रतिम सुन्दरी हों उसी अनुपात में प्रेमी की कामवेदना रूपाशक्ति अपने चरमउत्कर्ष, में वर्णित हुयी है नायिकायें लज्जालु भीरु प्रिय अनन्य और गार्हस्तिक धर्म के पालन में पूर्णतया तत्पर है नायक मुखर विनम्र मिलनोत्सुक और रतिक्रीड़ा में पूर्णतया तत्पर है नायक मुखर विनम्र मिलनोत्सुक और रतिक्रीड़ा में प्रवीण है उसमें श्रंगारिक अवसर पर प्रिय को सुख-संतोष तुष्टि और अध्यायित करने की पूर्ण, पात्रता है सामर्थ्य है तो विरह काल में अपने प्रिय केलिये उद्योगशील है और नैराश्य के ऊर्जा, में भी उन्होंने धैर्य और मर्यादा का अतिक्रमण नहीं किया निसन्देह दोनों नाटककारों ने प्रेम जन्य परिस्थितियों के अनुकूल प्रेमियों में वह गुण क्षमता पराक्रम और विपत्ति सहन करने का अद्भुत अभ्यास किया है । जिससे नायिकायें अपने प्रिय के प्रति परायण और निष्ठावान रही है ।

काम एवं प्रेम के विविध चित्र :-

काम और प्रेम का तात्विक निरुपण करते हुये कहा जा चुका है कि प्रेम मानव हृदय की वह सहजात वृतित है जो किसी के रुप गुण अथवा सहवास से उत्पन्य होता है यह अत्यधिक मधुर भावना है जिससे शुष्क निराशा जीवन में भी साहचर्यभाव संचरित जाता है व्यवहारिक रूप में बाध्य वासनात्मक आकर्षण को कमा या प्रेम की संज्ञा दी जाती है वस्तुतः इसे मनौवैज्ञानिकों ने इस प्रकार सोपानबद्ध किया है प्रारम्भि आकर्षण कामजन्य होता है वासना प्रधान होता है किन्तु क्रमशः वह आन्तरिक प्रेम में परिवर्तित होता है वासना से ऊपर उठकर यही काम प्रेम में और यही प्रेम आलोक की उच्चतम् भूमि है इस प्रकार ऐन्द्रियिक वासना से उच्चभूमि में अवस्थित पारस्परिक समर्पण में डूबने वाला प्रेम वस्तुतः अलौकिक और आध्यात्मिक होता है कालिदास ने अपने नाटकों में काम एवं प्रेम के विविध चित्र अंकित किये है यहाँ यह स्मरणीय है कि अलग-अलग नाटको भावभूमियों में वैभिन्न है । अतः नाटकों में चित्रित काम और प्रेम के सोपानबद्ध रूपो का समाकलन किय जायेगा ।

अभिज्ञान शाकुन्तल में रुपाकर्षण जनित काम तदुपरान्त प्रेम में अन्तरसूक्त होने वाले अनेक रुपो का वर्णन कालिदास ने किया है प्रेमी दुष्यन्त संसार की अद्वितीय सुन्दरी शकुन्तला को देखकर यह अनुभव करता है कि शकुन्तला की सभी क्रिया कलापों उसी को केन्द में रखकर परिचालित हो रहे है सम्भवतः इस भाव के पीछे यह मनोविज्ञान कार्य करता है कि प्रेमी संसार की प्रत्येक वस्तु को प्रेम की ऑखो से देखते है । दुष्यन्त कल्पना करता है कि जब शकुन्तला ऑखे घुमाती थी तब वह समझता था कि उसने दुष्यन्त को ही प्यार भरी चितवन डाली है नितम्बो के भार से जब धीरे-धीरे चलती थी तब वह समझता था कि अपनी काम जनित विलास भंगिमा दिखा रही है सखियों द्वारा रोके जाने पर जब उसने उन पर किंचित रोष व्यक्त किया यह सारे क्रिया कलाप दुष्यन्त के लिये ही हो रहे हैं । आह कामी पुरुषों को सभी बातों में अपना ही स्वार्थ दिखाई पड़ता है ।

स्निग्धंवीक्षितमन्यतोअपि नमने यत्प्रेरयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव
मा गा इत्युपरुद्वया यद्यपि सा सासूयमुक्ता सखी
सर्व तत्किल मत्परायणमहो कामी स्वतां पश्यति[1] ।।

कालिदास ने अपने तीना नाटकों में काम और प्रेम के उन्हीं चित्रों को अंकित किया है जो तात्कालिक समाज में राजाओं और उनके अन्तःपुर में प्रचलित था बहुविवाहित इस लोलुप नागर दुष्यन्त पुरुरवा और अग्निमित्र सभी कौमार्यजनय स्निग्ध सहजाति सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होने में अपने को संवरण नहीं कर पाये कालिदास ने प्रेमानुभव का गम्भीर प्रमाणिक और यथार्थवादी रूप अंकित किया है, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण यह कहते है कि जब स्त्री पुरुषों में काम या प्रेम का उदय होता है तो पहली प्रतिक्रिया वाणी द्वारा नहीं किन्तु आगिक हावभाव कटाक्ष भ्रूनिक्षेप विलास इत्यादि द्वारा अभिव्यंजित करती है इसीलिये इस तथ्य के ज्ञात मानव मन के अन्तःकरण के गम्भीर विश्लेषण कालिदास ने अंगज प्रणयभि व्यक्तियों के रेखांकन में अपनी सिद्ध कला का चमत्कार दिखाया है ।

मालविकाग्निमित्र में इसी तथ्य की आलकारिक ढंग से पुष्टि की गई है इसे हम कालिदास द्वारा वर्णित प्रेम के विभिन्न क्रमबद्ध सोपान भी मान सकते है अग्निमित्र कहता है प्रेम

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 2/2

वृक्ष की जड़े प्रियतमा के सौन्दर्य के श्रवण से उदग्र आशा में जनति है प्रिया के नैनगोचर होने पर उत्पन्न राग पल्लवो के रुप में प्रस्फुटित होते है, प्रिया के सुकोमल हस्तस्पर्श, जनित रोमांच उसके फूल है और उसके संभोग का सुख प्रणय तरु का मनोरम फल है । जिसके रसास्वादन हेतु प्रेमी लालायित रहते है ।

> तामाप्रित्य श्रुतिपथगतामाशया बद्धमूलः
> संप्राप्तायां नयनविषयं रुढ़राग प्रवालः ।
> हस्तस्पर्शैर्मुकुलित इव व्यक्तरोमोद्‌ममत्वा
> त्कुर्यात्कान्तं मनसिजकर्मा रसज्ञं फलस्थ [1] ।।

अभिज्ञान शाकुन्तल में काम और प्रेम के कुछ चित्र देखने से यह बात सहज ही में समझी जा सकती है कि नवीन प्रेम और प्ररुढ़ प्रेम की अभिव्यक्तियों में कितना सूक्ष्म अन्तर होता है जिसका निरुपण कालिदास ने किया है प्रिया का आकर्षण और माता बुलावा दोनो भिन्न भाव धारणाये जब मिलती है तो दुष्यन्त प्रिय दर्शन लौल्य से वंचित नही होना चाहता अतः विदूषक को अपनी माता के पास भेद देता है बलियसि काम की चरम सन्तप्त अवस्था चन्द्रमा का उद्‌दीपन गृहनिशि चिन्तन करते हुये रोदन इसी प्रकार शकुन्तला की सांकाक्षा मनस्ताप पत्रलेखन ऐसे ही काम और प्रेम की अनेक चित्र अभिज्ञान शाकुन्तल के तृतीय अंक में अंकित है तथा हस्तिनापुर में विरही दुष्यन्त के अनेक प्ररुढ़ प्रेम के चित्र मिलते है जब वह उच्चारण भ्रंसता के कारण शकुन्तला का नाम लेता है या चित्र बनाते समय अश्रु आवेग से चित्र विनष्ट हो जाता है -
षष्ठं अंक का एक चित्र देखिए -

> रम्यं द्वेष्टि यथापुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते
> शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमचत्युन्निद्र एवं क्षपाः ।
> दक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेम्यो यदा
> गोत्रेषु रखलितस्तदा भवति च व्रीड़ाविलक्षश्चिरम् [2] ।।

ऐसे ही मनोवैज्ञानिक मनोभाव का चित्रांकन मालविकाग्निमित्रम् में हुआ है जिसके

1. मालविकाग्निमित्रम् 4/1
2. अभिज्ञान शाकुन्तल 6/5

नाटककार कालिदास कहते है कि स्त्रीयां स्वभावतः उत्कंठित होने पर भी लज्जाशीला हुआ करती है जिस पुरुष से पहले पहल मिलती है उसे वे जी भर कर देख लेना चाहती है किन्तु उनकी बड़ी-बड़ी आंखे प्रिय की ओर ठीक से नहीं उठ पाती और वे अंशतः अपने प्रिय को देख पाती है-

कात्स्न्र्येन निर्वर्णयितुं च रुपमिच्छन्ति तत्पूर्वसमागमानाम् ।
न च प्रियेष्वायतलोचनानां समग्रवृत्तीनि विलोचनानि [1] ।।

प्रेम में संकोच जहाँ प्रिय के मानसिक स्थित का चित्रांकन करता है वही इसकी अभिव्यक्ति दर्शक को अत्यन्त मोहक होती है । निसर्गतः कोमल शकुन्तला कामजन्य अभ्यान्तरिक उद्बुद्धियों का प्रकाश रोकने में समर्थ नहीं होती । शकुन्तला के जिन चित्रों का कालिदास ने अंकन किया है उसमें ऐसे ही प्रेम की अभिव्यक्ति है जिसमें कहा गया है कि जब मैं (दुष्यन्त) उसकी ओर मुंह करता था तब वह आंखे चुरा लेती थी और किसी अन्य कारण को लेकर हंस पड़ती थी वह शील के द्वारा इतनी दबी हुई थी कि न तो वह अपने प्रेम को छिपा पाती थी और न खुलकर कामभाव को प्रगट कर सकती थी -

अभिमुखे मयि संहतमीक्षितं हसितमन्यनिमितकृतोदयम्
विनयवारितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृतः [2] ।।

इसी शील रक्षा और कामव्यापार की अभिव्यक्ति के लिए मुग्धा शकुन्तला ने जिस क्रिया व्यापारशीलता का आश्रय लिया है वह उसे क्रिया विदग्ध नायिका ही नही बनाता अपितु कामाभिव्यक्ति का मनोरम रुप भी प्रतिबिम्बित कर जाता है कुछ दूर चलने पर वह सुन्दरी सहसा यह कह कर रूक गयी कि मेरे पांव में काँटा चुभ गया है उसका वल्कल कहीं उलझा ही नहीं था फिर भी धीरे-धीरे वल्कल सुलझाने का बहाना कर दुष्यन्त की ओर देखती है और कुछ देर खड़ी रहती है -

दर्भांकुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे, तन्वी स्थिता कचितिदेवपदानि गत्वा ।
आसीद्विवृन्तवदना न विमोचयन्ती, शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् [3] ।।

1. मालविकाग्निमित्रम् 4/8
2. अभिज्ञान शाकुन्तल 2/11
3. अभिज्ञान शाकुन्तल 2/12

इसी प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला का मनोज्ञ सौन्दर्य दुष्यन्त की सौन्दर्य पिपासा शकुन्तला के प्रति राजा की गहरी आसक्ति एवं दुष्यन्त के प्रति शकुन्तला की साकांक्षा लज्जा एवं काम के संघर्ष में काम की विजय शकुन्तला के मनस्ताप का आधिक्य पत्र लेखन दुष्यन्त एवं शकुन्तला का लताकुंज में मिलन प्रेम के ऐसे ही विविध व्यापार है जिसका निरुपण कालिदास ने किया है । सखियों की उपस्थिति में गन्धर्व विवाह सगर्भा शकुन्तला का प्रिय द्वारा परित्याग और मरीच के आश्रम में पुनः मिलन इत्यादि की घटनायें कालिदास के प्रेम विषयक दृष्टिकोण का ही परिचय देती है ।

विक्रमोर्वशीयम् में केशीहरण से मुक्त उर्वशी ने अपना हृदय का दान पुरुरवा को किया है । दोनो तरफ लगी हुई एवं गुण साहचर्य के रज्जु से बंधा प्रेम जहाँ उर्वशी को स्वर्ग से निरुवासित करता है वही पुरुरवा के मन में अप्सरा जैसी दुर्लभ प्रेयसी पाने का सुअवसर भी उपलब्ध करा देता है - वस्तुतः कन्दर्प दुर्लभ वस्तु के प्रति अभिलाषा उत्पन्न करता है दुष्यन्त कहता है कि आकाश की ओर जाती हुई ये अप्सरा उसकी देह से मन को इस प्रकार खींच रही है जैसे अग्रभाग को तोड़कर कमलनाल से हंसी सूत खीचती हो -

एषा मनो मे प्रसभं शरीरात्पितुः पदं मध्यममुत्पतन्ती
सुरांगना कर्षति खण्डिताग्रात्सूत्रं मृणालादिव राजहंसी [1] ।।

अप्सरा उर्वशी की वासनायें संयम की सीमाओं को स्वीकार नहीं करती प्रेमोन्माद के कारण वह प्रमाद कर बैठती है इस प्रकार राजा से संक्षिप्त परिचय के पश्चात् जो ऑख मिचौली खेलने की घृण्टता करती है वह किसी मुग्धा या कुलवधू नायिका के लिए संभव नहीं है प्रिय साहचर्य के लिये उसने पुत्र तक का परित्याग कर दिया है जिसे मनोविज्ञान के पण्डितो ने विकृति विकार की श्रेणी में रखा है । इस पकार कालिदास ने विक्रमोर्वशीयम् के प्रणयालोक में यदि एक और सौन्दर्य की मादकता हृदय की द्रवण शीलता का आंकलन हुआ है तो दूसरी ओर प्रेम को पौरुष का प्रसादा बना कर एक नये भाव लोक की सृष्टि की है ।

कालिदास ने प्रेम के जिन सोपानों का निरुपण किया है इस संबंध में डा0 रमाशंकर तिवारी का मतव्य है "दृष्टि परिचय तथा हार्द्र की अवस्थाओं को पार कर इन दोनों का संबंध

1. विक्रमोर्वशीयम् 1/20

त्वरित प्रेम की दशा को पार गया है यह प्रेम उर्वशी के लिए यत्त और पुरुरवा के लिए ललित की अवस्था को उपलब्ध कर चुका है [1] ।

राजधानी को प्रत्यावर्तित प्रीतमा के राग से रंजित पुरुरवा प्रगल्भा उर्वशी के जानबूझकर चलाये भ्रूनिक्षेपों लालित्य एवं विलासपूर्ण अंगो के संचालन से बंधे उर्वशी के बेधक दृष्टि से आहत पुरुरवा तृप्त लोहे के समान उर्वशी से जुड़ने की आकांक्षा व्यक्त करता है और जब उसे उर्वशी की प्राप्ति होती है तब वह सभी सीमाओं का अतिक्रमरण कर उसे ऐकान्तिक विहार के लिए गन्धमादन पर्वत पर विहार के लिए ले जाता है इस प्रकार पुरुरवा के प्रेम में मजीष्ठ राज का चाकच्रक तो नहीं दिखाई देता किनतु गहन निर्वणता उद्दाम मांसल भावना दिखाई पड़ती है और ईवत् सापत्न द्वेष से कुपित एवं लता रुप में रुपान्तिरक उर्वशी के वियोग में शोक तताड़ित कामीजन की भांति उच्छवसित आलाप करने वाला पुरुरवा का प्रेम उसके गम्भीर हार्दिक अभिलाषाओं का सूचक होता है ।

इसी तरह कालिदास ने अभिज्ञान शाकुनतल में मुग्धा नायिका के प्रकष्ट प्रेम तो विक्रमोर्वशीयम् में रम्भोरु अत्पकुचान्तरा पूर्व यौवन प्रगलम्भानायिका के सधे काम कटाक्षों से विद्ध पुरुरवा के असंयमित प्रेम का चित्रण कर मालविकाग्निमित्रम् में आवेगरहित प्रणय घनत्व से हीन प्रेम के उद्दाम ज्वार से रहित ऐसे निष्क्रिय प्रेम का चित्रण किया है जो अन्तःपुर के षडयंत्रो के अन्दर अंकुरित और पुष्पित होता है । डा0 रमाशंकर तिवारी ने सच ही लिखा है कि यह अत्यन्त विचित्र घटना है कि प्रेमी और प्रेमिका दोनों ही उद्दाम प्राणोपमा से रहित है दोनों से राजप्रसाद के एक अन्तरंग व्यक्ति छल कपटों के मुखापेक्षी है उनमें प्रेम दुर्दमनिय नहीं अंकित हुआ है सम्भवतः तरुण नाटककार में अभी जीवन मूल्यों की स्पष्ट सान्द प्रतीत के अभाव के अतरिक्त वह नैतिक साहस भी नहीं था जो उसे प्रेम और सौन्दर्य की मादकता को चित्रित करने की भीतरी प्रेरणा प्रदान करता[1] ।

इस प्रकार कालिदास ने अपने तीनो नाटकों में नायिकाओं के सौन्दर्य प्रथम दृष्टि परिचय, स्पर्श जनित आहाद संक्षिप्त पूर्वराग जनित विरह मिलन का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है, जिस प्रेम के प्रथम सोपान में वीर्य क्षोभ करने वाले युवावस्था के रक्त कीटाणुओं से उद्वेलित दैनिक सौन्दर्य है तो द्वितीय सोपान में मुग्धा या मध्या प्रगल्भा नायिकाओं की सहजात आकर्षण ललित विलास

भंगिमा दृष्टि विभ्रम सौकुमार्य लज्जा पुरुष के प्रति अज्ञात एवं ज्ञात आकर्षण विरह की व्यथा कथा एवं जिसके अन्तिम सीढ़ी में विलास के विविध कामजनित चित्र अंकित है जिनमें आलिंगन, अराधामृतपान आदि की भी संक्षिप्त चर्चा कर दैहिक मिलन के साथ प्रेम के आध्यात्मिक रुप में पर्यवसित होने के सोपानों का भी मनोविज्ञानिक विश्लेषण किया गया है और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि सौन्दर्य से विजित काम विषयानन्द से तृप्त और अतृप्त होकर वात्सल्य रस में पर्यवसित होने वाला ही प्रेम भारतीय संस्कृति के लिए वरेण आदर्श हो सकता है ।

कालिदास का प्रेम धर्म में रुपान्तरिक उसके कल्याणकारी धारण योग्य शान्त संयत कामोन्माद पर वज्र निपात कर ग्रहस्थ भित्त पर प्रतिष्ठित किया गया है । विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का मतव्य इस विषय में - "कालिदास पर पूर्ण रुपेण लागू होता है कि भारतीय शास्त्रों में नर-नारियों का संयत संबंध कठिन अनुशासन के रुप में आदि पर है वही कालिदास के काव्यों में सौन्दर्य के सामानों से सुसंगठित हुआ हे यह सौन्दर्य श्री ही और प्रकार से उद्भासित है । गम्भीरता की ओर से नितान्त एकाकी और व्याप्त की ओर से विश्व का आश्रय स्थल है वह त्याग से परिपूर्ण दुःख से चरितार्थ और धर्म से ध्रुव निशचित है ।

इसी सौन्दर्य से नर-नारियों के दुर्निवार और दुर्गम प्रेम के प्रलयकारी वेग ने अपने को संयत करके मंगल रुपी महासमुद्र में परमस्थिरता प्राप्त की है । इसी से वह संयत एवं बंधन विहीन दुर्धष प्रेम की अपेक्षा महान और आश्चर्यजनक है [1] ।

उपर्युक्त पंक्तियों में कालिदास के नाटकों में प्राप्त काम और प्रेम के विविध चित्रों और उनका साहित्यक मनोविज्ञानिक विश्लेषण किया गया है यहाँ हम भवभूति के नाटकों में प्राप्त काम एवं प्रेम के कुछ चित्रों का विहगावलोकन कर एतत् सम्बन्धी दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन कालिदास से करेंगें ।

भवभूति ने उत्तररामचरित और महावीर चरित में एक ही कथा के दो रुपो का उद्भावन किया है । मालतीमाधव प्रेम की ही प्रमुख कथा है । भवभूति ने महावीर चरित राम और सीता के प्रथम दर्शन्यजन्य अनुराग का वर्णन इस प्रकार किया है जिसमें उत्सुक्ता और हर्श की प्रवल्यता है -

1. प्राचीन साहित्य रवीन्द्रनाथ ठाकुर (अनुवादक पं0 रामदत्त मिश्र पृष्ठ 39)

सीतोर्मिले (तथैव तौ प्रति) किमति सज्जतेअस्मिल्लोचनानन्दे में दृष्टिः [1] ।।

इसी प्रकार प्रिया के प्रथम स्पर्श से आनन्दित राम के हर्ष उल्लस का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण भवभूति ने किया है - उत्तररामचरित में राम कहते है -

समयः स वतर्त इवैष यत्र मा समनन्दयत्सुमुखि ! गौतमार्पितः ।
अयमागहीतकमनीयकंकण - स्तव मूर्तिमानिव । महोत्सवः कर [2] ।।

बाद में यह प्रेम गम्भीर दाम्पत्य प्रेम में पर्यवसित हो गया है जिसमें प्रिया के आलिंगन परिरम्भण आदि के कुछ चित्र भी मिलते है इस प्रेम के प्रार्दुभाव के पूर्व में सीता की सहज स्वाभाविक हाव भाव एवं अल्प विकसित युवावस्था के आकर्षक अंगा का प्रमुख हाथ था ।

ललितलालितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै -
रकृत मधुरैरम्बानां में कुतूहलमंगकै [3] ।।

भवभूति ने उत्तररामचरित में गर्भभारालस्य सीता को सहारा देने वाले राम की भुजाओं को तकिया के रुप में प्रयोग किया है -

स्वापहेतुरनुपाश्रितोअन्यया रामबाहुरुपधामेष ते [4] ।।

दाम्पत्य प्रेम में अनन्यता ऐसा उत्त रसायन गुण है जिसके में अदृश्य डोरे में प्रणयी सदैव आबद्ध रहते है, जिसका प्रेमामृत पान कर प्रेमी युगल अपने को दिव्य आलोक के भावभूमि में प्रतिष्ठित हुआ समझते है सीता निर्वासन के पश्चात् यज्ञ सम्पादन हेतु सुर्वणमयी सीता की स्थापना इसी बात का प्रमाण है किन्तु प्रेम का तन्तु इतना कोमल इतना क्षीण होता है कि उसे तोड़ना अत्यन्त सरल और अत्यन्त कठिन दोनों ही होते हैं सीता राम के इस गम्भीर प्रेम में हल्का सा क्रोध अमर्ष उस समय आ गया जब निरपराध सीता को मात्र जनापवाद के कारण निर्वासित कर दिया गया आकुण्ठ

1. महावीर चरित पृष्ठ 40।
1. उत्तररामचरित 1/18
3. उत्तररामचरित 1/20
4. उत्तरराम चरित 1/36

सीता राम के उस गम्भीर ऐकान्तिक निश्छल प्रेम को नहीं समझ पायी और अपना आक्रोश वासन्ती, तमसा, मुरला से व्यक्त करती है किन्तु यही अविश्वास पुनः विश्वास के दृण रज्जु में परिवर्तित हो जाता है जब शम्बूक वध के समय राम की विरह वेदना उसकी कृशता सीता प्राप्ति की ललक और निराशा का उसे पता लगता है तात्पर्य यह है भवभूति ने उक्त दोनों नाटकों में नायिकाओं का सौन्दर्य दृष्टि विभ्रग प्रेमी की अनन्यता प्रथम स्पर्श, आवेग प्ररुढ़ प्रेम का अत्यन्त उज्जवल शुचिपूत मेध्य और आकर्षक दाम्पत्य का सोपानबद्ध एवं मनोवैज्ञानिक चित्रांकन किया है ।

मालतीमाधव श्रृंगार प्रधान नाटक है । अतः इसमें प्रेम के बहुविध रूपों की झांकी अंकित की गयी है प्रथम दर्शन युवावस्था का आवेग काम जनिक अनेक दशाऐं अप्रत्यक्ष रूप से कामन्दकी या लवंगलातिका तथा सौदामिनी के किये गये प्रयासों के माध्यम से व्यक्त हुआ है । यह प्रेम के बाहृय पक्ष को अधिक निरुपित करता है मालती के नव यौवन जनित देहाकन्ति हाव-भाव में काम के विविध दशाओं का चित्रांकन नाटककार ने बड़ी कुशलता से किया है । यहाँ तक की स्वप्न हुये समागम का जितना वस्तुपरक यथार्थ, तथा अनेक नैतिकवादी दृष्टियों से अश्लीलता को छूने वाले सोपनों का भी चित्रांकन किया है प्रेम के प्रार्दुभाव का माधव इस प्रकार वर्णन करता है -

स्तिमितविकसितानामुल्लसद्भ्रूलतानां, मसृणमुकुलितानां प्रान्तविस्तारभाजाम्
प्रतिनयननिपाते किंचदाकुंचितानां, विविधमहमभूवं पात्रभालोकितानाम्[1] ।।

प्रसिद्ध मनोविश्लेषक फ्रायड की यह उपपत्ति मालती माधव में अत्यन्त सटीक उतरती है कि चेतन मस्तिष्क में आयी हुयी भावनायें यदि अचेतन मस्तिष्क में पहुंच गयी तो कुंठा या अतिशय दबाव के कारण अवदमित होकर स्वप्न के माध्यम से उनकी अभिव्यक्त होती है - मालतीमाधव में ऐसे ही भावनाओं का उल्लेख है माधव के अतिशय चिन्तन के कारण मालती माधव स्वप्न में ही समागम सुख का अनुभव करती है -

नाटककार भवभूति ने ऐसे काम संबंधो का निरुपण अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया है जिसमें कटि भाग में बंधी नीवी भ्रंशन, अधरोष्ठ, कम्पन, भुजाओं का शैथिल्य प्रस्वेद, नेत्रो में आगत कोमलता, स्तन कलिकाओं की अधीरता और कपोल स्थलो पर रोमांच के कारण कभी चेतनता तो

1. मालतीमाधव 1/28

कभी संज्ञाशून्यता का उल्लेख हुआ है -

नीवीबन्धोच्छ्वसनमघरस्पन्दनं दोर्विषादः
स्वेदश्चक्षुर्मसृणमुकुलाकेकरस्निग्धमुग्धम् ।
गात्रस्तम्भः स्तनकुकुलयोरुत्प्रबन्धः प्रकम्पो
गण्डाभोगे पुलकपटलं मूर्च्छना चेतना च [1] ।।

ऐसे ही कुछ अन्य स्थलों पर कान्त समागम का स्पष्ट उल्लेख हुआ है जिसमें अधर पल्लवों में हल्का सा कम्पन पुलकित कपोलद्धव आनन्दातिरेक के कारण चंचल नेत्रोन्मीलन ललाट स्थल पर सघन श्रम सीकर चरणों में लगा हुआ लाक्षारस का पिघलना स्थूल जघन स्थलों के थरथराने से नीवी बन्धन का शिथिल होना और श्वाशोच्छ्वास की तीव्रता के कारण स्तन मण्डलों का कम्पन[2] । सुरतान्त के पश्चात् श्ल्थ-विश्ल्थ शरीर रोमांच इत्यादि का बहुविध निरुपण भवभूति ने किया है । यह कामदशायें प्रायः मालती और माधव के अनुराग के परिप्रेक्ष्य में वर्णित है । इसी प्रकार मकरन्द और मदयन्तिका के प्रेमाचरण में भी हास-विलास किलकिंचित इत्यादि अलंकारों का स्पष्ट वर्णन कर भवभूति ने विभिन्न कामदशाओं का वर्णन किया है - अंपाग द्रृष्टि विस्तार अनुराग प्रकाट्य का ही द्योतक है निश्चल पक्ष्म इनके मानसिक समागम के सुखानुभव की अभिव्यक्ति इस प्रकार की गयी है -

लवंगिका (जनान्तिकम्) भगवति, यथा हृदयभरितोद्भमद्विस्मयानन्द सुन्दरपूर्णितधीरपर्यन्तमनोहराः वर्यस्यन्ते मदयन्तिकामकरन्दयोर्दलितनीलोत्पलमांसलच्छवयो दृष्टिसंभेदाः, तथा मन्ये मनोरथनिर्वृत्तसमागमवेताविति [2] ।।

तात्पर्य यह कि भवभूति ने मालतीमाधव मकरन्द मदयन्तिका के माध्यम से रुपाकर्षण जन्य तीव्र आसक्ति कामजन्य मनस्ताप विरह विछलन मालती के आंगिक वैवर्ण्य पाण्डुरता विरह की असहृनसीव वेदना में पर्यवसित होते हुए दिखाया है जिसमें प्रेमी युगलों के मन में समान रुप से उत्कंठा परस्पर रुप का अनुचिन्तन एवं प्रत्यक्ष रुप से कायिक समागम की अपेक्षा अवदंमित

1. मालतीमाधव पृष्ठ 238 - 39
2. मालती माधव पृष्ठ 252

स्वप्न समागम की भावनाओं एवं क्रियायों का स्पष्ट वर्णन किया गया है । मदयन्तिका ने कुसुम उद्यान में दोनो के सममिलन का अत्यन्त मादक मोहक हृदयावर्जक और कोमल मसृण अत्यन्त स्वाभाविक रुप से वर्णन किया है जिसमें देहकान्ति उत्कंठा हृदयगत काम भावना और शरीर की मलिनता का किंचित रुप से उल्लेख है -

> किंच तस्मिन्दिवसे कुसुमाकरोधान पर्यन्तकथ्यामुखसमागमे
> साविभ्रमोल्लसितकौतूहलोत्फुल्लपरिसरोद्वेल्लमानस विलासमसृणास्निग्ध
> संचरणाचारुतारकजिवृम्भामाणानंगश्रृंगराचार्य सर्वागमोपदेश
> निर्मितवैदग्ध्यमुग्धमनोहरा मया न निरुपिता एतोयोर्द्रृष्टिसंभेदाः [1] ।।

उपर्युक्त पंक्तियों में भवभूति द्वारा वर्णित काम दशा के कुद विविध चित्रों का संक्षिप्त विहुंगावालोकन कर यह दिखाया गया है कि रुपाकर्षण के द्वारा उत्पन्न काम उसकी वेदना कितनी बलवत्र होती है अब हम इसी कामवेदना के प्रेम में परिवर्तित होने वाले तदजन्य कायिक मानसिक परिवर्तनों विकारों संतापों का संक्षिप्त रुप सेव र्णन करना चाहेगी जिससे भवभूति के प्रेम सम्बन्धभ यह धारणा पुष्ट हो सके कि उन्होंने काम को प्रेम का प्रथम सोपान मानकर मालतीमाधव में जो प्रेम प्रासाद खड़ा किया है वह अत्यन्त भव्य आकर्षक और पाजन्य से परिपूर्ण है अनुदिन, जिसका चिन्तन किया जाये जिसके रुप दर्शन की लालसा अनुवर्रत रुप से बढ़ती जाये मिलने के अभाव में मन व्याकुल हो जाये उसे ही तो प्रेम कहते हैं माधव और मालती के मलिन अवस्था के सर्वाधिक रुप मालती माधव में उपलब्ध होते हैं । माधव स्वतः कहता है कि प्रथमदर्शन के पश्चात् उसका मन अधीर होकर किसी अर्निवचनीय पदार्थ का आश्रय लेता सा प्रतीत होता है -

> परिच्छेदव्यक्तिर्न भवति पुरःस्थेअपि विषये
> भवत्यम्यस्तेअपि स्मरणमतथाभावाविरसम् ।
> न सन्तापच्छेदो हिमसरसि वा चन्द्रमसि व [illegible] च
> मनो निष्ठाशून्यं भ्रमति च किमप्यालिखति च [2] ।।

इसी तरह अतिशय चिन्तन के कारण माधव प्रकृति के कण-कण में मालती का दर्शन

1. मालतीमाधव पृष्ठ 308
2. मालती माधव 1/32

करता है[1] । सम्भवतः भवभूति की यह मान्यता है कि सौन्दर्य में वीर्य क्षोभ उत्पन्न करने की सामर्थ्य प्रेम के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है माधव मालती के चित्र को देखकर अपने संतप्त चित्त को शान्त करता है

लवंगिका एतत्खलु सन्तापितस्य तव सन्तापकारिणो दुर्लभमनोरथावश दुःसहायासह्नमानचितस्य क्षणमात्रनिर्वापयितृकं तव प्रतिच्छन्दकम्[2] ।

मालती जो अप्रतिम सुन्दरी है पूर्ण युवावस्था को प्राप्त है नायक माधव के प्रथम दर्शन से विह्वल चित्त वाली बन गयी है उसके सुन्दर कोमल अंगो में कामदेव का व्यापार विजय की डंका बजा रहा है नाटककार भवभूति ने प्रेम के विभिन्न सोपानों का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है । उसकी उत्कंठा प्रगल्भता न जाने कहा् विलुप्त हो गयी है सुकुमार नारी की विरह व्यथा अतिशय मानसिक उद्वेग उन्माद की दशा से लेकर मूर्च्छित होने तक के अनेक चित्र मालतीमाधव में मिलते हैं - दीर्घ निश्वास रात्रि की निर्बलता में प्रेम का उद्दीपन अत्यधिक हो जाता है लंवगिका कहती है -

प्रति बोधवेलाविसर्जितापांग दृष्टि विनिपातविज्ञान शून्य शयनीय संजातमोहमील्ललोचना ससंभ्रम सखीजन प्रयत्नप्रतिपन्नमूर्च्छाविच्छेदसमय- संगलितदीर्घानिःश्वासजनितजीविताशा किंकर्तव्यतामूढं प्रथम प्रार्थितनिजजीवितावसानं दुर्वारदैवदुर्विलसितो पालम्भमात्रव्यापरंसखीजनं करोति[3] ।

यह प्रेम अपनी परीक्षा में पूर्ण रुप से खरा सिद्ध हुआ जब अघोरघण्ट के तांत्रिक अनुष्ठान का समापन मालती की बलि से होता है माधव अपने प्राणों की परवाह न कर कापालिक का सामना कर अपनी प्रिया की रक्षा करता है । कामन्दकी की प्रेरणा से मालती-माधव को पति रूप में स्वीकार करने के लिए प्रेरणा देती है किन्तु परिस्थितियाँ इस प्रकार बदल जाती है कि माधव प्रिया के वियोगाग्नि में दग्ध होकर वन-वन भटकने लगता है जिसका पर्यवसान मालतीमाधव के परिणय में परिलक्षित होता है।

1. मालतीमाधव 1/41
2. मालतीमाधव 2/213
3. मालतीमाधव 3/23 पृष्ठ

6. **आलोच्य नाटककारों के प्रेम चित्रण की तुलना :-**

कालिदास और भवभूति के नाटको का प्रेम की द्रृष्टि से अध्ययन विश्लेषण करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनों नाटककारों ने प्रेम की कथाओं का उपनिबन्धन अपने नाटको का मुख्य विषय बनाया है यद्यपि महावीर चरित्र में प्रेम की उतने स्पष्ट चित्र नहीं प्राप्त होते जिससे उस नाटक के आधार पर भवभूति की एतद् विषयक द्रृष्टिकोण का स्पष्ट परिचय प्राप्त हो सके फिर भी प्रथम आकर्षण साहचर्य के द्वारा प्रणय की पुष्टता और पत्नी के प्रति अनन्य प्रेम के कारण ही सेतु बन्धन जैसा महत कार्य कर अत्यन्त पराक्रमी रावण का वध कर सीता की पुनः प्राप्ति उसी प्रीति का सुखद परिणाम है यहाँ हम कालिदास और भवभूति के प्रेम संबंधी द्रृष्टिकोणों का साम्य वैषम्य द्रृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन कर तदुपरान्त निष्कर्ष निकालने का प्रयास करेगें

(क) साम्य :-

दोनो नाटककारों ने उच्चकुलोद्भव नायकों का चयन कर प्रेम कथा का वर्णन किया है । दुष्यन्त, पुरुरवा, राम क्षत्री वंशीय तो अग्निमित्र और माधव ब्राह्मण वंशीय है । दोनों नाटककारों ने प्रेम के संयोग अथवा वियोग पक्ष का चित्रांकन समान रुप से किया है प्रेम प्रार्दुभाव के लिये दुष्यन्त ने प्रथम दर्शन और चित्र दर्शन तो भवभूति ने भी प्रत्यक्ष चित्रदर्शन के साथ साहचर्य का भी उल्लेख किया है कालिदास ने प्रेम का प्रार्दुभाव विभिन्न परिस्थितियों के सहयोग से दिखाया है । अभिज्ञान शाकुन्तल में शान्त आश्रम के प्राकृतिक परिवेश में अत्यन्त रुपवती मुग्धा शकुन्तला के रुप का चित्रांकन पद्मीनशकुन्तला द्वारा भौरे से त्रस्त दिखाकर राजा से रक्षित एवं परस्पर द्रृष्टि विनमय में प्रेम संचरण का उल्लेख किया है कामी नागर रुप लोभी चोर की भाँति सौन्दर्य दर्शन के लिये लालयित दुष्यन्त शकुन्तला की रक्षा कर इस मनोविज्ञान की उद्भावना करना चाहता था कि युवतियां प्रायः अपने प्राता या रक्षक के प्रति जो कोमल वृत्ति रखते है उसका पर्यवसान प्रेम में ही हो जाता है इसी मनोभाव का विशेष पल्लवन विक्रमोर्वशीयम में भी हुआ जहाँ पुरुरवा का द्रृढ ओजस्वी पराक्रमी और सुदर्शन रुप व्यक्तित्व देख अप्सरा उर्वशी रूप विमोहित हो गयी अग्निमित्र भी मुग्धा मालविका पर आसक्त चित्र दर्शन में हुआ हे ।

भवभूति ने मालती माधव में इसी चित्र दर्शन और प्रत्यन दर्शन से प्रेम का प्रार्दभाव वर्णन किया है । प्रथम दर्शन के पश्चात्य दोनों नाटककारों ने प्रथम सम्भापण सलज्जा नारी का

संकोच मनोद्वन्द किया दग्हा नायिकाओं की भाँति अपने-अपने प्रेमियों की चाह रुपाशक्ति का समान रुप से चित्रांकन नाटककारों ने किया है पैर में कुश लगने कटको में उत्तरीय फसने अथवा नृत्योपरान्त रुक कर किसी न किसी व्यक्ति से कालिदास ने नायक दर्शन की लालसा का कृत कार्य होते अंकित किया है इसी तरह भवभूति ने जन समूह में नायक दर्शन परस्पर चित्रफलक में रूपांकन प्राप्त माला का धारण ऐसे ही क्रियाओं से नायिकाओं के प्रेम की अभिव्यंजना की है ।

प्रथम स्पर्श जन्य कम्पन संकोच नायक की अधीरता नायिका की अस्वीकृत और कामावेग की अधिकता का चित्रांकन कालिदास और भवभूति ने समान रुप से किया है । नेत्रेन्द्रिय सन्निकर्ष से उत्पन्य रुपाकर्ष नायक-नायिकाओं के हृदय में नीलीराग का स्पष्ट वर्णन कर उसे मंजीष्ठ राग में पर्यवसित होते हुए दोनो नाटककारों ने समान रुप से अंकित किया है । प्रिय पात्र से मिलन तीव्र आसक्ति गम्भीर ताम्पत्य प्रेम और पुनः वियोग का वर्णन प्रायः कालिदास और भवभूति से मिलता है यद्यपि दोनों की भावभूमियों में पर्याप्त अनतर है । दुष्यन्त का शकुन्तला से भेंट करना गन्धर्व विवाह और पुर्नपरित्याग तथा अन्त में सुपत्र शकुन्तला से उनकी भेंट विक्रमोर्वशीयम् में अप्सरा से भेंट उन्मत विहार वियोग पुत्र की प्राप्ति और इसी तरह भवभूति के उत्तरराम चरित्र में सीता का मिलन निर्वासन एवं पुत्रो सहित पुनः उसकी प्राप्ति समान रुप से वर्णित है ।

वैषम्य :-

दोनों नाटककारों की कथाओं में अन्तर होने के कारण प्रेम सम्बन्धों भावभूमियों के निरुपण में भी अन्तर आ गया है ।

कालिदास के सभी नाटकों के नायक पूर्व विवाहित है अतः पूर्वाशक्ति का तीव्रतम वर्णन सामन्तयुगीन प्रवृत्तियों का प्रतीक है जिसमें इन्द्रिय चांचल्य का स्वाभाविक वर्णन है । यद्यपि ऐसी अनुरक्ति और विकार मनोविज्ञान के क्षेत्र में स्वाभाविक नही कही जाती इस प्रकार के मनोभाव अस्वाभाविक मनोविज्ञान के विषय होते हैं क्योंकि विक्रमोर्वशीयम् में रुप जीवावत व्यवहार करने वाली अप्सराओं के मन में एक पुरुष के प्रति अनन्यता का जागरण क्लिष्ट कल्पना है साथ ही पत्नी से प्रेयषी प्रियतर होती है किन्तु पुत्र प्रेयसी से भी अधिक प्रियतम होता है इसके ठीक विपरीत विकार ग्रस्त मन में पुत्र का भी परित्याग कर प्रिया द्वारा प्रेमी के साथ विहार को प्राथमिकता देना ऐसे ही असाधारण मनोविज्ञान के विषय है । जबकि भवभूति के नायक या तो एक पत्नीव्रत अथवा

प्रेयसी के प्रेम में आकंठ मग्न और उसका सानिध्य प्राप्त करने के लिये लालायित रहने वाले पात्र है । प्रेम के प्रार्दुभाव में भी कालिदास के नाटकों में उतनी तन्मयता मार्मिक अनुभवूति और गहराई नहीं दिखाई पड़ती प्रणय स्वर में जीवन की अतुल गहराई में घुलते हुए भावों का वह संवेग और तन्मयता कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् और अभिज्ञान शाकुन्तल में नहीं प्राप्त होती जबकि भवभूति में अनुभूति की अभिव्यक्ति अत्यन्त सोपान बद्ध और गहराई से हुआ है सीता के कौशोर्य जन्य लावण्य अल्प विकसित यौवनोचित अंगो का अल्प विस्तार के प्रति सहज आकर्षण वैवाहिक जीवन में परस्पर अधिक चिन्ता करने की प्रवृत्ति रोमानी आवेगों में यथार्थ और आदर्श का सम्यक संतुलन प्राप्त होता है इसे हम यदि संक्षेप में यह कहना चाहे कि कालिदास पार्थिव सौन्दर्य के रसिक पार्शी सीमित किन्तु सारगर्भित उपमानो के द्वारा यौवन के चिन्तन के विशिष्ट साहित्यकार ही तो भवभूति आत्मिक सौन्दर्य के उत्गाहा और प्रतिष्ठाता है ।

कालिदास ने काम और प्रेम का संकलित किन्तु संक्षिप्त चित्रांकन किया है । इसके विपरीत भवभूति ने मालतीमाधव में कामजन्य आकर्षण और स्वप्न समागम के माध्यम से प्राकक्रीड़ा नीवी बन्धन एवं संप्रन रति क्रीडा का उद्धाम आवेग और सुरतान्त के पश्चात्य कापिक शिथिलता स्वेदन इत्यादि का जो अप्रत्यक्ष निरुपण किया । वह अत्यधिक चिन्तन का स्वाभाविक सुपरिणाम है जब कि कालिदास के नाटकों में ऐसी भाव भूमियों का नितान्त अभाव है ।

दोनों नाटककारों के आलम्बन के रुप चित्रण और कारक उपादानों के चित्रांकन में भी पर्याप्त अन्तर है । कालिदास ने जहाँ आश्रय और आलम्बन के सौन्दर्य का संक्षिप्त वर्णन हेतु कोई निशचित क्रमबद्ध परम्परा का आलम्बन नहीं किया वही भवभूति ने कामशास्त्र और कात्यशास्त्रोवन्त नखशिख वर्णन की परम्परा में तमाम उपमानो का बहुविध वर्णन उत्तरराम चरित्र और मालतीमाधव में किया है सम्भवतः कालिदास के रुप चित्रण में रुप दृष्टि का विषय है जबकि भवभूति की दृष्टि में सौन्दर्य और प्रेम का मूल्यगत वर्णन हुआ है कालिदास ने नायिकाओं के मन में प्रेम के प्रार्दुभाव के रुप में शरणदाता या रक्षक रुप का उल्लेख कर उसी मनोभाव के अनुरूप प्रेमिका में प्रेम की उत्पत्ति का वर्णन किया है जब कि भवभूति में यह रक्षका भाव प्रिय प्राप्ति के पश्चात्य दिखाई देता है प्रेम में वियोग की महत्ता दोनों कवियों में समान रूप से मान्य है किन्तु भवभूति में अनुभूतियों की जितनी व्यापकता, विशालता और विस्तार दिखाई देता है अभिव्यक्ति में जितनी

कोमलता उदान्ता और मक्षणता दिखाई देती है वैसी कालिदास में वैसी सघनता तो है किन्तु विस्तार का अभाव है ।

निष्कर्ष यह है कि प्रेमी जैसी कोमल अनुभूति का निरुपण दोनों कवियों ने अपने अपने ढंग से किया है किन्तु भवभूति के नाटकों में वर्णित प्रेम में मैत्रीमुदिता आर्जब त्याग करुणा की विवृति अपने सघन और आकर्षण और उच्च आदर्शो से अनुप्राणित हुआ है । जबकि कालिदास में यह प्रेम दर्शन योग त्याग दण्ड विधान प्रायश्चित और पुनः मिलन जैसे सोपानों के माध्यम से अभिव्यंजित हुआ है । भवभूति का प्रेम श्रृंगार से लेकर करुण की सीमा का स्पर्श करने वाला है जबकि कालिदास का प्रेम दैहिक आकर्षण से उत्पन्य होकर वत्सल संयुक्त प्रेम निरुपित हुआ है कहना नहीं होगा कि दोनों का प्रेम भिन्न भाव भूमि पर अवतरित होते हुये भी अत्यन्त मत्य उदान्त मसृण बहुआयामी भाव की सरल अनुभूतियों का ज्ञापन मर्मान्तक वेदना संयुक्त रसवेल और आकर्षण ही इसमें हार्दिकता द्रवणशीलता आन्तरिक घुलनशीलता और सहृदयों को रसाप्लावित करने में पूर्ण समर्थ्य है ऐसा काम सोपान से उठकर प्रेम शुच भेट और भारतीय संस्कृति के आदर्शो के अनुरूप चित्रित हुआ है जो चिरन्तन है । सार्वत्रिक प्रातः प्रातन आचार्यो द्वारा जिसका परिशेसन किया गया और अपने मूल रूप में अभ्यध्य कारक है ।

अध्याय – ५

{आलोच्य नाटककारों के नाटकों में संयोग श्रृंगार}

श्रृंगार शब्द की व्युत्पत्ति :-

'श्रृंगार भृंगारौ" उणादि सूत्र से 'शृ' धातु से आरंभ, नुम, गुक् तथा ह्रस्व का निपात करने पर 'श्रृंगार' शब्द सिद्ध होता है । शृ हिंसायाम् अर्थात् - 'शृ' धातु का अर्थ होता है - मारना, हिंसा करना, प्राण लेना ।

'अमरकोष' में श्रृंगार को 'शुचि' तथा 'उज्जवल' का समानार्थी बताते हुए यह अर्थ किया गया है - **श्रृंग प्राधान्यमिचर्ति । कर्मण्यम्** [1] । अर्थात् श्रृंग यानी प्राधान्य वा प्रभुत्व को प्राप्त करने वाला श्रृंगार कहलाता है, 'श्रृंग' उपपद रहते हुए 'श्रृ' धातु से कर्म (यानी श्रृंग) में 'अण' प्रत्यय होने से श्रृंगार बनता है ।

'शृणात हश्वश्च सूत्र के अनुसार 'शृ' धातु से गन और नुट् प्रत्यय लगाने से 'शृंग' शब्द की सिद्धि होती है ।

मेदिनीकोष में श्रृंग के ये अर्थ दिए हैं -

शृंगप्रभुत्व शिखरे चिहनेक्रीडाम्बुयन्त्र के । विषाणात्कर्षश्चाथशृमं स्यालर्चशीर्षकं, स्त्री विषया स्वर्णमनिभेद योत्रर्हस, यौषधौ ।

अर्थात्, नपुंसक लिंग में "श्रृंगार' प्रभुत्व शिखर चिह्न, क्रीडा का अम्बुयन्त्र सींग तथा उत्कर्ष का वाचक है ।

साहित्य-दर्पण के टीकाकार श्रीमंजीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य ने 'शृ' की यह व्याख्या लिखी है - **शृंग शृणतिः, दशभद्कायाहन्ति कामुकान इति तथोक्त,** जो प्राण लेता है, अर्थात् वियोग की दसवी दशा से जो कामियों को मारता है वह शृंग है इसी प्रसंग में आगे चलकर श्री भट्टाचार्य श्रृंगार का यह अर्थ कहते हैं -

शृंशमृच्छति कारणत्वेन प्राप्तनोतिर्ति, शृगेणार्प्यते प्राप्यते सामाजिकैः

आसावित्ति वा, शृंगमासति समन्ततो ददातीति वा तथोक्तः

अर्थात् जो कारण बनकर शृंगता को प्राप्त करता है या शृंगता को भूरिशः प्राप्त करता है, वह 'श्रृंगार' है ।

इस प्रकार 'शृ' धातु से व्युत्पन्न 'श्रृंगार' का अर्थ वह वृत्ति या व्यापार होगा जो मनुष्य के प्राण हरण कर ले, अथवा उसे मर्मान्तक पीड़ा पहुंचावें ।

1. अमरकोष

कुछ अन्य कोषकारों ने श्रृंगार के निम्न अर्थ दिए हैं -

शृंगारौ गजमण्डने सुरते रस भेदे च शृंगार
नागसम्भवो (चूर्णलवंगपुष्ये च) इति हैमः ।
शृंगारः सूरते नाट्ये रसे च गजमण्डने । नपुंसकं
च वेग विनागसम्भव चूणयोः । इति मोदिनीः ।

श्रृंगार शब्द की व्युत्पत्ति :-

श्रृंगस्य आगमनं (अरम) हेतुर्यस्य स श्रृंगारो रसः श्रृंग शब्द अलंकार शास्त्र में कामोद्रेक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । (श्रृंग हि मन्नमथोद्भेदः) रति प्राकृतिक रस ही श्रृंगार रस है । मन के अनुकूल पदार्थो में सुखानुभूति ही रति कहलाती है । (रतिर्मनोनुकूलेअर्थ मनसः प्रवणयितम्) श्रृंगार के आलम्ब विभाव नायक तथा नायिका होते हैं । उद्यान, चन्द्रिकादि उद्दीपन विभाव होते हैं भ्रूविक्षेप, कटाक्ष आदि अनुभाव होते हैं तथा लज्जा, हास इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं । रति इसका स्थायी भाव है । इसका वर्ण श्याम है इसके आभिमानदेव विष्णु हैं ।

वामन शिवराम आप्टे के The practical Sanskrit English dictionary'

में श्रृंगार का यह अर्थ किया गया है -

(शृंग कामोद्रेकमृच्छत्येनेन अण) तथा ये पंक्तियां उद्धत हैं -

पुसः स्त्रियां स्त्रियाः पुसि सम्भोगं प्रति या स्पृहा ।
स शृंगार इति ख्यातः क्रीडाख्यादि कारकः ।।

प्रणय के देवता कामदेव को 'शृंगारयोनि' कहा जाता है । प्रेमासक्त व्यक्ति को शृंगारित तथा उत्तेजित प्रेमी को शृंगासि शब्द से अभिहित किया गया है ।

एक अन्य विदेशी स्त्रोत से भी श्रृंगार के अर्थ पर प्रकाश पड़ता है जैसा अभी दिखाया गया है, शृंग का अर्थ सींग भी है । सींग के लिए अंग्रेजी में Horn का प्रयोग होता है ।

वेक्स्टर डिक्सनी के अनुसार :-

Horns (बहुवचन) उस व्यक्ति का प्रतीक है, जिसकी पत्नी ने पर पुरुष सम्भोग किया है ।

ऐसे व्यक्ति के लिए उपहासात्मक ढंग से कहा जाता है कि सींग धारण किए हैं इससे भी 'शृंग' शब्द में मौन संसर्ग की ध्वनि वर्तमान प्रतीत होती है । अतएव वैयुत्पत्तिक दृष्टि से पुरुष एवं स्त्री की रमण-स्थहा वा रमण-व्यापार को जिसमें हिंसित होने, प्रभुत्व स्थापना अथवा प्राण-हरण की वृत्ति भी सन्निहित रहती है - श्रृंगार कहा जायेगा ।

श्रृंगार के भेद

श्रृंगार भेद की दृष्टियाँ :-

युवक-युवतियों की अन्योन्यानुरक्ति श्रृंगार का प्राणतत्व हैं । काम का ललित, स्निग्ध प्रकाश श्रृंगार का विलास है और यह काम पुरुषार्थ चतुष्टय में अत्यन्त महत्वपूर्ण है, तथा अन्य तीन पुरुषार्थो के उपभोग में सहायक सिद्ध होता है अतएव श्रृंगार के विभाजन में दो दृष्टियां मुख्यतः कार्यशील रही है । अधिक स्पष्ट शब्दों में यह कहा जाएगा कि प्रथम दृष्टि से प्रेमी-प्रेमिका के संश्लेषण एवं विश्लेषण के आधार पर और दूसरी दृष्टि से चतुर्वर्ग के आधार पर श्रृंगार के भेद किए गए है । पहले दूसरे विभाजन का उल्लेख किया जाता है -

चतुवर्गात्मक-विर्भाजन :-

भरत ने नाट्शास्त्र में धर्म, अर्थ, काम संज्ञा से विविध श्रृंगार का कथन किया है । डॉ0 राघवन ने अपने प्रसिद्ध शोध प्रबन्ध में ऐसे अन्य आचार्यो के निरुपणों का वर्णन किया है । जो धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के आधार पर श्रृंगार के विभाजन का अनुमोदन करते हैं । भोजराज, शारदातनय, रामचन्द्र, गुणचन्द्र, दामोद गुप्त, नीलकण्ठ दीक्षित इत्यादि कतिपय पण्डितो ने चतुवर्गात्मक विभाजन किए हैं । थोड़ा-बहुत विभेद या वैषम्य होने पर भी उनके निरुपणों को यो समन्वित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है ।

धर्म-श्रृंगार :-

भरत के अनुसार धर्म पूर्वक प्रतनियमापि के पालन से प्रार्थित एवं प्रकाम्य वस्तु की बहुविध प्राप्ति 'धर्म-श्रृंगार' कही जाती है । स्वकीया के प्रति एकनिष्ठ भाव से पालित एवं

प्रदर्शित प्रेम भी धर्म-श्रृंगार है । सद्ग्रहस्थों के लिए उदान्त काम-भावापन्न यही श्रृंगार अभीष्ट है ।

अर्थ-श्रृंगार :-

भरत का कथन है कि वह प्रेम जिसमें अनेक प्रकार अर्थ की प्राप्ति होने या वह प्रेम जिसमें अर्थ-प्राप्ति के उद्देश्य से स्त्री सम्प्रयोग किया जाय, अर्थ श्रृंगार कहलाता है भोज के मतानुसार अर्थ काम मनुष्य की भौतिक वैभव प्राप्ति की कामना से अनुप्राणित है । यह सभी स्त्रियों के प्रति प्रवृत्त हो सकता है किन्तु स्वास्थ्य एवं वैभव की हानि की सीमा तक इसका पालन ग्राह्य नहीं माना जाता ।

काम - श्रृंगार :-

भरत के मतानुसार कन्या-विलोमन (युवती को फंसाकर भगा ले जाना) अथवा स्त्री-पुरुष का गुप्त या सावेग रमण 'काम श्रृंगार' है । शारदातनय ने परदा-प्रेम, द्यूत, मृगयादि के भोग के काम-श्रृंगार में सम्मिलित कर इसे 'ललित-श्रृंगार' कहा है । कतिपय आचार्य परकीया के प्रेम को ही वास्तविक महत्व देते है और कष्टसाध्य होने के कारण उसकी उपलब्धि को आनन्ददायक मानते हैं । अतः उनके मतानुसार परकीया-प्रेम ही 'काम श्रृंगार' का सुन्दर स्वरुप है ।

मोदन श्रृंगार :-

भरत ने मोक्ष-श्रृंगार का वर्णन नहीं किया । भोज ने मोक्ष-श्रृंगार का विशेष उल्लेख किया है । इसका सम्बन्ध उन्होंने ज्ञानी, कर्मयोगी, सन्यासी तथा मुमुक्ष गृहस्थ से स्थापित किया है एवं मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रयत्न में ही इसकी सिद्धि मानी है । उनके मतानुसार धर्म-श्रृंगार, मोक्ष-श्रृंगार का ही स्वस्थ स्वरुप है । जिसमें सद्गहस्थ अपनी परणीता भार्या के साथ कार्य में प्रवृत्त होता है । श्रृंगार का यह विभाजन उन व्यापक प्रवृत्तियों एवं उद्देश्यों पर आघृत रहता है जिनसे अनुप्रेरित होकर स्त्री-पुरुष रति वा प्रेम के प्रमोदपूर्ण उपभोग में प्रवृत्त हो सकते हैं । अतएव इस आधार पर किसी श्रृंगार-काव्य को व्यापक रूप से यों परिभाषित किया जा सकता है कि यह धर्म-श्रृंगार वा अर्थ-श्रृंगार प्रधान इत्यादि है । इस स्थापना की पुष्टि हेतु, उनमें से उपयुक्त स्थल वा प्रसंग प्रदर्शित किए जा सकते हैं । किन्तु ऐसा करने पर श्रृंगार के मूलभूत प्राण-रति, किंवा प्रेम की नाना अभिव्यक्तियों का सहृदय-सवैध दिग्दर्शन नहीं कराया जा सकता । पुनः भेदों की सीमायें एक-दूसरे में प्रवेश भी

कर सकती हैं तथा अन्यान्य रस-भूमियों में भी संचरण कर सकती हैं । साथ ही कुछ विशिष्ट स्थितियों में इनकी अभिव्यक्तियां एक समान भी हो सकती हैं । इन कारणों से यह विभाजन साहित्य-रसिकों के बीच स्वीकृत नहीं हो सका ।

संश्लेष-विश्लेषणात्मक विभाजन :-

उपर्युक्त चतुवर्गात्मक विभाजन का यह सबसे सुन्दर एवं उपयोगी विकल्प सिद्ध हुआ है । यह आधार कि प्रेमी एवं प्रेमिका संश्लेष (संयोग) की स्थिति में हैं या विश्लेष की स्थिति में । दोनों स्थितियों में प्रेमाभिव्यक्ति के स्वरूप प्रायः बदल जाते हैं एवं उनके समन्वित अध्ययन तथा आकलन से अनुराग-सिक्त हृदय वा मानस की नानारूपिणी छवियों का अभिशंसन किया जा सकता है । पुनः उपर्युक्त चतुवर्गात्मक भेदों के अस्वादन में भी यह उपयोगी हो सकता हैं । अतएव श्रृंगार-काव्य का समुचित रसास्वादन में यही विभाजन उपादेय है । इस आधार पर श्रृंगार के दो भेद प्रायः सर्वसम्मत रीति से किए गए हैं -

प्रथम :- सम्भोग वा संयोग

द्वितीय :- विप्रलम्भ या वियोग

'श्रृंगार रस' की परिभाषा :-

भानुदत्त ने श्रृंगार की परिभाषा इस प्रकार दी है -

"यूनोः परस्परं परिपूर्णः प्रमोदः
सम्यक सम्पूर्णरीति भावोवा श्रृंगारः [1] ।।

अर्थात् युवक-युवतियों का वह प्रमोद अथवा आनन्द जो विभाव, अनुभाव अथवा व्यभिचारी के संयोग से निष्पन्न रति से संयुक्त होकर, सम्यक् रीत्या सम्पूर्ण बन गया हो तथा जो दोनों में समभाव से प्रस्फुटित हो, श्रृंगार कहलाता है ।

धनंजय की परिभाषा :-

रम्यदेशकलाकालेवेषभोगादि सेवनैः ।
प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्य रक्तयोः [2] ।।

अर्थात् एक दूसरे पर अनुरक्त युवक-युवती की रमणीय देश, काल, वेष, भोग इत्यादि के सेवन जो पारस्परिक प्रापोदात्मक रति होती है, वही मधुर आंगिक चेष्टाओं से पुष्ट एवं वर्द्धित

1. रसतरंगिणी भानुदत्त - 6   2. दशरुपक धनंजय

होकर, श्रृंगार बन जाती है । भानुदत्त ने परिभाषा में "सम्यक् सम्पूर्णता" से श्रृंगार के उपादानों का जो संकेत किया है, उसी का स्पष्ट कथन धनंजय की परिभाषा में उपलब्ध होता है । देश, काल, कला, वेश इत्यादि विभावों तथा मधुर आंगिक चेष्टाओं इत्यादि अनुभावों के साथ-साथ, युवक युवती की अन्योन्यानुरक्ति का भी इसमें स्पष्ट कथन किया गया है ।

रस के भेद :-

श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्‌भुत नामक ये नाट्क अर्थात् अभिनयात्मक काव्य में आठ रस कहे जाते हैं ।

श्रृंगार इत्यादि नाट्य-शास्त्र की (अध्याय 6-16) कारिका हैं उसे ही आचार्य मम्मट ने अविकल रूप में उद्धृत कर दिया है ।

नाट्य अर्थात् अभिनयात्मक काव्य में 8 ही रस होते हैं किन्तु श्रव्य या पाठ्यकाव्यों में शान्त रस नामक नवम रस भी होता है । अभिप्राय यह है - अवस्थानुकृति ही नाट्य है । उसमें शान्त रस की संभावना नहीं क्योंकि शान्त रस का स्वरुप तो सर्वविषयोपरति मात्र है और रोमांचादि के बिना किसी भाव का अभिनय नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त संगीतादि का भी शान्त रस के साथ विरोध है । इसी हेतु दशरुपककार ने नाट्क में शान्त रस की पुष्टि का स्पष्ट शब्दों में विरोध किया है -

रत्युत्साह जुगुप्साः क्रोधो हासः स्मया भय शोकः ।
शममपि केचित्प्राहुः पुष्टि र्नाट्येषु नैतस्य [1] ।

कुछ विद्वानों का विचार है कि - नाट्य में भी शान्त रस होता है । जैसे - नागानन्दादि नाटक में शान्त रस की प्रधानता है । शान्त रस विषयक गीताबोध का भी उनके साथ विरोध नहीं । आचार्य मम्मट ने नाट्य, काव्य दोनों के लिए सामान्य रूप से सर्वसम्मत 8 रसों का निरुपण किया है । तथा "शान्तोअपि नवमो रसः स्मृतः"

यहाँ नाट्य, श्रव्य दोनों में ही शान्त रस की सत्ता स्वीकार की है ।

टिप्पणी :-

1. नाट्यशास्त्र की इस कारिका में आठों रसों को क्रम से रखने का विशेष अभिप्राय है, जिसका स्पष्टीकरण अभिनव भारती में किया गया है ।

1. दशरूपक धनंजय 4-35

2. कुछ आचार्यो ने भक्ति तथा वात्सल्य को भी पृथक् रस माना है । रूप गोस्वामी ने "भक्तिसामृतसिन्धु' और 'उज्जवल-नीलमणि' नामक ग्रन्थों में भक्ति रस का विस्तारपूर्वक निरूपण किया है विश्वनाथ कविराज ने वत्सल रस की स्वीकृति को मुनीन्द्र सम्मत बताया है '

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विपुः ।
स्थायी वत्सलता स्नेहः पुत्राध लम्बनं मतम् [1] ।।

आयार्च मम्मट की मान्यता है कि भक्ति आदि का "भाव ध्वनि" में ही अन्तर्भाव हो जाता है । उनकी मान्यता प्राचीन परंपरा से अनुप्राणित है । आचार्य अभिनवगुप्त ने स्पष्ट ही कहा है -

आर्द्रतास्थायिकः स्नेहो रस इति त्वसत्"

काव्यानुशासनकार आचार्य हेमचन्द्र का भी यही मत है -

"स्नेहो भक्तिवात्सल्यमिति हि रेवरेव विशेषाः । तुल्ययोः या परस्पर रति स स्नेह । अनुत्तमस्य उत्तमे रतिः प्रसक्ति सैव भक्ति पद वाच्या । उत्तमस्य अनुत्तमे रतिः वात्सल्यम् एवमादौ च विषये भावस्यै वास्वाद्य त्वम् ।।"

इन रसो में प्रधानता एवं प्रधानता की दृष्टि से विचार करके कुछ आचार्यो ने एक या अनेक मूल रसों की कल्पना की है । भवभूति ने करुण को ही मूल रस माना है -

एको रसः करुणेव (उत्तररामचरित)

भोजराज का कथन है -

श्रृंगारमेव रसनाद रसमामनामः (श्रृंगार-प्रकाश ।)

हम तो अस्वादनीय होने से एकमात्र श्रंगार को ही रस मानते हैं । नारायण पं0 ने "चमत्कारसारत्वात् सर्वत्राण्यद्भूतोरसः "

1. साहित्य-दर्पण 3-25।

यह कहकर अद्भुत रस को ही मूल रस माना है । अभिवनगुप्त के अनुसार शान्त रस ही मूल रस है । भरत-मुनि ने आठ रसों में से श्रृंगार रौद्र, वीर तथा वीभत्स को प्रधान रस माना है । इन चारों में क्रमशः - हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक रसों की उत्पत्ति माना है । सम्भवतः रसों का यह उत्पाद्यभाव एक प्राधान्य-अप्राधान्य व्यक्तिगत दृष्टिकोण पर आश्रित है, विशुद्ध वैज्ञानिक आधार पर नहीं । यहाँ पर शंका होती है कि रस तो आनन्ददायक होतेहैं फिर दुःखमय करुणादि कैसे हो सकते है एवं यदि इन्हें सुखात्मक मान भी लिया जाय तो इनसे अश्रुपातादि नहीं होना चाहिए । इसका समाधान यही है कि काव्य-नाटक में शोक के होते हुए भी अलौकिक विभावादि-रुपता को प्राप्त हो जाते हैं एवं वे आनन्द का ही अनुभव कराते हैं यही बात वीभत्स तथा भयानक रस के विषय में भी है । करुण रस के अभिनय को देखने आदि से जो अश्रुपात होता है वह तो चित्त के द्रवित हो जाने के कारण ही होता है, दुःख के कारण नहीं । जैसा कि दर्पणकार ने स्पष्ट किया है । इसके विपरीत नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र, गुणचन्द्र ने समस्त रसों को दो भागों में विभक्त किया है - सुखात्मक एवं दुःखात्मक

उन्होंने श्रृंगार, हास्य, वीर, अद्भुत और शान्त रस को सुखात्मक माना है । किन्तु करुण, रौद्र, वीभत्स एवं भयानक को दुःखात्मक माना है । आचार्य विश्वेश्वर[1] का कथन है -

अभिनवगुप्त ने प्रत्येक रस का उभयात्मक रस माना है, अर्थात् प्रत्येक रस में सुख एवं दुःख दोनों का समावेश रहता है ।

स्थायी-भाव की परिभाषा :-

आचार्य विश्वनाथ ने स्थायी भाव का स्वरूप-विलेषण करते हुए लिखा है -

वाहं अविरुद्धा विरुद्धा वा यं विरोधातुमक्षमाः
आस्वादाकुरकन्दोअसौ भावः स्थायीति समतः [2] ।।

स्थायी भाव-उस भाव को कहते है जो कि न किसी अनुकूल भाव से तिरोहित हुआ करता है और न किसी प्रतिकूल भाव से दबा करता है । यह भाव तो अन्त तक अवस्थित रहने वाला भाव है और इसी में रस के अंकुरण (अभिनव किंवा सूक्ष्मउद्वेद) की मूलशक्ति निहित रहा करती है, इसीलिए कहा भी गया है - स्थायीभाव तो वह भाव है - जिसे अन्य भाव वैसे

1. काव्य-प्रकाश-टीकाकार (विश्वेश्वर)
2. साहित्यदर्पण

ही रह-रहकर प्रकाशित और परिपुष्ट किया करते हैं, जैसे माता के फूल या मोती गुम्फन-सूत्र को प्रकाशित और परिपुष्ट किया करते हैं ।

स्थायी-भाव का अभिप्राय हैं 'स्थितिशील का इत्यादि 9 भावों के स्थायी-भाव होने और कहे जाने का रहस्य यह है -

> "ज्ञात एव हि जन्तुरियतीभिः संविद्भि परीतो भवति । तथा हि दुःख विद्वेषी सुखास्वादन लालसः सर्वे रिरंसया व्यापतः, स्वात्मन्युत्कर्षमानितया परमुणहसति, उत्कर्षायसंकया शोचयति, अपायं प्रति क्रुध्यति अपायहेतु परिहारे समुत्सहते, विनिपाताद् विभेति, किंचिदयुक्त तयाभिमन्यमानो जुगुप्सते, तत्रत स्वपर कर्तवय वैचित्र्यदर्शनाद्विस्यपते, किंचिज्जिहासुस्तत्र वैराग्याच्छतं भजते न होताच्चित्रवृत्ति वासना शून्यः प्राण भवति । केवलं कस्यचित्काचिदधिका चित्तवृतिः काचिदूना । कस्यचिटुचित विषयनियत्रिता कस्यचिदन्यथा [1] ।।

स्थायी भावों के भेद :-

1. रति
2. हास,
3. शोक
4. क्रोध
5. उत्साह,
6. भय
7. जुगुप्सा
8. विस्मय
9. शम

विभाव :-

जो व्यक्ति, पदार्थ बाह्य परिवर्तन अथवा विकार मानसिक भावों को उत्पन्न करते हैं, उनको

1. काव्यानुशासन, 2/18

विभाव कहते हैं । यह विभाव रस को विशेष रुप से उत्पादित करते हैं, अस्वाद योग्य बनाते हैं -

ये रसाभिव्यक्ति के कारण इन्हीं के आश्रय से रस प्रकट होता है । इसी कारण आश्रय में यह विभाव भावों को जाग्रत भी करते हैं । इनके दो भेद हैं -

आलवन

उद्दीपन

जिनका आलंबन करके रस उत्पन्न होता है, वे आलंबन विभाव है तथा जो रस को उद्दीप्त करते हैं अर्थात् जिनका ज्ञान प्रकृष्ट रस जनक होता है, वे उद्दीपन विभाव कहलाते हैं - जैसे - विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी को देखकर राजा का उद्दीप्त भाव प्रकट होता है -

अग्रेस्त्रीनखपाटलं कुरबकं श्यामं द्वयोभगियो-

वीलाशोकमुपोढरागसुभगं भेदोन्मुखं तिष्ठति ।

ईषद्वद्वरजः कणाग्रकपिशा चूते नवा मंजरी

मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये मधुश्रीः स्थिता ।

वैसे विषय एवं आश्रय दोनों की आलंबन के भेद हैं, जिनके सहारे रति आदि स्थायी भाव जाग्रत होते हैं, वे विषयालेबन है तथा रति आदि स्थायी भावों का जो आधार है व आश्रयावलंबन है । साहित्यदर्पणकार प्रौढ़ा तथा अनुरागिणी वेश्या को आलम्बन माने के पक्ष में नहीं है ।

"परोढा वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम् आलंबन नायिकास्युः ।।'

उनकी दृष्टि से अनुराग वेश्या को न निर्गुणों से द्वेष होता है न गुणियों से राग उसका अनुराग तो धन से होता है पर कभी-कभी तो वे सत्यानुरागिणी भी हो जाती है । जैसे मृच्छकटिकम् में वसन्तसेना -

नाट्यशास्त्र में इन भेद-प्रभेदों का रुप मिलता है । उनका सांगोपान विकास पाया जाता है । अग्नि-पुराण, दशरुपक, सरस्वती कष्ठाभरण, श्रृंगार-प्रकाश, साहित्य-दर्पण, रस-मंजरी, श्रृंगार-मंजरी आदि में भी वर्णन मिलता है । अन्तिम दो ग्रन्थ तो श्रृंगार रस को ही लेकर लिखे गये हैं । इस तरह पहले श्रृंगार के रूप में वर्णित ये प्रसंग आगे चलकर अंगी के रूप में स्वतन्त्र

ग्रन्थों में वर्णित होने लगे एवं आलम्बन मात्र के उन विशद वर्णो को सहृदय सामाजिक के हृदय में यदि पूर्णतः रसानुभूति को न सही तो भावानुभूतिको तो अवश्य ही उत्पन्न करने में समर्थ माना जाने लगा । परन्तु जिन आचार्यो ने जितने मनोयोग एवं विस्तार के साथ नायिकाओं के भेदोपभेद उनके अलंकार नख-शिख का वर्णन प्रस्तुत किया है -

निगुणामपि न देष्टि न रज्यन्ति गुणिस्वपि
वित्तमांत्र समालोक्य सा रागं दर्शयिद वहिः ।।"

इतने मनोयोग और विस्तार के साथ नायकों और उनकी स्थितियों को नहीं, नायक के साथ उनके सहायकों का जो वर्णन मिलता है । वह भी नायिकाओं के सन्दर्भ में पृथक् नहीं कहा जा सकता है । क्योंकि वे उनकी प्राप्ति के साधक के रूप में ही अधिकतर वर्णित हुए हैं ।

समाज में मान्यता प्राप्त इस पुरुष दृष्टि से दर्शन करने हों तो अभिनव भारती का अवलोकन कर सकते हैं । वहाँ आचार्य अभिनव का यह फैसला देखने को मिलता है । नारी अन्न है, पुरुष अन्ता है । पुरुष भोक्ता होने के कारण प्रधान है । नारी उसकी भोग्या है । भोक्ता होने के कारण ही पुरुष को भोग्य के सम्बन्ध में ऐसी स्वतन्त्रता है । जबकि भोग्या होने के कारण नारी सर्वथा परतन्त्र है, भोक्ता को अधिकार है कि वह जिस वा जितने भोग्य को चाहे अपना ले । इसीलिए भोक्ता के नायिकान्तर संयोग में भी श्रृंगार हानि नहीं होती पर परतन्त्र होने के कारण भोग्या के अन्य के साथ सम्मिलन होने पर श्रृंगार-भंग अवश्य हो जाता है -

तत्र भोक्तृत्वे पुरुषस्य प्रधान्यम् । प्रमादायास्तु भोग्यात्वम् प्रधान्यादेवच तस्य भोग्येनापरतन्त्रीकरणमिति नायिकान्तरयोगेअपि न श्रृंगार हानिः । भोग्यस्य तु पारतन्त्यादेवान्य सम्मिलने श्रृंगार-भंगः ।

भोक्ता प्रधाने भोग्या तु कान्ता तदुपसर्जनम्
अतोनरान्त रासाक्तिस्तस्याः श्रृंगार भंगकृत
भोक्तुस्त्व परतन्त्रत्वात् कान्तान्तरमभंजकम् [1] ।।

1. संगीत - रत्नाकर 7/1413-1414

उक्त दृष्टि को चाहे जितनी अच्छी दार्शनिक वेशभूषा से अभिमण्डित कर दिया जाए तो उसके समर्थन में चाहे जितनी युक्तियां क्यों न कर दी जाए पर वह पुरुष-लिप्सा का डिण्डिमघोष मात्र-नारी पर उसके पाशविक आधिपत्य की शाश्वत स्थापना के लिए एक वायु मात्र किसी भी निष्पक्ष व्यक्ति को स्पष्ट होते देर नहीं लगेगी ।

जैसी जिस समय शाकुन्तलम् में दुष्यन्त आश्रम में प्रवेश करके शकुन्तला को मधुर दृष्टिपात करता है । उतने समय से लेकर हस्तिनापुर जाने तक उसे साधना का शिकार बना कर आलंबन तो बनाता है परन्तु वही आलंबन विभाव में परिणीत होकर वासना का रूप दे देता है ।

भाव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देह निर्णयो जातः ।
आशंकसे यदग्नि तदितं स्पर्शक्षमं रत्नम् [1] ।।

यही सब कारण है कि जहाँ काव्यादि में नारी के यौवन एवं प्रेम का प्रसंग आया है । वही अधिक कामसूत्र की परम्परा अपनायी गयी है । सौन्दर्य की बाह्य एवं दैहिक रसाओं को महत्त्व अधिक मिला है । यौवन के अन्य मनोभाव तथा स्वस्थ्य और व्यापक आन्तरिक सौन्दर्य के उन्मेष की ओर कम ध्यान दिया गया है - यह ठीक है कि श्रृंगार में रति एवं उसके विलास के बिना काम नहीं चलता परन्तु उसके अतिरंजित चित्रण को ही सर्वस्व मान लेना जिससे युग्म जीवन के अन्य पक्ष तिरोहित हो जाएं । श्रृंगार रस की स्वस्थ्य एवं संकलित अवतारणा के लिए हित करना हों, इन्हें इतना हानि न फैलाने दिया जाय कि श्रृंगार रस से सम्बद्ध अन्य भावों और प्रसंगो को स्थान ही न मिले ।

आलम्बन :-

श्रृंगार रस के शास्त्रीय विवेचन करते समय विभावों के अन्तर्गत आलम्बन विभाव का वर्णन किया गया है जिसके आलम्बन से रस उत्पन्न होता है वे ही आलम्बन विभाव है । कालिदास एवं भवभूति के नाटकों का सामान्य परिचय देते हुए हम उनकी कथावस्तु का विश्लेषण कर आये हैं वहाँ हमने देखा है कि श्रृंगार के रस के आश्रय एवं आलम्बन उभयपक्षीय है कहीं आश्रय आलम्बन बनता है तो कही आलम्बन आश्रय । इस प्रकार आलोच्य नाटकों के नायक-नायिका

1. शाकुन्तलम् - प्रथमांक पृष्ठ 79 श्लो 24

ही परस्पर आलम्बन विभाव सिद्ध हुए है । अग्निमित्र, पुरुरवा, दुष्यन्त, राम, माधव क्रमशः नायक है मालविका, उर्वशी शकुन्तला, सीता और मालती नायिकायें हैं ।

यहाँ संक्षेप में हम आलम्बन (नायक-नायिकाओं) के बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य के साथ-साथ उनके गुणों का संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है ।

दुष्यन्त

कालिदास कृत "शाकुन्तल" संस्कृत साहित्य ही नहीं बल्कि विश्व-साहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है, जिसका नायक दुष्यन्त है ।

कालिदास के नाटकों में नायक विवाहिता है, जिनको सौन्दर्यानुभूति की परिणति का पूर्ण-ज्ञान है । राजा दुष्यन्त अत्यन्त पराक्रमी, सात्विक गुण, भौदार्यता से युक्त समस्त शास्त्रों का ज्ञाता, गम्भीर, धैर्य, त्याग, जितेन्द्रिय, नाना प्रकार के शिल्पों का ज्ञाता तथा जितेन्द्रिय नायक है प्रकृति भेद के अनुसार दुष्यन्त उन्तय प्रकृति का नायक है । जितेन्द्रिय है अथवा नहीं इस बात की तथ्ययुक्त प्रमाणिकता देना कठिन है । क्योंकि एक ओर जहाँ उसे राजर्षि कहा गया है । वहीं शकुन्तला के प्रथम दर्शन के पश्चात् अनेकानेक प्रकार के कथनों के प्रति उसकी प्रवृत्ति विपरीत प्रतीत होती है । लताओं की ओंट में छिपकर सखियों के प्रेमालाप को सुनना, पारस्परिक हास-परिहास को सुनना तथा षटपद के द्वारा शकुन्तला की पीछा किए जाने पर अनेक वासना-युक्त सम्बोधनों से सम्बोधित करना, एक जितेन्द्रिय कहे जाने वाले व्यक्ति के लिए उचित नहीं । वैसे एक नाटक में दुष्यन्त के जितेन्द्रिय होने के काफी प्रमाण प्रापत होते हैं लेकिन नाटक प्रारम्भिक अंश में जितेन्द्रिय होने के कतई प्रमाण नहीं मिलते है ।

दुष्यन्त चक्रवर्ती नरेश है एवं उनका सम्राट होना ही उसके ऐश्वर्य के लिए पर्याप्त है । वह दीन हीनो का शुभचिन्तक है । जिसके प्रमाण षष्ठांक में भयभीत महुए धन-मित्र के परिवार को पुरस्कार देकर विशेष रूप से सांत्वना देता है । तथा द्वितीय में राक्षसों से भयतीत आश्रम-ऋषियों की रक्षा करना आदि, उसके दीन-हीनो के प्रति उदारता का परिचायक है । इसी परिप्रेक्ष्य में दुष्यन्त को नाना शास्त्रों का ज्ञान भी है ।

जैसे प्रथमांक में तपोवन में मृगयोचित वेश को उतारकर प्रवेश करना तथा तीसरे अंक में जब दोनों एक दूसरे के प्रेम-पाश में बंध जाते है एवं गन्धर्व विवाह का प्रस्ताव का अनुमोदन किए जाने पर दुष्यन्त शकुन्तला को समझाता है कि यह विवाह विधि, शास्त्र विपरीत नहीं बल्कि

शास्त्र सम्मत है ।

इसी विवेचनान्तर हम यह भी पाते हैं कि राजा दुष्यन्त एक गंभीर प्रकृति का नायक है । उसकी गम्भीरता का अंकन हम पांचवे अध्याय में उस दृश्य से कर सकते है, जिस समय शारंगरव उसे अनेक प्रकार से कटु वचन कह देता है । फिर भी दुष्यन्त एक सम्राट होते हुए भी शारंगरव के द्वारा क्रोधावेश में कहे जाने वाले अनेक प्रश्नों का उत्तर वह शान्तिपूर्वक ही देता है - "विशेषणाधिक्षिप्ताअस्मि" इस उक्ति को छठवें अंक में राजाश्याल भी राजा को प्रकृति गंभीर बताता है । इस प्रकार उसकी गंभीरता की प्रमाणिकता सिद्ध हुई है । वह धैर्यवान एवं त्यागी राजा है । प्रजा-सुख हेतु वह सब कुछ त्यागने को उद्यत रहता है । यद्यपि नाट्यशास्त्र में यह स्पष्ट नहीं है कि नायक को किन-किन गुणों से युक्त होना चाहिए । खासकर उन नायकों को जिनको धीरोदात्त नायक अभीष्ट माना जाता है ।

यद्यपि शास्त्रानुसार जो क्रोध एवं अहंकार से रहित हो वही श्रेष्ठ नायक माना जाता है । इसीलिए दुष्यन्त एक क्षमावान् नायक है, क्योंकि उसमें क्रोध का समावेश लेशमात्र नहीं है क्योंकि जैसा 5वें अंक में सारंगव ने उसे अनेकशः अधिक्षेप शब्द कहें लेकिन हर बार उसने उसे क्षमा कर दिया । यही उसकी क्षमाशीलता का ज्वलन्त उदाहरण है ।

इस प्रकार दुष्यन्त में अनेकानेक गुण हैं, जिनके द्वारा उसे हम एक सचरित्र, उदान्त एवं कुशल नायक की संज्ञा दे सकते हैं । वह किसी मुख से अपनी प्रशंसा पसन्द नहीं करता । जैसा कि 7 वें अंक में मातलि के द्वारा प्रशंसा किए जाने पर राजा ने कहा कि अपने गुणों का बखान करने वाला इन्द्र भी लघुता को प्राप्त होता है । यह उसकी उदार एवं विशाल भावना का उत्तम उदाहरण है । इस प्रकार दुष्यन्त नाटक का प्रधान पात्र कालिदास द्वारा चुना जाना युक्ति संगत ही है ।

निष्कर्ष यह है कि दुष्यन्त जितेन्द्रिय, संगीत, साहित्य, कला - मर्मज्ञ, दीनवत्सल, नाना शास्त्रार्थ सम्पन्न, त्यागी, उदार, महासत्व, क्षमावान, स्थिर प्रिय, विनीत, मृदुभाषी नायक है । आधुनिक नाट्य समीक्षकों ने उसे पौरुष की साक्षात् मूर्ति, तेजस्वी नायक माना है । ऐसे आदर्शवान नायक की प्रतिष्ठा कालिदास का काम्य है, जिसे अपनी चमत्कारिक लेखनी से नायक के रूप में उपस्थित किया है ।

पुरुरवा

नाट्यशास्त्र के अनुसार पुरुरवा में मध्यम प्रकृति के गुण विशेष विद्यमान है । लेकिन उत्तम प्रकृति एवं मध्यम प्रकृति के समान गुण पाए जाते हैं ।

प्रथमांक में घबरायी हुई अप्सराओं को सात्वना देता हुआ उन आर्त अप्सराओं की रक्षा करता है तथा उस राक्षस से उनकी प्रिय सखी उर्वशी को मुक्तकराकर उनके समीप पहुंचा देता है । इस प्रकार पुरुरवा में उत्तम प्रकृति के गुण विद्यमान हैं ।

पॉचवे अंक में तापसी के आगमन पर वह उसका उचित आतिथ्य सत्कार अभिवाद्नादि करता है तथा चित्ररथ, नारद एवं अन्य अप्सराओं के साथ यह समानोच्यित व्यवहार करता है । जो उसके लोकोपचार में चतुर होने के परिचायक है । उर्वशी के आकृष्ट होने का मूल कारण उसमें माधुर्य गुण का होना है । अप्सराओं, चित्ररथ, रानी, औशनरी, नारद, तापसी, विदूषक आदि सब के प्रति उसका व्यवहार मधुर है । इस प्रकार उसमें उत्तम एवं मध्यम प्रकृति के गुण विद्यमान है । वैसे शील के आधार पर हम पुरुरवा को धीरोदात्त नायक की श्रेणी में मानते हैं । दूसरे अंक में रानी औशीनरी के अचानक आ जाने पर वह एक अपराधी की तरह उसके पैरो में गिरकर क्षमा मांगता है । रानी द्वारा क्षमा न किए जाने पर भी उसे क्रोध नहीं आता तथा चौथे अंक में उर्वशी के न प्राप्त होने पर वह दुःखी हो जाता है, वह उसको पाने की भरपूर कोशिश करता है ।

इस प्रकार उसके हृदय में शोक भाव न होकर भोग भाव है । अतः हम पुरुरवा को महासत्व नायक की संज्ञा दे सकते है । सम्पूर्ण नाटक में पुरुरवा की गम्भीरता दृष्टिगत होती है । वह स्थिर मन वाला है । पुरुरवा उर्वशी से ही प्रेम करता है तत्पश्चात् अन्य किसी से नहीं यद्यपि वह चाहता तो विधाधर गन्धर्व की कन्या से भी प्रेम कर सकता था, क्योंकि वह उस समय उर्वशी अदृश्य हो चुकी थी । यह स्थिति उसकी अस्थिरता का प्रमाण है । वह एक स्वाभिमानी नायक है तथा उसको अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास एवं अभिमान है । वह किसी के सामने झुकता नहीं यही कारण है कि वह उर्वशी को ढूँढने अकेला ही निकल पड़ता है । वह दृढ़व्रती भी है किए हुए कार्य को अधूरा नहीं छोड़ता प्रथमांक में अप्सराओं से सभी की रक्षा का वादा करता है और सफल भी होता है । उसने उर्वशी से प्रेम किया एवं अन्त तक निभाया भी ।

उर्वशी के वियुक्त हो जाने पर जंगल की ओर प्रस्थान करने का निश्चय करता है । इस प्रकार वह एक दृढ़व्रत नायक है । उसका मन उर्वशी पर आसक्त अवश्य हो जाता है लेकिन वह अपनी रानी औशीनरी को भी दुःखी नहीं करता एवं उससे क्षमा मांग लेता है । इस प्रसंग में वह दक्षिण कोटि का नायक सिद्ध होता हे ।

पुरुरवा में शोभा भी है । विलास, स्थौर्य, ललित तथा औदार्य गुण उसमें पूर्ण-परिलक्षित होते हैं । इस प्रकार पुरुरवा में सभी सात्वि गुण अक्षरसः पाये जाते हैं । माधुर्य एवं गम्भीर नायक गुण उसके त्रोटक में कहीं भी परिलक्षित होते हैं ।

शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से पुरुरवा का मूल्यांकन करने पर यह सिद्ध होता है कि वह एक रक्षक, प्रजा पालक, सेवक तथा दास्य भाव युक्त राजा है, क्योंकि नारद मुनि के अतिरिक्त अप्सराओं आदि का भी वह यथोचित आदर सत्कार करते हुए विनम्र वाणी से देते हुए पूर्ण-सुरक्षा का आश्वासन देता है । यही उसके विशला-हृदय के प्रमाण है ।

अग्निमित्र

मालविकाग्निमित्र नाटक का नाटक अग्निमित्र उत्तम प्रकृति, धीर ललित एवं दक्षिण कोटि का नायक है । किन्तु वह नाना-शिल्प विचक्षण, उदार, ऐश्वर्यवान लोक व्यवहार में कुशल, स्त्रियों के प्रति चंचल, कलासक्त, निश्चिन्त एवं मृदु व्यवहार का है । आधुनिक नाट्य समीक्षकों ने उसे दक्षिण कोटि का नायक सिद्ध किया है । उसमें मध्यम एवं उधम प्रकृति के गुण भी विद्यमान हैं । इसी प्रकृति भेद के अनुसार अग्निमित्र का निर्धारण किस कोटि में किया जाय । इस निर्णय को अन्तिम रूप देना कठिन है । उसमें पूर्ण रूपेण न उत्तम गुण हैं और न ही मध्यम एवं अधम कोटि के गुण । वस्तुतः इन तीनों का मिश्रित रूप दिखता है ।

उत्तम प्रकृति के गुणों का अवलोकन करते समय हमें उसमें नाना-शिल्प विलक्षणता दृष्टिगत होती है । क्योंकि प्रथम अंक में मालविका के चित्र को देखकर वह उसकी सुन्दरता एवं गुणों की पहचान कर लेता है । पॉचवें अंक में विदर्भ देश से आयी हुई संगीत एवं नृत्य कला में दक्ष दो स्त्रियों को अपने राज्य में आश्रय देने के लिए तत्पर है । इससे यह ज्ञात होता है कि वह

कला पारखी है । इसी क्रम में उसकी उदारता का परिचय भी अपने शत्रु यज्ञसेन को आधा राज्य देकर करता है । वह अपने कंचुकी से कहता है कि मैं यज्ञसेन एवं माधवसेन दोनों भाइयों का अलग-अलग राज्य स्थापित करना चाहता हूँ ।

अग्निमित्र में अधम प्रकृति के गुण भी है । जबकि नाट्यशास्त्र के आधार पर नायक अधम प्रकृति का नहीं हो सकता । अग्निमित्र स्त्रियों के प्रति चंचल स्वभाव का है । इसके पहले उसकी दो पत्नियां विद्यमान है लेकिन अपनी पुत्री तुल्य षोडषी मालविका पर वह आसक्त होता है । जबकि उसकी अवस्था 40-45 के मध्य है । अतः ऐसे व्यक्ति को चंचल ही कहा जायेगा । साथ ही यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि अपनी इस प्रकृति को कभी छोड़ देगा अतः अग्निमित्र में तीनों गुण विद्यमान हैं । लेकिन सूक्ष्म विवेचन करने पर नाटककार उसे धीरललित कोटि के नायक की श्रेणी में अवस्थित करते हैं । धीरललित कोटि के अनुसार अग्निमित्र राज्यभार से पूर्णमुक्त है । सारा कार्य राज्य के मंत्री देखते हैं । यद्यपि नाटक में यज्ञसेन को पराजित करना बताया गया है, लेकिय यह कार्य उसका स्वयं न होकर मन्त्रियों का है । यद्यपि यह सत्य है कि युद्ध का आदेश राजा ने ही दिया होगा । परन्तु युद्ध-स्थल में गया है - नाटक में इसका कोई प्रमाण नहीं है । अग्निमित्र कला प्रेमी है । संगीत, नृत्य, चित्रकला से उसे विशेष लगाव है । मालविका का नृत्य एवं संगीत उसे बहुत भाया । मालविका से मिलने की उसकी तीव्र इच्छा है जिससे मौका लगाकर वह मिल लेता है । इस प्रकार उसको लक्ष्य की प्राप्ति हेतु विशेष कष्ट नहीं सहना पड़ता है, अतः वह सुखी है । कलाकार एवं सुखी व्यक्तियों का स्वभाव प्रायः धीरे-धीरे मृदु हो जाता है । जैसा कि अग्निमित्र में देखा गया । तीसरे अंक में वह रानियों को मनाने केलिए पैरो में गिरता भी है और उन्हें मना भी लेता है ।

इस प्रकार मिश्रित गुणों से युक्त अग्निमित्र धीर ललित नायक है, ऐसा शास्त्रकारों ने पुष्टि की है ।

माधव

महाकवि भवभूति के प्रथम नाटक "मालती माधव" का नायक 'माधव' है 'दशरूपककार' एवं 'साहित्य-दर्पणकार' के मतानुसार वह धीर प्रशान्त नायक है । दोनों ही आचार्यो ने धीरशास्त्र

के उद्धरण में 'मालती-माधव' के 'माधव' का नाम ही दिया है । धीरशान्त नायक में नायक के विनीतत्वादि गुण सामान्य रूप से पाये जाते हैं, तथा वह ब्राह्मण, वैश्य, मन्त्रिपुत्र आदि ही होता है । इस प्रकार का नायक भी निश्चिन्त तथा कलाप्रिय होता है किन्तु फिर भी उसकी गणना ललित कोटि में नहीं की जा सकती है । क्योंकि ब्राह्मणादि प्रकृति से ही शान्त होते हैं अतः इस प्रकार के नायकों को धीर-शान्त ही मानना होगा ।

कामन्दकी 'मालती-माधव' के द्वितीयांक में माधव का परिचय देते हुए कहती है -

तत उदयगिरेरिवैक एष स्फुरितगुणद्युतिसुन्दरः कलावान ।
इह गति महोत्सवस्य हेतुनयनवतामुदियाय बालचन्द्रः [1] ।।

अर्थात् जिस प्रकार नेत्र वाले लोगों को प्रसन्न करने वाला, कलापूर्ण, कान्तियुक्त बाल-चन्द्रमा उदयगिरि से उदित होता है, उसी प्रकार देदीप्यमान गुणों की कान्ति से, मनोहर कलाओं में पारंगत यह अकेला माधव, संसार के नेत्रधारियों केलिए महान् उत्सव है । (प्रसन्नता) का कारण बनकर इस कुल में उत्पन्न हुआ है ।

इस उद्धरण में उसका कला-प्रेमी होना सिद्ध होता है । वह स्वभावतः निश्चिन्त है क्योंकि उसके जीवन में कोई विशेष चिन्ता एवं व्यग्रता नहीं दीखती । इस दृष्टि से उसका धीर-ललित कोटि में ही आना चाहिए था किन्तु ब्राह्मण होने से वह स्वभावतः अत्यन्त शान्त है तथा प्रकरण की दृष्टि से भी शान्त होना ही आवश्यक है । अतः उसकी गणना धीरोशान्त में होना उचित है । धीरशान्त नायक में नेता के सामान्य गुण, सामान्य रूप से होना चाहिए । तदानुसार वह विनम्र, प्रियंवद, अन्य व्यक्तियों को प्रसन्न करने वाला, पवित्र-मनः, कुलीन-वंशी है । वह उत्साह गुण सम्पन्न शूरवीर है ।

अधोरघण्ट के वध में तथा अपने मित्र मकरन्द एवं नगर-रक्षक-सिपाहियों की कलह में उसका उत्साह-भाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । श्रृंगार-प्रिय व्यक्ति स्वभावतः मृदुभाषी, अन्य व्यक्तियों को प्रसन्न करने वाला होता है । वह अम्यात्यपुत्र होने के कारण कुलीन-वंशोत्पन्न भी है । अविवाहित एवं विद्यार्थी जीवन में विद्यमान होने के कारण उसका युवक होना भी स्पष्ट है । इस प्रकार उसमें नायक के उपर्युक्त सामान्य गुण साधारण रूप में विद्यमान हैं । विशिष्ट लक्षणों की दृष्टि से वह मन्त्रिपुत्र, ब्राह्मण भी है । ऐसी अवस्था में धीरशान्त नायक

के प्रायः सभी गुण उसमें प्राप्त होते हैं । अतः वह धीरशान्त नायक ही कहा जायेगा ।

महावीर चरित का नायक

महाकवि भवभूति द्वारा रचित 'महावीर चरित' नाटक के नायक राम हैं । नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से उनकी गणना धीरोदात्त नायक की श्रेणि में की गयी है । वे महासत्व सम्पन्न हैं अर्थात् महान बलशाली होते हुए भी क्रोध तथा शोक से कभी भी अभिभूत न होने वाले हैं ।

प्रथमांक में ही वे भीषणाकृति एवं महान्बलशालिनी ताड़का का वध करते हुए दृष्टिगत होते हैं । यह उनके महाबली होने का प्रमाण है किन्तु इस पराक्रम के साथ उनकी विनय सम्पन्नता भी स्पष्ट ही दृष्टिगत होती है । वे उसे देखकर भयभीत नहीं होते तथा उनके हृदय में न ही क्रोध के भाव ही जाग्रत होते हैं । इसके विपरीत वे विश्वामित्र से कहते हैं -

भगवन स्त्रीखलिवयम[1] ।

इससे यह ध्वनित होता है कि स्त्री को मारना धर्म नहीं है, किन्तु वह बाध्य हैं, विश्वामित्र का आदेश है, अतः वे उसका वध करते हैं । प्रथमांक के अन्त में वे सुबाहु एवं मारीच का भी वध करते हैं । इससे भी उनकी पराक्रमशीलता सिद्ध होती है । तृतीयांक में दशरथ, जनक, शतानन्द, वशिष्ठ तथा विश्वामित्र सभी जन परशुराम को मनाते हैं, समझाते हैं किन्तु उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वे राम को बध्य मानते हैं एवं मारने के लिए उद्यत हैं । राम यह सब देखते तथा सुनते हैं । किन्तु उनकी वीरता सौजन्य से इस प्रकार आवृत है कि वे बीच में कुछ नहीं बोलते हैं । जब वे समझ लेते है कि अब बिना अस्त्र उठाये काम नहीं चलेगा तो वे विवश होकर ललकारते हुए कह उठते हैं -

पौलस्त्यविजयोदुदामकार्तवीर्यार्जुनद्विषम् ।
जेतारं क्षत्रवीर्यस्थ विजयेय नमोअस्तु वः [2] ।।

अर्थात् पौलत्स्य विजय से दृप्त कार्तवीर्यार्जुन के संहारक तथा क्षत्रवीर्य के हन्ता परशुराम पर विजय प्राप्त करुंगा । आप लोगों को नमस्कार है ।"

परशुराम का दमन करने के पश्चात् जब वे एवं परशुराम साथ साथ उस स्थान पर आते हैं जहाँ जनक, दशरथ एवं अन्य ऋषिगण विद्यमान थे, तो उस समय परशुराम उनसे कहते

1. महावीर 8/35 2. महावीर 3/45

हैं - अनतिक्रमणीयो राम निदेशः अर्थात् राम की आज्ञा टाली नहीं जा सकती है । इसका उत्तर राम का उदार एवं विनय सम्पन्न हृदय कितनी धीरता से देता है - एष वो राम शिरसा प्रणामपययिः अर्थात् यह राम आपको बार-बार प्रमाण करता है ।

परशुराम द्वारा उन्हें बार-बार बध्य की कोटि में गिने जाने पर भी उनके हृदय में क्रोध का कोई भाव नहीं आता । उनकी उपर्युक्त "पौलत्स्थ ... ..." इत्यादि उक्ति उनके उत्साह की द्योतक है ।

छठवें अंक में भयंकर युद्ध चल रहा है, दोनों तरफ की सेनाएं आहत हो रही हैं । लक्ष्मण के मूर्च्छित होने का समाचार पाते ही राम शोकमग्न न होकर रास्ते में कुम्भकर्ण की सेना को भस्मसात करते हुए वहाॅ पहुंचते हैं । उसी समय दशकन्धर भी अपनी सेना लेकर वहाॅ पहुंचता है । राम-रावण दोनों का युद्ध होता है । इस स्थल में वीर एवं करुण रस के भावों का समन्वय हुआ है । धीरोदात्त नायक का क्षमावान, दयावान, कीर्तिवान् तथा गम्भीर होना आवश्यक है । राम में ये सभी गुण पूर्णतया विद्यमान है । परशुराम के मिथलागमन के समय, लोगों के समझाने पर अनेक अनर्गल प्रलाप करने के बावजदू भी राम उनको एक भी शब्द नहीं कहते हैं । उनकी अपनी समझ थी - जब हमारे वंशज ऋषिमुनि उनको समझा रहे है तो हमारी क्या आवश्यकता है, उनकी क्षमाशीलता का प्रतीक है ।

सम्पूर्ण प्रकरण में राम कहीं भी अपनी प्रशंसा नहीं करते । उन्होंने अनेक बलवान राक्षसों का वध किया, परशुराम को पराजित किया, फिर भी उन्होंने इस पर अहंकार नहीं किया इस प्रकार राम अविद कथन नायक भी हैं । स्वभिमान उनके रोम-रोम में समाया है । परशुराम के अनर्गल प्रलाप को सुनते सुनते जब राम यह समझ लेते हैं कि - वे अपनी सीमा को पार कर रहे हैं तो उनकी वीरता उभर ही आती है लेकिन विनय तब भी उनके साथ है । वह परशुराम से युद्ध होने के पहले एवं बाद दोनों में विनम्र ही प्रतीत होते हैं ।

वे जिस बात का निश्चय करते है, उसे परिणाम तक पहुंचाते हैं । विभीषण को उन्होंने लंकाधिपति बनाने को कहा था । अतः रावण के मारे जाने के पश्चात् विभीषण का राज्याभिषेक होता है । तदनन्तर राम पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं । इस प्रकार उनका दृढ़-प्रतिज्ञ एवं दृढ-व्रत होना भी सिद्ध होता है ।

साहित्य-दर्पण तथा दशरूपक में बतलाये गये धीरोदात्त नायक के सभी गुण, सम्पूर्ण विशेषताएं राम में हैं, अतः राम धीरोदात्त नायक हैं ।

उत्तर राम चरित का नायक

राम ही उत्तर राम चरित के नायक है । वे धीरोदात्त नायक हैं । धीरोदान्त नायक की सभी विशेषताएं उनमें हैं । धीरोदान्त नायक की प्रथम विशेषता उसका महासत्व सम्पन्न होना है । राम ने सहस्त्रो राक्षसों का वध कर अपनी पृथ्वी पर अपूर्व शान्ति स्थापित की । यह बात राम के निम्न कथन से ध्वनित होती है -

रामः कथमधापि राक्षस त्रासः [1]।

क्या अब भी राक्षसों का भय है ही ? इससे यह ध्वनित होता है कि उन्होंने अनेक राक्षसों तथा रावण का वध कर डाला फिर भी अभी रावण अवशिष्ट हैं । इससे सिद्ध है कि वे अत्याधिक बलशाली थे । इसके अतिरिक्त दण्डकारण्य में अकेले ही जाकर वे तलवार से शम्बूक का वध करते हैं, इससे उनका महासत्व-सम्पन्न होना सिद्ध होता है । इस वध के करने में उनके मन में तनिक भी क्रोध का अंश दृष्टिगत नहीं होता है तथा इस प्रकार के पराक्रम सम्बन्धी उनके कार्यों को करते समय उनमें शोक की उत्पत्ति का कोई असर नहीं होता है ।

राम अति गम्भीर तथा क्षमावान् भी हैं । गम्भीरता के साथ तो उनका समवाय सा सम्बन्ध है । सीता-परित्याग का निर्णय करने पर वे किसी मानस विकास से अभिभूत नहीं ज्ञात होते हैं तथा अपने मन में यही कहकर शान्त हो जाते हैं कि अतिशय निन्दनीय कार्य करने वालामैं नृशंस हो गया हूँ । तब क्यों अस्पृश्य पातकी होकर मैं देवी को अपने स्पर्श से दूषित करूं ।

ऐसा कहकर सोई हुई सीता के सिर को ऊँचाकर राम अपनी बाहु को खींच लेते हैं । कुछ क्षणों के पश्चात् ही नेपथ्य में ऋषियों के लवण नामक राक्षस से त्रस्त होने की सूचना मिलती है । तदनुसार वे उसके उन्मूलनार्थ प्रबन्ध करते हुए दृष्टिगत होते हैं । तत्पश्चात् सीता के वनागमन समय राम-सीता का कोई मिलन भी दृष्टिगत नहीं होता है । इस परित्याग-जन्य शोक से उनका हृदय अभिभूत नहीं होता है । क्योंकि वे अपने राज्य-कार्य में संलग्न हैं । यह उनकी क्षमाशीलता का द्योतक है । उनमें अति गम्भीरता एवं क्षमाशीलता है । उनमें अपने कर्म

1. उत्तररामचतिर पृष्ठ सं0 78

के प्रति अहंकार नहीं हैं । अपितु वे स्वयं के दोषों को अधिक देखते हैं । सीता-परित्याग के समय वे स्वयं को ही दोषी ठहराते हैं तथा यह अनुभव करते हैं कि मेरा जन्म ही दुःख सहने के लिए हुआ है । अतः वे अवित्कथन हैं ।

स्थिरचित्ता उनकी महान विशिष्टता है, वे जो निश्चय कर लेते हैं उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं । वशिष्ट के सन्देश प्राप्ति पर वे कहते हैं -

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकी मपि ।
अराधनाथ लोकस्य मुंचतो नास्ति में व्यथा [1] ।।

अर्थात् प्रजा अनुरंजन हेतु प्रेम, दया, सुख तथा सीता का भी त्याग करने में मुझे किसी प्रकार का कोई कष्ट न होगा । तद्नुसार समय आने पर लोकराधन निमित्त उन्होंने सीता का परित्याग भी कर दिया । यह उनकी स्थिरचित्ता का ही ज्ञापक हे । जिनके चित्त अस्थिर अथवा चंचल होते हैं, उनके कथनों में भी अस्थिरता होती हैं, वे शीघ्र ही अपनी कही हुई बात को बदल दिया करते हैं ।

नायक राम स्वभिमानी भी हैं । किन्तु उनका स्वाभिमान विनय से प्रच्छन्न है षष्ठ अंक में जब वे बाल्मीकि आश्रम के समीप विचान द्वारा उतरते हैं, जहॉ लव तथा चन्द्रकेतु का युद्ध हो रहा था, तो लव एवं कुश के साथ मिलने में उन्हें महान् आनन्द की उपलब्धि होती है । किन्तु आकृतियों में सीता की आकृति की तुल्यता देखकर वे पुनः करुण रस से आप्लावित हो जाते हैं । तदनन्तर कौशिल्या, जानकादि भी उनके दर्शनार्थ वहॉ पर उपस्थित होते हैं । किन्तु वे उन लोगों से मिलना उचित नहीं समझते हैं । क्योंकि इससे उनके स्वाभिमान की चोंट पहुंचती थी । वे जानते थे कि यदि यहॉ सीता-विषयक वार्तालाप प्रारम्भ हो गयी तो इस समय मेरे लिए इससे अधिक अपमान एवं दुःख का अवसर क्या होगा ? क्योंकि उनको दृढ़-विश्वास था कि प्रजाहित की द्रृष्टि से उन्होंने जो भी किया है, उचित है । वे सीता के दुःख से दुःखी अवश्य हैं, किन्तु उनका ध्येय प्रजान्यरंजन ही है । अतः वे उनको उचित अभिवादन देकर चल देते हैं । इसमें उनके स्वाभिमान के साथ विनय-सम्पन्नता के भी दर्शन होते हैं ।

इस प्रकार धीरोदान्त नायक के सभी गुण तथा विशेषताएं उनके चरित में स्पष्ट रूप से उपलब्ध होती हैं । अतः उनको धीरोदान्त नायक का श्रेणि में रखना नितान्त उचित हैं ।

1. उ०रा०च० 1/12

अभिज्ञान शाकुन्तल की नायिका

कालिदास कृत नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तल' की नायिका शकुन्तला है । शास्त्रीय दृष्टिकोण से वह कन्या परकीया नायिका है । परकीया नायिका दो प्रकार की होती है -
(1) कन्या, (2) अन्य व्यक्ति की परिणिता स्त्री । नाटकादि में कन्या ही अंगी रस के आलम्बन रूप में आ सकती है, प्रौढ़ा नहीं । शकुन्तला 'कन्या' नायिका की श्रेणि में आती है ।

वस्तुतः शकुन्तला महर्षि कण्व की धर्म-पुत्री हैं । महर्षि कण्व के संरक्षण में उसकी शिक्षा-दीक्षा हुई है । कन्या नायिका किसी दूसरे के संरक्षण में रहती है अतः नायक को उससे छिपकर प्रेम करना पड़ता है । राजा दुष्यन्त प्रारम्भ में उसे छिप-छिपकर देखता है तदनन्तर प्रेम हो जाने पर भी लतामण्डप के शयनागार में उससे छिपकर ही मिलता है । उसके इस बात को केवल उसकी सखियां-प्रियवंदा एवं अनुसूया ही जानती हैं । कण्व तो उस समय बाहर गये हुए थे अतः उनके भय का प्रश्न ही नहीं था हाँ गौतमी जो शकुन्तला की संरक्षिका थी = वह वहां विद्यमान थी, अतः उसका भय था । तृतीयांक में नायक-नायिका एकान्त मिलन के समय जब गौतमी शकुन्तला का समाचार लेने आती है तो उस समय दोनों पृथक् हो जाते हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कन्या नायिका को छिपकर प्रेम करना पड़ता है ।

साहित्य-दर्पण में कन्या-परकीया-नायिका के कुछ विशिष्ट गुणों का वर्णन है वे सभी गुण शकुन्तला में विद्यमान हैं । वह अविवाहित हैं । वह सलज्जा तथा नवयौवना भी है । जब वह शारंगव तथा शारद्वत तथा माता गौतमी के साथ अपने पतिग्रह जाती है एवं दुष्यन्त के समक्ष उपस्थित होती है तो उस समय 'वह अवगुण्ठन किए हुए हैं । यह अवगुण्ठन उसके सलज्ज होने का ही द्योतक हैं । क्योंकि गौतमी कहती है कि -

जाते । मुहूर्तक्र मा लज्जस्व, अपने व्यानि तावन्ते अवगुण्ठनम् तर्ता भर्त्ता त्वामभिज्ञास्याति । अर्थात् हे पुत्री थोड़ी देर के लिए लज्जा त्याग दे । मैं तेरा घूंघट उठाऊंगी । तब तो मेरा पति तुझे पहचानेगा ।

इसी प्रकार सप्तम अंक में राजा पुनः मिलन पर उसके साथ मारीच तथा अदिति भी होते हैं अतः वह उसके समक्ष जाने में लज्जित होती है । इसमें शकुन्तला का सलज्ज होना स्पष्ट है ।

उसके नवयौवना का परिचय प्रियंवदा के कथन से होता हैं । प्रथम अंक में जब शकुन्तला अनुसूया से कहती हैं कि सखि अनुसूया । प्रियंवदा ने इस वल्कल को बहुत अधिक कस दियाहै, इसमें मुझे कष्ट हो रहा है, अतः तुम इसे ढीला कर दो ।" यह सुनकर प्रियंवदा हंस कर कहती है -

अत्र तावत् पयोधर विस्तार हेतुकम आत्मनो यौवनारम्भं उपालभस्व ।"

अर्थात् " इस विषय में तो तुमको अपने स्तनों के वृद्धि के कारण यौवनारम्भ को उलाहना देना चाहिए था ।" इससे शकुन्तला के युवा होने का परिचय मिलता है ।

इस प्रकार उसकी गणना प्रारम्भ में तो कन्या-परकीया नायिका के अन्तर्गत होती है किन्तु गान्धर्व विवाहोंपरान्त उसको स्वकीया नायिका की श्रेणी में रखा जा सकता है । दशरूपकार एवं साहित्यदर्पणकार ने स्वकीया नायिका के गुण इस प्रकार बतायें हैं - शील, लज्जा आदि से युक्त होती है । अर्थात् वह सचरित्र, पतिव्रता, लज्जायुक्त तथा पति के प्रति व्यवहार में बड़ी चतुर होती है ।

शकुन्तला पूर्णतः पतिव्रता नायिका है । गन्धर्व विवाह के पश्चात् राजा के प्रति उसका प्रेम और भी बढ़ जाता है । राजा के नगर चले जाने के उपरान्त उसका मन निरन्तर उसकी ही ओर लगा रहता है । जब वह दुष्यन्त के ध्यान में मग्न रहती है एवं दुर्वासा ऋषि के आगमन का आभास नहींकर पाती तो दुर्वासा क्रोधित होकर शाप दे देते हैं किन्तु उसे इस बात का ज्ञान भी नहीं हो पाता है । राजा के समीप जाने पर उसके मन में एक प्रकार का उत्साह रहता है किन्तु शापवश राजा उसे नहीं पहचान पाता है । अतः उसको त्याग देता है, तो वह एक क्षण के लिए क्रुद्ध हो जाती है किन्तु बाद में अपने भाग्य को ही दोषी ठहराती है । वह राजा को विस्मृत नहीं कर पाती विरहिणी वेश में अपने चरित्र की रक्षा करते हुए जीवन यापन करती है । इस घटनाओं से उसका सचरित्र, पतिव्रता तथा शील-सम्पन्न होना स्पष्ट है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि विवाह पूर्व वह कन्या नायिका है एवं विवाहोपरान्त स्वकीया नायिका ।

विक्रेमोवशीयम् की नायिका

'उर्वशी' विक्रमोर्वशीयम् की नायिका है । अप्सरा होने के कारण रूप में अप्रतिम है । संस्कृत नाटयशास्त्र के आचार्यो के वर्गीकरण के अनुसार वह साधारण नायिका है, वह स्वकीया

तो हो ही नहीं सकती, स्वकीया तो अपनी विवाहित पत्नी ही होती है ।उ से परकीया भी नहीं कहा जा सकता हे, क्योंकि न तो वह कन्या है एवं न ही किसी की विवाहित पत्नी । अतः उसे तृतीय श्रेणी के अनुसार उसे 'सामान्या' या 'साधारणा' नायिक ही कहा जा सकता है ।

उर्वशी में दैवी तथा मानुषी का मिश्रण है, क्योंकि वह देव एवं मर्त्य दोनों लोकों में विचरण करती है । वह पुरुरवा को प्रारम्भ से ही निस्सीम प्रेम करती थी, राजा ने जिस समय उसका उपकार किया उस समय वह अचेतना थी, किन्तु जब चैतन्यावस्था को प्राप्त होती है तो राजा की ओर देखकर अपने मन में कहती है 'उपकृत खलु दानैव अर्थात् दानवों ने उपकार ही किया है । स्पष्ट है कि इनते कष्टोपरान्त भी उसमें राजा दर्शन की इच्छा है । उसके लिए हृय में राजा के लिए स्थान बन चुका हैं । वह राजा के साथ स्पष्टतः प्रेम करती है । इसके लिए उसे मान एवं अपमान का बोध नहीं है । जब वह राजा से प्रथम मिलन हेतु अभिसारिका रूप में जाती है यह जानते हुए भी कि पुरुरवा की विवाहित पत्नी औशीनरी है । राजा पर उर्वशी का प्रेम इस बात से और अधिक दृढ हो जाता है कि वह राजा के वियोग के भय से ही अपने सद्यः जात बालक को दूर रख आती है । वस्तुतः यह बड़ा भारी त्याग है । पुत्र-प्रेम का छोड़कर पतिप्रेम निभाना मातृ-जाति के लिए कठिन बात है । किन्तु वह इसमें भी स्वयं को सफल सिद्ध करती है । यद्यपि इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उसमें उपभोग की एक विशिष्ट अभिलाषा है, इसी लोभ में अपने पुत्र को स्वयं से पृथक् कर देती है क्योंकि वह जानती है इन्द्र की शर्त के अनुसार उसे पुत्र दर्शन होते ही स्वर्गपुरी वापिस जाना होगा । इससे प्रेम का भोगमूलक होना सिद्ध होता है । यद्यपि प्रेम के भोगमूलक होने के कारण उसकी गणना 'साधारणा' नायिका के अन्तर्गत किया जाना ही उचित है ।

मालविकाग्निमित्र की नायिका

मालविकाग्निमित्रम् की नायिका मालविका है । वह रूपवती विदर्भराजकन्या है, नवयौवना है । नायिका के प्रकारों में इसकी गणना परकीया नायिका में की जायेगी परकीया नायिका दो प्रकार की होती है (1) अविवाहित कन्या (2) प्रौढ़ा - किसी दूसरे की परिणिता ।

मालविका प्रथम प्रकार की परकीया है । वह विदर्भराज की अविवाहित पुत्री है देववशात उसे दासी बनना पड़ा किन्तु अग्निमित्र के साथ विवाह के बन्धन में बंधने से पूर्व उसका

राजपुत्री होना प्रकट होता है । दशरूपककार के अनुसार कन्या के प्रति उत्पन्न हुआ अनुराग प्रधान (अंगी) रस का भी अंग हो सकता है तथा अंगभूत रस का भी । अतः नाटकादि में अंगी रस के आलम्बन रूप में कन्या का ही परकीया नायिका के रूप में वर्णन अपेक्षित है, प्रौढा का नही । क्यों कि भारतीय संस्कृति एवं परम्परानुसार प्रौढा अथवा अन्य की परिणीता स्त्री पर प्रेम नैतिकता के विरूद्ध माना गया है ।

यहां पर प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि फिर कन्या को परकीया क्यों स्वीकार किया गया है ? उसका उत्तर है कि वह विवाह से पूर्व अपने पितादि के अधीन होती है । यद्यपि इस कन्या को पितादि के संरक्षण में रहने के कारण प्राप्त नहीं किया जा सकता है, फिर भी वह सुलभ है । नायक छिपछिपकर उससे प्रेम करता है, अपनी ज्येष्ठा नायिका से भयभीत रहता है । मालविका ि साथ भी ऐसी ही बात है । वह रानी धारिणी के अधीन है इसी कारण नायक अग्निमित्र उससे छिपछिप कर मिलता है । साथ ही वह स्वकीया नायिकाओं से भयभीत होकर दृष्टिगत होता है

नाटक में मालविका का प्रेम प्रधान रस के साथ निबद्ध है । मालविका विदर्भराज माधवसेन की छोटी पुत्री है । जब वह अपने भाई के संरक्षण में थी तभी उसका भाई उसका विवाह माधवसेन के करना चाहता है था, यह बात उसे भली प्रकार विदित थी । इस कारण राजा का मन उस पर रीझ गया । ऐसा ज्ञात होने पर आगे पीछे का विचार न कर आनाकानी किए बिना ही वह राजा के प्रेम के लिये उद्यत हो जाती है तथा नृत्याभिनय के समय संगीत में राजा के प्रति संकेत रूप में आत्मसमर्पण करती हुई अपने अनुराग को व्यक्त करती है । प्रमदवन में राजा के साथ एकान्त वार्तालाप करने में भी उसे कोई संकोच नही होता है । रानी इरावती द्वारा देख लिये जाने पर भी भयभीत नहीं होती, प्रिय प्राप्ति हेतु कारावास को भी अपमान नहीं समझती । अन्त में अपना वास्तविक परिचय सभी द्वारा होने पर राजा के प्रति अपने प्रणय को किन्तु खलु साम्प्रतं भर्ता भणति कहकर अभिव्यक्त करती है । इस प्रकार उसका प्रेम नाटक में सर्वत्र अंगी रस के साथ बंधा हुआ उपलब्ध होती है ।

कन्या परकीया नायिका के कुछ विशिष्ट गुण साहित्य दर्पण में बतलाये गये हैं, वे सभी मालविका में विद्यमान हैं । वह अविवाहित कन्या है । सलज्जा तथा नवयौवना भी है । उसका सलज्ज होना इसी बात से स्पष्ट है कि वह नृत्य के अभिनय के पश्चात वहां से प्रस्थान हेतु

उद्यत है । यदि निर्लज्ज होती तो बिना आचार्य के रोके खडी रह सकती थी । उसे गमन विषयक आदेश की प्रतीक्षा भी हो सकती थी । इसके अतिरिक्त विदूषक के कहने पर आचार्य द्वारा रोके जाने पर भी उसकी दृष्टि नीचे रहती है । स्पष्ट है वह सलज्ज है । नवयौवना होना तो स्वयं सिद्ध है । प्रथम तो यह कि वह अविवाहिता है । दूसरे चित्रदर्शन से ही राजा उस पर मुग्ध हो जाता है, अभिनय के समय चित्र से कहीं अधिक सुन्दर पाता है । इससे उसका सौन्दर्यातिरेक स्पष्ट हो जाता है । यह सौन्दर्यातिरेक युवावस्था में ही हो सकता है । इसके अतिरिक्त सप्तम अंक में विदर्भराज माधवसेन द्वारा उपहार रूप में प्रेषित दो बालिकाएं आती हैं, आते ही मालिविका को पहचान लेती हैं एवं कहती हैं - 'उक्षे श्रणोतु भर्ता - माधवसेना नाम । तस्येयं भगनी मालविका नाम' अर्थात वह माधव सेन की छोटी बहन मालविका है । तदनन्तर वे दोनों परिव्राजिका रूप में विद्यमान कौशिकी को भी पहचान लेती हैं । कौशिकी भी मालविका के वास्तविक वृत्तांत को सुनकर उसका राजकुमारी होना सिद्ध करती है । अतः राजकुमारी होने से भी उसका युवा होना प्रतिबिम्बित होता है । इस प्रकार साहित्य दर्पण में बतलाये गये कन्या परकीया नायिका के सभी विशिष्ट गुण उसमें उपलब्ध होते हैं ।

उपर्युक्त प्रमाणों एवं युक्तियों के आधार पर उसे कन्या परकीया नायिका स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है ।

मालती - माधव की नायिका

'मालती - माधव' प्रकरण की नायिका कहती है जो स्वकीय दृष्टिकोण से कन्या परकीया नायिका की श्रेणी में आती है । कन्या होने के कारण वह अपने पिता इत्यादि के अधीन है । अतः वह छिप छिप कर माधव को देखती है - माधव भी छिपकर ही उसे देखता है तथा प्रेम अभिव्यक्ति करता है । इस प्रेम को कराने में कामन्दकी तथा उसकी परिचारिका आदि आवश्यक सहयोगी हैं फिर भी उन दोनों का प्रारम्भिक प्रेम किया हुआ प्रेम ही है ।

मालती माधव के अंगी रस का आलम्बन भी मालती ही है । शास्त्रीय दृष्टि से परकीया नायिका की कन्या तथा प्रौढा दो श्रेणियों में 'कन्या' ही अंगी रस का आलम्बन बन सकती है इस दृष्टि से भी वह कन्या परकीया नायिका की श्रेणी में आती है ।

कन्या नायिका अविवाहिता, सलज्ज तथा नवयौवना होना आवश्यक है । ये सभी विशेषताएं उसमें विद्यमान हैं । वह अविवाहिता है, विवाह के सम्बन्ध में चर्चा चल रही है । उसका पिता भूरिवसु उसका विवाह बाल्यकाल ही में अपनी प्रतिज्ञानुसार अमात्य देवराज के पुत्र माधव से करना चाहता है । किन्तु पद्मावती के महाराज के एक नन्दन नाम के नर्म सचिव थे, उन्होंने राजा को अपने अनुकूल बनाकर मालती के साथ अपना विवाह करने के लिये राजा द्वारा भूरिवसु से याचना की थी । इस विवाह के सम्बन्ध की सूचना चतुर्थ अंक में जाकर प्राप्त होती है । इस घटना से उसका अविवाहित होना सिद्ध होता है । मालती की प्रिय सखी लवंगिका द्वारा बार बार कहे जाने पर भी वह माधव के साथ प्रेम विवाह करने को उद्यत नहीं होती है, वह उनके विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहती । उसकी इच्छा यही है कि उसके हृदय में माधव स्थान प्राप्त कर चुका है, तथा वह उसी के साथ विवाह करने का अभिलषित है । फिर भी वंश मर्यादा का उल्लंघन करके प्रेम विवाह करने के पक्ष में नहीं है । अतः वह लवंगिका से कहती है -

ज्वलंत गमने रात्रो रात्रा व खण्ड कलाः शशी,

दहतु मदनः किं वामृत्योः परेण विधास्यतः ।

मम तु दयतिः श्लाघ्यस्तातो जनस्ययलान्वथा,

कुतुममलिनं न त्वैवायं जनौ न च जीवितम् ।।

प्रत्येक रात्रि को आकाश में सम्पूर्ण कलाओं से युक्त होकर चन्द्रमा प्रज्जवलित हो और कामदेव दाह उत्पन्न करें । ये लोग हमारा मृत्यु से अधिक क्या कर सकते हैं । मेरे पिताजी प्रिय तथा प्रशंसनीय हैं, निर्मलवंश में उत्पन्न माता अति प्रिय है । मेरा वंश भी निष्कलंक तथा प्रिय है, किन्तु यह व्यक्ति (माधव) और अपना जीवन मुझे प्रिय नहीं है । मालती के इन शब्दों से यही भाव स्पष्ट हो रहा है कि वह एक कुलीन कन्या के प्रतिकूल साहस कर माधव से प्रेम विवाह नहीं कर सकती है । इससे उसके सलज्ज एवं मर्यादित होने का पता चलता है इसी प्रकार षष्ठांक में जब मालती देवी के मन्दिर में विवाह से पूर्व पूजन के लिये जाती है वहां लवंगिका के स्थान पर माधव खडे हो जाते हैं । मालती उनका गाढालिंगन करती है एवं अपनी माला उतार कर उन्हें पहना देती है । किन्तु जब वह देखती है कि यह माधव है तो वह लज्जा से संकुचित होकर दूर हट जाती है । उपर्युक्त उद्धरणो से पता चलता है कि वह सलज्ज है वह नवयौवना है । प्रथम बात तो यह है कि माता - पिता अपनी कन्या के विषय में तभी विचार करते हैं जब वह नवयौवना हो जाती है । अतः माता पिता द्वारा उसके विवाह के सम्बन्ध

मे चर्चा किए जाने से उसका नव यौवना होना सिध्द होता है । इसके अतिरिक्त माधव ने मालती के जिस सौन्दर्य आदि का वर्णन अपने मित्र मकरन्द से किया है उससे उसका युवा होना सिध्द होता है ।

उपयुक्त गुणो के आधार पर मालती को कन्या परमीया नायिका की श्रेणी मे मानना उचित प्रतीत होता है ।

महावीर चरित की नायिका 'सीता'

महावीर चरित की नायिका 'सीता' की गणना स्वकीया नायिका की श्रेणी मे की जाती है । स्वकीया नायिका के सभी गुण उसमें विद्यमान है । वह नायक राम की विवाहित पत्नी है । केवल प्रथमांक मे राम व्दरा घनुष तोडे जाने के पूर्व तक वह कन्या रुप मे दृष्टिगत होती है । तदन्तर वह सर्वत्र ही स्वकीया नायिका के रुप मे विद्यमान है । वह शील लज्जादि गुण सम्पन्न है । अर्थात वह पवित्रता,सचरित्रा,अकुटिलता सलज्जा तथा विनम्रा है । प्रारभ से ही उसे राम से प्रेम है । प्रथम अंक मे जब वह विश्वामित्र के आश्रम मे राम को देखती है तो कहती है 'सौम्यदर्शनाश्यम 'यही भाव स्नेह कारुप धारण कर लेता है । जब राम को ताडका वध हेतु विश्वमित्र आज्ञा देते है तब वह कह उठती है -हाधिक एष एवात्र नियुक्त'सीता का यही स्नेह विवाहोपरान्त उदीप्त प्रणय का रुप धारण कर लेता है । सीता राम को केसह भी आपत्तिजनक कार्य मे जाते देखकर घबडा उठती है । परशुराम की क्रूर 'प्रकृति से परिचित सीता राम को उनसे नही मिलने देना चाहती है । यथाशक्ति वह स्वंय रोकती हैसखियों के समक्ष संकोच को तिलांजलि देकर राम को पकड लेती है । इस प्रकार सीता का राम के प्रति अनन्य प्रेम दृष्टिगत होता है । वह सम्पूर्ण सचरित्रा है । सप्तम अंक मे देवगण उनका अभिनंदन एवं सचरित्र होने के सम्बन्ध मे अनुमोदन करते है'वे घोषणा करते हुए कह रहे हैं । 'सीताअग्नि मे प्रविष्ट होकर शुध्दता का परिचय दे चुकी है । अतः हे रघुनंदन संसार की मर्यादामयी सीता का आप आदर करें। देवगण स्वंय उसके आचरण के विषय मे साक्षी होकर घोषणा करते है । उसको सम्पूर्ण सचरिश्रा कहना पूर्णतः उपयुक्त है ।

सखियोंके इस कथन से कि 'उदतिमिदानी प्रिय सक्ष्यारसान्तरेण लज्जालुत्वम 'हमारी प्रिय सखी की लज्जा स्नेहाधिक्य के कारण छोटी पड़ रही है । इसमे सीता का लज्जा होना स्वयं सिध्द है ।

वह राजपुत्री होने से कुंलीन है । उसमे नायक के भी प्रायः सभी सामान्य गुण विदमान है । उपयुक्त विशिष्ट गुणोंतथा विषेशताओं से समन्वित होने के कारण उनको स्वकीया

वह राजपुत्री होने से कुलीन है । उसमे नायक के भी प्रायः सभी सामान्य गुण विद्यमान है । उपयुक्त विशिष्ट गुणों तथा विषेशताओं से समन्वित होने के कारण उनको स्वकीया नायिका की श्रेणी मे रखना उपयुक्त है ।

उत्तर रामचरित की नायिका सीता

सीता रामचरित की नायिका है । उनकी गणना स्वकीया नायिका की श्रेणी मे करना ही उपयुक्त प्रतीत होता है । क्योंकि स्वकीया नायिका के सभी विशिष्ट गुणों की उपलब्धता उनके चरित्र मे है । स्वकीया नायिका नायक की विवाहित पत्नी हुआ करती है । सीता नायक राम की पत्नी है । इसके अतिरिक्त शास्त्रीय दृष्टिकोण से स्वकीया नायिका का शीलवती ,सुकोमल तथा लज्जावती होना आवश्यक होता है ।

शीलवती का तात्पर्य है कि नायिका को अच्छे आचरण वाली होनाा चाहिए । जोअच्छें आचरण वाली नायिका होती है । उसी को सच्चरित्रा ,पतिव्रता तथा पति के प्रति अच्छे व्यवहार किए जाने मे निपुण माना जा सकता है । सीता का चरित्र अत्यन्त उच्च एवसं महान है । राम के प्रति उनका असीम प्रेम ही उनके महान चरित्र का द्योतक है । उनका जीवन राममय है । सीता के समक्ष ही राम व्दारा यह कहे जाने पर भी कि प्रजानुरंजन के लिए सीता का भी त्याग करना पडे तो उससे भी कोई व्यथा नही होगी,सीता व्यथित नही होती । इसके विपरीत वह गौरव का अनुभव करती हुई कहती है । अतएव रघुवंशरंधर : आर्यपुत्र अर्थात 'आर्यपुत्र इसी कारण तो रघुकुल शिरोमणि है'। यहां पर हम देखते है कि सीता नितान्त आत्मचिन्ता शून्य है । ऐसा प्रतीत होताहै,मानो उनका अस्तित्व ही राम मे लीन हो चुका हो । चित्र दर्शन के समय भी उनका ध्यान सदैव राम की ही ओर कृष्टिगोचर होता है । प्रारम्भ मे ही उनकी कृष्टिराम के चित्र पर पड़ती है । वे देखती है कि जम्भकास्त्र आर्यपुत्र की स्तुति सी कर रहे हैं । तत्पश्चात मिथिलापुरी का वृत्तांन्त देखते समय भी सीता की दृष्टिराम मे ही लगी हुई है । वे कहती है कि कितनी सुन्दर आर्य पुत्र की मूर्ति इस चित्र मे अंकित है । इसी बीच लक्ष्मण उन्हे उनके विरह मे रुदन करते हुऐ राम का चित्र दिखाते है । देखते ही उपकी आंखे भर आती है । एवं वे कहती है । 'अहो दिनकर कुलानंदन एवमपि मम कारणात क्लान्त आसीत 'अर्थात राम मेरे ही कारण इतने अधिक द:खित हुए थे । इसी प्रकार के अनेक स्थल हैं । जहां सीता का राम के प्रति अनन्य प्रेम दृष्टिगत होता है । तृतीय अंक मे पंचवटी दर्शन के समय राम सीता का स्मरण कर अनेक बार मूर्च्छित होते हैं ।ऐसे समय सीता स्वंय को धिक्कारिती

आसीत'अर्थात राम मेरे ही कारण इतने अधिक दु:खित हुए थे । इसी प्रकार के अनेक स्थल है । जहां सीता का राम के प्रति अनन्य प्रेम कृष्टिगत होता है । तृतीय अंक मे पंचवटी दर्शन के समय राम सीता का स्मरण कर अनके बार मूर्च्छित होतें है । ऐसे समय सीता स्वंय को धिक्कारिती है,तथा दु:खी होती है । सर्वत्र एक भाव की प्रधानता दृष्टिगत होती है । सीता के राम के प्रति अतुलनीय एवं अगाध प्रेम । इस प्रकार उनका राम के प्रति अनन्य स्नेह देखने से उनका पतिव्रत होना स्पष्ट हो जाता है । सप्तम अंक मे पृथ्वी एवं गंगा स्वंय उपस्थित होकर जनसाधारण के बीच सीता के पूर्ण पवित्र तथा सुचरित्र होने की घोषणा करती हुई अरुन्धती से कहती है' 'अरुन्धती '। जगदन्ये । गंगा फथ्ब्यौ जुषस्व नो। अपितेंय तवावाभ्यां सीता पुष्यव्रता वधूः 'हे जगद्वन्द्ये अरुन्धती । हम दोनो गंगा 'पृथ्वी को प्रसन्न कीजिए । हम दोनो पवित्र व्रती वधू सीताको आपको सौंपती है । 'इसी अंक मे एक अन्य स्थान पर गंगा तथा पृथ्वी देवियां सीता के सम्पर्क मे अपनी पतिव्रता को और अधिक उत्कर्ष प्राप्त होने के सम्बन्ध मे बखान करती है । उनकी दृष्टि मे सीता उनकी अपेक्षा अधिक पवित्र है। इससे सीता के पवित्र आचरण का स्पष्ट आभास मिलता है । सीता सुकोमल स्वभावा है । उनके नेत्र राम के थोडे से भी कष्ट का अनुभव कर अश्रुधारा पूर्ण हो जाते है। तीसरे अंक मे राम की मूर्च्छिता वस्था को देखाकर वह स्वंय भी मूर्च्छित हो जाती है । इससे उनकी प्रकृति का अत्यधिक कोमल होना स्पष्ट होता है । वे सलल्ला भी है । ततीय अंक मे जब राम मूर्च्छित हो जाते हैतब उनकी दशा को देखकर सीता से रहा नही जाता एवं वह तमसा से कहती है । भगवति तमसे आर्यपुत्र को जीवित कीजिए । ऐसा कह कर तमसा के चरणोगिर पडती है । उस समय तमसा कहती है कि हे कल्याणि ! तुम्ही जगत स्वामी राम को जीवित करो । क्योकि तुम्हारा हांथ कोमली स्पर्श वाला है । उसी मे ये राम अनुरक्त है । इस पर सीता कहती है कि - 'चाहे जो हो भगवती जैसी आज्ञा करती हैं । यहां सीता अपने से बड़ो के बीच (वासन्ती, तमसा आदि) उपस्थित होने के कारण राम को यकायक जीवित करने का प्रयास नही करती है । उन्हे तमसा से प्रार्थना भी करनी पड़ती है । इन बातों से उनका सलज्ज होना स्पष्ट होता है । इसी प्रकार सप्तम अंक मे भी राम के मूर्च्छित हो जाने पर अरुन्धती की आज्ञा से ही सीता राम को पुनश्चेतना प्रदान करती है, वे सलज्ज है ।

उपयुक्त युक्तियोएवं उदरणों के आधार पर सीता मे उन सभी गुणों तथा विशेषताओं काहोना स्पष्ट हो जाता है । जिनका एक स्वकीया नायिका मे होना आवश्यक है । अतः सीता स्वकीया नायिका है ।

उद्दीपन विभाव

पिछले फष्ठो मे कालिदास एवं भवभूति के नाटकों मे आलम्बन एवं आश्रय या नायक नायिका के सौंदर्य एवं चरित्रगत,आन्तरिक एवं वाहय विशेषताओं का मूल्याकंन करते देखा गया है कि उसके नायक राजा नागर प्रणय मे चतुर विलासी है । तो नायिका निःसर्गत सुकुमार अथवा विवाहिता है । यहां हम उददीपन विभाव की दृष्टि से कालिदास एवं भवभूति के नाटकों का वर्णन करेंगे ।

आचार्य विश्वनाथ ने उददीपन विभाव की व्याख्या करते हुये लिखा है कि जो रस को उद्दीप्त करे उन्हे उद्दीपन विभाव कहते हैं ।

उदीपन विभावास्ते रसमुददीपयन्ति य ।

आचार्य भरत एवं उनके अनुयायी भानुदत्त ने ऋतु,माल्य,अलंकार प्रियजन ,संगीत ,उपवन, विहार आदि को उददीपन विभाव कहा है ।

ऋतुमाल्यालंकारेः प्रियजनगांधर्व काब्य सेवाभिः

उपवन गमन विहारैः श्रंगार रस समुद्र भवति

शारदातनय ने श्रंगार रसानुकूल उद्दीपन ो को ललित की संज्ञा देकर चार भागों मे बांटा है ।

1. आलम्बन कें गुण
2. उसकी चेष्टाएं
3. अलंकरण
4. तटस्थ

1. साहित्य दर्पण 6/939   2. रसतरंगिणी

अलम्बन गुणश्चैव तच्चेष्टा तदलंकत :

तहस्पश्चेति विशेषश्चतुर्धोददीपन

आर्चाय विश्वनाथ ने नायकनायिकादि की आंगिक चेष्टाएं समुचित .देश,समय आदि को उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत माना है ।

तात्पर्य यह है कि रस की उद्दीपन विभाव में. उन पदार्थो का परिगणन किया जाता है । जो आश्रय तथा सामाजिक हदय मे उदबुध्द रत्यादि भाव को उददीप्त किया करते है । पूवोक्तो चतुर्विध उद्दीपन विभावों में तीन आलम्बन से सम्बन्धित है और द्वितीय तटस्थ प्रकृति कही गयी है । बात यह है कि श्रंगार रस मे नायकनायिका के परस्पर गुण एक दूसरे के उददीपन होते है । इन गुणों तीन वर्ग मानसिक ,वाचिक,कापिक ,साहित्याचार्यो ने उल्लिखितकिए है वयः सन्धि, नवयौवन व्यक्तियौवन, पूर्ण यौवन, रुपलावण्य, आभिरुप्य माधुर्य मार्दव इत्यादि गुण परस्पर आकृष्ट करते हैं। इसी प्रकार वस्त्र, आभुषण, मान्य, अनुलेपन , श्रंगार प्रसाधन आदि इसमे सहायक कहे गये है । तटस्थ उद्दीपन मेंमूलतः प्रकृति आती है । जिसका कवि और नाटककारों ने भरपूर उपयोग किया है । मानव जीवन पकृति का विशाल अभिन्न अंग है । मानव सभ्यता और संस्कृति के आरम्भ से ही आदि प्रकृति ने उसके सामान्य प्रवाह में अपने रंग बिखेरे हैं तथा अपने प्रतिबिम्बों को हृदय के विविध भावों के रूप में मूर्त कराया है । संस्कृत काव्य परंपरा में प्रकृति का जो संश्लिष्ट कोमल, भयंकर, मसृण और आकर्षक रूप वर्णित किया गया है काव्य के विशाल पट में प्रकृति के विस्मय विमुग्धकारी रूप बेल बूटे की तरह अंकित है । किन्तु नाटककार न नाटककारों को प्रकृति के मनोरम विस्तृत चित्रों के अंकन करने में रंगमंचीय सामर्थ्य बाधक होता है । क्यों कि नाटकों के सीमित आकार प्रकार तथा वस्तुगत एवं भावगत संक्षिप्त के कारण प्रकृति चित्रण को यहां वह उर्वरता नहीं मिल सकती जो महाकाव्य में प्राप्त होती है । हां उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत प्राकृतिक सौन्दर्य के निरूपण के कुछ अवसर कवियों को मिल जाते हैं । संभवतः इसीलिये इन्हें उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत तटस्थ रूप कहा जाता है - रसावर्ण्य सुधाकरकार ने तटस्थ के अन्तर्गत

1. श्रृंगारतिलक पृ0 2।

2. साहित्यदर्पण 6/13।

आनेवाले उददीपन विभावों की निम्न प्रकार से चर्चा की है -

तटस्था श्रन्दिका धाराफहचन्द्रोदयावपि

कोकिला लाप माकन्द मन्दमारुत षटपदाः

लतामण्डप भूगेह दीर्घिकाजलदाखाः

प्रासादगर्भ संगीत क्रीडादिसरिदारयः

एवमूह यथाकाल मुपयोगोपयोगिनः।।

यहां हम कालिदास एवं भवभूति के नाटकों मे प्राप्त प्रकति के सभी रुपोकी चर्चा न कर श्रंगार रस के उददीपन के रुप मे आये हुए प्राकृतिक स्थलो का वर्णन करेंगे ।

कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल की कथा नगरीय एवं अरण्यक परिस्थिति मे चित्रित किया है । अतः उसमें प्रकति के संलिष्ट एवं आलंकारिक रुपों की बहुलता है । मानवीय सुख दुख भावो के उददीपन के रुप मे विशेष रुप से श्रंगार रस से सम्बन्धित स्थलों की यहां व्याख्या की जा रही है ।

शकुन्तला का प्रथम दर्शन छिपकर करने वाला दुष्यन्त भ्रमर की धष्टता को देख अत्यन्त उददीप्त होकर जिस समय शकुन्तला के समीप पहुंचता है,उस समय वह अपने को ठगा,वंचित और ईष्यालु होकर सोंचता है । इस स्थल पर नाटककार ने नायिका शकुन्तला के अपलज अलंकारो का- भ्रू कटाक्ष संचालन मनोरम वर्णन किया है ।

चलापांगा दष्टि स्पशसि बहुशोवेपथुमती

रहस्याख्यापीष स्वनसि मदु कर्णान्तिकचरः ।

करौ व्याधुन्वत्याःपिवसि इतिसर्वस्यधरं

वयं तत्वान्वेषान्मुधकर हतास्त्वं खलु कृती ।

कालिदास ने संयोगकालिक उददीपनो की अपेक्षा वियोगकालिक उद्दीपनो का अधिक वर्णन किया है । यद्यपि आश्रम जैसा एकांत स्थल अनाघ्रात पुष्प सद्दृश शकुन्तला, एकान्त उपवन इत्यादि का प्रत्यक्ष वर्णन कालिदास ने इस नाटक मे किया है । किन्तु इन वर्णनो मे इन्द्रिय चांचल्य, वासनातौल्य का ही प्रदर्शन होता है । जिसमे इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नागर,

1. रसार्णव सुधाकर, प्रथम अध्याय, पृष्ठ 188-89

2. अभिज्ञान शाकुन्तल 1/24

चतुर, बाग विलासी प्रणयी अपने रूप सौन्दर्य के जाल में निरछल ग्रामीण वन्य सुषमा से परिपेष्टित शकुन्तला को अपने ललित व्यवहार से प्रेम में आकृष्ट कर लेता है । किन्तु यह प्रेम तभी प्रणय जैसे उच्चाभाव भूमि को प्राप्त करता है जब वह विरह का अनुभाव करता है । इसीलिये कालिदास ने उभयपक्षीय जन्य वियोग श्रृंगारोचित उद्दीपन विभावों का विस्तृत और प्रभविष्ठा वर्णन किया है । चन्द्रमा की दाहकता और पुष्प सृदश कोमलता को वज्र सदृश कठोरता में परिवर्तित करते हुए दुष्यंत के रतिभाव को और उद्दीप्त कर कालिदास ने लिखा है -

तवकुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो -

र्द्वयमिदययथार्थ दृश्यते यद्विधेषु ।

विसृजति दियगभैरग्निमिन्दुर्मयुरवै -

स्वमपि कुसुमबाजान् वज्रजारीकरोषि ।। [1]

इसी प्रकार तृतीय अंक में शिलापत्र पर पडी हुई पुष्प शय्या, नाखूनों से लिखा हुआ, कमलपत्र पर मुरझाया हुआ प्रेम पत्र दुष्यंत कि लिये उद्दीपन का ही कार्य करते है -

तस्या पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं

क्लान्तो मन्ममलेख एष नलिनिपत्रे नखेरर्पितः ।

हस्ताद् भृष्टमियं बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो

निर्गन्तु सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि ।।[2]

पहले कहा जा चुका है कि प्रकृति मूलतः स्वतः में कुछ नहीं होती । कामीजनों के मन में स्थित भावों के अनुरूप ही उसका वर्णन परम्परा से होता है ।

चतुर्थ अंक में चन्द्रमा के छिप जाने से कुमुदिनी शोभा रहित हो जाने पर रसिक दुष्यन्त को आनन्दित नहीं करती । वस्तुतः स्त्रियों को अपने ईष्ट-व्यक्ति के प्रवास से उत्पन्न दुःख अत्यंत असाध्य होता है । यहां कवि ने चन्द्र और कुमुदिनी में दुष्यन्त एवं शकुन्तला का आरोप कर उद्दीपन विभाव का आलंकारिक वर्णन किया है -

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे

दृष्टि न नन्दयति संस्मरणीय शोभा ।

इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य

दिुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ।।[3]

1 शाकुन्तल 3/23 2 शाकुन्तल 3/23 3 वही 4/3

चतुर्थांक में कालिदास ने विरह - कालीन उद्दीपन भाव का वर्णन किया है । जहां कमल के पत्ते के ओट में बैठे हुए भी सहचर चकवा को न देख सकने से व्याकुल चकवी चीत्कार कर रही है । अनसूया कहती है -

एषापि प्रियेण विना गमयति (जनी विषाददीर्घतराम्)

गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति ।।[1]

षष्ठ अंक में शकुन्तला के परित्याग से मिलन की कोई आशा अवशेष नहीं रही अतः उसकी स्मृति दुष्यन्त के लिये अत्यंन्त उदाहक प्रतीत होती है । आम्रमंजरी को देख उसका दुःख और अधिक बढ जाता है -

मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता

धनुषि चूतराश्च निवेशितः ।

निष्कर्ष यह है कि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आलम्बन के रूप, गुण, यत्नज, अयत्नज अलंकारों के साथ उद्दीपन विभाव के रूप में प्रकृति का भी चित्रण किया । इस प्रकृति ने जहां उसे शकुन्तला जैसी दिव्य ज्योति सम्पन्ना नायिका के दर्शन कराए हैं । उनके मन में अभिलाषा जागृत की है, वहीं दूसरी ओर क्षणिक या दीर्घ वियोग के कारण प्रकृति की अनेक वस्तुओं - भ्रमर, कोयल, चन्द्रमा, लता, नव आम्रमंजरी, चकवी - चकवा इत्यादि का उल्लेख कर उद्दीपन - विभाव के हृदयग्राही चित्र अंकित किए हैं ।

विक्रमोर्वशीयम मूलतः प्रेम कथा प्रधान एक त्रोटक है । जिसमें पुरुरवा, उर्वशी और औशीनरी की प्रेमकथा विन्यस्त है । औशीनरी राजा पुरुरवा की विवाहिता महिषी है । अतः उसके वियोग - वर्णन की ओर कवि ने उतना ध्यान नहीं दिया है जिताना अप्सरा रूप में प्राप्त प्रेयसी उर्वशी के मिलन और वियोग के हृदय - द्रावक चित्र हैं । नाटककार कालिदास ने अप्सरा के प्रेम चितवन, रूप - लावण्य, कौतूहल, मौग्ध्यादि सौन्दर्य विषयक तत्वों का विस्तृत वर्णन कर पुरुरवा के प्रेम को अतिशय उद्दीपन रूप में व्यंजित किया है । किन्तु यहां हम प्रकृति के मात्र उन स्थलों का विवेचन करेंगे जिनमें प्रकृति ने दोनों के सुख दुख को और अधिक उद्दीप्त किया है । आमरण या साज सज्जा रूप को कितना निखार देता है इसका ज्ञान विलास प्रिया उर्वशी अप्सरा से अधिक यदि कोई जानता है तो वह राजा पुरुरवा ही हैं, जिसे एकान्त की कामना है । नाटककार कालिदास

1. शाकुन्तल 4/16

इस प्रसंग में कहते हैं -

आमरणस्यामरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेष : ।

उपनामस्यापि सखं प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः ।।

विदूषक	अतः खलु भवता दिव्यरसालिलाषिणा चातकव्रतं गृहीतम् ।
राजा	विविकाद्वते नान्यदुत्सुकल्य शरणमास्ति ।
	तद्भवान्प्रमदवनमार्गमादेशयतु ।

प्रमदवन में वसन्तागमन से आम्रमंजरी एवं बाल अशोक अपने वयः सन्धि से गुजरते हुए प्रतीत होते हैं । राजा पुरुरवा ऐसी शोभा देखकर उर्वशी की यादकर हो रहे हैं -

विदूषक	पश्यतु भवान वसन्तावतारसूचकमभिरामत्वं प्रमदवनस्य ।
राजा	ननु प्रतिपदमेवावलोकयामि । अत्र हि -

अग्रे स्त्रीनखपाटलं कुरबकं श्यामं द्वयोभगियो -

वलिशोकमुपोढरागसुभगं भेदोन्मुखं तिष्ठति ।

ईषद्बद्धरजः कणाग्रकपिशा चूते नवा मंजरी

मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्येमधुश्रीस्थिता ।।[1]

राजा पुरुरवा की भांति उर्वशी के मन में तुल्यानुराग, पारिजात, पल्लव से बनी शय्या उसे उद्दीप्त करती है । उसके वियोग का वर्णन भी कवि ने उद्दीपन विभाव के रूप में इस प्रकार किया है

ननुमम लुलितपारिजातशयनीये भवन्ति ।

नन्दनवनवाता अप्यत्युष्णकाः शरीरके ।।[2]

तृतीयांक में नाटककार ने चन्द्रास्त और उदयाचल का एक साथ वर्णनकर उद्दीपन विभाव के रूप में शुचिकण केश कलापों के पीछे से झांकता हुआ कमनीय उर्वशी के मुखमण्डल का जिस रूप में वर्णन किया है वह कवि की प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का ही परिणाम है -

उदयगूढशशांकमरीचिमिस्तमसि दूरमतिः प्रतिसारिते ।

अलकसेयमनादिव लोचने हरति मे हरिवाहनर्दिगमुखय ।।[3]

1. विक्रमोर्वशीयम 2/6
2. वही 2/13
3. वही 3/6

चतुर्थांक विरह का मार्मिक गीत-काव्य ही नहीं अपितु प्रकृति के उद्दीपक रूपों की लम्बी श्रृंखला है । उर्वशी के लता बन जाने पर प्रेमी पुरूरवा की व्यथा का कोई अन्त नहीं हंस, गजेन्द्र, कदलीवृक्ष, मेघ, कल्पवृक्ष, मयूर, केकी, नीलकण्ठ, कोयल, कपोत, कमलनाल, चक्रवात, सूर्य एवं चन्द्रमा, भ्रमर प्रायः सभी प्राकृतिक जीव - जन्तुओं का नाटकार ने इस सन्दर्भ में स्मरण किया है । क्योंकि लम्बे केश, कलाप, उन्नत, ललाट, इन्द्रधनुषी-भौहें, बिम्बाफल सदृश ओष्ठ, कमल सदृश मुख, केकी के समान ध्वनि, श्रीफल सदृश उरोज इत्यादि सभी उपमानों का प्रयोग कालिदास ने उद्दीपन-रूप में नायिका के अंग-साम्य,लावण्य इत्यादि के रूप में उपस्थित किया है । एक दो उदाहरण दृष्टव्य है ।

1. नवजलधरः संनद्धो यं न द्रृप्तनिशाचर
सुरधनुरिदं इराकस्टं न नाम शराजनम् ।
अयमति पदुर्धारासारो न बाणपरंपरा
कनक निकषस्निग्धा विपुत्प्रिया नममोर्वशी ।।

2. आरक्तरातिमिरियं कुसुमैर्नविकन्दली सलिलगर्भः ।
कोपादन्तवस्वि स्मरयति यां लोचने तस्याः ।।

3. हतोष्ठरागैर्नयनोदबिन्दुभिर्निमग्नाभेर्पितद्भिरङ्क्तम ।
च्युत रूषा भिन्नमतेर संशयं शुकोदरश्याममिदं स्तनां शुकम् ।।

4. यदि हंस गता न ते नतभ्रूः
सरसो रोधसि दर्शतं प्रिया मे ।
मदखेलपदं कथं न तस्या
सकलं चोर । गतं त्वया ग्रहीतम् ।।

5. हंस प्रयच्छ मे कान्तों गतिरस्यास्त्वया हृता ।
विभवितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते ।।

6. कस्माच्वया शिक्षितमेतद्गतिलालस ।
सापरं दृष्वा जघनभरा सा ।।

1. विक्रमोर्वशीयम् 4/6 2. वही 4/15 3. वही 4/17
4. वही 4/32 5. वही 4/33 6. वही चतुर्थांक 34

मालविकाग्निमित्रम में अन्तःपुर की लुकाछिपी प्रणयगाथा पर आधारित है जिसमें कालिदास ने नायिका मालविका के वयः सन्धि, अज्ञात यौवना के तारल्य सौन्दर्य निरुपण किया है, जिसे देख अग्निमित्र रूप विमोहित हो उठा था । नाटककार कालिदास ने एक ओर नायिका के मांसल और उद्दीपक सौन्दर्य का निरुपण किया है तो यत्र-तत्र प्रकृति के माध्यम से भी सुख-दुख को उद्दीप्त होता दिखाया है । आलम्बन की कायिक चेष्टाओं को नाट्य-शास्त्रियों ने रूपगत और भागवत उद्दीपनों के अन्तर्गत अन्तरभूत किया है । इसका एक चित्र दृष्टव्य है -

दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्ति वदनं बाहू नतावसयोः
संक्षिप्त निविडोन्नरस्तनमुरः पार्श्वे प्रभृष्टे इव ।
मध्यः पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावरातागुंली
छन्दों नर्तयितुर्यथैव मनसि शिलष्टं तथास्या वपुः ।।[1]

तृतीयांक में अग्निमित्र के हृदस्य प्रेमराग को वसन्त ऋतु के अवसर पर आम्रमुकुल की सुगंध से उद्दीप्त होना बताया है ।

राजा कहता है कि -

उन्मत्तानां श्रवणसुभगैः कूजितैः कोकिलानां
सानुक्रोशं मनसिजरुजः सह्यतां पृच्छतेव ।
अंगे चूतप्रसवसुरभिर्दक्षिणो मारुतो मे
सान्द्रस्पर्शः करतल इव व्याप्रतो माधवेन ।।[2]

तात्पर्य यह है कि कालिदास ने इस नाटक में नायक और नायिका के मिलन हेतु अनेक नाट्य रूढ़ियों का प्रयोक किया है ।जिसमें दोहद के रूप में पादप प्रहार के बाद अशोका का पुष्पित होना नायिका के मनोदशा को और अधिक उद्दीप्त करता है । अग्निमित्र और मालविका की कहानी अन्तःपुर की प्रणयगाथा है । अतः इसमें प्रकृति के वह उद्दीपक रूप नहीं मिलते जिसका परिचय हम उनकी अन्य रचनाओं में प्राप्त करते हैं । मालविका की उत्कण्ठा एवं दैयत्तालम्बवन की तीव्र चाह में प्रकृति किस प्रकार सहायक हुई है । एक उदाहरण से इसकी पुष्टि की जा सकती है ।

1. मालविकाग्निमित्रम्, 2/3

2. वही 3/4

त्वदुपलम्य समीपगतां प्रियां हृदयमुच्छवसितं मम विक्लवम् ।

तरूवृतां पथिकस्य जलार्थिनः सरितमारसितादिव सारसात् ।।

भवभूति की प्रकृति-विषयक उद्दीपन-विभाव के दृश्य-चित्रों का मूल्यांकन करने के पूर्व यहाँ कालिदास के प्रकृति सम्बन्धी उद्दीपन विभाव पर एक विहंगम दृष्टि डालना समीचीन प्रतीत होता है । क्योंकि इससे उनके एतद् सम्बन्धी सभी विषयों का समग्र आकलन हो सकेगा एवं प्रकृति सम्बन्धी दृष्टि-बोध भी होता जाएगा । जिससे भवभूति से उनकी तुलना करने में अत्यन्त सौविध्य प्राप्त होगा क्योंकि ऊपर प्रकृति के उद्दीपन-विभाव सम्बन्धी तीनों नाटकों के कुछ विशिष्ट स्थलों की परीक्षा की गयी है ।

कालिदास प्रकृति के रम्य, संश्लिष्ट, सुन्दर, कोमल, हृदयग्राही एवं उद्दीपक रूप के कुशल चितेरे हैं । इस सम्बन्ध में डा0 रमाशंकर तिवारी का अभिमत है कालिदास के काव्यों में प्रकृति की नाना-रूपिणी छवियों के नितान्त मनोरम एवं प्रभावशाली चित्र उपलब्ध हैं । वह सचमुच हमारे कवि के समृद्ध व्यक्तित्व के प्रकाशक हैं । श्रृंगार की कमनीयता तथा उद्देश्य की शालीनता का जो मणि-कांचन संयोग उनकी कृतियों में प्रतिफलित हुआ है उसमें प्रकृति -नटी के अभिमय रूपों का सन्निवेश कम आकर्षक नहीं है । कवि प्रकृति में रंग गया है, घुल मिल गया है । एवं जिस प्रकार प्रकृति की रमणीयताएं चिरपुरातन होने पर भी चिर नवीन रहती है उसी प्रकार कवि की कूंची प्रकृति -चित्रों को सजाने में जिस कौशल का परिचय देती है उसमें उसकी परिचित कला का संस्पर्श रहते हुए भी चिरनग्यता, चिरउल्लास एवं चिरलालित्य के तत्स्पन्दित होते रहते हैं

कालिदास ने प्रकृति के सभी पक्षों एवं रूपों का हृदयवर्जक रूप चित्रांकित किया है । अभिज्ञान शाकुन्तल में मानव-जीवन का नितान्त सान्द्र एवं उत्कट संगीत मुखरीत हुआ है । वन्य सुषमा, नैसर्गिक सौन्दर्य एवं नगरीय विषयानुराग के लिए कालिदास ने जिस उद्दीपक रूप की चर्चा की है, उसमें उद्दाम मांसल भावना, ऐन्द्रिय सुखोभोग को बढ़ाने वाली प्रकृति के उद्दीपक चित्र हैं तो विरहिणी शकुन्तला के प्रति सहानुभूति एवं जड़ पशु-पक्षियों द्वारा उसके अन्दर विकसित मातृत्व की उद्दाम अनुभूति में वृद्धि कराती है ।

मालविकाग्निमित्र में प्रकृति के पारम्परिक एवं कथानक रूढ़ियों से सम्प्रत प्राकृतिक दृश्यों को स्मरण किया गया है । जिसमें से प्रमदवन एकान्त वसन्तोत्सव अशोक का फूलना कुरबक पुष्पों से प्रकृति के विभिन्न चित्रकारियों को अंकित कर कवि ने नायक -नायिका के पर्युत्सुक प्रेम का उद्दीप्त रूप अंकित किया है ।

1. मालविकाग्निमित्रय । 3/6

विक्रमोर्वशीयम तो प्रकृति का ही काव्य है, काव्य है, जिसमें प्रकृति की श्री को मुग्धा एंव यौवनाके बीच वयः सन्धि के रूप में चित्रित कर प्रणयी -युगल के उददाय मिलन म सहायिका रुप में प्रस्तुत कियाहै । यहां स्मणीय है कि नाटककार ने प्रकृति के प्रायः उद्दीपन विभाव अन्तर्गत आने वाले -एकान्त उपवन , चन्द्र, नक्षत्र, हंस , मयूर , कोकिल , चक्रवाक, सिंहादि एंव पशु-पक्षियों का वर्णन कर इन्हें कहीं उपालम्य तो कहीं सुख-दुःख की अभिवृद्धि में सहायिका चित्रित किया है ।

निष्कर्ष यह है कि कालिदास ने आकाशीय -मेघ, वर्षा, वासन्ती- वायु, पर्वत, नदी, पशु-पक्षियों आदि का उद्दीपन विभाव में प्रयोग कर मानव जीवन तथा प्राकृतिक -जीवन के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध निरुपित किया है । डा0 मधुसक्सेना ने लिखा है कि 'कालिदास की रचनाओं में मानव -जीवन एवंाा प्रकृति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । जीवन की सम-विषम दोनों ही स्थितियों पर उनका अपरिहार्य प्रभाव है। उल्लास -क्षणों में प्रकृति का रुप आनन्दित करता है तो वेदना के क्षणों में वही वेदना को और भी तीव्र करता है । मेघ का कौतूकाधान हेतु रुप यहाँ संयोगियों के रुप को आह्लादित कर डालता है । वही वियोगियों के हृदया में विरह -वेदना की असह्य कसक भी पैदा करता है । [1]

कहनानहीं होगा कि कालिदास ने अपने नाटकों में उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आलम्बन के गुण , चेष्ठाएं अलंकरण, हाव, भाव, हेला, शोभा, कान्ति ,दीप्ति, प्रागल्म्य लीला विलास, किलकिंचित मोटटयित, कुट्टमित, मद, चकित विक्षेपादि व्यापारों के साथ षट ऋतु वर्णन एवं प्रकृति के विभिन्न क्रिया व्यापारों रंग, रूप, शोभा तथा तदजन्य मानवीय उदगारों का रस पेषण रूप में निरूपण किया है यहां उपर्युक्त कुछ उदाहरण देकर श्रंगार रस के ही रूप में, उद्दीपन विभावों के परिप्रेक्ष्य में प्रकृति की च्चर्चा की गयी है ।

कालिदास के उद्दीपन विभाव के वैशिष्ट का निरूपण कर अब हम भवभूति के नाटकों मे प्राप्त प्रकृति के उददीपन विभाव सम्बन्धी कुछ स्थलों की च्चर्चा कर नाटककार की एतद विषयक दृष्टिगत वैशिष्ट्य एवं कालिदास से उसके साम्य वैषम्य की यत्किंचित च्चर्चा करेंगे ।

नाटककार भवभूति ने उत्तररामचरित और महावीर चरित रामकथा प्रधान दो नाटकों की रचना की है तो मालती माधव एक भिन्न धरातल की कथा है । हम सबसे पहले उत्तर राम च्चरित के उद्दीपन विभाव सम्बन्धी कुछ स्थलों का उल्लेख करेंगे । तदुपरान्त महावीर चरित के

1. महाकवि कालिदास और अभिज्ञान शाकुन्तलम - मधु सक्सेना पृ0 139

स्थलों की समीक्षा करेंगे क्यों कि ये कम विपर्य होते हुए भी संकल के आधार पर यह दृष्टिकोण अपनाना तर्कसंगत लगता है कि यद्यपि कथाक्रम में महावीर चरित पहले फिर उत्तर राम चरित की कथा है । उत्तर रामचरित नाटककार के गम्भीर जीवन दर्शन का चूणान्त निदर्शन है जिसमें करुण रस की मार्मिक व्यंजना हुई है । अतः प्रकृति के अधिकांश उद्दीपक रूप का करुण रस पोषक हैं । फिर भी अनेक ऐसे स्थल हैं जिनमें पूर्व स्मृति दृश्य (फ्लैश बैक) पद्धति पर श्रंगार सम्बन्धी उद्दीपनो की कोटि में ले सकते हैं । नाटककार ने कुछ स्थलों पर आलम्बन रूप, गुण, यत्नज, अयत्नज अलंकारो का उददीपन रूप में अन्तर्भाव कर वर्णन किया है । जिसमं दाम्पत्य का मंजीष्ठ राग अपनी चरमावस्था में अभिव्यक्त है । जिसका बहुविध वर्णन एवं विश्लेषण सीता के आंगिक सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य मं किया जा चुका है । अतः यहां प्रकृति को ही एकमात्र आधार बनाकर उददीपन विभाव के रूप में उसका वर्णन किया जायेगा । चित्रवीथिका निदर्शन के अन्तर्गत राम एवं सीता के दाम्पत्य प्रेम की मामिक उद्भावना प्राकृतिक परिवेश में की गयी है । जिसमं जन स्थान के घने वृक्ष समूहों में व्याप्त गोदावरी नदी के कल-कल शब्दों से प्रतिध्वनित गुफाओं एवं पर्वतों का उल्लेख किया है -

स्मरति वातं प्रदेशमार्यपुत्रः
अपि कथं विस्मर्यते
अत्रसबलित मुग्धान्यहव सम्पातखेदा
दशिथिलपरिरभ्भैर्दत्त संवाहनानि ।
परिमृदित मृणाली दुर्बलान्यगंकानि
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्राम वाप्ता ।।

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणी तटेषु
वैखानसाश्रितत रुणि तपोवनानि।
येस्वाति थेयपरमा यमिनो भजन्ते
नीवारि युष्टिपचना गृहिणो गृहाणि ।।

इस सम्बन्ध मे डा0 अयोध्या प्रसाद सिंह का कथन है कि चित्रकूट के मार्ग मे युमना तट पर स्थित श्याम नाम का बरगद रुपर से साधारण सा दीखता है किन्तु जब यही राम एवं सीता की मधुमय

1 उ रा च 1/24-25 2. भवभूति और उसकी नाटयकला पृ0 266

स्थितियों का असामान्य उददीपक बन जाता है । तो छोटा होकर भी महान एवं सीमित होकर भी निःसीम दीखता है ।

इसी प्रकार पम्पा पुशकरणी राम और सीता के विगत दिनो की मार्मिक स्फति ही शब्दवध्द होकर उददीपन विभाव का काम करती है । इसमे एक ओर राम के इन्दीवर नेत्रों से निःसृत अश्रु बिन्दु पक्ष्मों मे स्फरित होता है । तो दूसरी ओर पम्पा की सुनील जल सतह पर है जो पक्ष श्वेत कमलों के दीर्घनाल को हिला कर हमारे नेत्रों को आनन्दित ही नही करते अपितु वे आश्रय राम के लिए भी आनन्ददायक हो उठे हैं ।

एतास्मिन्मद कलमतिलकाक्षपक्ष

व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः ।

वास्पाम्भः परिपतनोदगमान्तराले

संदृष्टाः कवलयिनो मया विभागाः ।।

द्वितीय अंक शम्बूक वध प्रकरण मे आगत पंचवटी का दर्शन कर राम का हृदय कितना पुलकित न होगा । प्रकृति सुषमा को देखकर वे अतीत ज ीवन को वर्तमान मे जीने लगते हैं। प्रिया विहीन राम इन दृश्योंको बारम्बार स्मरण कर आत्म विस्मृत ही मधुगन्धी बनांचल के माध्यम से सीता के अनिर्वचनीय स्नेह का स्मरण करते है

स्निग्ध श्यामाः क्वचिदपरतो भीषणा भोगरुक्षाः

स्थानेस्थाने मुखरककुभां झाडूतैनिझराणाम ।

एते तीर्थाश्रमगिरिसरिदगर्तकान्तारमिश्राः

संदृश्यन्ते परिचितभुवां दण्डकारण्यभागाः ।।

इसी क्रम मे प्रकृति के कठोर रुपों का भी उल्लेख कर नाटककार ने राम के अन्तः प्रकृति मे स्थित कठोरता का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है, क्योंकि सीता निवार्सन के बाद उन्होंने अपनेमन को एक घने अरण्य से आच्छादित कर लिया था । यह प्रसुप्त अर्निभिन्न कठोरता एवं निर्निगंता दण्डक जन स्थान एवं पंचवटी मे अनुकूल संवेगों की चट्टानों को तोड़ देते है । एक,दो श्लोक दृष्टव्य है -

1. उ0 रा0 च0 1/31

2. उ0 रा0 च0 2/14

चिराद्वेगारम्भी प्रस्तृत इव तीव्रो विषरसः

कुर्ताश्चत्ससंवेगात्प्रचल इव शल्यस्थ शकलः ।

व्रणो रूढ़िग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्यमणि पुनः

पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इन ।।

तयाविधानपि तावत्पूर्वसुहृदो भूमिभागान पश्यामि निरुप्य अनवस्थितो भूतसन्निवेश । तथा हि -

पुरा यत्र स्त्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां

विपर्यासं यातो धनविरत्र भावः क्षितिरुहाम ।

बहोदृष्टं कात्रादपरमिव मन्ये बनमिंद

निवेशः शैलानां तदिदमिति बुध्दिं दृढयति ।।

तात्पर्य यह है कि उत्तर रामचरित मे प्रकृति के कोमल उद्दीपक ,कठोरसंश्लिष्ट जिन चित्रों को अंकित किया गया है वे राम के अतीत जीवन को पुर्नजीवित करते हैं । क्योकि सीता हरण के पश्चात वियोगी राम ने इन्हीं स्थलों पर अपना अधिकांश समय व्यतीत किया था । अतः उत्तर राम चरित मे वर्णित यह दृश्य एक प्रकार से वर्तमान कालिक दुःख के उद्दीपक ही नही अपितु भूतकालिक युक्त दुखों के भी उददीपक रुम में प्रयुक्त कर नाटककार ने दोहरे उद्दीपन विभाव के रुप मे इनका प्रयोग कर एक नये भाव-भूमि की स्थिति का चित्राकंन किया है ।

महाबीर चरित उनके प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं सेसम्बन्धित नाटक है । अपने कथानक वैशिष्टय के कारण इसमे प्रकृति के उददीपन विभाव के रुप मे उतने संलिष्ट,हृदयद्रावक चित्र अंकित नही हो पाये है । फिर भी संयोगकालिक उददीपन विभाग की अपेक्षा वियोग -कालिक उददीपन के रुप मे प्रकृति के अनेक चित्र अंकित है । यदयपि आलम्बन रुप मे प्रकृति के कुछ अच्छे चित्र नाटक मे उपलब्ध होते हैं किन्तु शोधकर्ता का उददेश्य तो श्रंगार रस के अर्न्तगत आने वाले उददीपन विभावोके रुप मे प्रकृति की चित्रित दृश्यावलियों का विहंगावलोकन एवं विश्लेषण

1. उ0 रा0 च0 2/26-27

कल्पना ही है । सीता-हरण के पश्चात इस प्रकार के चित्र अनेक स्पत्रों पर प्राप्त है । सप्तम अंक मे इन चित्रों की बहुलता है । जिनमे से कुछ चित्रों का वर्णन यहां किया जा रहा है -यदयपि ये भी सीता-हरण के पश्चात लौटते समय लक्ष्मण व्दारा सीता के प्रति कथन के रुप मे है-

विरही राम ने मेघों के गर्जन से, विद्युत-नर्तन से विदीर्ण होते आकाश मण्डल को देखकर जीर्ण-कन्दराओं मे किस प्रकार दीर्घ विरह को काटा होगा।भवभूति की उर्वर कल्पना ने प्रकृति के कठोर रुप मे अन्तशलीला के रुप मेकैसा उददीपन -विभाव का कार्य किया है । इसका दर्शन एवं परिचय सहजतः प्राप्त किया जा सकता है कि-उनकी दृष्टि कितनी उदार, दूरदर्शी थी

गजजिर्जरितासु दिक्षु वधिरं तत्सफर्जुथस्फुर्जितैः
बर्योनिभ्राम्यति दुष्प्रभजनजवाद क्रेडप्यद भ्रेमुहुः
आक्षिप्यान्धयति द्रुमान्धतमसये चक्षुः प्रविष्यक्षया
यत्रासीत्क्षपिता क्षरज्जलधरं त्वक्सारलक्षीकृते ।।[1]

ऐसे चित्रों के सम्बन्ध मे डा0अयोध्या प्रसाद सिंह का मत है कि सीता को खो देने के पश्चात राम के प्राणोंमे जो तूफान समा गया था उनके भीतर बाहर जो आकूलता, सघन आर्दता एवं अंधकार घिर आये थे । इन सबका जीवन्त प्रतिनिधित्व करने वाला प्रस्तुत श्लोक भवभूति की विराट एवं संवेदनशील प्रकृति का एक सुन्दर निदर्शन है ।यहां कन्दरा का सूनापन प्रकृति ने उग्रक्षोभ के चित्रों से और भी घनीभूत सा लगता है । राम के संतप्त हदय की मूर्त एवं अमूर्त ज्वालाएं सदेह होकर प्रकृति के विराट स्वरुप मे प्रतिविम्बित होती हुई सी प्रतीत होती है ।[2]

मनोवैज्ञानिको की यह उपपत्ति है कि प्रकृति के कठोर, भयंकर हृदय को विदीर्ण करने वाले अवसरों पर मानव को अपने वियुक्त प्रणयी या प्रणयिनी के सम्बन्ध मे अशुभ आशंकाएं जन्म लेने लगती है । उनकी दृष्टि मे ऐसे दुर्दिन के अवसर पर स्थभाव भीरु प्रेयसी कैसा जीवन व्यतीत करती होगी । इसका ध्यान वह नियन्त्रत करता होगा ।

सम्भवतः इसीलिए भवभूति ने उक्त प्रंसग को रुपायित किया है । इसी क्रम के सीता के उत्तरीय की ऋष्यमूक पर्वत पर स्थित सुग्रीव से प्राप्त कर राम की कैसी दशा हुई होगी । उनके मानसिक संवेगो की ससक्त व्यंजना भवभूति ने की है । ये बैठी हुई सीता ऐसे अनुभावों को देखकर , अनुभव कर एक साथ हर्ष एवं विषाद का अनुभव कर किस प्रकार की श्रंगारिक चेष्टाएं

1. महाबीर चरित , 6/12 पुष्ठ 235
2. भवभूति और उनकी नाटयकला

की होगी । क्योंकि ऐसे चित्रोंसे राम के सीता विषयक प्रणय की पुष्टि ही नहीं होती अपितु उनके शोकाकुल मन की योधी कितनी तीव्र एवं उत्कट थी । इसका अनुभव सीता ने अविलम्ब किया है-

राम (सस्मरणम्) हे देवि । तदा किल वैक्लव्यादपहिलयमाणाया भवत्याः प्रभ्रष्टमनसूयानामांकमुत्तरीयमस्माभिः प्रथममिज्ञानमासादितम् ।

दृशोः शरच्दीतकर प्रकाशः कायेयपि कर्पूरपरागपूरः ।
स्वान्तेयपि सान्द्रामृत कुम्भसेकस्तदा यदा सीटिकलदृष्टमात्रं ।।

तात्पर्य यह है कि आकाशपथ से अपने यतीत जीवन के अत्यन्त संवेदनशील एवं मर्मस्पर्शी पृपठों दृश्यों का अवलोकन राम एवं सीता दोनों के लिए अत्यन्त भावोत्तेजक एवं उददीपक है । राम अपने पास बैठी सीता के प्रति अपने भावोंद्गार को निवेदित करते हुए पूर्व विरह की दु:सह्यता को बड़े ही कलात्मक एवं मार्मिक बिम्बों से प्रकट किया है।

निष्कर्ष यह है कि उक्त दोनो नाटकों में भवभति ने भालम्बन रूप में सीता के रूपगुणादि की र्चा के साथ ही प्रकृति के कोमल रूपों में स्कान्त जंगल चित्रकूट दण्डकारिणी जनस्थान, घने वृक्ष, भ्रमर , मेघ गर्जन विद्युतगर्जन जैसे कोमल एवं कठोर रूपों का उल्लेख कर कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं पुनर्दृश्यावलोकन रूप में प्रकृति के उद्दीपक रूपों का चित्रांकन किया है । नाटककार भवभूति का वैशिष्ट इस बात से है कि उन्होंने एकहरे नहीं अपितु दोहरे उददीपक प्राकृतिक चित्रों का अंकनकर अपनी नूतन कल्पना कवि सामर्थ्य का परिचय दिया है ।

मालती माधव प्रेम-प्रधान प्रकरण है । जिसमें मालती और माधव के प्रेम का अंकुरण एवं विस्तार संयोग एवं वियोग प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में ही हुआ है । अतः उत्तर रामचरित एवं महावीर चरित की अपेक्षा मालती माधव में उद्दीपन विभाव के रूप में भी बहुत अन्तर आ गया है । मालती माधव में श्रंगार रस की बहुलता है अतः रिति परिपोषकी प्रकृति उद्दीपन रूप में उपस्थित हुई है। यद्यपि महावीर चरित उत्तर रामचरित एवं मालती माधव में प्रिया का वियोग समान रूप से प्राप्त होता है । फिर भी इस वैभिन्न के कारण प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिगत विभिन्नता भी उपलब्ध होती है। प्रकृति सुख एवं दुःख दोनों अवस्थाओं में मनुष्य की संवेदनशील सहचरी सिस्द्ध हुई । किन्तु दुःख की काली कादम्बनी से घिरा हुआ मानव मन जितना परित्राण एवं अवलंब प्रकृति के प्रांगण में प्राप्त करता

से घिरा हुआ मानव मन जितना परित्राण एवं अवलंब प्रकृति के प्रांगण में प्राप्त करता है उतना अन्यरूत्र सम्भव नहीं। मालती माधव में उद्दीपन विभाव के रूप में दोहरे नायक नायिकाएं हैं । एक ओर मालती है दूसरी तरफ मदयन्तिका है । अतः नाटककार ने नायिकाओं के सौन्दर्य एवं उनके अलंकारों का बहुविध वर्णन कर रस एवं कामशास्त्र में वर्णित आलम्बन विभाव के गुणों को उददीपन की कोटि में रखकर लक्षणानुधावन के साथ अपनी नवीन कल्पना का मिश्रण किया है । प्रारम्भ में कुछ इस प्रकार के चित्रों का अंकन कर तदुपरान्त उद्दीपन के रूप में प्रकृति गत चित्रों की संक्षिप्त मीमांसा प्रस्तुत करेंगे-

उद्यान में एकान्त रूपक पर माधव मालती के रूप सौन्दर्य का जब स्मरण करता है तब उसके हृदस्य भाव उद्दीप्त होते है-

तामिन्दुसुन्दरमुखी सुचिरं विभाव्य
चेतः कथंकथमपि व्यपवर्तते मे ।
सज्जां विजित्य विनयं विनिवार्य धैर्य-
मुन्मथ्य मन्थरविवकमकाण्ड एव ।।

ऐसे एकान्त स्थल मं नाटककार भवभूति ने प्रकृति के अनेक चित्रों का उटंकित कर माधव को उत्कष्ठित बना दिया है ।

इतस्ततः परिक्रम्य परिश्रमादुल्लसितमधुरमदिरामोदपरिमलाकृष्टसकलमिलदलिपटसंकुलाकुलितमुकुलावली मनोहराभरणस्य रमणीयांगणभुवो बालबकुलस्यालवालपरिसरे स्थितः । तस्य च यदृच्छया निरन्तरनिपतितानि विकसितानि कुसुमान्यादाय विदग्धरचनामनोहरां सृजमभिनिमतिुमारब्धवान् ।

इस पृष्ठभूमि में यदि नायिका के यत्नज अयत्नज अलंकारों के एक दो उदाहरण देख लें तो उससे जहां नायिका के अपरूप सौन्दर्य का मूल्यांकन हो सकेगा वहीं यह सरल विश्वास किया जा सकेगा कि आलम्बन के आन्तरिक या बाह्य क्रियायें आश्रय के लिए उद्दीपन विभाव का कार्य करती है। माधव मकरन्द से कहता है कि उस सुन्दरी मालती के दीर्घ, अयांग कोमलभाव से अर्द्ध-निमीलि नेत्रों में मदालस्य एवं समागम होने की कामना से लज्जा एवं भ्रू-निक्षेप, कटाक्ष आदि से उसे

1. मा[illegible]तीमाधव 1/19
2. व[illegible] पृ0 194

किस प्रकार से बांधा गया है । इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार की गयी है यद्यपि कुछ काव्य शास्त्रियों ने आलम्बन की क्रियाओं को बहुत महत्व नहीं दिया है । उन्होंने उसे उद्दीपन विभाव की कोटि में न रखकर स्वतंत्र निरपेक्ष गति माना है । जबकि परवर्ती समालोचकों ने इस प्रकार की क्रियाओं को उद्दीपन-विभाव में अन्तर्मत किया है ।

विवाद में न पड़कर शोधकत्री इन्हें उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत मानकर ही इस प्रकार की चेष्टाओं एवं उनके प्रभाव के कारण आश्रय के उद्दीप्त भावों का वर्णन किया है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

स्तिगितविकसितानामुल्लसद्भ्रूलतानां
मसृणमुकुलितानां प्रान्तविस्तारभाजाम ।
प्रतिनयननिपाते किंचिदाकुंचितानां
विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम् ।।

अतसवलितमग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दै-
रधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारैः ।
हृदयमशरणं मे चक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षै-
रपहृतमपविद्धं पीतमुन्मूलितं च ।।

सुखद शीतल वायु भी कितनी मादक होती है, इसे माधव के अतिरिक्त और कौन अधिक जान सकता है । वह वायु से प्रार्थना करता है कि वह कुन्द-पुष्पों के स्तवक को धारण करने वाला होकर मालती के अंगों का स्पर्श कर पुनः आकर उसके शरीर का आलिंगन करे । जिससे उसे और अधिक सुख ही न प्राप्त हो अपितु प्रिया के स्पर्श का अनुभूति भी हो ।

उन्मलन्मुकुलकरालकुन्दकोशप्रच्योतद्धनमकरन्दगन्धबन्धो ।
तामीषत्प्रचलिविलोचनां नतांगीमालिंगन्पवन मम स्पृशांगमंगमा ।।

1. मालती माधव 1/39
2. वही पृष्ठ 230

तृतीय अंक में मालती के भी मनोभावों को प्रकृति के द्वारा उददीप्त रूप में दिखाया गया है । अन्यत्र विवाह की सूचना सुनकर निराश मालती को उसकी सखी लवंगिका प्रकृति में परिव्याप्त श्रंगार रस की अभिव्यक्ति के द्वारा माधव जनित भाव को उद्दीप्त कर उसे एक निष्ठ रहने का उपदेश भी करती है । मकरन्दसिक्त मंजरियां, कोकिल का सुमधुर गायन , चंचल भ्रमरों की उन्मदिष्णु होकर पुष्प-कलियों का विमर्दन एवं इन सबसे उद्यान की मादकता कितनी हृदयद्रावक हो उठी है, जिसे कोई प्रणयी ही अनुभव कर सकता है -

सखि, एष खलु मधुर मधुर सार्द्रमंजरीकवलनकेलिकलकोकिलकुलकोलाहलाकुलित-सहकारशिखरोड्डीनचटुलचंचरीकनिकव्यतिकरोददलितदल करालचम्पकाधिवासमनोहरो ।

नाटककार भवभूति ने मालती एवं माधव दोनों की मनोदशाओं का उद्दीपन प्रकृति के माध्यम से बहुविध रूपों में कराया है । संख्यात्मक एवं गुणात्मक दोनों दृष्टि से यह जानना तो अधिक महत्वपूर्ण नहीं है कि किसके सुख-दुःख का विस्तारपूर्ण रूप में वर्णन है । उसकी अपेक्षा श्रेयस्कर यह है कि उन प्रमुख स्थलों म प्रकृति के प्रमुख स्थलों में प्रकृति के उददीपन रूपों की पुनर्व्याख्या की जाय । जिसका उपयोग कवि ने प्रेम की विविध दशाओं की अभिव्यंजना हेतु किया है । यहां स्मरणीय है कि कहीं माधव, कहीं मालती के सुख-दुःख का प्रकृति द्वारा उददीप्त रूप में वर्णन है तो कहीं सखी या मकरन्द द्वारा नायक नायिकाओं की प्रकृति जन्य विरह-दशा का अप्रत्यक्ष रूप में वर्णन है । लवंगिका माधव से मालती की प्रकृतिगत उददीप्त अवस्था का वर्णन अप्रत्यक्ष कथन की शैली हम इस प्रकार करती है कि उसके वियोग में मालती अरविन्द के मकरन्द से नव -विकसित कुछ खिले हुए कुन्द एवं रसाल के बिन्दु के , बौरों के रसबिन्दु के समूह को धारण करने वाले एवं संचरित वायु के संस्पर्श से वह मालती और अधिक उत्कंण्ठित हो जाती है-

अपिच विकसितारबिन्दमकरन्दविष्यन्द सुन्देरण दरदलितकुन्दमाकन्दमधुबिन्दुसंदोह वाहिना भवनोद्यानपर्यन्तमारूतेनोत्ताम्यति ।

1. मालती माधव पृष्ठ 230

2. वही पृष्ठ 236

मालती के विरह में हताश माधव किसी अन्य शहर में जाकर अपना जीवन-यापन कर सकता था । किन्तु नाटककार ने बड़ी कुशलता से प्रकृति-परिवेश में ही जीवन-यापन करते हुए दिखाकर जहां एक ओर प्रकृतिगत आलम्बन चित्रों की सर्जना का अवसर सहज ही उपलब्ध किया है तो दूसरी ओर नायक के विरह में प्रगाढ़ता लाने के लिए भी इन चित्रों की महत्वपूर्ण भूमिका पर नाटकारों का ध्यानाकृष्ट किया है । यहां नवम अंक में ऐसे ही अनेक चित्र है जो नायक के विरह भाव के प्रतिकूल प्रथम दृष्टि में दिखाई पड़ते है । फिर भी सूक्ष्यमेक्षिका दृष्टि से विशलेषण करने पर इतना तो निभ्रन्ति रूप से कहा जा सकता है कि इनमें एक ओर रहस्य है तो दूसरी ओर रूदन, एक ओर प्रगाढ़ मिलन है तो दूसरी ओर वियोग ।

बात यह है कि प्रकृति के कोमल और श्रृंगाराभाष- के चित्रों का अंकर कर भवभूति में आश्रय के दाहक-वियोग को चरम दशा में पहुचा कर प्रकृति चित्रण की इस उद्दीपन-शैली को एक नया आयाम दिया है । इसे यदि कोई नया नाम दिया जा सकता है तो वह विरोधाभाषी पद्धति प्रकृति है । नाटकार भवभूति में सामान्य कवि या नाटकारों की भांति प्रकृति भाव के परम्परा रूढ़ उद्दीपन रूप में चित्रण नही किया अपितु अपनी नव निर्मित श्रृंगार के उद्दीपन-सम्बन्धी इस कन्ट्रास्ट पद्धति के माध्यम से प्रकृति के उद्दीपन रूप का ऐसा सुन्दर हृदयावर्जक कोमल, कठोर रूप में प्रस्तुत किया है । कि पाठक अभिभूति ही नही होता अपितु वह नूतन रूप में प्रयुक्त इस शैली से विचारोचित भी होता है । इस शैली के कुछ उदाहरण द्रुस्टव्य हैं -

एकाकी माधव मालती के लिए सन्देश वाहक की खोज में जब वन्य पशुओं की शरण में जाता है तो जहाँ जहाँ उसकी दृष्टि जाती है, वन्य प्राणी स्वयं के प्रेम में आकृष्ठ निमग्न अपनी-अपनी प्रियाओं के साथ समागम- सुखों केक आनन्द से भाष्यायित, हर्षित एवं घरर्षित प्रतीत होते हैं । भला उन्हें माधव जैसे तुच्छ जीव के इस वियोग सन्देश वाहक के बनने में क्या लाभ है ? प्रिया वियोग उन्हें स्वीकार नहीं है । नाटककार ने मयूरगणों का नर्तन मदनमद से दिग्भ्रमित प्रिया के अभिसरण में संलग्न चकोर कृष्णमुख कवि द्वारा पुष्पों के पराग से अपनी प्रिया-वानरी कपोल -अ नुरंजन एवं प्रिया का मुखचुम्बन जहाँ प्रकृतिगत श्रृंगार का प्रयत्क्ष भावाभाष या रसाभाष की कोटि में वर्णन है, वहीं माधव के लिए कितने उद्दीपन सिद्ध होगे इसे कोई सहृदय, रसज, भावुक एवं प्रेमी ही समझ सकता है ।

केकाभिर्नीलकण्ठस्तिरयति वचनं ताण्डवादुच्छिखण्डः,

कान्तामन्तः प्रमोदादभिसरित मदभ्रान्ततारश्चकोरः ।

गोलांगूलः कपोलं छुरयति रजसा कौसुमेन प्रियायाः,

कं याचे । यत्र तत्र ध्रुवमनवसरग्रस्त एवार्थिभावः ।।

अयं च- दन्तच्छदारूणिमरञ्जितदन्तमाल-मुन्नम्य चुम्बति वलीवदनः प्रियायाः ।

कांम्पिल्यकप्रसवपाण्डुगण्डपालिपाकारूणस्फुटितदाडिमकान्ति वक्त्रम् ।।

इसी प्रकार गजवष्प्रक क्रीडा में हाथी अपनी प्रिया हथिनी के मुख में लीला पूर्वक उखाड़ें गये मृणाल खण्ड़ो को उसके मुख में रखकर एवं अपने सूंड स उसके शरीर को यथेष्ट सिंचित कर अपने स्नेहवश कमल-पत्र को छत्र के रूप में प्रयुक्त कर प्रिया के धुप का निवारण कर रहा है । भला ऐसी दशा में माधव का दुःख कितना उद्दीप्त नहीं होगा, इस लिखना पिष्टप्रेषण मात्र है ।

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु संपादिताः

पुष्यत्पुस्करखासितस्य पयसो गण्डषसंक्रान्तयः ।

सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुनर्न

स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रंधृतम् ।।

सारांश यह है कि नाटककार भवभूति ने प्रस्तुत नाटक माधव-मालती में उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आने वाले नायिकाओं के आंगिक हाव-भाव-देला,कुटटमित अथवा कायिक सौन्दर्य,क्रिया -व्यापार आदि का बहुविध वर्णन कर आश्रयस्य मनोभावों को उद्दीप्त ही नहीं किया अपितु उसे इन वर्णनों में अधिक आनन्द की उपलब्धि हुई है । साथ ही कवि-परंपरा में विश्रुत कायो-उद्दीपन की सहज, सरल परिपाटी का वर्णन कर उसके अन्तर्गत उद्यान, भ्रमर, चन्द्रकमल, मालती, सरोवर, एकान्त स्थल तथा प्रिय-दर्शन से उत्पन्न काम-भावना के उद्दीप्त रूप का ही वर्णन नही किया अपितु नाटककार ने एक नयी कन्ट्रास्ट पद्धति को जन्म दिया है । या नूतन रूप में प्रयुक्त किया है जहाँ प्रकृति के ये अंग स्वयं प्रणय के रंग से अभिसिक्त है । ऐसे चित्र आलम्बन-विभाव के अन्तर्गत संस्कृत के अलंकृत महाकाव्यों में यत्र-तत्र वर्णित थे । किन्तु इस विरोधाभासी पद्धति के माध्यम से नाटककार न प्रकृति के उद्दीपन विभाव को एक सर्वथा नया रूप दिया है । इस प्रकार भवभूति ने अपनी नाट्य

1. मालतीमाधव 9/30-31

2. मालतीमाधव 9/34

रचनाओं में प्रकृति के कई नए रूपों का अभिनव प्रयोग किया है ।

महावीर चरित्र में घने-वनांचलों में प्रकृति के कोमल एवं भयंकर या कठोर रूप को दिखाकर उन स्थलों की दुःखद अनुभूतियों का अप्रत्यक्ष वर्णन किया है । तो उत्तर रामचरित में अतीत-जीवी, दुःखजनित भावोनाओं से सम्बन्धित सीता-निर्वाजन के पश्चात् उन्ही स्थलों का भ्रमण कराकर राम के दोहरे उद्दीपन-विभावों के रूप में इन्हें प्रयुक्त किया है तो मालती माधव में सुख-दुःख के साथ ही उपर्युक्त कन्ट्रास्ट पद्धति का नया प्रयोग कर इस विभाव के चित्रण में एक-नया आयाम जोड़ दिया है । कहना नहीं होगा कि कालिदास एवं भवभूति की उद्दीपन विभाव सम्बन्धी तुलना करें तो कालिदास में सौन्दर्य के सामान्य सत्वगुण प्रधान रूपों का ही उपयोग किया है, जबकि भवभूति ने प्रायःयत्नज, अयत्नज नायिकागत सौन्दर्य, यौनव-शोभा, मुग्धात्व, चपलता, कुहपित हाव-भाव, हेला आदि का बहुविध वर्णन कर कालिदास से कुछ आग बढ़ गये हैं । इसी प्रकार तटस्थ मेंप्रकृति के गत उद्यान, वृक्ष, वनांचल, नदी, झरने, प्रातः, सायं, मेघ, मृणाल, कमल, भ्रमरं , हंस, चकोरादि कवि-परम्परा में विश्रुत उपमानों का उपयोग सुख एवं दुख की अभिवृद्धि में सहायक रूप में वर्णित है ऐसा वर्णन दोनों कवियों में समान रूप से प्राप्त होता है । उसके विपनीत यदि कालिदास ने प्रकृति के कोमल, सुकुमार, मनोहारी, लालित्यपूर्ण चित्रांकन में ही अपना मन रमाया है । तो भवभति इसके आगे बढ़कर भयंकर कठोर रूपों में भी सुख-दुखों की अभिवृद्धि को कहीं सरल-संश्लिष्ट तो कहीं कन्ट्रास्ट पद्धति में प्रकृति का उपयोग उन्मुक्त रूप से कर उसे नया आयाम दिया है । श्रृंगार रस के अन्तर्गत आने वाले उद्दीपन रूप में प्रकृति-वर्णन में कालिदास ने सरल, समास रहित, कोमल और विश्लिष्ट शब्दों को प्रयोग कर कहीं वर्णनात्मक, कहीं अलंकृत तो कहीं सू त्रात्मक शैली का प्रयोग किया । जब कि भवभूति ने प्रायः दीर्घ, समास बहुला प्रगाढ़ बन्धत्वयुक्त क्लिष्ट-श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से गम्भीर शैली का प्रतिपादन किया है । ये दोनों कवि इस दिशा में अनक समानताएं रखते हुए भी काल परिस्थिति वैभिन्न के कारण अनेक वैषम्य भी रखते है । कालिदास सरस, भावुक, प्रणयी, कोमल प्रकृति के कुशल-चितेरे हैं तो भवभूति उसमें गम्भीर रूप का आरोप कर जीवन-दर्शन के अनुरूप प्रकृति के इन रूपों का सजग एवं सूक्ष्म चित्रांकन कर अपना महत्व पूर्ण स्थान अद्यान्त रखा है ।

अनुभाव

अनुभावों से ही सामाजिकों को ख्यादि स्थायी भावों के अवरोधक विकार हैं जो आश्रय में उदित होकर सामाजिकों को अनुभाव कराते हैं कि पात्र में अमुक स्थाई भाव उद्बुद्ध (उत्पन्न) हो रहा है । ये वस्तुतः ख्यादि भाव में स्थायी भाव के उदित होने पर दृष्टि गोचर होते हैं । अतः वाद में होने कारण 'अनुपश्चान्ति भवन्ति' अथवा लिंग निश्चय के अनन्तर लिंगी रह का भावन कराते हैं, अर्थात गमक होते हैं । अतः अनुभाव कहे जाते हैं ।

विक्रर्मोवशीयम में पुरुरवा के द्वारा उर्वशी के सौन्दर्य का वर्णन सुनने मात्र से, मालविकाग्निमित्रम में अग्निमित्र एवं मालविका के सममिलन से एवं अभिज्ञान शाकुन्तल में दुष्यंत एवं शकुन्तला के मनोभावों के उत्पन्न कराने से प्रकट होते हैं । जैसा कि नाट्यशास्त्र में वर्णित है -

> अनुलिंग निश्चयात् पश्चाद भावयन्ति गमयन्ति
>
> लिगिनरंसमित्यनुभावाः स्तम्भादयः ।।[1]

कायिक (शरीर) में उद्भाषित होने वाली यह वह भाव प्रक्रिया है जिसमें भू-विक्षेप, कटाक्ष, मधुर स्मित, नीवीस्रंसन, उत्तरीयस्रंसन, गात्रमोचन, जृम्भानिःश्वास, विलुण्ठन, संगीत, नृत्यादि लोक लज्जा के त्याग के फलस्वरूप नाना चेष्टाओं तथा क्रियाओं में प्रवृत्त देखी जा सकती है । वाचिक में विशेषतः चाटु प्रियवचन, विलाप संलाप, प्रलाप, अनुलाप (किसी चीज को बार बार कहना) अपलाप (पूर्वोक्ति का अन्यथायोजन) सन्देश के रूप में स्ववार्ता प्रेषण, मधुर उपदेश, ब्याज से आत्माभिलाष का कथन आदि अनेक प्रसंग आते हैं । विश्वनाथ ने अनुभावों में स्त्रियों के समस्त अंगज, अयत्नज, स्वभावज अलंकार, अनुभाव, रूप - चेष्टाओं को भी सम्मिलित करते हैं -

> उक्ताः स्त्रीणामलंकारा अंगजाश्च स्वभावजाः
>
> तद्रूपा सात्विका भावास्तथा चेष्टाः परा अपि ।।[2]

अनुभावों में स्त्रियों के अलंकारों के परिगणन से यह स्पष्ट होता है कि केवल आश्रय की चेष्टाएं ही अनुभाव नहीं, उसमें आलम्बन की चेष्टाएं भी सम्मिलित हैं । वैसे श्रंगार रस मे नायक-नायिका दोनों की एक दूसरे के लिये आलम्बन एवं आश्रय होते हैं ।

1. नाट्यपद
2. साहित्य दर्पण 3/133

अतः दोनों की चेष्टाएं आश्रय की चेष्टाएं ही सामग्री समझी जाती हैं । फिर भी भानुदत्त ने उद्दीपन एवं आलंबन के अन्तर्गत पायी जाने वाली चेष्टाओं में स्पष्ट भेद किया है । वे उन चेष्टाओं और कार्यो की अनुभाव कहते है, जिनसे ख्यादि का वाह्य प्रकाशन होता है, जिनसे आलम्बन या आश्रय के हृदयगत भाव प्रकट होते हैं तथा उन चेष्टाओं को उद्दीपन मानते हैं जिनसे रसोद्दीपन होता है तथा जो आलम्बन की शोभा धायक होती है -

ये रसानुनुभावयति अनुभव गोचरतां नयन्ति

ते नुभावा कटाक्षादयः करणत्वेन ।

कटाक्षादीनां करणत्वेनानुभावकत्वं विषयत्वेनोद्दीपनत्वम् ।।[1]

अनुभाव अलंकारों को जिनका कायिक एवं मानसिक अनुभावों से सम्बन्ध है । मुख्यतः स्त्रियों की भावाभिव्यक्ति से सम्बद्ध माना गया है । जो कुछ थोडे से अलंकार पुरुषों से सम्बद्ध हैं उनसे उनके भावों की अभिव्यक्ति होती है । नायिकाओं के अट्हास अलंकार श्रंगाराभिव्यंजक हैं तथा सत्वज होने के कारण सात्विक भी कहे गये हैं । इनका यौवन से सम्बन्ध है, इनके तीन अंगज हैं । सात अयत्नज तथा अठारह स्वभावज हैं ।

'भाव' (निर्विकार हृदय में काम का प्रथम उन्मेष)

'हाव' (हृदयगत रतिविकार का ईषत प्रकाशक)

'हेला' (अंग प्रत्यंग का ऐसा विकार जो अपनी स्फुटता के कारण सब पर प्रकट हो उठे)

ये अंगज अलंकार हैं । भाव ही कुछ स्पष्ट होकर हाव होता है । हाव कुछ तीव्र होकर हेला का रूप धारण करता है । इन अलंकारों के योजन से कवि नायक नायिका में रति बीज के अंकुरण शनैः शनैः विकास और व्याप्त, विकास की सूचना देता है । यह सूचना विभिन्न अंगो से ही दी जाती है, अतः इन्हे अंगज कहते हैं । इन आश्रय अलंकारों से नायिका के शरीर तथा स्वभाव की मोहकता बढती है । ये रत्न साध्य नहीं होते । नैसर्गिक रूप से उद्भूत होते हैं । इनका अभ्यास द्वारा सहज प्रकाशन नहीं किया जा सकता । स्त्रियों के स्वभावज अलंकारों का सहज प्रकाशन भरत के नाट्य शास्त्र में मिलता है, वहां ये संख्या में दस हैं । परवर्ती

1. रंगतरंगिणी तृतीय तरंग ।

आचायो की रचनाओं में इनकी संख्या कुछ और घट गयी है -

विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में इनकी संख्या 18 तक पहुंचा दी है । श्रंगार रस की यथार्थवादी भूमिका के लिए इनका संयोजन अतिआवश्यक है । श्रंगार रस का सम्यक स्वरूप इन्ही से उन्मीलित होता है । श्रंगार रस में इनका विशेष महत्व है क्यों कि इनका पूर्ण परिष्कार इन्ही में देखा जा सकता है ।

भरत ने उपर्युक्त अलंकारों को ही स्वभावज अलंकारों में माना है । यह संख्या सर्वमान्य रही । धीरे धीरे इनमें वृद्धि होती रही । विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में इनके अतिरिक्त आठ स्वभावज अलंकार और माने हैं, इनके नाम इस प्रकार हैं -

मदतपन, मौग्ध, विक्षेप, कुतुहल, हसित, चकित एवं केलि । सौन्दर्य सौभाग्य तथा यौवनादि उत्पन्नगम ही 'मद' है - इसमें न विलाक्य की तरह प्रियतम के तिरस्कार की भावना पायी जाती एवं न अपने मनोभावों को छिपाने का अवसर मिलता है । नायिका अपनी अचल - भाव स्थिति में होती है । नायक जरूर उसके सौन्दर्य से प्रभावित होता है । प्रिय के वियोग में की गयी कमोवेश चेष्टाएं 'तपन' हैं, केवल विरहज्वार ही तपन नहीं है । विरह जनित अन्य चेष्टाएं भी इसमें शामिल हैं । स्वभावज अलंकारों में यही एक ऐसा अलंकार है जिसका वियोग श्रंगार से सम्बन्ध है । अन्य सभी संयोग श्रंगार की सीमा में आते हैं । जानी पहचानी वस्तु के सम्बन्ध में अनजान बनकर प्रियतम से पूछताछ मौग्ध है - मौग्ध की इस स्थिति को अकृत्रिम सरलता भी कह सकते हैं । यह नायिका का एक ऐसा चातुर्य है, जो आकर्षक होने के नाते अपना विशेष महत्व रखता है । प्रियतम के निकट वस्त्राभूषणों की रचना, अकारण इधर उधर देखना, अकस्मात प्रिय से रहस्यमय बातों को कहना, विक्षेप कहलाता है । रम्य वस्तु के अवलोकन से उत्पन्न मन की चंचलता 'कुतूहल' है । ये भोली भाली नायिका की वह भंगिमा है जो उस समय उदित होती है जब वह किसी आश्चर्य जनक वस्तु को बडे विस्मय के साथ देखती है । इससे नायिका की रुचि की सूचना मिलती है । अतः उसके प्रिय को अच्छी लगती है । यौवनागमन पर नायिका का जब तब अकारण हंसना 'हसित' है । अकारण प्रिय के समक्ष भयभीत होना चकित है । प्रेम विहार में प्रियतम के साथ की गई नायिका की क्रीडा 'केलि' है ।

संचारी भाव

भाव का वह वर्ग संचारी कहलाता है जो मूलभाव की पुष्टि करता है, तीव्र करता है एवं व्यापक, प्रभविष्णु बनाता है ।

इससे परिणाम यह निकला कि संचारी भाव का वही विषय होका जो उसके प्रधान भाव का आलम्बन है । वह स्थायी भाव को उसके लक्ष्य तक पहुंचायेगा । जब स्थायी भाव सम्पुष्ट होकर रस-स्थित तक पहुंच जायेगा तदन्तर वह स्वयं को उसी में विलीन कर देगा, जिस प्रकार समुद्र में लहरे उत्पन्न होती है एवं उसी में विलीन हो जाती है उसी प्रकार निर्वेदादि संचारी भाव, रत्यादि स्थायी भाव आविर्भूत होते हैं एवं उसी में तिरोहित हो जाते हैं ।

दिशेषादिभिमुयरवेन चनन्तो व्यभिचारिणः ।

स्थायिन्मुण्यमग्ननिर्मग्नाः कल्लोलाइव वारिधौ ।।[1]

ये विशेषतः स्थायी भाव के प्रति अनुकूलता से संचरण करते हैं 'विशेषेण अभिमुखेन चरन्ति स्थायिनं प्रति'

अतः इन्हे व्यभिचारी भी कहते हैं । ये स्थायी भाव की गति का भी संचालन करते हैं इसलिये संचारी भाव कहे जाते हैं - 'संचारयन्ति भावस्य गतिं संचारिणोडपिते'

संचारी भाव स्थायी भाव रूपी अम्बुनिधि में डूबते उतराते हैं । समुद्र की महोर्मियां जिस प्रकार समुद्र को बढाती हैं बाद में उसके साथ तद्रूप हो जाती हैं संचारी भा भी यही करते हैं -

उन्मज्जन्तौ निमज्जतः स्थायिन्यम्बुनिधाविवा ।

उर्मिवद् वर्धयन्त्येनं यान्ति तद्रूयतां च ते ।।[2]

यह संभव नही है कि संचारी की गति ,प्रकृति स्थायी की गति एवं प्रकृति से भिन्न हो । यदि यह भिन्न है तो उन्हें संचारी नहीं माना जायेगा । उदाहरणार्थ- श्रम एवं आलस्य को लें तो यदि इनका स्थायी के साथ सीधा लगाव है तो वे संचारी है । उनमें भावत्व तभी आ पाता है जब कि ये किसी भाव के साथ संबद्ध हो या किसी भाव को तीव्र या व्यापक बनाने में इनका उपयोग किया गया हो । जहां ऐसा नहीं है, वहां भावत्व की प्रतिष्ठा न होने के कारण , संचारी भाव नहीं कहा जा सकता । इसकी स्पष्टता हेतु एक उदाहरण दृष्टव्य है-

निद्रा एवं विबोधा , यों ही सो जाना निद्रा संचारी नहीं है एवं न जग पड़ना विबोध है । प्रिय के ध्यान में मग्न नायिका का उसके ध्यान के शुरू का अनुभव करते करते अथवा रति के कारण क्लान्त होकर सो जाना निद्रा है । तथा वियोग-काल में प्रिय की मधुर याद मेंअथवा उससे सम्बन्ध रखने वाली कुछ चिन्ताओं के कारण नींद न आना विवोध है ।

संचारियों के संबंध में इतना जानना ही पर्याप्त नहीं है कि वे स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं एवं रस -स्थिति तक पहुंचाते है ।

संचारी भाव संख्या में सामान्यतया 33 बताये गये है पर इस संख्या को उपलक्षण ही समझना चाहिए । इस संख्या में आचार्यो द्वारा वृद्धि की जाती है। आचार्यो ने कहीं संचारियों की सीमा में अन्य भावों को समेटा है तो कहीं नये संचारियो का परिगणन न करके उनकी संख्या में वृद्धि की है। एकाध स्थलों पर संख्या में कमी भी हुई है। कहीं-कहीं संख्या तो 33 बनी है पर उसमें परिगणित व्याभिचारियों में भेद बना हुआ है, कुछ पुराने हट गये हैं उनके स्थान पर नए आ गए हैं। भरत द्वारा स्वीकृत संचारियों की संख्या इस प्रका र है-

निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य , दैन्य ,चिन्ता , मोह, स्मृति, घृति, ब्रीड़ा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, सुप्त, विवोध, अमर्ष, अवहित्था (लज्जा), उग्रता , मति, व्याधि, उन्माद, मरण वास एवं वितर्क।

धनिक स्वीकार करते हैं कि 33 चित्त-वृत्तियों के अतिरिक्त अन्य वृत्तियां भी व्यवहार में पायी जाती है। परन्तु वे संचारी के अन्तर्गत विभाव वा अनुभाव रूप में प्रविष्ट होती हैं। अतः उनके अलग से उल्लेख करने की आवशयकता नहीं।

अन्ये च चित्तवृत्ति विशेषा एतेपामेव विभावानुभाव स्वरूपा प्रवेशान्नपृथग्वाच्याः ।। [1]

हेमचन्द्र संचारी की 33 संख्या को नियमार्थक मानते हैं -

फलस्वरूप दम्भ, उद्वेग, क्षुतृष्णादिका, क्रमशः अवहित्या, निर्वेद और ग्लानि में अन्तर्भाव कर लेते हैं ।

संख्यावचनं नियमार्थ तेनान्येषामत्रेवान्तर्भावः । तद्यथा दम्भस्यावहित्थे, उद्वेगस्य, निर्वेद क्षुततृष्णादग्लानौ ।।

रूप गोस्वामी ने संचारियों में श्रेष्ठ, मध्य, कनिष्ठ रूप से विभाजित करके स्वतंत्र एवं परतंत्र रूप में भी उनका दर्शन किया है। फिर भी 33 के अतिरिक्त मात्स्र्य, उद्वेग, दम्य ईर्ष्या, विवेक निर्णय क्लैव्य, क्षमा, कुतूहल, उत्कण्ठा ,विनय, संशय, धृष्टता आदि तेरह संचारियों का उल्लेख किया है। परन्तु उन्हें 33 के अन्तर्गत कर लिया है। वहां किसका अन्तर्भाव होगा, किसकी विभावता, अनुभावता होगी इसका विस्तार से विवेचन किया गया है ।

भोज ने सात्विकों को संचारियों का बाह्य रूप ही मानते हैं । उन्होंने 10 कामावस्थाओं को ही संचारियों के गर्भ में सन्निविष्ट समझा है - दसावस्थाओं में उन्माद एवं व्याधि शरीर है, चिन्ता, स्मृति

जड़ता, एवं मरण, कातुर संचारियों में परिगणन है। व्याधि में उद्वेग का औत्सुम्य में अभिलाषा का स्मृति में गुण-कीर्तन का उन्माद में प्रलाप का अन्तर्भाव किया जा सकता है।

औत्सुक्याभिलाषा वर्णनात्मक स्मृतौ गुण कथायामुन्मदिपलायस्यान्त्यावद ।

इसके अतिरिक्त छल को उन्होने एक अतिरिक्त संचारी बताया है - 'अत्र प्रतिभाति छलमधिको व्यभिचारीभाव:' भोज की 33 संख्या में अपस्मार और मरण नहीं है उनके स्थान पर ईर्ष्या और शम का उल्लेख करके सरस्वती कंठामरण में उनके स्थान पर वृत्ति एवं शम का उल्लेख मिलता है ।[1]

अग्निपुराण में तो ये 31 संचारी ही परिगणित हुए हैं, उसमें निद्रा , सुप्त और मरण का उल्लेख नहीं है। शम् को अवश्य संचारी बताया है ।[2]

संचारियों एवं उनकी संख्या के संबंध में सामान्यत: लक्षण ग्रन्थो में इसी प्रकार कहीं-कहीं कुछ अन्तर के साथ विवरण मिलता है। भरत के द्वारा मानी गयी संचारियों की 33 संख्या प्राय: सभी आचार्यो द्वारा स्वीकृत हुई है। भले ही उनको व्यापक बनाने के लिए कुछ आचार्यो ने उनकी सीमा में बहुत कुछ क्यों न सन्निविष्ट कर दिया हो, संचारियों के अवान्तर भेद करने का प्रयत्न भी यत्र-तत्र दिखता है ।[3]

यहां हम कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में प्राप्त श्रंगार रस से संबंधित संचारी भावों का संक्षिप्त विवेचन करेंगे। संचारी भावों के सैद्धान्तिक विवेचन हेतु साहित्य दर्पण को मूलाधार बनाया जायेगा -

1. निर्वेद -

आचार्य भरत मुनि ने इष्टजन विप्रयोग दारिद्र, व्याधि इत्यादि के कारण निर्वेद संचारी की उत्पत्ति कही है जिसमें वाष्प परिलुप्त, नयन नि:श्वास इत्यादि से व्यंजित होता है।

इष्टजनविप्रयोगाद दारिद्याद् व्याधितस्तथा दु:खात् ।
परवृद्धिं वा दृष्टवा निर्वेदो नाम संभवति ।।
वाष्प परिप्लुतनयन: पुनश्च नि:श्वासदीर्घमुखनेत्र: ।
योगीवध्यानपरो भवति निर्वेदवान् पुरूष: ।।

1. काव्यानुशासन, अध्याय 2 वृत्ति (सूत्र) 19
2. भक्तिरसामृत सिन्धु व्यभिचारीभाव लहरी 75-76 तक
3. श्रंगार प्रकाश 324 सरस्वती कण्ठाभरण 5/16-118
4. अग्निपुराण अध्याय 6
5. रसतरंगिणी -5

असार संसार काष्टप्राय शरीरम । उ0 रा0 व0 पृ0 30 । साहित्यकार ने लिखा है कि तत्वद्ज्ञान, आपत्ति आदि से निर्वेद उत्पन्न होता है ।

2. आवेग -

आवेग का अभिप्राय है - संभ्रम । इसके अनेक भेद होते हैं । साहित्यदर्पणकार ने इसके आठ भेद बताये हैं । इन्हे हम हर्षज, उत्पादज, अग्निज, राजविद्रवज, गजादिजन्य इष्टज आवेग, वायुज अखेग, अनिष्टज इत्यादि। कालिदास ने शकुन्तला की चिन्ताजनित आवेग का इस प्रकार वर्णन किया है -

शकुन्तला - (आत्मगतम्) हृदय मोत्ताम्य । एषा त्वया चिन्ति तान्यनसूया मंत्रयतो ।

अभिज्ञान शाकुन्तल पृ0 68

3. दैन्य -

भरत ने चिन्ता, औत्सुक्य, दुःख इत्यादि से दैन्य भाग को प्रकट किया है -

चिन्तौत्सुक्यसमुत्थाद् दुःखाद्वा दीनता भवेत् पुंसाम् ।

सर्वमृजापरिहारैर्विविधोयमिनयो भवेत्तस्य ।।

दशरूपककार ने इसके कारण मुख-मालिन्य का विशेष उल्लेख किया है -

'दौर्गत्याधैरनौजस्य दैन्यं मलिनतादिकृत'

कालिदास ने शकुन्तला के दीनरूप का वर्णन कर दैन्य संचारीभाव को इस प्रकार व्यक्त किया है -

वसने परिध्सरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकर्नेणिः

शाकुन्तल 7/2।

4. श्रम -

मन और शरीर के खेद को श्रम कहा जाता है । इसकी व्युत्पत्ति करते हुए कहा जा सकता है कि -

श्रृणाति हयति अंगानि मनोवेति श्रमः

विश्वनाथ ने श्रम का अभिप्राय रति प्रसंग, मार्ग गमन आदि कारणों से उत्पन्न खेद को श्रम कहा है । श्वास, निद्रादि की उत्पत्ति, वृद्धि इसके कारण होती है -

खेदो रत्यध्वगत्यादेः वासनिद्रादिकृच्छ्रमः न।

अलसललितमुग्धान्यध्वसम्पातखेदा

दशिथिल परिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि ।

स्रस्तांसावतिमात्रलोहितलौ बाहू घटोत्क्षेपणाद्

अद्यापि स्तनवेपशुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः ।

बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने धर्माम्यसां जालकं

बन्धे स्रंसिनी चैकप्तस्तयमिताः पर्याकुला भूधजोः ।।

शाकुन्तल ।/30

5. मद -

सम्मोह और आनन्द के समिश्रण को 'मद' कहते हैं। भाव-प्रकाशनकार ने मद शब्द की व्युत्पत्ति -

मशब्दार्थो मतिर्मानस्ताद्दानात् खण्डनान्मदः ।।

धनन्जय ने लिखा है -

हर्षोत्कर्षोमदः पानात्स्खलदंगवाचोगतिः ।

निद्रहासो त्र रूदितं ज्येष्ठमध्याधमादिषु

दशरूपक 4/2।

6. जड़ता -

इष्ट तथा अनिष्ट के दर्शन से उत्पन्न किंकर्तव्यविमूढ़ता को जड़ता कहते हैं ।[4]

हा हा देवि । स्फुटति हृदयं हवंसते देहवन्धः

शून्ये मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।।

उ0 रा0 च0 3/38

दशरूपककार ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है -

शौर्यापराधादिभवं भवेच्चण्डत्वमुग्रता ।

तत्र स्वदेशिरःकम्पतर्जनाताडनादयः ।।

प्रणयिसखी सलीलपरिहासरसाधिगतै -

र्ललितशिरीषपुष्पहननैरपि ताम्यति यत् ।

वपुषि वधाय तत्र तव शस्त्रमुपक्षिपतः

पततु शिरस्यकाण्डयमदण्ड इवैष भुजः ।।

7. मोह -

चित्त के वैकल्य को मोह कहते हैं । आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है -

मोहोविचित्रता मीतिदुःखावेगानुचिन्तनैः ।

मूर्च्छनाज्ञानपतन भ्रमणादर्शनादिकृत ।।

विनिश्चेतु शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा

प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।

तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो

विकारश्चैवन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च ।।

8. विवोध -

चेतना की प्राप्ति को विवोध को विवोध कहते हैं । भरत मुनि ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है -

आहारविपरिणामाच्छावदस्पर्शादिभिश्चसंभूतः

प्रतिबोधस्त्वमिनेवो जृम्भवलनाक्षिपरिमर्दः ।।

9. स्वप्न -

आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है कि निद्रा में निमग्न होने पर विषयानुभाव ही स्वप्न है । इसमें कोप, भावेग, भय, ग्लानि, सुख दुखादि होते हैं -

1. दशरूपक 4/15 2. मालती माधव 5/31

3. सा0 द0 3/15 3. उ0 रा0 च0 1/35

5. नाट्यशास्त्र 7-76

स्वप्नो निद्रामुपेतस्य विषयानुभवस्तु यः ।

कोपावेगो भयग्लानिसुखदुःखादि कारकः ।।

10. अपस्मार -

चित्त की विक्षिप्तता को अपस्मार कहते हैं । इसमें मूल में ग्रहभूतादि प्रेत के आवेश है । कम्प, श्वेद, केनपात आदि इसके लक्षण होते हैं । धनंजय ने लिखा है -

आवेगोग्रहदुःखाधैरपस्मारोयथाविधिः (धि) ।

भूपातकम्पप्रस्वेदफेनलालादिकारकः ।।[2]

11. गर्व -

मद, अहंकार या घमण्ड को गर्व कहते हैं । यह प्रभाव ऐश्वर्य, विद्या, कुलीनता आदि से उत्पन्न होता है -

गर्वोमदः प्रभावश्रीविद्यासत्कुलतादिजः ।

अवज्ञा सविलासांग दर्शनाविनयादिकृत ।।[3]

मुनिरयमथ वीरस्तादृशस्तत्प्रियं मे

विरमदु परिकल्पः कातरे क्षत्रियासि ।

तपासि विततकीर्तेर्दर्पकण्डूलदोष्णः

परिचरणसमर्थो राघवक्षत्रियो हम् ।।

12. आलस्य -

आलस्य के मूल में जडता है, जो परिश्रमजन्य है । दशरूपककार ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है -

आलस्यंश्रमगर्माधैर्जाड्यंजृम्भासितादिकृतं ।

गमनमलसं शून्या दृष्टिः शरीरमसौष्ठवं ।

(उत्तर रामचरित 1/18)

13. अमर्ष -

हेमचन्द्र ने अमर्ष के लक्षण निम्न प्रकार बताया है -

विद्यैश्वर्यवलाधिककृतेभ्यआक्षेपावमानादिभ्यः प्रतिचिकिर्षारूपो मर्सः

1. सा0 द0 3/152 2. दशरूपक 4/25

3. सा0 द0 3/154 4. महावीरचरित 2/26

14. निद्रा -

चिन्ता की निश्छलता अथवा निश्चेष्टा को निद्रा कहते है। इसके कारण परिश्रम, मनः खेद, मदनर आदि है। चक्षोन्मीलन उच्छवास, गात्रभंग या अंगडाठ इसके लक्षण है।

मनस्सम्मलिनं निद्रा चिल्तालस्य क्लमादिभिः ।

तत्रजृम्भगभगाक्षिमलिनोत्स्वप्नतादयः ।।

15. अवहित्था

आकार गुप्ति को अवहित्था कहते है। विश्वनाथ ने इसके कारणो में भय, गौरव, लज्जा आदि का उल्लेख किया है -

भयगौरव लज्जादेर्हर्षाद्याकारगुप्तिरवहित्था ।

व्यापारान्तरसभ्त्यन्यथावभाषण विलोक नादि करौ ।

विनयवारित वृत्तिरतस्तया नविवृत्तो मदनो न च सेवृतः ।

16. औत्सुक्य -

काल कलातिपात की असहिष्णुता को औत्सुक्य कहते है। इसके मूल में रम्य वस्तु दिग्क्षा अथवा इष्ट वस्तु का वियोग है। इसमें मन की उत्पन्न होते है। विश्वनाथ ने लिखा है -

इस्टानवाप्तेरौत्सुक्यं कालक्षेपासहिष्णुता ।

चिन्तातापत्वरास्वेददीर्घानिःश्वासितादिकृत् ।

राजा इति सखीं ते ज्ञातुमिच्छामि ।

वैखानसं किमनया व्रतमा प्रदानाद्र

व्यापारशेधि मदनस्य निषेवितव्यम् ।। शाकुन्तल 1/27

17. उन्माद -

चित्त के सम्मोह को उन्माद कहते है। यह काम शोक, भय आदि के कारण उत्पन्न होता है । दशरूपककार ने लिखा है -

अपेक्षाकारितोन्मादः सन्निपातग्रहादिभिः ।
अस्मिन्नवस्थारूदितगीतहासासितादयः ।।[2]

नवजलधरः संनद्धो यं न दृप्तनिशाचरः
सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न नाम शराषनम् ।
अयमपि पुदुधारिसारो न बाणपरंपरा
कनकनिकषस्निग्धा विद्युत्प्रिया नमयोर्वशी ।।[2]

18. शंका -

शंका का कारण अनर्थ चिन्तन है ।

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्थमस्यामभिलाषि ने मनः

शाकुन्तल 1/22

19. स्मृति -

शारदातनय ने स्मृति की परिभाषा इस प्रकार दी है -

देशान्तरे नुभूतस्य तथा कालान्तरे पि च ।
तद्देशादिविशिष्टस्य पुनरालोचनं स्मृति ।।
स्मरति स्मर्थते स्मारयतीव्यस्यास्तु निर्वहः ।।

स्मृति की उत्पत्ति सदृश्य वस्तु के अनुभव या चिन्तन से होती है -

रम्याणि वीध्य मध्रांश्च निशम्यि शब्दान्
पर्युत्ससुको भवति यत् सुखितो पि जन्तुः ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्व
भावास्थिराणि जननान्तर सौहृदानि ।।

अपि जनक सुतायास्तच्च तच्चानुरूपं
स्फुटमिह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयमस्ति
ननुनुनखि तन्मे गो ारी भूतमक्ष्णो
रभिनवशतपत्र श्रीमदास्यं प्रियायाः ।

.0. मति -

मति का अभिप्राय है वस्तु तन्तु का निश्चय । इसके कारण नीतिमार्ग के अनुसरण होते हैं । दशरूपककार ने लिखा है -

भ्रान्ति छेदो पदेशाभ्यांशास्त्रादेशतत्वधिमतिः

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा

यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।

सतां हि सन्देह पदेषु वस्तुषु

प्रमाणमतः करणप्रवृत्तयः ।

21. व्याधि -

आचार्य विश्वनाथ ने कहा है कि कफ, बात, पित्त आदि के प्रकोप से व्याधि का जन्म होता है । कम्पन या पृथ्वी में लोटना इसके विकार होते हैं ।

दशरूपककार ने इसके लक्षण इस प्रकार बताये हैं -

व्याधयः सन्निपाताधास्तेषामन्यत्रविस्तरः

दशरूपक 4/29

स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं

शाकुन्तल 3/6

अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योददामं ज्वलिष्यतः ।

उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम् ।।

22. त्रास -

इसका अभिप्राय है - चित्त का चांचल्य । इसमें कम्प, रोमांच आदि विकार होते हैं -

निर्घातविघुदुल्कर्धिस्त्रासः कम्पादि कारकः

23. व्रीड़ा -

व्रीड़ा का तात्पर्य चित्त का संकोच है, इसमें सिर का नीचा होना, मुंह का रंग उड़ना आदि विकार होते हैं ।

शकुन्तला सखि, यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः स तपोवन रक्षिता ।

राजर्षि (इत्यधोक्ते लज्जां नाटयति)

शाकुन्तल पृ0 ।49

24. हर्ष -

चित्त की प्रसन्नता को हर्ष कहा जाता है । मनोरथ लय, योग, वस्तु सिद्धि आदि से यह सम्भव है । आनन्दाश्रु एवं गद्‌गद् स्वर इसके प्रमुख विकार है -

हर्षस्त्विष्टावाप्तेर्मनः प्रसादो श्रुगद्‌गदादिकरः

कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन ।।

शाकुन्तल 3/12

अविरलमिव दाम्ना पौण्डरीकेण नद्धः

स्नपित इव च दुग्धस्रोतसा निर्भरेण ।

कवलित इव कृत्स्नश्चक्षुसा स्फारितेन

प्रसभममृतमेधेनेव सान्द्रेण सिक्तः ।।

25. असूया -

परगुण में दोषारोपण असूया है। दर्पणकार ने लिखा है -

असूयान्यगुणर्द्धी नामौद्धत्याद सहिष्णुता ।

दोषोद्‌घोषभ्रूविभेदावज्ञाक्रोधेंगितादिकृत ।।

तत्र खलु मन्दाकियाः पुलिनेषु सिकतापर्वतकेलीभिः क्रीडन्ती विद्याधर दारिकोदयवती नाम तेन राजर्षिणा चिरं निध्यातेति कुपितोर्वशी ।

26. विषाद -

विषाद की व्युयत्पत्ति भाव -प्रकाशकार ने इस प्रकार की है -

मनसोविविधःसादोविषादइति कीर्तितः

27. धृति -

डा0 सत्यव्रत सिंह ने लिखा है चित्त की निःस्पृहता, इच्छापूर्ति एक ही मनोदशा के दो रूप हैं । धृति में ये दोनों समन्वित हैं ।

कालिदास ने पुरुरवा के शकुनजन्य धृति का इस प्रकार वर्णन किया है ।

वयोभिराशा जननैर्भवानि गुरुव्यथम् अयं मां स्पन्दितैर्वाहुराश्वालयति दक्षिणः ।।

विक्रमोर्वशीयम् 2/9

28. चपलता -

चित्त की अस्थिरता का नाम चपलता है । इसके कारण मार्त्सय, द्वेष, राग आदि हैं । मर्त्सना, परुषवचन, उत्शृखलता, आचरण प्रमुख विकार हैं ।

मात्सर्यद्वेषरागादेश्चापल्यं त्वनवस्थितिः ।

तत्र भर्त्सनापारुष्यस्वच्छाचरणादयः ।।

29. ग्लानि -

ग्लानि का अभिप्राय है शरीर, वाणी और मन के व्यापारों में दौर्बल्य आना । यह दौर्बल्य रति, श्रम अन्य विधि परिश्रम, मनस्ताप, भूख प्यास आदि से होती है । इसमें कम्पन, अनुत्साह आदि होते हैं ।

दशरूपककार ने इसका स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया है -

रत्याधायासतृष्क्षुद्भिग्लानिर्निष्प्राणतेह च वैवर्ण्य कम्पानुत्साहक्षमांगवचनक्रियाः ।।

कालिदास ने अग्निमित्र की ग्लानि का वर्णन इस प्रकार किया है -

राजा अहो परिभवोपहारिणो विनिपाताः । कुतः -

प्रेष्यभावेन नामेयं देवीशब्दक्षमा सती ।

स्नानीयवस्त्र क्रियाया पत्रोर्ण वोपयतुज्यजे ।।

मालविकाग्निमित्रम् 5/12

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद्विप्रलूनं

हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घशोकः ।

ग्लपयति परिपाण्डु क्षामयस्याः शरीरं

शरदिज इव धर्मः केतकीगर्भपत्रम् ।।

30. चिन्ता -

शारदातनय ने लिखा है -

यया चिन्तायते र्थेषुसा चिन्तेत्यामिधरियते

अभीष्ट की अप्राप्ति के चिन्तन से चिन्ता की उत्पत्ति होती है । शून्यता, श्वास ताप आदि विकार इसमें होते हैं ।

मनोरथाय नाशंसे कि वाहो स्पन्दने वृथा

पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःख हि परिवर्तते ।

31. तर्क -

सन्देह के कारण उत्पन्न विकार को तर्क कहते हैं । कुछ लोग इसे वितर्क भी कहते हैं विश्वनाथ ने लिखा है -

तर्कोविचारः सन्देहादभूशिरों गुलिनतर्कः

कालिदास के नाटकों में संयोग के विविध पक्ष

क - काम चेष्टाएं

ख - संभोग

ग - सुरति वर्णन

घ - विलास

ऊपर श्रंगार रस का शास्त्रीय विवेचन करते हुए देखा गया है कि मुख्यतः इसके दो अधिष्ठान हैं -

1. संयोग

2. वियोग

यहां कालिदास एवं भवभूति के नाट्य - रचनाओं में संयोग स्थलों का शास्त्रीय विवेचन कर दोनों में एतद् विषयक दृष्टि का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत है -

संस्कृत काव्य-शास्त्र में संभोग श्रृंगार को परिभाषित करते हुए यह लिखा गया है कि जहां नायक नायिका पूर्णरूप से प्रसन्न तुल्य मानस हों एवं अवलोकन तथा प्रेमपूर्ण वचन रसना में हों, वहां संयोग श्रृंगार होता है ।

आचार्य मम्मत ने इस हेतु परस्पर अवलोकन, कामचेष्टाएं, आलिंगन, अधरपान इत्यादि की गणना की है ।

महाकवि कालिदास के नाटकों में इस दृष्टि से अत्यन्त सीमित एवं मर्यादित संयोग श्रृंगार का वर्णन मिलता है । पूर्वराग के अंकुरण के पश्चात् दुष्यन्त एवं शकुन्तला के मन में जिस गाढ़ रति का अभिलाषा के रूप में वर्णन किया गया है । उसका पूर्ण परिपाक मिलन में ही दीख पड़ता है ।

'पत्रलेखनरत् शकुन्तला' को प्रच्छन रूप से जब दुष्यन्त देखता है, उस समय वह अत्यन्त शिथिल एवं मिलन हेतु लालायित प्रतीत होती है । दुष्यन्त का यह आश्वासन शकुन्तला के लिए

यथेष्ट है कि अन्तःपुर में अनेक रानियों के होते हुए भी उसके कुल में दो की ही प्रतिष्ठा होगी, एक तो समुद्र से चारो ओर घिरी हुई पृथ्वी तथा दूसरी शकुन्तला ।[1]

मिलन के मधुर क्षणों का कालिदास ने दुष्यन्त की वचन रचना में इस प्रकार किया है -

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्
संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः ।
अंके निधाय करमो यथासुखं ते
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ।।[2]

यहां अनेक रानियों के प्रेम का सुखोपयोग करने वाला दुष्यन्त सुरति-विलास हेतु जिन चेष्टाओं या क्रियाओं की अभिलाषा व्यक्त करता है, निश्चय ही वह अत्यन्त कामी - पटु आश्रय है - इसी प्रकार प्रथम मिलन के समय अपनी स्वाभाविक लज्जा के कारण वह शकुन्तला को जिस प्रकार रोकता है, वह निश्चय ही शकुन्तला के लिए मनोरम होते हुए भी अस्वीकार करने को बाध्य करता है -

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः ।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः ।।[3]

सुरति वर्णन के शिष्ट रूप का भी यहीं पर वर्णन उपलब्ध है । जहां प्रकारान्तर से अधर-सुधा रस के पान की अभिलाषा प्रतीकात्मक रूप में वर्णित है -

अपरिक्षतकोमलस्य यावत्
कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन ।
अधरस्य पिपासता मया ते
सदयं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य ।।[4]

कालिदास ने दुष्यन्त एवं शकुन्तला के जिस मधुर मिलन का वर्णन किया है - आचार्य शारदातनय ने इस मिलन या संभोग-श्रृंगार को 'मित' संयोग-श्रृंगार कहा है । उसकी उत्पत्ति

यह है कि परस्पर उपचार करते हुए युवक एवं युवती जब आदि 'मित' भोग में लिप्त होते हैं तो यह 'मित' सम्भोग कहलाता है ।[1]

यहां शकुन्तला के प्रथम यौवनावेग को रोकने हेतु कुल, शील, देश, काल परिस्थिति का उल्लेख कर यत् किंचित भय का विवरण प्रस्तुत किया गया है । इस मिलन से शकुन्तला पुनः इस मिलन का निमंत्रण प्रतीकात्मक पद्धति से इस प्रकार देती है -

लतावलय सत्तापहारक, आमंत्रये त्वां भूयो पि परिभोगाय ।[2]

सुरति -वर्णन की अभिव्यंजना, म्लान पुष्प शय्या, शिथिल होकर गिरि हुए आभूषण के द्वारा की गयी है

यहां यह उल्लेखनीय है कि कालिदास ने संकर एवं संयोग श्रृंगार का वर्णन प्रछन्न रूप से सप्तम अंक अन्तिम स्थल पर किया गया है, जहां बिछुड़े हुए प्रेमी सम्पन्न काम होकर प्रकृति होने में ही यह श्रृंगार मिलता है ।

विक्रमोर्वशीयम् में पुरूरवा एवं उर्वशी की प्रणय गाथा अंकित है । जहां प्रथम दर्शन से पूर्वराग का अंकुरण हुआ है । विरही पुरूरवा की अभिलाषा उर्वशी की सखी चित्रलेखा के सतत् प्रयत्नों से होती है । मिलन के पूर्व साहचर्य के लिए राजा उर्वशी का आभारी है, वह कहता है -

सामत्तमौलिमणिरंजित शासनांक -
मेकातपत्रभवनेर्न तथा प्रभुत्वम् ।
अस्याः सखे चरणयो हमद्य कान्त -
माज्ञाकख्वमधिगम्य यथा कृतार्थः ।।

अत्यन्त कठिनाई एवं शाप के कारण पृथ्वी पर अवतरित उर्वशी को जब राजा मिलता है । उस समय वह प्रणयी मिलन की रातों को दीर्घ बनाने की अभिलाषा व्यक्त करता है । वह उर्वशी से कहता है कि हे शुभ्र जब तक उसकी अभिलाषा पूरी नहीं हुई तब तक ये रातें सौगुनी लम्बी मालूम पड़ती थीं । यदि ये रातें तुम्हारे समागम में भी उतनी ही लम्बी हो जायें तब वह अपने को कृतार्थ मानेगा -

अनुपनतमनोरथस्य पूर्वं शतगुणितेव गता मम त्रियाया ।

यदि तु तव समागमे तथैव प्रसरति सुभ्र ततः कृती भवेयम् ।।

विक्रमोर्वशीयिम में मित सम्पन्न एवं समृद्धिमान, संयोग श्रृंगार का उल्लेख किया है । स्वामी कार्तिकेय के शाप के कारण उर्वशी एकाएक लता-रूप में परिवर्तित हो गयी थी । बाद में पार्वती के चरण-राग से उत्पन्न होने वाली मणि से पुनर्वस्था को प्राप्त हुई । इस संगमनीय मणि को साहचर्य से उर्वशी का सौन्दर्य इस प्रकार प्रतीत होता है, जैसे प्रातः काल सूर्य किरणों से उत्फुल्ल कमल - समृद्धिमान संयोग श्रृंगार के विर्णन में पुलक, रोमांच इत्यादि का प्रतीकात्मक रूप में वर्णन किया गया है -

प्राप्त सहचरीसंगमः पुलकप्रसाधितांग ।

स्वेच्छाप्राप्तविमानो विहरति हंसयुवा ।।

तृतीय नाटक मालविकाग्निमित्र भी प्रच्छन्न किन्तु ईषत् स्पष्ट प्रेम गाथा है । जिसमें नायक अग्निमित्र एवं नायिका मालविका की मिलन की मधुरगाथा संगृहीत है । इसमें मिलन, वियोग पुनः मिलन का वर्णन चमत्कारी पद्धति पर हुआ है ।

कालिदास ने मुग्धा शकुन्तला के समान मुग्धा मालविका के प्रिय समागम का मनोग्राही ित्र अंकित किया है आलम्बन रूप में मालविका के विलासपूर्ण सौन्दर्य का उत्तेजक रूप में ित्रांकनि इस प्रकार हुआ है - जिसमें शरद का चन्द्रविनिन्दक मुख क्लिष्ट उरोज शुचिकण पार्श्व भाग के बिम्ब अत्यन्त हृदयग्राही है -

दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्ति वदनं बाहू नतावसयोः

संक्षिप्तं निबिडोन्नतस्तनमुर पार्श्वे प्रमृष्टे इव ।

मध्यः पाणिमितो नितम्बि जधनं पादावरालांगली

छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसि श्लिष्टं तथास्या वपुः ।।

काम चेष्टाएं एक प्रकार से उद्दीपन-विभाव का कार्य करती है । नाटककार कालिदास ने मालविका की सहज,स्वाभाविक मुद्राओं का ऐसा बिम्बग्राही ित्रांकन किया है, जिसे देख विलासी अग्निमित्र अपनी रानियों का प्रेम-विलास भूल गया, ऐसे बिम्ब दर्शक या पाठकों के चक्षुरेन्द्रिय के समक्ष इस रूप में उत्पन्न होते हैं कि वह अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता । स्वाभाविक

मुद्राएं आश्रय अग्निमित्र को कामचेष्टाएं प्रतीत होती हैं -

बामं संधिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे
कृत्वा श्यामाविटपसदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम् ।
पादांगष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिये पातिताक्षं
नृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्धम् ।।

अनेक व्यवधान के पश्चात् मालविका एवं अग्निमित्र के मिलन की परिस्थितियां अनुकूल हो गयी । प्रणयी अग्निमित्र का प्रणय-निवेदन, आलिंगन एवं सुरति-वर्णन के रूप में नीवीमोचन जैसे कार्यो का कवि कालिदास ने बड़ी सतर्कता-पूर्वक उल्लेख किया है । ऐसे स्थल रति-शास्त्र में निषिद्धि एवं अश्लील कहे गए हैं । अग्निमित्र की कामचेष्टाएं, रति-क्रीड़ाएं, विलास एवं संभोग का शिष्ट एवं मर्यादाजनित वर्णन कवि ने किया है-

राजा - विसृजि सुन्दरि संगममाध्वसं तव चिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुखे ।
परिगृहाण गते सहकारतां त्वमतिमुत्कलताचरितं मपि ।।

मालविका- (देवीभ्यादात्मनोऽपि प्रियं कर्न्तुन्न पारयामि)

राजा - अयि न भेतत्यम् ।

मालविका- (सोपालम्भय्)
(यो न बियेति स मया भट्टिनीदर्शने दृष्टसामर्थ्यो भर्त्ता ।)

राजा - दाक्षिण्यं नाम बिम्बोष्ठि वैम्बिकानां कुलव्रतम् ।
तन्मे दीर्घाक्षि ये प्राणास्ते त्वदाशानिबन्धनाः ।।
तदनुगृह्यतां चिरानुरक्तो यं जनः ।
(इति संश्लेषमुपजनयति ।)

राजा- (आत्मगतम् ।) रमणीयः खलु नवांगनानां मदनविषयावतारः । एषा हि इयम्
हस्तं कम्पयते रूणद्धि रशनाव्यापारलोलांगुलीः
स्वौ हस्तौ नयति स्तनावरणतामालिंगपमाना बलात
पातु पक्ष्मल नेत्रमुन्नमयतः सात्वीकरोत्याननं

त्याजेनाप्यभिलाष पूरण
त्याजेनात्यभिलाषपूरणसुखं निर्वर्तपत्येव मे ।।

भवभूति के नाटकों में कामचेष्टाएं एवं उसके विविध रूप

कामचेष्टाओं की दृष्टि से कालिदास के नाटकों का विहंगावलोकन करते हुए हमने देखा कि उनके नाटक वीर, श्रृंगार एवं करूण रस प्रधान हैं । महावीर चरित की अपेक्षा मालती माधव एवं उत्तर रामचरित में कही काम कहीं प्रेम एवं कहीं तो दोनो के मिले-जुले चित्र मिलते हैं ।

मालती माधव श्रृंगार रस प्रधान प्रकरण है इसमें मालती और माधव की प्रणय-कथा को ऐसा रस प्रेषण रूप प्रदान किया गया है कि उसमें संभोग एवं विप्रलम्भ उभय प्रकार के श्रृंगार कास पूर्ण अभिव्यंजन हुआ है । भवभूति यहां रति को पुष्ट करने के निमित्त कामशास्त्र में वर्णित प्रेम दशाओं के अनुरूप अपने पात्रों के चरित्र अंकित किए हैं । डॉ0 अयोध्या प्रसाद सिंह ने लिखा है -'नायक एवं नायिका के परस्पर अनुराग बीज को अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित करने के उद्देश्य से कवि का काव्यशास्त्र के प्रति पक्षपात प्रकरण के अमुख में व्यक्त हुआ है ।'

मालत-माधव में चूंकि अन्त तक नायक एवं नायिका के मिलन में अनेक व्यवधान आते रहे हैं । अतः जहां कहीं माधव को अपनी प्रेयसी मालती के साथ मिलन का संयोग प्राप्त हुआ है या प्रणय निवेदन के प्रकरण में कामदशाओं के अनेक भव्य, आकर्षण के चित्र मिलते हैं । यहां सबसे पहले भवभूति के कथन को ही उद्धृत कर कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं । बात यह है कि नाटक में नाटककार ने स्वतः न कहकर अपनी मूल उत्पत्ति के पात्रों के माध्यम से अभिव्यंजित करता है । मालती-माधव के प्रारम्भ में ही सूत्रधार कहता है कि श्रृंगार-प्रधान नाटकों की अनेक विशेषताओं में काम प्रयोग के विधान प्रमुख स्थान रखते हैं

भूम्ना रसानां कहनाः प्रयोगाः सौहार्दहृद्यानि विचेष्टितानि ।
औद्धत्यमायोजित कामसूत्रं चित्राः कथा वाचि विदग्धटाच ।।

कुछ कायिक, मानसिक चेष्टाओं के चित्र दृष्टव्य हैं - यह सर्वस्वीकृत सिद्धान्त है कि काम अंकुरण, उत्कण्ठा कामाधिक्य के कारण कम्पन एवं सन्ताप होता है । भवभूति की कामन्दकी कहती है -

साद्यात्कामं नवमिव रतिमलिती माधवं यद् -

गाढोत्कण्ठा लुलितलुलितैरंग कैस्ताम्यतीति ।।

तात्पर्य है कि समीप के मार्ग से बार-बार घूमते हुए साक्षात् नूतन काम के समान सुन्दर माधव का प्रासाद के ऊंचे छज्जे से बार-बार देखकर रति सदृश सुन्दरी मालती अत्यधिक उत्कण्ठित होकर अपने कोमल तथा सुन्दर अंगों से (कामवेग) पीड़ित रहती है । सुन्दरी मालती को देख माधव के कामज्य विकारों में आलस्युक्त गमन की तीव्रता जैसे आन्तरिक भावों को इस प्रकार व्यक्त किया गया है -

गमनमलसं शून्या दृष्टिः शरीरयसौष्ठवं

श्वसितमधिकं किं न्वेतत्स्यात्किभन्यदतो थवा ।

भ्रमति भुवने कन्दर्पाज्ञा विकारि च यौवनं

ललितमधुरास्ते ते भावाः क्षिपन्ति च धीरताम् ।।

नाटककार ने कामशास्त्रीय मानसिक एवं सात्विक अनुभवों के साथ, कायिक दशाओं का भी चित्रांकन किया है । माधाव, मकरन्द, कलहंस के वार्तालाप में जहां एक ओर मालती की श्रंगारिक चेष्टाओं का उल्लेख है, वहीं दूसरी ओर उसकी चेष्टाओं से भग्न हृदय माधव की अनुभूतियां सहृदय के मन में गहरा प्रभाव छोड़ती हैं । यहां यह कहना आप्रासंगिक न होगा कि प्रेमी प्रेयसी अपने कायिक चेष्टाओं से परस्पर आकृष्ट करते हैं । मालती माधव को देखकर मनोहर, चंचल कंकणों की झंकार, भयभीत कलहंस के समान मनोहर मंद-गति किंकणी की प्रतिध्वनि निश्चल सुप्रसन्न भाव में विस्तार कोमल भावों की अनुभूति की कल्पना से लज्जा इत्यादि अनुभावों के माध्यम से हृदय स्थित रति का प्रस्फुटन दिखाया है । निश्चित ही इस प्रकार की काम-चेष्टा आकृष्ट करने के लिए ही होती है । मालती की इन काम-चेष्टाओं को देखकर माधव कभी जड़ एवं कभी तीव्र संताप का अनुभवि करता है - ततस्ततः ।

माधव - ततश्च तत्र -

सभ्रूविलासमथ सो यमितीव नाम

सप्रत्यमिज्ञमिव मामवलोक्य तस्याः ।

अन्योन्यमेव चतुरेण सखीजनेन

मुक्तास्तदा स्मितसुधामधुराः कटाक्षाः ।।

मकरन्द - (स्वगतम्) कथं प्रत्यभिज्ञापि नाम ।।

माधवः - अथ ताः सलीलमुक्तालकरकमलतालिकातरवलयावलीक मुखरस्त कलहंसविभ्रमाभिरामचरण संचरणरणायमानमंजुमंजीररणितानुविद्धमेखलाकलापकिंकिणीरयत्कारमुखरं प्रतिनिवृत्तय भर्तृदारिके । दिष्ट्या वर्धामहे । यदतैव को पि कस्यापि वल्लभस्तिष्ठति इति मामंगलीदलविलासेनाख्यातवत्यः ।

मकरन्दः हन्त, महतः प्रथमानुरागस्योद्येदः ।

कलहंसः - अनयोः सरसरमणीयानुबन्धिनी खलु स्त्री कथा ।

मकरन्दः ततस्टतः -

माधवः -

अत्रान्तरे किमपि वाग्विभवाति वृत्तवैचित्यमुल्लसितविभ्रममायताक्ष्याः ।

छद्भू रिसात्विकविकारमपास्तधैर्यमाचार्यकं विजयि मान्मथमाविरासीत् ।।

ततश्च -

स्तिमितविकसितानामुल्लसद्भ्रूलतानां

मसृणमुकुलितानां प्रान्तविस्तारभाजाम् ।

प्रतिनयननिपाते किंचिदाकुंचितानां

विविधमहमंभूवं पात्रभालोकितानां ।।

ततश्च -

अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दै रधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारैः ।

हृदयशरंण मे पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षैरपहृतमपविद्धं पीतमुन्मूलितं च ।।

अहं तु तस्याः सर्वाकारहृदयंगमायाः संभाव्यमानस्नेहरसेन सन्निधिना विधेयीकृतो पि पारिप्लवत्वमात्मनो निह्नोडकामः प्राक्प्रस्तुतस्य बकुलपुष्पदाम्नो यथाकथंचिदवशेषं ग्रथितवानेव । ततो मिलितवेत्रपाणिवर्षवरप्रायपुरूषपरिवारा गजवधूमारूहय नगरगामिनं मार्गमिन्दुवदनालंकृतवती ।

यान्त्या मुहुर्वलितकन्धरमाने तदावृत्तवृन्तरातपत्रनिभं वहन्त्या ।

दिग्धो मृतेन च विषेण च पक्ष्मलाक्ष्या गाढं निरवात इव मे हृदये कटाक्षः

भवभूति ने मालती के प्रेम व्यंजना हेतु इस प्रकार की काम-चेष्टाओं का निरूपण किया है जो सुरति वर्णन की सीमा में जा बैठता है । ऐसा वर्णन रत्याभाष है । क्योंकि मालती माधव का अभी समागम ही नहीं हुआ । नाटककार ने बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि से नीबी का शैथिल्य, अधराष्ठ कम्पन, स्तन-कलिकाओं की अधीरता, कपोल-स्थलों का रोमांच, कभी मूर्च्छित एवं कभी चैतन्य अवस्था का वर्णन इतनी कुशलता से किया है जिससे प्रभाता के मनश्चक्षुओं में सुरति बिम्ब जाग्रत हो जाता है । कामन्दकी कहती है -

नीबीबन्धोच्छवसनमधरस्पदन्दनं दोर्विषादः
स्वेदश्चक्षुर्मसृणामुकुलाकेकरस्निग्ध मुग्धम ।
गात्रस्तम्भः स्तनमुकुलयोरूत्प्रबन्धः प्रकम्पो
गण्डाभोगे पुलकपटलं मूर्च्छना चेतना च ।।

निष्कर्ष यह है कि मालती माधव में नाटक - कार ने उभयपक्षी प्रेम का दिग्दर्शन कराया है । प्रथम दर्शन के समय माधव के हृदयगत भावों की अभिव्यंजना नाटककार ने बड़ी कुशलता से किया है । किन्तु नाटककार का मन मालती की कामचेष्टाओं द्वारा प्रेमाभिव्यक्ति में अधिक लगा है । वाचिक चेष्टाओं की अपेक्षा कायिक एवं सात्विक क्रियाओं के द्वारा ऐसे चित्रों का वर्णन हुआ है, जो रस पेषक हृदयावर्जक, अत्यन्त मृदुल है । नाटककार ने इन चित्रों का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवं सूक्ष्म अंकन किया है जिसमें एक ओर आह्लाद, कम्प, रोमांच, अर्द्ध-नेत्र निमीलन, कामाभिभूत आरक्त मुख, संकुचित उरोज, नीबी-शैथिल्य इत्यादि का उल्लेख ऐसे रूप में किया है, जिससे वह मर्यादा की सीमा नहीं पार कर पाया । साथ ही इन काम-चेष्टाओं से सहृदय के मस्तिष्क में ऐसे बिम्ब जाग्रत करते हैं जिससे वह कामशास्त्रोक्त नायिकाओं की प्रतिछवियां देख रहा है ।

उत्तर रामचरित में जिस कथा का विन्यास किया गया है वह एक पत्नी व्रत राम के उत्तर रामचरित से सम्बन्धित है, जिसमें करूणा का विशाल सागर लहराता है । फिर भी निर्वासन की पृष्ठभूमि के प्रश्न में अथवा स्मृति अंकन के बहाने सीता-राम के गाढ़ प्रेम-बन्धन का तरलता से वर्णन हुआ है, जिनमें कहीं सीता के किशोरी रूप से राम का औत्सुक्य तथा प्रगाढ़, दीर्घ आलिंगनादि

के ऐसे स्थलों का उल्लेखकर उसकी समीक्षा काम-चेष्टाओं के रूप में की जा रही है ।

प्रथमांक में सीता राम के प्रगाढ़ आलिंगन का दृश्य कवि ने इस प्रकार खींचा है - अतिशय परिश्रम के कारण निद्राभिभूत सीता से राम आग्रह करते हैं कि उनके जीवने में प्राणप्र सीता भुजाओं का माल गले में डालकर शयन करें -

जीवयन्निव ससाहवसश्रमस्वेदबिन्दुराधकण्ठमप्यताम् ।

बाहुरैन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहार विभ्रमः ।।

ऊपर कहा गया हे कि उत्तर रामचरित में सीता राम के दाम्पत्य जीवन की अपेक्ष वियोग जीवन की घटनाओं का वर्णन अधिक है । साथ ही राम के प्रजारंजक रूप की रक्षा की गई है । अतः उसमें पूर्वानुरक्त प्रेमी - प्रेमिका की भांति आंन्तरिक मनोभावों को व्यक्त करने वाले बाह्य काम चेष्टाओं का अभाव है । यत्र तत्र चित्र वर्णन क्रम में कुछ चित्र अवश्य अंकित हैं । जिसमें सीता के रूप- गुण की प्रशंसा कर अपनी परमतृप्ति का उल्लेख किया है। सीता का स्पर्श, राम के इन्द्रिय-समूह को मूढ़ करने वाला विकार कभी चेतना को तिरोहित करता है तो कभी उसे उत्साहित करता है। मादक द्रव्य के सेवन से उत्पन्न नशा का अनुभव राम कहते है। इस प्रकार की वाचिक सम्भाषण के माध्यम से कुछ कायिक चेष्टा जिनमें श्रृंगार रस अनुस्यूत है, दृष्टव्य है-

म्लावस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि

सन्तर्पणानि सकलेन्द्रिय मोहनानि

एतानि ते सुवचनानि सरोरूहाक्षि

कणमृतानि मनसरच रसायनानि ।।

कालिदास एंव भवभूति के नाटकों में सुरति एंव विलास के चित्र,काम एंव प्रेम का सैद्धान्तिक विश्लेषण करते हुए कहा जा चुका है कि नायक-नायिकाओं के मिलन में काम एंव प्रेम का संयोग रहता है। कामशास्त्र के ग्रन्थों में दम्पति या नायक-नायिका के मिथुन-रत अनेक चित्रों की झांकी अंकित की गयी है । साहित्यकार कामशास्त्र का आचार्य तो नहीं होता फिर भी श्रृंगार-प्रदान रचनाओं में ऐसे अनेक स्थल मिल जाते है, जो काम शास्त्रोक्त सुरति-बिम्बों की प्रतिच्छवियां प्रतीत होती

है ।कालिदास से लेकर संस्कृत के अनेक नाटक एंव अन्य विद्या-प्रधान रचनाओं में इस प्रकार के चित्रों का वर्णन देख अनेक आलोचकों ने श्लीलता - अश्वीलता का प्रश्न -चिन्ह खड़ा किया है साहित्यकार सैद्धान्तिक ग्रन्थों का लक्षणानुधाव न करके देश,काल परिस्थित के अनुसार रति-विलास के चित्रों को रेखांकित करता है । भवभूति की अपेक्षा कालिदास के सम्बन्ध में एतद् सम्बन्धी अनेक आपत्तियां उठायी गयी है । यहाँ इस विवाद में न पड़कर हम आलोच्य नाटककारों की रचनायें में प्राप्त सुरति-विलास के कुछ दृश्यों की समीक्षा करेगें । यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि भवभूति की अपेक्षा कालिदास को इस प्रकार के चित्रों के अंकन हेतु विशेष सुविधा प्राप्त है । क्यों कि मर्यादा की दृष्टि से उसके नायक भारतीय जनमानस में वह पद प्राप्त नही है जितना भवभूति के उत्तर रामचरित में है । उनके नायक राम एक पत्नीव्रत,निष्ठावान पति है, उनकी सम्पर्ण कामचेतना का बिन्दु सीता में ही केन्द्रित है, फिर भी मालती-माधव एंव उत्तर रामचरित में ऐसे बिम्बो का सर्वथा अभाव नही है, जो नायक के विलास या उसके क्रीड़ा से सम्बन्धित न हों ।

भवभूति ने उत्तर रामचरित में जिस कथा को आबद्ध किया है प्रत्यक्षतः राम-सीता के वियोग की गाथा है किन्तु कवि ने सीता-निवसिन के अमानुषिक दण्ड की पृष्ठभूमि में सीता राम के विलास के कुछ चित्रों का अंकन किया है । जो वियुक्त प्रेमियों के लिए सुदृढ़ आधार सिद्ध हुए है । ऐसे चित्र अप्रत्यक्ष रूप से या भूतकाल की घटनाओं का स्मरण करते हुए शब्दांकित किए गये है । वनवास के समय पंचवटी में अतीव अनुराग के कारण परस्पर कपोलों को सटाकर धीरे-धीरे बिना किसी क्रम के कुसकुसाते हुए, एकाएक भुजाओं से प्रगाढ़ आलिंगनबद्ध दोनों की रात्रि किस प्रकार व्यतीत हो जाती थी, इसका उन्हे मान ही नही रहता था । यहाँ पर नाटककार ने प्रथमानुराग एंव रति के समय कहे हुए अस्पष्ट किन्तु पूर्ण अर्थ देने वाले शब्दों के उल्लेख के साथ आवेग संचारी भाव के साय सीता राम के रति की व्यंजना कर रहा है । राम स्मरण करते है -

किमपि किमपि मन्दमासक्ति योगा
दविर्रालित परिरम्भकपोल व्यापृतैकैकदोस्णो जल्पतोरक्रमेण ।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो -
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ।।

अलसललितमुग्धान्यहवसम्पातखेढा-

दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि ।

परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङंकानि

त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ।।

इसी प्रकार सीता निर्वास के बाद लवकुश भेंट के समय राम को सीता का स्मरण को आया जो सीता की अवस्था को पाकर प्रेम एवं मनःकामनाओं के परस्पर घुल-मिल जाने से घनीभूत काम-भावनाओं की अभिव्यक्ति में निपुण हो गयी थी किन्तु प्रत्यक्ष रूप से भोली-भाली बन जाती थी ।राम के नेत्रों के विषय क्रमशः वृद्धिगति उनके पयोधर थे । इस प्रकार के सौन्दर्य से पूप्र विलास के कुछ चित्र भी इस वियोग की अवस्था में राम को आश्वासन देते हैं ।

तदा किंचित्किंचित्कृतपद महाभिः कतिपयै-

स्तदेतद्धिस्तारि स्तनमुकुलमासीन्मृगद्दृशः ।

वयः स्नेहाकूतव्यति करघनो यत्र मदनः

प्रगल्भ व्यापारः स्फुरति हृदि मुग्धश्च वपुषि ।।

तात्पर्य यह है कि प्रिया के वियोग में द्राक्षा रस की तरह द्रवित राम के मनश्ताप को दूर करने के लिए नाटककार भवभूति ने संयोगकालिक चित्रों का वर्णन कर मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है । जिसमें रति-विलास प्रेम के दृश्यां का स्मरण कर श्रंगार रस पुष्ट होकर दाम्पत्य भाव में पर्यवसित होता है । विलास एवं सुरति के इन वर्णनों में एक शिलष्ट मर्यादा है । इनी चित्रों में दम्पति राम-सीता की काम-भावनाएं परस्पर प्रगाढ़ हृदयानन्दन एवं श्रम के कारण प्रस्वेद का वर्णन अप्रत्यक्ष रूप से यत्र-तत्र नाटककार ने किया है । ऐसे दृश्य बड़े मार्मिक, मनोवैज्ञानिक एवं उचित पृष्ठभूमि के कारक बन गये हैं, जिनसे एक ओर राम के मर्यादा प्रधान जीवन की रक्षा हुई है तो दूसरी ओर प्रिया के प्रति तीव्र अनुराम की भी अभिव्यंजना हो सकी है ।

मालती-माधव में प्रेम-कथा का विन्यास अत्यन्त सरल ढंग से हुआ है । चित्र-दर्शन के उपरान्त हृदय के मृदुललित, सुकोमल, मसृण भावनाओं का सफल अभिव्यंजन भवभूति ने किया

है । नाटककार ने मालती एवं माधव दोनों की परिणय -कथा गाधा घात-प्रतिघात युक्त इस प्रकार की घटनाओं के माध्यम से की है, जिसमें एक ओर सरलता, हार्दिकता, भावुकता है तो दूसरी तरफ विवर्णता, उद्दीगन्ता मानसिक मिलन व्यापार के अनेक चित्र हैं । कवि ने मालती के माध्यम स काम शास्त्रोक्त सुरति-विलास के अनक मांसल चित्र खीचे हैं । इन चित्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह ह कि एस चित्र नाटक म कथापकथन क माध्यम स शुच्य रूप म वाणत ह । माधव के प्रम म आकण्ठ निमग्न मालती की शारिरिक दशा कुछ इस प्रकार की हो गयी कि सखियों को सन्देह हो गया है कि मालती भोक्ता है, कुमारी कन्या नहीं रही । नाटककार ने उसकी कामवेदना एवं स्वप्न हुए मानसिक समागम का मनोवैज्ञानिक चित्रण करते हुए कहा है - नीले कमल सद्दृश सरस उन्नत, कोमल, मुकुल सद्दृश अर्द्ध निमीलित चाक चंचल नेत्र चन्द्रमा के समान उन्मोहक ललाट एवं अत्यधिक श्रम के कारण श्वेद कर्णो के झलकने से इसका मुखमण्डल अतीव सुन्दर हो गया है । इस छवि को देखकर सखियों को इसके कौमार्य पर संशय हो उठता है । इनके अतिशय प्रयास करने पर मालती येन केन प्रकारेण थोडी सी निद्रा का सुख पा जाती है । नाटककार ने मानसिक समागम का मांसल एवं उद्दीपक चित्र अत्यंत दीर्घ समास बहुला भाषा में इस प्रकार किया है । जिसका सारांश यह है कि स्वप्न में प्रियतम के समागम का सुखानुभव करने के कारण इसका सम्पूर्ण शरीर पसीने से भीग जाता है, जिससे चरणों में लगा हुआ द्राक्षारस भी बहने लगता है । स्थूल, सघन स्थलों के कम्पन से इसका नीबी बंधन शिथिल हो जाता है ।

कामावेग के आधिक्य के कारण, हृदय विक्षुब्ध होने के कारण भीतर आने जाने वाली निःश्वास वायु से, अनेक प्रकार से उत्पन्न होने वाली पुलकावलीयुक्त स्तन मण्डलों के ऊपर कांपती हुई भुजा रूपी लताओं के बंधन के पडने से यह तुरनत जग जाती है ।

मालती माधव में जहां एक ओर सुरती विकास का चित्रण हुआ है, वहीं भाषा विन्यास अत्यन्त प्रगल्य, प्रवाहमयी और आचार्यत्व प्रदर्शनी जैसी लगती है ।

येनस्फुरितदनच्छदोज्जवनद्दन्तमोक्तिक पंक्तिकान्ति सविशेषो निरन्तरोल्लसित पुलक पद्मलकपोलधूमान संततानन्दवाष्प शोभितं स्तवक मीषद्विष । मनिस्पन्द मन्थर तारोन्तान मसृण मुकुलायमान नेत्र नीलोत्पलम विरलोद्भिन्नस्वेदजल बिन्दु सुन्दर निटिकचन्द्र लेखा मनोहरं मुग्धमुख पुण्डरीक मुद्धहन्ती विदग्धसहचरी चित्त संशयित कौमार भावा भवति । किं च उद्दामशशि मयूरव निकुलम्बचुम्बित प्रवृत्त निष्यन्द चन्द्र मणिहार धारिणी प्रचुर कर्पूर साविशेष शिशिर चन्दन रसच्छतासारनिकर दन्तुरित

बालकदली पत्रशयना पादसंवाहनादि व्यापारत्वरमाण सहचरीसार्थविरचितोपनीत - कमलिनी दल जलार्दताल वृन्तोन्निदैव रजनीगभ्रयति कथमप्युलब्धनिद्रासुखा प्रक्षालितपाद पल्लवोद्धि मत्पिण्डालक्तकरसः थरथरायमानपीवरोरूमूल पार्श्व विसंवादितनीबन्धनोत्क्षुभ्यमानहृदयान्तरोत्तरंगनि निःश्वास विषममोच्छ्वसत्पुलक पक्ष्मलपयोधरोप रिविक्षिप्तवेदमान भुजलतावेष्टन बन्धना झटिति प्रतिबांधबेलाविसर्जितापांग दृष्टि विनिपाद विज्ञान शून्यशयनीय संजात मोहमीलल्लोचना ससं भ्रमससीजन प्रयत्न प्रतिपन्नमूर्च्छा विच्छेद समय संगलित दीर्घ निःश्वासजनित जीवताशा किंकर्तव्यतामूढं प्रथमं प्रार्थित निजजीवितावसानं दुर्वाररदैवदुर्विलसितो पालम्भमात्रव्यापरं सखीजनं करोति ।[1]

इसी नाटक के चतुर्थ अंक के अन्त में नाटककार ने और सिन्धु नदी के संगम की शोभा के वर्णन के बहाने ऐसी नायिकाओं का चित्रांकन किया है, जिनके शरीर के स्नानोपरांत वस्त्र इस प्रकार संश्लिष्ट हो गए, जिसके कारण नारियों की देह यष्टि एवं उनके सुवर्ण कलश सद्रश कान्तिमय एवं उन्नत स्तन मण्डलों पर पति द्वारा नरवच्छत चिह्नों का स्पष्ट वर्णन हुआ है । स्मरणीय है कि कामशास्त्र के ग्रन्थों में नरवच्छत एवं दन्तछत का बहुविध वर्णन है । नाटककार ने बडी कुशलता से पुरुषों द्वारा किये गये इस प्रकार के कृत्यों के परिणाम स्वरूप बने चिह्नों का वर्णन किया गया है -

मकरन्द जलनिबिडितवस्त्रव्यक्त निम्नोन्नताभिः
परिगततटभूमिः स्नानमात्रोत्थिताभि : ।
रुचिरकनककुम्भश्रमदाभोगतुंग -
स्तनविनिहितहस्तस्वस्तिकाभिर्वधूमिः ।।[2]

पहले कहा जा चुका है कि साहित्यकार परंपरा का अनुगामी मात्र नहीं होता अपितु वह सैद्धांतिक नियमों को ऐसे व्यावहारिक रूप में परिणत करता है जिससे पाठकों को शुष्क्ता या लक्षणानुधन नहीं प्रतीत होता है । नायिका - भेद प्रकरण एवं कामशास्त्र में विपरीत रति के अनेक उद्दीपक, मांसल, तीखे, अश्लीलता की सीमा में जा पडने वाले चित्रों की कमी नहीं है । किन्तु साहित्यकार उसका इस रूप में वर्णन करता है कि वह सब कुछ नया, भौतिक एवं रसपेषण प्रतीत होने लगता है । विरह विदग्ध माधव के मन में जिस विलास चित्र की अभिलाषा है वह शास्त्रीय दृष्टि से रति का ही द्योतक होता है ।

1. मालती माधव 3/238-39 पृ0
2. वही 4/10

आशापूर्ण स्वर में माधव कामना करता है -

अतिमुक्तकग्रथितकेसरावली

सतताधिवास सुभगार्पितस्तनम् ।

अपिकर्णजाह विनिवेशशितानन:

प्रियया तदंगपरिवृत्तिमाप्नुयाम् ।।[1]

अर्थात, प्रियतमा (मालती) हमारे कर्णमूल में अपना मुखमण्डल स्थापित कर, मुक्ताहार की अपेक्षा अधिक आदरणीय हमारे द्वारा गूंथी गयी मौलश्री की माला के निरन्तर पहनने के कारण सुगन्धयुक्त सौभाग्यपूर्ण एवं मनोहर पयोधरों को मेरे वक्षस्थल पर स्थापित करे । इस प्रकार उसके मनोहर अंगो से मैं अपने अंग का विनिमय भी प्राप्त कर सकूंगा ।

इससे कुछ आगे बढकर भवभूति केलि-विलास के उन चित्रों का अंकन किया है, जो सुरति, रतिश्रम, सुरतांत वर्णन कहे जाते हैं । नाटककार ने इस प्रकार के वर्णन नायक नायिका के प्रति न कर मदयन्तिका के माध्यम से व्यंजित किए हैं । जिससे एक ओर नायक के मर्यादावादी शील की रक्षा है तो दूसरी ओर अपनी पूर्व - प्रतिज्ञा के अनुसार भवभूति ने कामदशाओं का चित्रांकन किया है ।

मकरन्द प्रेयसी मदयन्तिका स्वप्न में यह अभिलाषा व्यक्त करती है, वह लवंगिका से कहती है कि - हे । प्रिय सखी उसी प्रकार कुछ क्षणों तक धारण किए गए आश्चर्य से विह्वलतापूर्वक इधर उधर चलने वाले विस्तृत एवं एक छोर पर रक्तिम नालों से युक्त लाल नेत्र कमलों को अति चंचलता पूर्वक नचाने में श्रेष्ठ मदिरा की मत्तता को प्रकट करते हुए नचाते हुए नेत्र मुझे देखते हैं । और भी सुनो । उन्होंने मुझे जब प्रिये मदयन्तिके । इस प्रकार कहा तो ऐसा लगा मानो कमलों का मकरन्द भक्षण करने से मनोहर कण्ठ स्वर वाले कलहंस के स्वर की भांति अस्पष्ट, गद्गद्, गंभीर, उच्च एवं अकम्पित स्वर से हमारे कानों के छिद्रों को परिपूर्ण कर देते हैं । इसके बाद तो वह स्वामी के समान होते हुए मेरे उत्तरीय (ओढनी) वस्त्र के गिर पडने पर जब उसे संभाल लेते हैं तो अपने मन में तिरस्कार की भावना से कम्पन युक्त मेरे हृदय में 'धय - धय', इस प्रकार का शब्द हाने लगता है और ऐसी अवस्था में वह मुझे अतीव चकित कर देते हैं ।

1. मालती माधव 8

एकाएक मेरे पहने हुए वस्त्रों को खींचकर वह छोड देता है, तो मैं लज्जित होकर भागने लगती हूं, उस समय वह अपने कठोर कमल नाल की भांति आचरण करने वाले भुजदण्डों से मुझे आलिंगन पाश में बांध लेते हैं, जिससे हमारे स्तन मण्डलों की उचाई आच्छादित हो जाती है । हमारी विस्तृत करधनी खुलकर नीचे सरक जाती है । जिससे हमारी दोनों स्थूल जंघाएं उठती हैं एवं फिर तो उसका अभिलषित मेरा गमन रुक जाता है । उस क्षण मैं प्रतिकूल बोलने लगती हूं तो उनके सभी प्रकार के आदरयुक्त प्रयत्नों से कुछ क्षणों तक क्रोध एवं दुःख से निष्ठुर मेरे हृदय के भाव दूर हो जाते हैं । उस समय वह स्नेह पूर्वक बारम्बार दृष्टिपात करते हुए हमारे मन के समस्त भावों का तात्पर्य जान लेते हैं एवं उपहास करके अपने द्विगणित बाहु युगल द्वारा घेरकर हमको बांध लेते हैं और मैं नियन्त्रित होकर निष्चेष्ट सी बन जाती हूं । हे प्रिय सखी । उस के कठोर नख-प्रहार से समुत्पन्न भयंकर पत्रावली रचना से विभूषित एवं उन्नत विशाल वक्षस्थल में दृढता से घसीट कर प्रवेश करा देने से मुझे अशक्त बना देते हैं । इसके बाद जब मैं चुम्बन का निषेध करती हूं तो वेग से मेरा सिर कांप उठता है, जिससे केशपाश खुल जाता है । उस समय वह अपने हांथ से मेरे मुख के ऊपर केशों को सरकाकर दूसरे हाथ से सहारा देकर केशपाश की पुंजीभूत करके पकड लेते हैं तब हमारे मुख के साथ हमारे नेत्र, कपोल, ओष्ठ ऊपर उठ जाते हैं एवं निश्चल हो जाते हैं और उनके ऊपर उनका मुखमण्डल इच्छानुसार चतुरतापूर्ण चुम्बन कार्य में रत् हो जाता है । उस समय हमारे बांए कपोल के मूल भाग पर वह अपने कांपते हुए एवं पुंजित अधर को बडी देर तक स्थापित कर देते हैं, जिससे सहज भाव से कुछ वाणी प्रकट होती है, जो अतीव मनोहर होती है, उससे शरीर की कान्ति और अधिक बढ जाती है उस समय भय एवं आनन्द दोनों की अनुभूति होती है । जिससे अत्यंत आवेग एवं जडता उत्पन्न होती है । जिससे हमारी चेतना थोडा थोडा भ्रान्त होने लगती है । उन क्षण मुझसे कहने के अयोग्य विषय की प्रार्थना करने लगते हैं -

अथ प्रभवन्निवोत्तरीयांचलावलम्बनपराभवेन संसभ्रमोत्तरंगधमधमायमानहृदयां समुत्वासयति । सहसा विर्सतितापसृततत्क्षणकठोरकमलदण्डायमानबाहुबन्धनापवारितपयोधरद्गमां विघटमानविह्वलमेखलावलय5 संघार्यमाणपीवरोरूप्रतिषिद्धविप्रतीपगमनां प्रतिकूलवादिनीमपि सवदिरप्रयत्ननिर्वर्तितमुहुर्तक्रोपोपरागदुःखपरुषीकृत-हृदयां स्निग्धपुनरुक्तपर्यस्तलोचनविभाविताशेषचित्तसारामुपहस्य द्विगुणबाहुदण्डावेष्टननिश्चेष्टनियमितां प्रिय सखि, प्ररूढशार्दूलकठोरकरूहप्रहारविकटपत्रवलीप्रसाधनोत्तानवक्षः स्थलनिष्ठुर निवेशननि निःसहां

कृत्वा सावेगविधूतमस्तकापविद्धकबरी निहितकरपरिग्रहपुंजीकृतोन्नमितनिश्चलमुखावयवस्वच्छन्द विद्धकबरीनिहतकरपरिग्रहपुंजीकृतोन्नमितनिश्चलमुखावयवस्वच्छन्द विलसितविदग्धवदनकमलोवास-गण्डमूलचिरविनिहितप्रस्फुरत्पुजिंताधरसमुद्रममनोहरसहजसारस्वतमनोहरोत्कर्षितशरीरशोभामुल्लसितसाध्वसानन्द विषमसंभ्रममनोहसंवलनमन्थर भ्रमच्चेतनाकिमपि किमपि दुर्विनयसहसानुरूपव्यवसायो मामभ्यर्थयते ।

तुलना - साम्य एवं वैषम्य

सारांश यह है कि भवभूति के महावीर चरित और मालती माधव तथा उत्तर राम चरित क्रमशः वीर, श्रृंगार, करुण रस प्रधान नाटक हैं । महावीर चरित का कथाफलक अत्यंत विस्तृत एवं बहुआयामी है । सम्पूर्ण रामकथा के विवेचन के कारण उसमें रसों को महत्वपूर्ण स्थान नहीं प्राप्त हो सका उत्तर रामचरित का अंगी रस करुण रस है । नाटककार ने बडे कौशल से करुण रस की पृष्ठ भूमि में श्रृंगार रस के अनुभाव कायिक, वाचिक, आहार्य, कामचेष्टाएं, उद्दीपन विभाव तथा संयोग के जिन स्थलों का वर्णन किया है वे इसके पूर्व स्मृति पद्धति पर आधारित हैं । जिनमें शिष्ट मर्यादा का पूर्ण परिपालन किया गया है । यह अवश्य है कि एकाध चित्रों में सुरति की झांकी मिलती है । जब कि मालती माधव प्रेम गाथा है । नाटककार ने नायिका - भेद और कामसूत्र में उल्लिखित नायिकाओं की मुद्राएं संयोग काल के प्रथम दर्शन, आवेग, आलिंगन, चुम्बन, नीबीमोचन, निर्वसना नारी को देखते हुए वस्त्र का हरण, नखच्छत, विपरीत रति इत्यादि के सहज स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक, मांसल एवं उद्दीपक चित्रों का वर्णन किया है ।

जिसे पढकर पाठक के मनश्चक्षुओं के समक्ष इन्द्रिय - बोध को जाग्रत करने वाले शब्द चित्र स्पष्ट दृष्टि गोचर हो उठते हैं । यद्यपि नाटककार ने इस प्रकार के चित्रों का अंकन स्वप्न के माध्यम से किया है । जिसका प्रभाव स्वप्न टूटने पर नायिका के नेत्रों की मस्ती अधरोष्ठ का कम्पन, सघन जंघाओं की थरथराहट के रूप में हुआ है तो दर्शक संगीत में मूर्च्छना के यंकायक टूट जाने पर उसकी झंकृत के समान बहुत देर तक भाव विभोर हो उठता है । निःसंदेह भवभूति ने श्रृंगार रस के जिस रूप का उल्लेख किया है वह अत्यंत रसपेषण, हृदयावर्जक एवं शुचि तथा मेध्य है ।

जब कि कालिदास के तीनों नाटकों में संयोग श्रंगार के उतने मांसल भोग प्रधान चित्र नहीं मिलते हैं इतना अवश्य है कि कुछ अपवाद स्थलों को छोडकर उनका श्रंगार रस नागर जनोचित और शिलष्ट है । यद्यपि कालिदास के लिये इस तरह का आक्षेप किया जाता है कि उनका श्रंगार अत्यंत उद्-दीपक और मांसल है । यहां हम साम्य वैषम्य के रूप में निम्न तथ्य प्रस्तुत कर सकते है -

1. कालिदास के नायक पूर्व विवाहित हैं नारी सहवास, सानिध्य उन्हे प्राप्त है नायिकायें मुग्धा एवं प्रगल्भा हैं । इसके विपरीत भवभूति के नायक अपनी पत्नी के ही प्रेमी हैं या फिर प्रेमिका के प्राप्त करने के पूर्व उन्हे प्रेम से अपरिचय ही था । नायिकायें विशेष रूप से सीता गम्भीर शान्त आदर्श नारी है

2. श्रृंगार रस के अंतर्गत आने वाले उद्दीपक विभाव की दृष्टि से भी दोनों नाटककारों में पर्याप्त विषमतायें हैं । कालिदास ने आलम्बन के काम जनित चेष्टाओं के साथ प्रकृति के कोमल ऋजु संश्लिष्ट और वातावरण के लिए उपयुक्त प्रकृति का चित्रण किया है इतना अवश्य है कि मानवेतर प्रकृति के क्रिया कलापों को देख पुरुरवा का वियोग विशेष प्रकार का उद्दीपन का कार्य करता है । प्रकृति के सुरम्य प्रांगण में प्रस्फुटित पल्लवित दुष्यंत का अनुराग पाठकों को अध्यायित करता है, जब कि भवभूति ने कालिदास के समान प्रत्यक्ष उद्दीपन के साथ दोहरे ऐसे उद्दीपक विभाव का वर्णन भी किया है जो भीषण कठोर और त्रासद भी है साथ ही निर्वासित सीता के प्रति पूर्व घटनाओं की स्मृति करा उन्हे विह्वल भी करते हैं ।

3. भवभूति और कालिदास दोनों के काव्यशास्त्रोक्त कायिक वाचिक सात्विक आहार का समान रूप से वर्णन किया है । कालिदास ने अनुभाव प्रथमदर्शन औत्सुक्य, शंका, वितर्क, शारिरिक शिथिलता, विवशता, रात्रि जागरण आदि सीमित मात्रा में ही श्रृंगार रसोचित अनुभाव मिलते हैं इसके विपरीत भवभूति का अनुभाव विधान अत्यंत विस्तृत बहुआयामी और प्रौढ है । दोनों नाटककारों ने संयोग व्यक्त करने वाले संचारी भावों का समान रूप से वर्णन किया है ।

4. दोनों नाटककारों ने कामचेष्टाएं, विलास, संभोग का वर्णन किया है जिसमें कालिदास की अपेक्षा भवभूति मे अधिक विस्तार है इससे कही कही कथावस्तु अवरुद्ध हो गयी है । हम यह कह सकते हैं कि कालिदास के संयोगपक्ष

में कुछ श्रैणता कुछ कामावेग है जब कि भवभूति में या तो दाम्पत्य की गहराई दर्बित करने वाली घटनायें हैं या काम प्रेम के बहुआयामी तीखे उद्दाम चित्र हैं ।

5. नाटकों में श्रंगार रस के निरुपण करने वाली शैलीगत वैभिन्न भी दिखाई देता पडता है । दोनों नाटककारों ने प्रत्यक्ष और प्रणाली के अन्तर्गत संयोग का वर्णन किया है । कालिदास की अपेक्षा भवभूति की शैली में विस्तार है, विविधता है, नाटकीयता है, भवभूति ने संयोग वर्णन के लिए प्रत्यक्ष एवं परोक्ष (स्मरण या स्वप्न दर्शन) प्रणाली का आलम्बन किया है ।

अध्याय – ६.

{विवेच्य नाटककारों के नाटकों में विप्रलम्भ श्रृंगार}

विप्रलम्भ श्रृंगार का शास्त्रीय रुप

पंचम अध्याय में श्रृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन करते हुए कालिदास-भवभूति के संयोग श्रृंगार सम्बन्धी स्थलों का काम शास्त्रीय एवं काव्य शास्त्रीय दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत की गयी है यहाँ उसके वियोग पक्ष का शास्त्रीय विवेचन कर आलोच्य नाटककारों के नाटकों में प्राप्त एतद् सम्बन्धी स्थलों का विवेचन किया जा रहा है ।

नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत में लिखा है कि निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, श्रम, चिन्ता, उत्सुकता, निद्रा, सुप्ति स्वप्न विव्वोक, व्याधि, उन्माद, अपस्मार जड़ता, मरण आदि अनुभावों से युक्त विप्रलम्भ होता है[1] । रुद्रट ने वियोग श्रृंगार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि वियुक्त पुरुष और नारी के रति व्यवहार को विप्रलम्भ श्रृंगार कहते है[2] । तात्पर्य यह है कि श्रृंगार रस दो प्रकार का होता है संयोग और विप्रलम्भ, यदि स्त्री पुरुष का संयोग के समय प्रेम हो तो संयोग श्रृंगार कहलाता है और वियोग के समय हो तो विप्रलम्भ श्रृंगार इसकी महत्ता निरुपित करते हुए यह कहा जा सकता है कि बिना वियोग के संभोग अधूरा रहता है ।

"बिना विप्रलम्भेन श्रृंगार पुष्टि मनुपूते"[3] ।

बात यह है कि संयोग काल में नायक-नायिकाओं के मध्य ऐन्द्रिय परता भोग की प्रधानता या स्वार्थ रहता है जब कि वियोग काल में वे परस्पर दूर रह कर भी आन्तरिक रुप में एक होने का प्रयास करते है इसी लिये संयोग की अपेक्षा वियोग को श्रेष्ठ कहा गया है वियोग ही वह अग्नि है जिसमें प्रेम स्वर्ण खरा या खोटा सिद्ध होता है ।

विप्रलम्भ श्रृंगार के वर्गीकरण :-

सर्वप्रथम रुद्रट ने प्रथमा अनुराग मान प्रवास और करुण रुप में इसे विभक्त किया है -

अथ विप्रलम्भ नामाश्रृंगारोअयं चतुर्विधो भवति ।
प्रथमानुरागमानप्रवास करुणात्मकत्वेन ।।[4]

1. नाट्यशास्त्र भरत 6 अध्याय पृष्ठ 73
2. काव्यालंकार अध्याय 12
3. साहित्य दर्पण - विश्वनाथ
4. काव्यालंकार, रुद्रट, अध्याय 14

1. **पूर्वानुराग :-**

यहाँ संक्षिप्त रुप में यह कहा जा सकता है किः आलोकन मात्र आदि से ही जिनमें अधिक स्नेह उत्पन्न हो गया है ऐसे नायक-नायिकाओं की चेष्टाओं को प्रथानुराग कहते है उसे पू ुरा भ कहा गया है । साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने पूर्वानुराग का विशद विवेचन करते हुए लिखा है कि सौन्दर्य आदि गुणों के श्रवण दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका के समागम से पूर्व की दशा का नाम पूर्वराग है -

श्रवणादर्शनाद्वापि मिथः संरूढ़रागयोः ।

दशा विशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते ।।[1]

ःसी परिप्रेक्ष्य में अभिलाषा चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण इत्यादि कामदशाओं का उल्लेख हुआ है ।

2. **मान :-**

रुद्रट के अनुसार ईर्ष्या से युक्त नायिका नायक में अन्य नायिका के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए दोष को लक्ष्य करके जिस विकार को प्राप्त होती है उसे मान करते हैं[2] ।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ मान को परिभाषित करते हुए लिखते है । कोप का नाम मान है वह दो प्रकार का होता है, एक प्रणय से और दूसरा ईर्ष्या से उत्पन्न । प्रेम की विपरीत गति होती है इसलिये दोनों के हृदय में भरपूर प्रेम होने पर बिना कारण ही एक दूसरे पर जो कोप है वह प्रणयमान है ।

मानः कोपः स तु द्वेधा प्रणयेर्ष्यासमुद्भवः ।

द्वयोः प्रणयमानः स्यात्प्रमोदे सुमहत्यपि ।

प्रम्णाः कुटिलगामित्वात्कोपो यः कारणं बिना ।[3]

3. **प्रवास :-**

प्रवास विप्रलम्भ श्रृंगार का प्रमुख भेद है पूर्वराग में मिलने की अभिलाषामात्र है किन्तु उसमें वह विरह की व्याकुलता फटफटाहट तीव्र या वेदना नहीं होती जैसी प्रवास के भुक्तभोगी

1. साहित्यदर्पण 3/188
2. काव्यालंकार अध्याय 14
3. साहित्य दर्पण 3/198

की होती है नायक के विदेश जाने की संम्भावना से लेकर उसके चले जाने के बाद अनेक आंशका सहित अन्य दशाओं को प्रवास के अन्तर्गत माना जा सकता है भोज, रुद्रट, हेमचन्द्र, शारदातनय इत्यादि ने देशान्तर गमन को प्रवासजन्य वियोग माना है । आचार्य विश्वनाथ ने इस संबंध में लिखा है "कार्यवश, शापवश, सम्भ्रम वश नायक के अन्य देश में चले जाने को प्रवास कहते है उसमें नायिका के शरीर और वस्त्रों में मलिनता सिर में एक वेणी और श्वाशोच्छ्वास रोदन और भूमिपतन आदि का वर्णन किया जाता है अंगो में असौष्ठव सन्ताप, पाण्डुता, दुर्बलता, अरुचि और अधीरता आते हैं ।[1]

4. **करुण विप्रलम्भ :-**

करुण विप्रलम्भ का उल्लेख आचार्य भरत ने किया है आचार्यो ने इसके जो लक्षण लिखे है उनका विश्लेषण करें तो वह करुण रस के बहुत समीप जा बैठता है करुण रस और करुण विप्रलम्भ में बहुत अन्तर नहीं स्पष्ट था इसीलिये आचार्य विश्वनाथ ने दोनों का अन्तर निरुपित करते हुए मिलन की आशा का प्रतिबन्ध लगा दिया है[2] ।

तात्पर्य यह है कि जहाँ मिलन की आशा निःशेष हो जाय वहाँ करुण रस है जहाँ पर आशा जीवित रहे वहाँ करुण विप्रलम्भ माना जा सकता है ।

उपर्युक्त पंक्तियों में वियोग श्रृंगार के शास्त्रीय पक्ष का उल्लेख करते हुए उसके पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण चार भेदों के साथ विरह की दशाओं का विश्लेषण किया गया है यहाँ कालिदास और भवभूति के नाटकों में प्राप्त विरह के स्वरूप एवं उसके मूल्यांकन का यत्किंचित प्रयत्न किया जा रहा है -

1. **पूर्वराग :-**

पूर्वराग का स्वरूप निर्धारित करते हुए यह लिखा गया है कि यह रति की प्रारम्भिक अवस्था है । कालिदास के नाटकों में प्रेम स्वरूप का चित्रांकन करते हुए हमने देखा है कि यह प्रेमोदय प्रथम-दर्शन और चित्र दर्शन के माध्यम से उत्पन्न हुआ है । यहाँ हम प्रेम-प्रादुर्भाव के पश्चात् उत्पन्न विरह का यत्किचिंत् विवेचन कर आगे तदजन्य शास्त्रीय दशाओं के उदाहरण देकर पुष्टि करेंगे ।

1. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ 3/204-5
2. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ 3/209

की होती है नायक के विदेश जाने की संम्भावना से लेकर उसके चले जाने के बाद अनेक आंशका सहित अन्य दशाओं को प्रवास के अन्तर्गत माना जा सकता है भोज, रुद्रट, हेमचन्द्र, शारदातनय इत्यादि ने देशान्तर गमन को प्रवासजन्य वियोग माना है । आचार्य विश्वनाथ ने इस संबंध में लिखा है "कार्यवश, शापवश, सम्भ्रम वश नायक के अन्य देश में चले जाने को प्रवास कहते है उसमें नायिका के शरीर और वस्त्रों में मलिनता सिर में एक वेणी और श्वाशोच्छ्वास रोदन और भूमिपतन आदि का वर्णन किया जाता है अंगो में असौष्ठव सन्ताप, पाण्डुता, दुर्बलता, अरुचि और अधीरता आते हैं ।[1]

4. करुण विप्रलम्भ :-

करुण विप्रलम्भ का उल्लेख आचार्य भरत ने किया है आचार्यो ने इसके जो लक्षण लिखे है उनका विश्लेषण करें तो वह करुण रस के बहुत समीप जा बैठता है करुण रस और करुण विप्रलम्भ में बहुत अन्तर नहीं स्पष्ट था इसीलिये आचार्य विश्वनाथ ने दोनों का अन्तर निरुपित करते हुए मिलन की आशा का प्रतिबन्ध लगा दिया है[2] ।

तात्पर्य यह है कि जहाॅ मिलन की आशा निःशेष हो जाय वहाॅ करुण रस है जहाॅ पर आशा जीवित रहे वहाॅ करुण विप्रलम्भ माना जा सकता है ।

उपर्युक्त पंक्तियों में वियोग श्रृंगार के शास्त्रीय पक्ष का उल्लेख करते हुए उसके पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण चार भेदों के साथ विरह की दशाओं का विश्लेषण किया गया है यहाॅ कालिदास और भवभूति के नाटकों में प्राप्त विरह के स्वरूप एवं उसके मूल्यांकन का यत्किंचित प्रयत्न किया जा रहा है -

1. पूर्वराग :-

पूर्वराग का स्वरूप निर्धारित करते हुए यह लिखा गया है कि यह रति की प्रारम्भिक अवस्था है । कालिदास के नाटकों में प्रेम स्वरूप का चित्रांकन करते हुए हमने देखा है कि यह प्रेमोदय प्रथम-दर्शन और चित्र दर्शन के माध्यम से उत्पन्न हुआ है । यहाॅ हम प्रेम-प्रादुर्भाव के पश्चात् उत्पन्न विरह का यत्किचिंत् विवेचन कर आगे तद्जन्य शास्त्रीय दशाओं के उदाहरण देकर पुष्टि करेंगे ।

1. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ 3/204-5
2. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ 3/209

अभिज्ञान शाकुन्तल में प्रेम का प्रादुर्भाव प्रथम-दर्शन से हुआ है । नाटककार ने पहले दुष्यन्त तदुपरान्त नायिका शकुन्तला के हृदयस्थ प्रेम का निरुपण किया है, जिसमें पूर्वराग जनित विप्रलम्भ अपनी चरम-सीमा में निर्देशित हुआ है । कहना नहीं होगा कि प्राकृत अनाघ्रात पुष्प के समान सुन्दरी शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त नगरीय कृत्रिम सौन्दर्य को भूल गया था । प्रथम अंक में उसके प्रेम-प्रादुर्भाव का विस्तृत निरूपण है । तृतीय अंक में उसके वियोग की दशाएं निरूपित की गयी है । नाटककार कालिदास ने काम-पीड़ित दुष्यन्त के चिन्तनयुक्त स्थितियों का मार्मिक निरूपण किया है । जिसमें एक ओर मति, धृति, तर्क संचारी भाव हैं तो दूसरी ओर प्रकृति के उद्दीपन के कारण उन्माद और अपनी परवशता का अत्यन्त सटीक और स्वाभाविक चित्रण किया है -

राजा - (निःश्वस्य)

जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम् ।

अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम् ।।

(मदनबाधां निरूप्य) भगवन् कुसुमायुध, त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामतिसंधीयते कामिजनसार्थः । कुतः -

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो -

र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।

विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै -

स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि ।।[1]

इसी तरह नाटकार ने पूर्वराग में चारुता और मनोहारिता लाने के लिए नायिका शकुन्तला के पूर्वराग जनित विप्रलम्भ की अनेक स्थितियों का सुखद चित्रण किया है । प्रथम दर्शन से तपस्वीनियों के विरूद्ध उत्पन्न काम अपने प्रबल आवेग से शकुन्तला को पीड़ित करता है । इस विरह की विस्तृत विवेचना शास्त्रीय दशाओं के अन्तर्गत की जायेगी । किन्तु यहाँ उसके वियोग की आत्मस्वीकृति का ही वर्णन किया जायेगा । आश्रय-शकुन्तला आलम्बन-दुष्यन्त को देख अपनी विरह दशा का वर्णन इस प्रकार करती है -

शकुन्तला-सखि, यतः प्रभृति मम दर्शनपथामागतः स तपोवनरक्षिता राजर्षिन्[2]स

1. शाकुन्तल 1/2-3
2. शाकुन्तल 3/पृष्ठ 149

शकुन्तला अपनी सखियों के अनुरोध पर दुष्यन्त को जो पत्र लिखती है उसमें इस विरह का बाह्य और आन्तरिक प्रदर्शन नीलीराग से चलकर संजीष्ठरागतक पहुंच गया है । शकुन्तला कहती है -

तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवाऽपि रात्राकपि ।
निर्घृण, तपति बलीयस्त्वयि वृन्तमनोरथा या अगांनि ।।[1]

विक्रमोर्वशीयम में भी साक्षात् दर्शन से ही प्रेम-प्रादुर्भाव का वर्णन किया गया है जिसकी पृष्ठभूमि में नायक पुरुरवा का प्रबल पराक्रम मूलाधार है । यहाँ हम पूर्वराग जनित विरह का संक्षेप में वर्णन करेंगे । प्रथम अंक में दुष्यन्त का रोमांच, औत्सुक्य उर्वशी की अभिलाषा एवं अन्त में पुरुरवा की मनःस्थिति का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है । उर्वशी का निःश्वास एवं राजा का देह-दशा का चित्रांकन इस प्रकार किया गया है -

एषा मनो मे प्रसभं शरीरात्पितुः पदं मध्यममुत्पतन्ती ।
सुरागंना कर्षति खण्डितग्रात्सूंत्र मृणालादिव राजहंसी ।।[2]

अपनी राजधानी में पुरुरवा आकर उर्वशी के लिए अत्यन्त विह्वल है । राजा की अभिलाषा गुण कथन के रूप में इस प्रकार व्यक्त हुई है -

म्भकुसुमितास्वपि सखे नोपवनलतासु नम्रविटपासु ।
चक्षुर्बहनाति धृति तद्रूपालोकदुर्ललितम् ।।[3]

इसी प्रकार उर्वशी भी अप्सरा होते हुए भी मानव प्रेम-बन्धन में इस प्रकार बंध गयी है कि वह तिरस्कारिणी विद्या के द्वारा राजा के मन की बात समझकर जिस वाक्यों को प्रयुक्त करती है वे उसकी आकांक्षा को ही व्यक्त करते हैं -

उर्वशी (सहर्षम्) हीनसत्व हृदय समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।
श्रुतम् । न पुनः पर्याप्तं हृदयस्य ।

मालविकाग्निमित्रम् में पूर्वराग जनित विरह की साकांक्ष विवेचन हुआ है । दोनों में पूर्वराग क्रमशः चित्र-दर्शन और प्रथम-दर्शन से हुआ है । नाटकार कालिदास ने परस्पर पूर्वानुराग जनित विरह की अनेक दशाओं का उल्लेख किया है, क्योंकि अन्तःपुर में दासी के रुप में रहने

1. शाकुन्तल 1/13
2. विक्रमोर्वशीयम । पृष्ठ 32
3. विक्रमोर्वशीयम् 2 / 8

वाली राजकुमारी - मालविका एक ओर राजा अग्निमित्र के प्रति प्रणयानुरक्त है तो दूसरी ओर महारानी इरावती के सापत्न द्वेष का लक्ष्य भी बनती है । महाराजा अग्निमित्र भी मालविका के प्रति मदनसंतृप्त है और उन्हें अपनी रानियों को भी प्रसन्न रखना पड़ता है । नाटककार कालिदास ने दोनों इस मनोमय द्वन्द्व और कामपीड़ा का अत्यन्त रसपेषण वर्णन किया है ।

द्वितीय अंक में नृत्योपरान्त मालविका के प्रस्थान में राजा अपने सौभाग्य का समापन समझता है -

भाग्यास्तमपमिवाक्ष्णार्हृदयस्य महोत्सवावसानमिव ।

द्वारपिधानमिव धृतेर्मन्ये तस्यास्तिरस्करमण् ।।[1]

इसी प्रकार मालविका भी राजा पर अत्यन्त आकृष्ट है, वह कहती है -

अविज्ञातहृदयं भतरिभमिलषन्त्यात्मनौडपि तावल्लज्ये । कुतो विभवः स्निग्धस्य सखीजनस्येयं वृन्तान्तमाख्यः तुम् । न जानेडप्रतिकारगुयकां वेदनां कियन्तं कालं मदने मां नेष्यतीति । आः, कुत्र रवलु प्रस्यितास्मि ।[2]

उसके इन वचनों को सुनकर उत्कण्ठित राजा को यह तत्वबोध हुआ कि उसकी वेदना का कारण वह स्वयं है । कालिदास ने विदूषक और राजा के इस संवाद के माध्यम से विप्रलम्भ श्रृंगार की व्यंजना अत्यन्त मार्मिक रूप में की है । इसमें एक ओ राजा के समीप आती हुई इरावती तो दूसरी ओर मालविका की प्रतीक्षा, उसकी आत्मस्वीकृति तदुपरान्त अग्निमित्र की उत्कण्ठा अत्यन्त सटीक रूप में अभिव्यंजित है । इरावती के आगमन से राजा का यह कथन किना सुन्दर, भावानुकूल है कि हाँथी कमलिनी को देखकर मगर से नहीं डरता, यह संवाद इस प्रकार है -

राजा - नहि कमलिनी दृष्टा ग्राहमवेक्षते मतगंजः । (इति विलोकयन् स्थितः ।)

मालविका - हृदय, निखलम्बनादतिभूमिलघि नीते

मनोरथाद्विपरम । किं भामायास्य ।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास ने अपने तीनों नाटकों में प्रेम का प्रादुर्भाव चाहे प्रथम-दर्शन, चाहे चित्र-दर्शन से किया हो किन्तु पूर्वराग जनित वियोग प्रायः उभयपक्षीय

1. विक्रमोर्वशीयम् 62-63
2. मालविकाग्निमित्रय 2/11
3. मालविकाग्निमित्र पृ0 95

रहा है । शकुन्तला और मालविका क्रमशः तपस्विनी और राजकुमारी हैं । जबकि उर्वशी वरागंना है । नाटककार ने दुष्यन्त, पुरुरवा, अग्निमित्र के पूर्वराग जनित वियोग का वर्णन प्रारमभ में किया है । किन्तु यह वर्णन मात्र विलासप्रिय पुरुष का पंकिल-वासना से पूर्ण था जो क्रमशः उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ मंजीष्ठ राग तक पहुंचा है । इसके विपरीत शकुन्तला उर्वशी और मालविका के इस विरह-वर्णन में निसर्गत् सुकुमारता, चारुता है । जब मुग्धा नायिका कामावेग का अनुभव कर उत्कण्ठित होती है तो उसकी चेष्टाएं चाहे वे यत्नज् हों या भयत्नज् हों कामीजनों के लिए अत्यन्त उद्दीपक और आवर्जक होती हैं । संक्षेप में यहाँ कहा जा सकता है कि कालिदास ने जिस पूर्वराग जनित विरह का वर्णन किया है वे अभिधेयार्थ की अपेक्षा व्यंजना-प्रधान है । उसमें मृदुता है, कोमलता है, हृदय का उद्दाम राग है, मिलन की साकांक्षा है और यह सब मर्यादित रूप में अभिव्यंजित हुआ है ।

भवभूति के महावीर चरित, उत्तररामचरितम् में पूर्वराग जनित वियोग-वर्णन की परिस्थितियां ही नहीं थी क्योंकि वे उत्तररामचरित में विवाहोपरान्त और लंका से प्रत्यावर्तित लोकोपवाद के कारण सीता का निर्वासन है तो महावीर चरित में सीताहरण के बाद ही यत्र-तत्र विरह के दृश्य हैं । भवभूति ने मालती-माधव में पूर्वानुराग का अंकुरण नीली कुसुम्भी राग से प्राप्त होता हुआ मंजीष्ठ राग के रूप में इसका वर्णन किया है । अतः मालती-माधव में प्राप्त इस विरह के कुछ उदाहरण देकर भवभूति की विशेषताओं का मूल्यांकन करेंगे । यहाँ यह कहना पिष्टपेषण मात्र ही होगा कि मालती-माधव में युगल प्रेमी और प्रेयसियों की व्यथा-कथा विन्यस्त है । चित्र दर्शन और वसन्तोत्सव के समय परस्पर दर्शन से उत्पन्न पूर्वराग मालती और माधव दोनों को ही अत्यन्त उद्वेलित कर रहा है । मकरन्द माधव और कलहंस के संवाद से माधव की व्यथा चित्रित की गयी है । माधव कहता है -

मकरन्द :- वयस्य माधव । सकलनगरागनाप्रवर्तितमहोत्सवाभिरामकाम देवोद्यानयात्रा प्रतिनिवृन्तिमन्यादृशमिव भवन्तमवधारयामि । अपि त्वमवतीर्णोऽसि रतिरमणबाणगोचरतमा् ।

माधव इतस्ततः परिक्रम्य परिश्रमादुल्लसितमधुरमदिरामोदपरिमलाकृष्ट सकलमिलदलित पटलसंकुलाकुलितमुकुलावलीमनोहराभरणस्य रमणीयागंणभुवो बालबकुलस्यालवाल परिसरे स्थितः । तस्य च यदृच्छया निरन्तरनिपतितानि विकसितानि कुसुमान्यादाय पिदग्धरचनामनोहरां स्त्रजमभिनिर्मातुमारवान् ।[1]

1. मालतीमाधव पृष्ठ 193

तृतीय अंक में मालती के कामजनित विकारों, चेष्टाओं और अन्यमनस्क अवस्थाओं का निरूपण भवभूति ने बहुविध रूप से किया है -

अस्माकमपि भर्तृदारिका भवनासन्नरथ्यामुखमुहूर्तमण्डनस्य तस्यैव बहुशोऽनुभूतदर्शना भूत्वा रविकराश्लिष्टमुग्धकमलिनीकन्दसुन्दरावयवशोभाविभावितानगंवेदनाव्यतिकदरमणीयापि परिजनं दूनयति । नामिदतिकालक्रीड़ा । केवलं ग्लायमानकान्तहस्तपर्यस्तगण्डमण्डला दिवसान्गमयति । अपि च विकसितारविन्दमकरन्दविहयन्दसुन्दरेण दरदलितकुन्दमाकन्दमधुविन्दुसंदोहवाहिना भवनोद्यानपर्यन्तमारुतेनोत्तमाम्यति[1] ।

लवगिंका ने मालती की कामदशाओं का बहुविध वर्णन किया है । नाटककार भवभूति ने रात्रीगत् उद्दीपन विभाव के कारण मालती की विरह-दशा का अत्यन्त गाढ़बन्ध शैली में इस प्रकार निरूपण किया है -

इये चोलसितदुग्धधारापूरधवलोज्जवलज्योत्सनाप्रक्षलितनभोगणां परिमलितपारलीमुकुलनिर्मथनबहुलपरिमलोत्पीडसंकलनमसृणमांसलमलयामारुतोद्धूमायतिदशदिड्मुखा अनर्थकारिणो भवन्ति रजनीपरिणाहाश्च प्रियसख्या: ।[2]

दूसरी प्रेमकथा के पात्र मकरन्द औरमदयन्तिका है । भवभूति ने दोनो के पूर्वरागजनित विरह का संक्षिप्त किन्तु मार्मिक वर्णन चतुर्थ अंक में किया है । व्याघ्र-रक्षा के उपरान्त मदयन्तिका द्वारा आहत मकरन्द का आलिंगन और उसका अनुभव कर मकरन्द की अधीरता एवं सतृष्ण नेत्रों से मदयन्तिका का दृष्टि-निक्षेप उसके अनुराग और विरह का प्रकट कर रहे थे । माधव और मकरन्द के संवाद में इस प्रणयीयुगल की व्यथाएं इस प्रकार अभिव्यंजित की गयी हैं -

वयस्क मकरन्द, अपि भावानुत्कण्ठते मदयन्तिकायाम । मकरन्द: - अथ किम

तन्मे मन: क्षिपति यवसरस्प्रहारमालोक्य मामगणितस्खलदुत्तरीया ।

वस्टैकहायनकुरगंविलोलदृष्टिराश्लिष्टवत्यमृतसंवलितैरिवागैः ।।

माधव :- न दुर्लभा बुद्धिरक्षिताया: प्रियसखी । अपि च -

प्रमथ्य क्रव्यादं मरणसमये रक्षितवत:

परिष्वगं लन्ध्वा तव कथमिवान्यत्र रमताम् ।

तथा च व्यापार: कमलनयनाया नयनोस्त्वंयि

व्यक्तस्नेह: स्तिमितरमणीयश्चिरभभूत् ।।[3]

1. भवभूतिग्रन्थावली पृष्ठ 236 2. भवभूतिग्रन्थावली पृष्ठ 239 3. मालती माधव 4/8-9

निष्कर्ष यह है कि भवभूति ने एक ही नाटक मालती-माधव में पूर्वराग-जन्य प्रेम का अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है । जिसमें परिस्थितिगत विभिन्नता के कारण यह वियोग अत्यन्त लम्बा, दीर्घकालिक हुआ है । बात यह है कि भवभूति इस पूर्वराग जनित प्रेम-प्रादुर्भाव, तदजन्य विरह और उसकी सभी दशाओं का वर्णन कामशास्त्रानुसार करना चाहते थे । इसलिए एक ही प्रणयी के प्रेम-वर्णन में कहीं औत्सुक्य पर्यवसित न होकर मात्र परम्परा के पालन के रूप में ही वर्णित हो या अपना आकर्षण खो न बैठे इसीलिए नाटककार ने अपने बाधक परिस्थितियों के बावजूद भी दोहरी प्रणय-कथा का आर्वतन-व्यावर्तन किया है । फिर भी यह उनका पूर्वरागजनित विप्रलम्भ श्रृंगार अत्यन्त प्रोज्जवल रूप में उदभासित हुआ है ।

मान

विप्रलम्भ श्रंगार का दूसरा भेद मान है । इसका सैद्धान्तिक निरूपण करते हुए कहा जा चुका है कि किसी कारण विशेष से नायक या नायिका रूष्ट हो जाते हैं जिसके कारण दूसरे पक्ष को वियोग का हर्ष, विषाद, आशा, अहंकार, प्रेम, क्रोधादि का सामना करना पड़ता है कामशास्त्र में नायिकाओं के मानमोचन का प्रयास प्रणयी द्वारा बहुविध रूपों में वर्णित है ।

कालिदास ने विक्रमोर्वशीयम् में असूयाजनित मान का वर्णन किया है । पुरुरवा की महारानी प्रियानुप्रसादन नामक व्रत के पश्चात् पति-पूजा हेतु राजा के पास जब आती है तो राजा ने महारानी की वाचिक अभ्यर्थना जिस प्रकार की, चाहे वह प्रेमवश हो या औपचारिककतावश, उसे सुनकर देखकर उर्वशी कुछ मानवती बन जाती है । उर्वशी और चित्रलेखा में यह असूया अपने प्रारम्भिक अवस्था में ही होने के कारण चिन्ता, आशंका से व्यक्त हुई है -

उर्वशी — महान्खल्वस्यैतस्यां बहुमानः ।

चित्रलेखा — अयि मुग्धे अन्यसंक्रान्तप्रमाणो नागरिका अधिकं दक्षिणा भवन्ति[1]

यद्यपि उर्वशी की यह आशंका चिन्ता और सन्देह की सीमा तक ही रही, उसे हम रस की सीमा तक पहुंचा हुआ नही स्वीकार सकते । इसी प्रकार चतुर्थ अंक में उर्वशी कोप एवं असूया जनित मान अन्यत्र-गमन और उसे लतारूप में परिवर्तित होते हुए वर्णित नाटककार ने पुरुरवा के जिस विरह का उन्मदिष्णु रूप में चित्रण किया है वह भाव एवं भाषा की दृष्टि

1. विक्रमोर्वशीयम् पृष्ठ 119

से स्वतन्त्र गीतिकाव्य की संज्ञा प्राप्त करने के योग्य है । कुपिता नायिका के असूया-जनित कोप एवं मान का कालिदास ने वर्णन संक्षिप्त रूप में किया है । चित्रलेखा कहती है कि गन्धमःदन पर्वत पर एकान्तिक एवं अभिलषित विहार करते समय रति उपरान्त कभी मन्दाकिनी के किराने बालू के पहाड़ बनाकर खेलने वाली विद्याधर कुमारी उदयवती पर राजा की दृष्टि देर तक टिकी रही । परिणामस्वरूप रूपगर्विता उर्वशी आप्यायित होने पर भी मानवती बनी क्योंकि इरारूढ़ प्रणय अत्यन्त असहिष्णु होता है और उर्वशी प्रणयी राजा के मान-मोचन हेतु किये गये अनुनन-विनय का परित्याग कर हृदय से उसकी उपेक्षा करके कुमारवन में प्रविष्ट हो गयी । यहाँ विश्लेषणोपरान्त इतना कहा जा सकता है कि नायक को परकीया नायिका पर अनुरक्त देख प्रथम प्रेयसी, उसे हम शास्त्रीय रूप में खण्डिता-नायिका भी कह सकते हैं, कलहनतारिका का रूप धारण कर लेती है पुरुरवा की बालिका विद्याधर कुमारी पर आसक्ति एक नये रतिभाव का अनुकरण कर ही नहीं पाया कि असहिष्णु उर्वशी की कोपाग्नि से वह अंकुर झुलस गया । आश्रय पुरुरवा की अनुनय-विनय वाचिक अनुभाव है तो दूसरी ओर उसकी उपेक्षा कर मानवती उर्वशी का अन्यत्र-गमन उसे आश्रय की दशा में पहुंचा देता है । इस स्थिति में उसके आवेग, जड़ता, अमर्ष आदि संचारी भावों से जहाँ उसका मान चरम रूप में वर्णित हुआ है वही पुरुरवा को एक गम्भीर विरह-सागर में निमग्न कर गया । चित्रलेखा और सहजन्या के संवादमें मानजन्य विरह अभिव्यंजित हुआ है -

सहजन्या — स नाम संभोगो यस्तादृशेषु प्रदेशेषु । ततस्ततः

चित्रलेखा — तत्र खलु मन्दाकिन्याः पुलिनेषु सिकतापर्वतलीभिः क्रीडन्ती विद्याधरदारिकोदयती नाम तेन राजर्षिणा चिरं निध्यातेति कुपितोवर्शी ।

सहजन्या — भवितव्यम् । दूरारूढः खलु प्रणयोऽसहनः । ततस्ततः ।

चित्रलेखा — ततो भर्तुरनुनयम्प्रतिपद्यमानागुरूशापसंमूढहदयाविस्मृदेवतानियमा स्त्रीजनपरिहरणीयं कुमारवन् प्रविष्टा[1] ।

इसी प्रकार मालविकाग्निमित्रम् में महारानी इरावती का सापत्न-द्वेष यह जानका और बढ़ जाता है कि राजा मालविका के कौमार्य सौन्दर्य पर अत्यन्त अनुरक्त है । इस प्रकार अग्निमित्र सठनायक की कोटि में पहुंच जाता है । इरावती का रूठकर चलना, राजा का मनाना, इरावती द्वारा

1. विक्रमोर्वशीयम पृष्ठ 139

उस पर मेखला-प्रहार एवं अग्निमित्र द्वारा उसके चरणों पर गिरकर मान-भंग करने का असफल प्रयास जहाँ एक ओर इरावती के मन में प्रेम-अप्राप्ति की आशंका का निश्चय है परस्पर कायिक, वाचिक, सात्विक अभिनयों से मानजनित हठ के वियोग-श्रृंगार की अभिव्यंजना हुई है ।

इरावती (इति रुषा प्रस्थिता) (ननु संकथा नाम भवतु । किमित्यात्मानमायासयिण्यामि ।)

राजा (अनुसरन्) प्रसीदतु भवती । (इरावती रशनासन्दानितचरणा ब्रजत्येन ।)

राजा सुन्दरि, न शोभते प्रणयिनि जने निरपेक्षता ।

इरावती (शठ, अविश्वसनीय हृदयोडसि ।)

शठ इति मयि तावदस्तु ते परिचयवत्यवधरिणा प्रिये । चरणपतितया न चण्डित तां विसृजसि मेखलायपि याचिता ।।

इरावती (इति रशनामादाय राजनां ताडयितुमिच्छति ।) (इयमपि हताशा त्वामेवानुसरित ।)

राजा वयस्य, एषा इरावती ।

बाष्पासारा हेमाकांचीगुणेन श्रोणीबिम्वादप्युपेक्षाच्युतेन ।

चण्डी चण्डं हन्तुमभ्युद्यता मां विद्युद्दाम्ना मेघराजीवनिन्ध्यम् ।।

इरावती कि मामेव भूयोडप्यपराद्वां करोषि ।

राजा सरशनं हस्तमवलम्बयति ।

अपराधिनि मयि दण्डं संहरसि किमुद्यतं कुटिलकेशि ।

वर्वयसि विलसितं त्वं दासजनायाहा कुष्यसि च ।।

नूनमिदमनुज्ञातम् (इतियादयोः पतति ।)

इरावती (इति निष्क्रान्तां सह चेटया ।) (न खल्विभौ मालविकाचरणौ, यौ ते हर्ष दोहतं चूरयिष्तः)

अभिज्ञान शाकुन्तल में परिव्यक्ता शकुन्तला जब सप्तम् अंक में दुष्यन्त से मिलती है - वह अवसर मान का अत्यन्त उचित अवसर था जिसमें मानवती शकुन्तला की विरह-व्यथा के साथ-साथ नायक दुष्यन्त द्वारा मान-मोचन का दीर्घतम् प्रयास किया जाता है । कालिदास की कवि-प्रतिभा इस अवसर को चूक गयी है । सम्भवतः मान का वह रूप वे कल्पित और चित्रित नहीं कर सके जो उस अवसर पर अपेक्षित था ।

1. मालविकाग्निमित्रम् - पृ0 131-134

निष्कर्ष यह है कि कालिदास ने अपने नाटकों में मानजन्य विरह का संक्षिप्त वर्णन किया है । यदि हठपूर्वक लक्षणानुधावन की दृष्टि से ऐसे स्थलों की समीक्षा करें तो ऐसे दृश्य इसकी पूर्व-दशा के रूप में व्यंजित नहीं हो पाए फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि कालिदास की कवि-कल्पना ने इस प्रकार की स्थितियों का चित्रांकन कर परवर्ती कवियों के लिए एतद् विषयक वर्णन के द्वार उद्घाटित कर दिए थे ।

भवभूति ने कुछ कथा के आग्रह और कुछ परिस्थितियों की देन के कारण मान-जनित विरह-वर्णन नहीं किया है क्योंकि राम-कथा चाहे वह मर्यादा के कारण, चाहे संयोग के कारण ही क्यों न हो नायक-नायिका के श्रृंगार रस से सम्बन्धित मानजनित वियोग के अवसर ही नहीं आये ।

इसी प्रकार मालती माधव में भी मानमोचन के अवसर नहीं आए क्योंकि परिस्थितियों का कुछ ऐसा निरूपण भवभूति ने किया है जिसमें पूर्वराग जनित वियोग ही सर्वत्र छाया रहा । इसमें मान जनित वियोग के अवसर अनुपलब्ध है ।

प्रवास

प्रवास का सैद्धान्तिक निरुपण करते हुए ऊपर कहा जा चुका है कि नायक के प्रवास या अन्यत्र गमन पर ऋतु विवक्क्षा अनुरूप उसके आने की कल्पना से प्रोद्भूत दुःख प्रवास कहलाता है । पूर्वराग में तो मिलने की अभिलाषा मात्र होती है । उसमें विरह की उतनी तन्मयता, व्याकुलता और अनन्य निष्ठा की उतनी स्थितियां नहीं होती जितनी प्रवासजन्य विरह की होती हैं । क्योंकि प्रवास से पूर्व नायक-नायिका परस्पर भुक्त-भोगी होते हैं । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रवास वह विप्रलम्भ श्रृंगार है जिसमें कार्यवश शापवश अथवा संभ्रम नायक के अन्यत्र चले जाने पर नायिका दुःखी रहती है ।

कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में दुर्वासा शाप का उल्लेखकर एक ओर दुष्यन्त तो दूसरी ओर शकुन्तला के वियोग का वर्णन किया है । यद्यपि दुष्यन्त को इस शाप का अभिज्ञान नहीं है फिर भी पहचान के अभाव में कुछ-कुछ सा पहिचानता हुआ सा दुष्यन्त अनुभव करता है और उसके मन में यह विश्वास सा उत्पन्न होता है कि वह उसकी विवाहित ही है । कालिदास

ने दुष्यन्त के उत्सुकता, कामावेग और स्मृति से प्रवासजन्य विरह की अभिव्यंजना की है । क्योंकि नायिका शकुन्तला किसी तेजोमयी मूर्ति के साथ अदृष्य हो गयी थी राजा कहता है -

राजा कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम् ।

बलवन्तु दुयमानं प्रत्याययतीव मां हृदयम् ।।[1]

इस परिप्रेक्ष्य में कालिदास ने दुष्यन्त की सुप्त स्मृति को शनैः-शनैः उद्दीप्त किया है । शाप के प्रभाव से प्रणयोपचार उसके गहनतम मानसिक स्तरों में सन्निविष्ट हो गया है और उसके परिताप को अत्यन्त प्रखर बनाता है । षष्ठ अंक में दुष्यन्त के पश्चाताप का चित्रण हुआ है । अंगूठी के मिल जाने के कारण उसका दुःख उद्दीप्त होकर ऐसी दशा में पहुंच जाता है जहॉ से सुख और दुःख उसके दैनिक जीवन से विलुप्त हो गये हैं । अन्तःपुर में रमणीयों के पूंछने पर वह भूल से शकुन्तला का नाम ले लेता है । उद्वेग और उन्माद के कारण भ्रष्ट उच्चारण से वह लज्जित होता है । अत्याधिक संतप्त उच्छवासों से उसके अधरोष्ठ काले पड़ गये हैं । चिन्तातुरता ने उसे रात्रि-जागरण के लिए विवश कर दिया है । कालिदास ने यहॉ पद दुष्यन्त के जिस विरह का वर्णन किया है उसमें एक ओर यह संकेतित किया गया है कि गुरूजनों की अनुमति के बिना इन्द्रिय-चांचल्य के कारण उसने जो गन्धर्व विवाह किया था वह नैतिक रूप से उचित नही था । जिसके परिमार्जन स्वरूप उसे यह दण्ड भोगना पड़ रहा है । इस प्रसंग के दो उदाहरण देखने से उक्त तथ्य की पुष्टि हो जायेगी ।

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिवमिप्रकोष्ठर्पितं

विभ्रत्कांचनमेकमेव वलयं खासोपरक्ताधरः ।

चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजोगुणादात्मनः

संस्कायेल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोडपि नालक्ष्यते ।।[2]

प्रिया के ध्यान में अर्द्धनिशि निमग्न पश्चाताप की अग्नि में जलकर उसका विरह कुन्दन सदृश खरा निकल आता है । ऐसे समय में भला कामदेव उसे क्यों न संतप्त करता ? जो दुष्यन्त प्रथम अंक में सौन्दर्य-लोलुप भ्रमर से ईर्ष्या रखता है बाद में स्वयं मधु-लोलुप बना । वही

1. शाकुन्तल 5/31

2. 1. शाकुन्तल 6/1-6

स्थितियों में शकुन्तला के चले जाने पर आम्र-मंजरी रूपी बाण से कितना संत्रस्त न होगा, इसका विवेचन, अनुभव कालिदास के अतिरिक्त कौन नाटककार कर सकता है । विपत्ति में आयी हुई इस नूतन विपत्ति के सम्बन्ध में राजा कहता है -

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना
मम च मुक्तिमिदं तमसा मनः ।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता
धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ।।[1]

वह शकुन्तला के उस प्रतिबिम्ब का स्मरण कर द्राक्षारस की भाँति गलित होता है । जबकि कर्णव के शिष्यों ने उसे (शकुन्तला) वहीं रुकने का कठोर आदेश दिया और अश्रुओं के प्रवाह से मलिन-द्रष्टि वाली शकुन्तला ने दुष्यन्त पर जो कूट द्रष्टि डाली थी, जो वाचिक उपालम्भ दिया था वह समस्त क्रिया-व्यापार विष से दग्ध बाण की तरह उसके हृदय और मन को परित्पप्त करती है -

पुनर्दष्टिं वाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यन्तत् सविषमिव शल्यं दहित माम ।[2]

नाटककार कालिदास ने ग्लानि, चिन्ता, आवेग, स्मृति इत्यादि संचारी भावों से दुष्यन्त के जिस विरह का निरूपण कालिदास ने किया है उसके लिए यह सहज ही कहा जा सकता है कि दुष्यन्त उस प्रेम-मिलन समागम हर्ष, आवेग तथा परिवर्तित घटनाओं में तारतम्य ही नहीं बैठा पाता । क्या शकुन्तला का वह मिलन स्वप्न या ?, क्या उसका यौवन, प्रदीप्त रूप ज्वाला माया थी, छलना थी ? क्या उसका उन्यन्त प्रणयालाप कोरा बुद्धि-भ्रम था ? अथवा संक्षिप्त फल वाला कोई पुण्य था । कालिदास ने दुष्यन्त के उस प्रथम आवेग का प्राच्छालन, परिमार्जन जिस रूप में किया है वह निश्चय ही भारतीय संस्कृति के वरेण्य आदर्श के अनुरूप ही है । राजा चिन्तन करता है -

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु
क्लिष्टं नु तावत्फलमेव पुण्यम् ।
असन्निवृत्यै तददतीतमेते
मनोरथा नाम तटप्रपाताः ।।[3]

1. शाकुन्तल 3/8 2. शाकुन्तल 6/9 3. शाकुन्तल 6/10

वह शकुन्तला के चित्र को अंकित कर प्रिय-वियोगजन्य दु:ख से धैर्य प्राप्त करा चाहता है किन्तु उसे अच्छी तरह ज्ञात है कि साक्षात् समीप आयी हुई शकुन्तला को छोड़कर चित्रगत शकुन्तला उसके लिए इस प्रकार है - जैसे कोई पथिक मार्ग में जल-परिपूर्ण, नदी का परित्यागकर मृगतृष्णा से प्यार करने लगा हो । वह बारम्बार शकुन्तला के रूप-सौन्दर्य की स्मृति कर चित्रों में यत्किंचित् परिवर्तन करता हुआ हृदस्थ अभिलाषा का वर्णन करता है -

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे
शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम् ।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकाकोयलं
मृणालसूत्रं रचितं सतनान्तरे ।।[1]

सचमुच कालिदास ने प्रणयी दुष्यन्त के उन्मन्त विलाप, प्रलाप का जो वर्णन किया है उससे उसके दोष का प्राच्छालन अवश्य हो जाता है और वह प्रेम के एक नये धरातल पर आरूढ हो जाता है क्योंकि इस प्रेम में वासना की कोई गन्ध नही । सन्तप्त आलाप, कामीलोलुप-जनों की आकांक्षा से उसका मन इतना उदार और कोमल हो गया है कि वह घोषणा कर देता है कि वह प्रत्येक प्रिय वियुक्त प्रजाजन का स्वजन समझा जाये । बात यह है कि उसे इस बात का पूर्ण परिज्ञान हो जाता है कि गर्भवती शकुन्तला से उत्पन्न शिशु ही पितरों को तर्पण करता है । जिसका अस्तित्व ही समाप्त सा हो गया है । इसी परिप्रेक्ष्य में डॉ0 रमाशंकर तिवारी का यह कथन है -

"दुष्यन्त के भीतर का प्रेम वियोग की आंच में तड़पते-तड़पते उसके भीतर के पिता से मिल जाता है । उसके शकुन्तला प्रेम में उसका अभिलषित वात्सल्य भी मिल गया । जिसकी आशा अब खण्डित सी प्रतीत होने लगी है । सम्मोह का जो परदा उसकी अन्तरात्मा को शकुन्तला के प्रथम साक्षात्कार से अब तक आच्छादन किये थे वह अब धीरे-धीरे उठ रहा है । यह चिदावाण भंग ही शकुन्तला का उसकी अभिज्ञान है[2] ।

शकुन्तला की विजय, गान्धर्व विवाह के पश्चात् उसके शरीर की प्राप्ति जितनी आसान थी उसकी विस्मृति विषदंश के समान व्यापक सम्मोहन, अपस्मारक और कठिन है । इस परिप्रेक्ष्य में यहाँ

1. शाकुन्तल 6/18
2. कालिदास पृष्ठ 164

यह कह देना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि शकुन्तला के प्रवासजन्य या शाप के कारण तिरस्कृत होने से अन्यत्र-गमन के कारण नायिका के प्रवासजन्य विरह की अनेक सम्भावनायें कालिदास के सन्मुख अवश्य रही होंगी । षष्ठ ऋतु बारहमासा पद्धतियाँ के माध्यम से उसके विरह का वर्णन कर कालिदास की लेखनी जहाँ नारी हृदय के कोमल-तन्तु उसकी सरलता उसका निश्छल आत्मसर्पण प्रिया की निष्ठुरता और रानी की मर्मतुद् जो व्याख्या सम्भव हो सकती थी उसके वर्णन का अवकाश भी उपलब्ध था । किन्तु नाटककार ने उसे अनर्णनीय समझकर उसके विपरीत राजा के जिस वियोग का वर्णन किया है उससे उसके हृदय का एक नवीन रूप में कायान्तरण तो हुआ ही है और वस्तुतः उसने जो अनैतिक कार्य सा किया था उसके दण्ड का विधान भी कालिदास को काम्य था । अब दुष्यन्त किसी कामी का काम्य कान्ति ही नहीं रह गया अपितु वह एक पिता और समस्त नगर-वासियों के लिए स्वजन हो गया है । सम्भवतः कालिदास को एक राजा के आदर्श रूप का चित्रण इसी रूप में वर्णनीय था ।

विक्रमोर्वशीयम् में कुछ शापवश कुछ अन्यत्र-गमन के कारण पुरुरवा के उद्दाम और उन्माद्जन्य विरह का चित्रांकन हुआ हे । सापत्न द्वेष रखने वाली उर्वशी राजा पुरुरवा को मात्र इन्द्रिय-लोलुप कामी समझकर, रुष्ट हो ऐसे कुमारवन में चली गयी जहाँ वह लता-रुप में परिवर्तित हो गयी । इस अवसर पर प्रणयी पुरुरवा का जो विलाप है वह सचमुच एक प्रेमी का प्रलाप है । उसके अन्तःकरण की व्यथा-कथा है । प्रकृति के कण-कण में व्याप्त उर्वशी के रूप-सौन्दर्य से साम्य रखने वाले सुक, मयूर, चक्रवाक, लताएं, वल्लरियां, गजरात, शार्दूल इत्यादि वन्य पशुओं से अपनी प्रिया का पता पूंछता फिरता है । इस विरह में कालिदास ने विरहजन्य अनेक दशाओं का चित्रांकन स्वतन्त्र रूप से किया है । अतः एतद् सम्बन्धी विहर-वर्णन के एकाध उदाहरण देकर इनका विश्लेषण तत् सम्बन्धी दशाओं के अन्तर्गत किया जायेगा । वह सोचता है -

क्व नु खलु रम्भोरूर्गता स्यात् ?

तिष्ठेकोपवशात्प्रभावपिहिता दीर्घ न सा कुप्यति स्वर्गायोत्पतिता

भवेन्मयि पुनर्भावार्द्रमस्या मनः ।

तां हंर्तु विषधाद्विषोऽपि च मे शक्ताः पुरोवर्तिनी ।

सा चात्यन्तमदर्शन नयनयोर्यातेति कोऽयं विधिः ।।[1]

1. विक्रमोर्वशीयम् 4/9

मालविकाग्निमित्रम् में प्रवासजन्य विरह के अवसर ही उपलब्ध नहीं है । किन्तु कालिदास ने बड़े कौशल से उसका छोटा सा अवसर ढूंढ निकाला हैं - जब महारानी द्वारा मालविका और वकुलावलिका को कारावास की सजा दी जाती है, जिसे सुनकर अग्निमित्र अत्यन्त दुःखित होता है । अन्तःपुर के इस षणयन्त्र के कारण विरह-वर्णन का वह अवसर उपलब्ध नहीं है जिसका अभिज्ञान-शाकुन्तल और विक्रमोर्वशीयम् में था । फिर भी कालिदास ने मालविका के उस आकांक्षा को यहाँ पूर्ण दिखाया है जब वह राजा के सामने रहने पर लज्जा के कारण तृप्त होकर उन्हें देख नहीं सकी थी । जबकि एकान्त कारागार में इस अभिताषा की पूर्ति हुई ।

सामान्य रूप से प्रवासजन्य विरह के पीछे यह धारणा कार्य करती है कि वस्तुतः पहले नायक-नायिका का मिलन समागम हो चुका है । तदनन्तर कार्यान्तर से वह अन्यत्र-गमन करता है । उसे हम प्रवासजन्य विरह कहते है किन्तु भवभूति ने मालती माधव में एक नयी परिस्थिति की रचना कर उसके अन्तर्गत जिस विप्रलम्भ श्रृंगार की सृष्टि की है उसमें नायक-नायिका का परस्पर पूर्वानुराग तो अंकुरित होकर अपने उद्दीप्त रूप में मुखरित हुआ है । किन्तु दोनों का मिलन समागम नहीं हुआ है और इसी मध्य घटना-प्रवाह इस प्रकार मुड़ जाता है कि मालती के पिता भूरिवसु द्वारा अपनी कन्या का विवाह पद्मावती नरेश के एकान्त मित्र नन्दन से सुनिश्चित करना पड़ता है । इससे निराश होकर माधव घने अरण्य में जा बसता है । इस दूरी को अन्यत्र या देशान्तर गमन में मानकर नाटककार भवभूति ने माधव के जिस आकांक्षा, अनुराग, लालसा और उन्माद, नैराश्य का वर्णन किया है उसमें मालती के प्रति उसकी तीव्र आसक्ति ही प्रकट होती है ।

यहाँ यह आश्चर्यजनक क्षमता दिखाई पड़ती है कि जिस प्रकार कालिदास ने विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी के लता होने पर पुरुरवा के उन्माद का जैसा वर्णन किया है, लगभग वैसी ही अनुभूतियों का प्रकटीकरण भवभूति ने माधव के माध्यम से कराया है । नवम् अंक में ऐसा ही वर्णन समान रूप से प्राप्त होता है । मालती वियोग में संतप्त माधव कभी मेघ से अपनी प्रिया को आश्वासन देने तथा स्वयं अपनी दुःखभरी कहानी कहने का निवेदन करता हुआ वह प्रिया की कान्ति, गीत, नम्रता आदि गुणों को वनांचल के विविध उपादानों में बिखरा हुआ पाता है । मोर, कोयल, बन्दर, हाँथी आदि से अपने हृदस्थ मार्मिक उद्गारों को व्यक्तकर उनसे दौव्य-कर्म की अपेक्षा करता है इस पूरे प्रकरण में माधव का उन्माद, प्रलाप, उद्वेग, स्मृति आदि काम-दशाओं अपने उत्कृढ रूप

में प्रकट हुई हैं । कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं जिसमें क्रोध, आशा, निराशा तथा मालती की निष्ठुरता वर्णित है -

माधव हा प्रिये, मालति, क्वासि । कथमविज्ञातत्वद्भुततमं झटिति पर्यवसितासि । नन्वकरुणे, प्रसीद । संभावय माम् । प्रिय माधवे । किमसि मय्यवत्सला ननु सोऽहमेव यमनन्दत्पुरा । स्वयमाग्रहीतकमनीयककंणस्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः[1]।।

माधव का मनस्ताप, प्रचण्ड व्याकुलता हृदय को विदीर्ण ही नहीं करती अपितु वनांचल के निकट सुविस्तृत वन्य सुषमा से और अधिक उद्दीप्त हो जाती है -

दलितं हृदयं गाढौद्वेगं, द्विधा तु न भिद्यते
वहति विकलः कायो मोहं, नु मचिंत चेतनाम् ।
ज्वलयति तनूमन्दहिः, करोति न भस्मसा -
त्प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी, न कृन्तति जीवितम् ।।[2]

नाटककार भवभूति ने ऐसे अवसर पर प्रिया की खोज प्रकृति के कण-कण में करने की कवि परम्परा में प्राप्त इस रूढि का एक नूतन रूप में उपयोग किया है । यद्यपि कालिदास ने भी उर्वशी के उक्त प्रकरण में प्रकृति को उद्दीपक रूप में प्रस्तुत किया है । किन्तु भवभूति ने तटस्थ प्रकृति को उसके अंगीभूत पशु-पक्षियों में मानवीय भावों का आरोप कर माधव के लिए दोहरे उद्दीपन विभाव कार्य कराया है । बानर और गजराज के श्रृंगारिक रतिपरक क्रियाओं और चेष्टाओं से उसका यह वियोग और अधिक उद्दीप्त हुआ है । यहाँ गजक्रीड़ा का एक उदाहरण दृष्टव्य है -

कण्डुकुड्मलितेक्षणां सहचरीं दन्तस्य कोट्या लिख-
न्पययिव्यतिकीर्णकर्णपवनैरा हृादिभिर्जीजयन् ।
जम्धार्द्धनवसल्लकीकिसलयैरस्याः स्थितिं कल्पय-
न्नन्यो वन्यमतगंजः परिचयप्रागल्भ्यमभ्यस्यति ।।[3]

महावरी चरित वीर रस प्रधान नाटक है जिसमें सीताहरण के पश्चात् ही प्रवासजन्य विरह के स्थल हैं किन्तु भवभूति ने बड़ी कुशलता से ऐसे स्थलों को बहुत अधिक विस्तार न देकर

1. मालतीमाधव 9/9
2. मालतीमाधव 9/12
3. मालती माधव 9/32

अधिकांशतः लक्ष्मण के द्वारा राम के विरही रूप को उद्घाटित किया है । फिर भी एकाध स्थलों पर इस प्रकार के अवसर उपलब्ध हो ही गये हैं जिनमें राम के प्रवासजन्य विरह की अनुभूतियां अभिव्यंजित हुई है ।

पंचम अंक में राम की कातरपुकार और प्रिया को न ढूंढ पाने की असमर्थता जैसे मनोद्वन्द्व का निरूपण भवभूति ने किया है । समुद्र की वाडवाग्नि के समान राम के हृदय-सागर में वियोग और क्रोध की ज्वालाएं प्रज्जवलित होती है शमन सीता-मिलन में ही सम्भव है । उनका आर्न्त - हृदय पुकार कर कह उठता है -

प्रिये हा हा क्वासि प्रकरि मधुरां वाचमयवा
पराभूतैरित्थं पिलपनविनोदोडप्य सुलभः ।
अनिन्द्यः पौलस्त्यो व्रजति परिवादो मयि पुन-
र्यतो वैरे रूढे बहुगुणमनेन प्रतिकृतम् ।।[1]

यहाँ यह अवश्य दृष्टव्य है कि प्रिय-वियुक्त सीता जिस विपत्ति में फंस गयी थी ऐसे प्रवासजन्य उसके विरह का वर्णन भवभूति जैसे नाटककार से अवश्य अपेक्षित था किन्तु या तो प्रथम रचना होने के कारण अथवा राम के ही महावीर रूप को उद्घाटित करने के लिए नाटककार ने ऐसे ही भावप्रवण संवेदनशील भावनओं का सर्वथा तिरस्कार किया है । यत्र-तत्र अप्रत्यक्ष रूप में उनकी अवतारणा की गयी है ।

सारांश यह है कि प्रवासजन्य विरह में कालिदास ने पुरुरवा के हृदयगत संवेदनशील भावनाओं को प्रखर रूप में उद्घाटित करने का प्रयास किया है तथा भवभूति न मालती-माधव और महावीर चरित में क्रमशः माधव और राम के हृदयस्य भावों का उद्घाटन किया है । इस प्रकार प्रवासजन्य विरह में जहाँ विक्रमोर्वशीयम् और मालती-माधव में आश्चर्यजनक क्षमता है, वहीं कुछ विषमताएं भी हैं । दुष्यन्त का विरह राजा और नागर का विरह हैं । जिसमें तिरस्कृत शकुन्तला की स्मृति हृदय को व्याकुल करती है । वहीं पुरूरवा और माधव का प्रवासजन्य विरह प्रकृति के उन्मुक्त क्रीड़ागन की पृष्ठभूमि में अभिव्यंजित हुआ । जिसमें समस्त कामदशाएं अभिव्यंजित हुई

1. महावीर चरित 5/28

है । हाँ इतना कहा जा सकता है कि पुरुरवा में उन्माद का आधिक्य हैं क्योंकि उसे प्रिया का समागम सहवास उर्वशी का आत्मसमर्पण, रतिदान, प्रणयकेलिए उपलब्ध हो चुका था । जबकि माधव यह पूर्वरागजनित प्रवासजन्य विरह में परिवर्तित हुआ है । कालिदास ने इस विरह-वर्णन में प्रकृति को तटस्थ रूप में तो भवभूति ने प्रकृति को मानवीय क्रिया-कलापों से सम्पन्न कराकर माधव के दुःख को द्विगुणित किया है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रवासजन्य विरह में कुछ समानताएं एवं कुछ विषमताएं होने के बावजूद दोनों कवियों की भावाभिव्यंजना में कोई अन्तर नहीं है ।

"करुण-विप्रलम्भ"

करुण विप्रलम्भ का सैद्धान्तिक निरूपण करते हुए करुण रस और श्रृंगार रस के अन्तर्गत आने वाले करुण के रूप में अन्तर निरूपित करते हुए यह कहा जा चुका है कि शोक प्रकृति से मुक्त होने पर भी करुण विप्रलम्भ में रति स्थायी भाव प्रवृत्ति के रूप में रहती है तो करुण रस के अन्तर्गत आने वाला शोक नैराश्य-पूर्ण होने के कारण निवृत्ति-परक होता है । जहाँ पुनर्मिलन की आशा समाप्त हो जाये वहाँ करुण रस होगा करुण विप्रलम्भ नहीं । इस परिप्रेक्ष्य में ही यहाँ कालिदास और भवभूति के नाटकों में प्राप्त करुण विप्रलम्भ की समीक्षा की जा रही है ।

अभिज्ञान-शाकुन्तल में यद्यपि करुण विप्रलम्भ का अधिक अवसर नहीं प्राप्त है तथापि नाटककार कालिदास ने परिव्यक्ता शकुन्तला के मरीच आश्रम में रहने के समय कुछ चित्रों में शकुन्तला के जिस रूप का चित्रण किया है, उसमें करुण विप्रलम्भ ही दिखाई देता है । परिव्यक्ता शकुन्तला कण्व शिष्यों से भी निराद्रता होकर जिस प्रकार का रुदन करती है और आश्रम में रहते समय उसके जिस वेश-भूषा का नाटककार ने वर्णन किया है, उसमें करुण विप्रलम्भ ही दिखाई देता है । यद्यपि कालिदास के समक्ष ऐसी परिस्थितियों उत्पन्न थीं जिसके अन्तर्गत वह शकुन्ता के वियोग का कारुणि चित्रण कर सकता था । फिर भी नाटककार ने उस परिस्थिति का लाभ नहीं उठाया है - सप्तम अंक में एक वेणी धरा धूसरित वसनाव्रत अतिनिष्करुण सौम्यमुखी दीर्घविरह व्रत पालन करने वाली शकुन्तला का वर्णनकर नाटककार ने उसके कायिक, सात्विक, आहार्यजन्य

अनुभावों के साथ धृति, मति, विबोध आदि संचारी भावों से करुण विप्रलम्भ का निरुपण किया है आशा और निराशा के साथ शकुन्तला का ऐसा चमत्कारिक रूप अपने तेजोदीप्त रूप में उद्भासित हुआ -

शकुन्तला विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधि श्रुत्वा न मे आशाऽऽसीदात्मनो भागधेयेषु अथवा यथा सानुमत्याऽऽख्यातं तथा संभाव्य एतत् ।

वसने परिधूसरे वसाना

नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः ।[1]

अतिरिष्ठकरुणस्य शुद्धशीला

मम दीर्घ विरहव्रंत विभर्ति ।।

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी के लता बन जाने पर उसके मिलन की आशाएं भम्न-प्राय हो गयीं थी किन्तु समगनीय मणि द्वारा पुनः प्राप्ति की एक किरण उर्वशी की सखी चित्रलेखा और सहजन्या को अस्वस्त सी कर ही थी । अतः उर्वशी के विरह में उन्मादग्रस्त पुरुरवा का विरह करुण विप्रलम्भ का श्रेष्ठ निदर्शन है । नाटककार कालिदास ने प्रकृति के उद्दीपन रूप के माध्यम से उस वियोग की यभिव्यक्ति की है । राजा आकाश की ओर देखकर कोयल से आग्रह करता है कि वह दूती है अतः वह उस पर कृपा कर उसकी प्रिया को पास ला दे क्योंकि उसे इस बात का भान ही नहीं है कि उसकी प्राण-वल्लभा क्यों कुपित होकर उसका परित्याग कर गयी है ।

प्रायः अपने नाटको पर सर्वाधिकार रखती है और उन्हें उसकी गलतियों के खोज निकालने की बहुत अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती -

त्वा कामिनो मदनदूतिमुदाहरन्ति

मानावभगं निपुण त्वममोघमस्त्रम् ।

तामानय प्रियतमां मम वा समीपं

मां वा नयाशु कलभाषिणि यत्र कान्ता ।।

1. शाकुन्तल, 7/2।

कुपिता न तु कोपकारणं सुकृदप्यात्मगगं स्मराम्यहमम ।
प्रभुता रमणेषु योषितां न हि भावास्खलितान्यपेक्षते ।।[1]

यदि शास्त्रीय दृष्टि से अक्षरसः अनुपालन कर विक्रमोर्वशीयम् के उक्ति-स्थल की परीक्षा करें तो निर्भान्त रूप से यह करुण विप्रलम्भ का सर्वोत्तम निदर्शन होगा । उन्माद ग्रस्त राजा का अति दैन्य-भाव होकर घुटने टेककर उर्वशी के विलुप्त होने का कारण हंस, चक्रवाव से पूछता है और कहता है कि उसने सदैव उर्वशी से प्रीत की है, प्रियवादी रहा है, प्रणयभंग परान्मुख था फिर भी न जाने उसने किस अपराध का दण्ड देकर अपने प्रेम से वंचित कर रखा है -

(चर्चरिव योपसृत्य जानुभ्यां स्थित्वा)
त्वयि निवद्धरते प्रियवादिनः प्रणयभंग परागंमुखचेतसः ।
कमलापराधलवं मम पश्यसि त्यजसि मानिनि दासजनं यत ।।[2]

निष्कर्ष यह है कि कालिदास ने अभिज्ञान-शाकुन्तल में नायिक-नायक दोनों के करुण विप्रलम्भजन्य वियोग श्रृंगार का वर्णन किया है । यहाँ शकुन्तला की अपेक्षा दुष्यन्त का करुण अधिक विगलित हुआ है । जबकि परिस्थिति शकुन्तला के समक्ष कम नहीं थी । इसी प्रकार विक्रमोर्वशीयम् में पुरुरवा के शोक-संतप्त करुण विगलित उन्माद जड़ चेतन में अन्तर विस्मृत करने वाला करुण विप्रलम्भ अपने चरम रुप में वर्णित है ।

भवभूति की मौलिक स्थापना यद्यपि शास्त्र या आप्त वचनों से हटकर हैं उन्होंने उत्तररामचरित में वीर और श्रृंगार की अपेक्षा करुण रस को अंगी रस बनाने का यथासम्भव प्रयत्न किया है । यद्यपि कुछ लक्षणानुधावन पर ही निर्भर रहने वाले समीक्षकों ने उसे करुण रस का नाटक न मानकर करुण व्रिपलम्भ श्रृंगार का नाटक मानते हैं । यहाँ हम इस विवाद में न पड़कर इतना स्वीकार करके चलते है कि वह करुण रस का श्रेष्ठ परिणाम है । फिर भी यत्र-तत्र करुण विप्रलम्भ के स्थल ढूंढे जा सकते हैं ।

सीता-निर्वासन के लगभग 10 वर्ष बाद शम्बूल वध के प्रसंग में राम पंचवटी जन स्थान में फिर पहुंचते है । भवभूति ने अपनी कुशलता से पंचवटी के सुपरिचित आंचलिक परिवेश

1. विक्रमो० 4/25-26
2. विक्रमो० 4/55

में विरही राम के आकुल हृदय को सीता के अदृश्य उपस्थिति से उन्हें आश्वस्त करते हैं । वे कहते हैं कि - पूर्वकाल में इन परिचित वृक्षों, पक्षियों और मृगों को देखकर जिनका मैथिली निर्मल जल स्वच्छ कण और हरि-तृणों से स्वयं अपने हाँथों से लालन करती थी उससे मेरे हृदय कि व्यथा का उद्दाम प्रवाहित हो उठा है वे मूर्च्छित हो जाते हैं । जिसे सीता का मृदुल-स्पर्श पुनः संज्ञा प्रदान करता है । राम की मूर्च्छा, जड़ता, स्तम्भ्धता अपने को धिक्कारने का भाव एक ओर है तो दूसरी ओर संज्ञा प्राप्त होने पर हर्ष, हार्दिक परितोष आदि भावों के मिश्रण से करुण विप्रलम्भ की सृष्टि बड़ी कुशलतापूर्वक की गयी है ।

आश्च्योतनं नु ह्रिरचन्दनपल्लवानां
निष्पीड़ितेन्दुकरकन्दजलो नु सेकः ।
आतप्तजीवितमनः परितर्पणोडयं
संजीवनौषधिरसौ हृदि नु प्रसक्तः ।।
अपि च -
स्पर्शपुरा परिचितो नियतं स एव
संजीवनश्च मनसः परितोषणरच ।
संतापजां सपदि यः परिहृदय मूर्च्छा
मानन्दनेन जडतां पुनरातनोति[1] ।।

एक बात यहाँ अवश्य विचारणीय है जिस पर संभवतः आलोचकों की दृष्टि-निक्षेप नहीं हुआ । प्रायः सभी आलोचकों ने राम के करुण-विगलित हृदय के उद्गारों के आधार पर इसे करुण रस का श्रेष्ठतम् निदर्शन मानते हैं किन्तु एक क्षण के लिए सीता को दृष्टिपथ में रखकर शास्त्रीय विवेचन करें तो तृतीय अंक के अन्तर्गत आने वाला छाया अंक का जब रसशास्त्रीय मूल्यांकन किया जायेगा तब वह करुण रस की अपेक्षा करुण विप्रलम्भ श्रृंगार के अधिक निकट उतरेगा क्योंकि सीता-निर्वासन के पश्चात् दस वर्ष बीत जाने पर राम यह सहज ही विश्वास कर बैठते हैं कि सीता को किसी जंगली जानवर भक्षण कर लिया होगा । जबकि सीता के समक्ष राम के जीवित

1. उ0रा0च0 3/11-12

होने और सामने प्रत्यक्ष देखने में किसी प्रकार का अवरोध नहीं है । अतः इस दृश्य-अदृश्य मिलन में दोनों का दान-प्रतिदान करुण विप्रलम्भ की ही सृष्टि करता है । सन्देह, भ्रम, चिन्ता, पिबोध ऐसे संचारी भाव से परस्पर इस रस की सम्पुष्टि की जा सकती है -

)(एते खल्न्ल्वगाथमानसदर्शितस्नेहसम्भारा आनन्दनिष्यनिन्दनः सुधामया आर्यपुत्रस्यौल्लापः जाने, प्रत्ययेन निष्कारणपरित्यागशल्यितो पि बहुमतो मम जन्मलाभः)(

राम अथवा कुतः प्रियतमा ? नूनं सकंल्पाभ्यासपाटबोपादान एष भ्रमोरामंभद्रस्य ।[1]

तात्पर्य यह है कि जब राम सीता के नाम का करुण-पूर्वक स्मरण करते हुए संज्ञा-शून्य हो जाते हैं तो सीता का आक्रोश समाप्त हो जाता है और उनके हृदय में अब तक बलात दबी हुई प्रणय की उद्दाम लहरें एकाएक उच्छवसित हो उठती हैं और वह अपने प्राणेश्वर की रक्षा में तत्पर होती हैं । उस समय सीता का वहाँ से हटना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है । राम को इस प्रकार दो बार सीता स्पर्श प्राप्त हुआ । जो उनके आह्लाद का कारक है वे यत्र-तत्र उन्मदिष्णु होकर नगरवासियों को कोसते से प्रतीत हो रहे हैं -

न किल भवतां देव्याः स्थानं ग्रहेअभिमतं तत-
स्तृणमिव वने शून्ये व्यक्ता न चाप्यनुशोचिता ।
चिरपरिचितास्ते ते भावास्तया द्रवयन्ति मा
मिदमशरणैरद्यास्याभिः प्रसीदत रुद्यते ।।[2]

इस प्रकार चाहे वह अदृश्य स्पर्श ही क्यों न रहा हो । राम के मन में यह विश्वास जड़ जमा लेता है कि सीता जीवित अवश्य है । इस सम्बन्ध में यह क्षीण आशा उस समय और अपने चरम रूप में उद्दीप्त होती दृढ़ प्रतीत होती है । जब वे सीता की आकृति से मिलते-जुलते लव-कुश को देखते है । भवभूति कहता है कि इन बालकों के अंगो को देखकर राम को ऐसा प्रतीत हुआ मानों प्रियतमा का सद्यः प्रस्फुटित सतदत सी कान्ति वाला मुखमण्डल उनके नेत्रों के सन्मुख उपस्थित हो गया है । इनकी श्वेत शुभ्र निर्मल दन्त-पंक्ति, ओष्ठ, मुद्रा, कर्ण-विस्तार और

1. भवभूति ग्रन्थावली पृष्ठ 63
2. उ० रा० च० 3/32

नेत्र-भंगिमा भी सीता के सदृश हैं । इस स्थल पर स्मृति संचारी भाव से राम के सुख-दुःख को एक साथ अभिव्यंजित किया गया है । जो हल्का सा ही क्यों न हो करुण विप्रलम्भ की सृष्टि करता है -

अपि जनकसुतायास्तच्च तच्चानुरूपं
स्फुटमिह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयमस्ति ।
ननु पुनखि तन्मे गोचरीभूतभक्ष्णो-
रभिनवशतपत्त्र श्रीमदास्यं प्रियायाः ।।[1]

तात्पर्य यह है कि भवभूति ने उत्तररामचरित में भले ही प्रधानतया करुण रस की रखी हो किन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि अनेक स्थलों पर करुण विप्रलम्भ के स्थल उपलब्ध हैं । भले ही राम ने जनापवाद के कारण अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक आसन्नप्रसवा सीता को निर्वासित कर दिया हो किन्तु पंचवटी और जनस्थान से दोबारा आने पर उनके से बाहर निकलने के लिए छटपटाती हैं । वर्षो पीछे से उनके एकाकी प्राणों में रची-बसी अन्तर्मुखी वेदना जो शासन की प्रस्तरमयी शिला के नीचे प्रसुप्त थी । पंचवटी की सुपरिचित तथा सीता की मीठी स्मृतियों से लदी हुई वनस्थली के सानिध्य में पाषाण-शिला का भेदन कर अन्तःशिला बाहर निकलने लगती है और उनके मन में सीता के भौतिक अस्तित्व की स्वप्निल चेतना उनका स्पर्श पाकर जाग्रत हो उठती है और वे सीता-प्राप्ति के लिए अभिलषित हो उठते हैं । नाटककार ने इस अवसर पर बड़ी कुशलता से उनके करुण विप्रलम्भ एवं करुण रस युक्त भावों का अन्तर सा मिटा दिया है यही कवि का वैशिष्ट है ।

साराश यह है कि कालिदास और भवभूति ने अपने-अपने नाटकों में पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण विप्रलम्भ का वर्णन किया है । यद्यपि भवभूति में मान का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं है पूर्वराग की दृष्टि से अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम और मालती-माधव श्रेष्ठ नाटक हैं । इनमें निदर्शित पूर्वराग उभयपक्षी है । अभिज्ञान-शाकुन्तल और मालती-माधव में पात्र और परिस्थितिगत भिन्नता अवश्य है । किन्तु अभिलाषा, कामदशा का प्राबल्य जितने मार्मिक और उद्दाम रूप में दोनों कवियों ने वर्णित किया है उतना विक्रमोर्वशीयम् और मालविकाग्निमित्रम् में

1. उ०रा०च० 6/26

नहीं है । करुण विप्रलम्भ श्रृंगार की दृष्टि से कालिदास की अपेक्षा भवभूति अधिक सफल हुए हैं । क्योंकि चाहे वो अभिज्ञान-शाकुन्तल में शकुन्तला के परित्याग के कारण अथा विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी के लता बन जाने पर दुष्यन्त और पुरुरवा का जो वियोग वर्णित है । वह प्रारम्भिक अवस्था में वासना-पंकिल और इन्द्रिय-लौल्प के कारण ही प्रतीत होता है । दोनो राजाओं का यह वियोग मात्र परिस्थितियों के कारण प्रतीत होता है । जबकि भवभूति ने जिस विरह का वर्णन किया है वह कामशास्त्रीय दशाअनुरूप होते हुए भी पात्रगत अनन्यता ऐकान्तिक निष्ठा, उत्कट अनुराग के रूप में वर्णित है । उत्तर रामचरित में जो वियोग द्राक्षारक्ष भाँति गलित पुटपाल सदृश है । मालती माधव में दम्पत्ति-युगलों के अनन्य-निष्ठा और गहन-आसक्ति का प्रतीक है । दुष्यन्त, पुरुरवा, अग्निमित्र और राम राजा की श्रेणी के नायक है । श्रयम तीन नायक पूर्व-विवाहित है जबकि राम एक पत्नीव्रत और माधव मकरन्द प्रेमी मात्र ही है ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि दोनों नाटककारों में वियोग के कारण तीव्र आसक्ति, उत्कण्ठा गहरी लालसा और उन्माद के वर्णन में अत्याधिक साम्य दिखाई पड़ता हैं । कुछ परिस्थिति का भी समता है । दुष्यन्त नगर छोड़कर जंगल तो नहीं जाता किन्तु उद्यानों की शोभा से ही उद्दीप्त होता है । पुरुरवा और माधव, राम का यह विरह वर्णन वनांचल में ही अपने चरम रूप में प्रकट हुआ है । इतना अवश्य है कि कालिदास ने दुष्यन्त के विरह में अपराध को परिमार्जित कर उसे उदाहरण रूप में स्थापित करने का काम को आध्यात्म से जोड़ने का, रति को चरम मंजष्ठि राग के सोपान तक पहुंचाने का जो प्रयास अभिज्ञान-शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीयम् में दिखाया है वह स्थिति भवभूति को उत्तररामचरित और मालती-माधव में स्वतः ही प्राप्त हैं क्योंकि मालती और माधव के प्रति पूर्वराग अत्यन्त सहज स्वाभाविक दशा में हुआ है । उसमें किसी प्रकार का अपराध-बोध नहीं है । कहना नहीं होगा कि दोनो नाटककार इस वियोग-वर्णन में अप्रतिम सिद्ध हुए हैं ।

विप्रलम्भ श्रृंगार की शास्त्रीय दशाएं :-

पूर्व-पंक्तियों में विप्रलम्भ श्रृंगार की महत्ता, वर्गीकरण और तदानुसार कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में एतद् सम्बन्धी स्थलों का सोदाहरण विवेचन किया गया है । विरह के इस सैद्धान्तिक विवेचन में आचार्यो द्वारा उल्लिखित कामदशाओं का संक्षेप में उल्लेख हुआ है ।

यहाँ इन दशाओं का सैद्धान्तिक विवेचन तथा आलोच्य नाटककारों के उदाहरणों से उक्त तथ्य की पुष्टि की जायेगी कि इन दशाओं की अभिव्यक्ति के बिना वास्तव में विरह-वर्णन अधूरा रहेगा

विरह की ये कामदशाएं वस्तुतः अनुभावमात्र ही हैं जिन्हें एक निश्चित परिभाषाओं में आबद्ध कर दिया गया है । इन दशाओं को कभी पूर्वराग के तो कभी प्रवास के सम्बन्ध में तथा यत्र-तत्र सामान्य-वियोग के सम्बन्ध में प्रतिपादित किया गया है । दशरूपककार ने अभिलाषा, चिन्तन, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, सज्वर जड़ता और मरण[1], रसजंरीकार ने चिन्ता, अभिलाषा, स्मृति, गुणकीर्तन, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता तथा निधन एवं साहित्यदर्पणकार ने - अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण इत्यादि का उल्लेख किया है[2] प्रश्न यह है कि उक्त काम-दशाएं पूर्वराग में वर्णनीय है या प्रवास में इस विषय में काव्य-शास्त्रियों में मतैक्य नहीं है । डॉ0 रमाशंकर तिवारी ने लिखा है कि यदि प्रेम की उद्दीप्त असाधारण व्यक्तियों में असाधारण परिस्थितियों में होती है तब वह पूर्वराग की अवस्था में समागम से पूर्व उपर्युक्त समस्त दशाएं उत्पन्न हो सकती है । लेकिन सामान्यतया ऐसा सोंचना संगत जान पड़ता है कि इनमें से कुछ का ही समावेश पूर्वराग में होना चाहिए । उदाहरणतः अभिलाषा, चिन्ता, गुर्णकीर्तन तथा अधिक से अधिक उद्वेग की दशाएं ही उसमें सन्निविष्ट हो सकती हैं । शेष प्रलाप, उन्माद इत्यादि प्रवास में तो संभव एवं स्वाभाविक प्रतीत होती है क्योंकि प्रिय के अत्यन्त घनिष्ठ परिचय वा सुखभोग के अभाव में एसी उत्कट् दशाएं सम्भव नहीं होगी[3] ।

इस प्रकार मनीषियों के अनुरूप, अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण प्रमुख कामदशाएं निश्चित की जा सकती हैं । इन दशाओं के और आलोच्य कवियों के उदाहरण देकर अन्त में एतद्विषयक कवियों के दृष्टिकोण में साम्य-वैषम्य निरूपित किया जायेगा ।

1. अभिलाषा :-

प्रेमांकुर होने के बाद मिलन की इच्छा को अभिलाषा कहते हैं । आचार्य भरत ने लिखा है -

व्यवसायात समाख्यः संकल्पेच्छा सभुद्भवः ।
समागमोपायकृतः सोअभिलाषः प्रकीर्तित ।।[4]

1. दशरूपक 4/51 52
2. सा0 द0 3/190
3. श्रृंगार और साहित्य पृ0 116
4. नाट्यशास्त्र 22/173

अभिज्ञान शाकुन्तल में लज्जाशीला शकुन्तला ने किस प्रकार कुश पैर में चुभ जाने की व्याधि से दुष्यन्त की ओर साकांक्ष रूप में देखा है । कालिदास ने लिखा है -

दर्भाकरेण चरण: क्षत: इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।
आसीद्विवृन्तवदना च विमोचयन्ती
शाखास वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् ।।[1]

विक्रमोर्वशीयम् में प्रणयी पुरुरवा उर्वशी के समागम की आकांक्षा इस प्रकार व्यक्त करता है -

गूढा नूपुरशब्दमात्रमपि मे कान्ता श्रुतौ पातयेत्
पश्चादेत्य शनै: कराम्बुजव ते कुर्वीत वा लोचने ।
हर्म्येअस्मिन्नवतीर्य साहवसवशान्मन्दायमाना बला
दानीयेत पदात्पदं चतुरया सख्या ममोपान्तिकम् ।।[2]

नायक अग्निमित्र की दर्शनजनित लालसा कितनी चरम शिखर पर पहुंच गयी है इस वर्णन विदूषक इस प्रकार करता है -

गौतम, चिन्तय तावदुपायम् । यथा मे यदृच्छा दृष्टिप्रतिकृतिमालिविका प्रत्यक्षदर्शना भवतीति । मया च ऋथा कृतं ताक्स्मै निवेदयामि[3]

उत्तररामचरित में वासन्ती राम से सीता की आकांक्षा इस प्रकार व्यक्त करती है -

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वं भवस्तमार्ग दत्तेक्षण: ।
सा हंसै कृतकौतुका चिरमभद् गोदावरी सैकते[4] ।

मालती माधव में कामन्दकी माधव और मालती के अभिलाषा का इस प्रकार निरुपण किया है-

चिरादाशातन्तुस्त्रुततु षिसिनी सूत्रभिदुरो
महानाधिर्व्याधिर्निरवाधिरिदानीं प्रसरतु ।
प्रतिष्ठामण्याजं व्रजतु मयि पारिप्लवधुरा ।
विधि: स्थैर्य धत्तां अवतु कृतकृत्यश्च मदन:[5] ।।

1. अभिज्ञानशाकुन्तल 2/12
2. विक्रमोर्वशीयम् 3/15
3. मालविकाग्निमित्र, पृष्ठ 25
4. उत्तररामचरित 2/37
5. मालती-माधव 4/3

2. चिन्ता :-

चिन्ता का तात्पर्य है परस्पर समागम के उपायोग को चिन्ता कहा गया है । भरत ने लिखा है -

कनोपायेन सम्प्रप्तिः कथम् वा सम्भवेन्मम ।[1]

शकुन्तला को बहुत दिनों तक दुष्यन्त का समाचार नहीं मिला । वह अनेक प्रकार की चिन्ताओं में निमग्न हो गयी जिसका दुष्परिणाम भी उसे भोगना पड़ा । तर्क-वितर्क आदि संचारी भावों से चिन्ता अभिव्यंजित हुई है -

विचिन्तमन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।[2]

विक्रमोर्वशीयम् में राजा के द्वैअर्थक वचनों को सुनकर उर्वशी चिन्तन हो गयी, वह कहती है -

अनिर्भिन्नार्थेनानेन वचनेनाकम्पितं मम हृदयं । अन्तरिते एव श्रृणुनोअस्थ स्वैरालापं यावदावयोः संशयच्छेदो भवति[3] ।

मालविकाग्निमित्रम में मालविका की प्रियजनित चिन्ता अपने चरम रूप में इस प्रकार निदेर्शित की गयी है -

अविज्ञात हृदयं भतरिभिमिलषन्त्यात्मनौअपि तावल्लज्जे । कुतो विभवः स्निग्धस्य सखीजनस्येमं वृन्तान्तमाख्यः तुम् । न जानेअप्रितकार गुरुकां वेदना कियन्तं कालं मदनो मां नेष्यतीति । आः, कुत्र खलु प्रस्थितास्मि[4] ।

उत्तर राम चरित में मूर्च्छित राम अदृश्य सीता के स्पर्श से चेतनायुक्त होते हैं अभिलषित, हर्षित राम की चिन्ता का कोई आर पार नहीं है । वे इस स्पर्श को पअपनी सीता विषयक चिन्ता ही मानते हैं -

1. नाट्यशास्त्र 21/175
2. अभिज्ञान-शाकुन्तल, 4/1
3. विक्रमोर्वशीयम्, 2 पृष्ठ 110
4. मालविकाग्निमित्रम पृष्ठ 95

प्रसाद इव मूर्तस्ते स्पर्शः स्नेहार्द्रशीतलः ।

अद्याप्यानन्दयति मो, त्वं पुनः क्वासि नन्दिनि ? ।।

राम अथवा कुतः प्रियतमा ? नूनं सकंस्पाभ्यासपाटवोपादान एष भ्रमो रामभद्रस्य ।[1]

मालती माधव में मालती पुराऐतिहासिक गाथा को सुनकर चिन्तातुर होकर किस प्रकार सखियों की गोद में अपने अंगो को रखकर माधव के मिलन से चिन्तित रहती है -

शकुन्तलादीनितिहाएवादान प्रस्तावितानन्यपरैर्वचोभिः ।

श्रुत्वा मदुत्सगंनिवेशितागी चिराय चिन्तास्तिमितत्वमेति ।।[2]

महावीर चरित में सीताहरण की कील राम-हृदय में प्रविष्ट हो गयी है और उन्हें इस बात की चिन्ता है कि वे उस बेचारी के लिए कुछ नहीं कर पा रहे हैं । यही चिन्ता उनके मर्मस्पर्शो को छेदती सी प्रतीत होती है -

शोकस्तातविपत्तिजो दहति मां नास्त्वेव यस्मिन्क्रिया

मर्माणीव पुनश्छिनति करुणा सीतां बराकीं प्रति[3] ।।

3. स्मृति

आचार्य भरत ने कहा है कि प्रिय व्यक्ति के विषय में गम्भीर चिन्तन करते हुए अन्य कार्यो में अरुचि तथा बार-2 दीर्घ निःश्वास लेने को स्मृति कहते हैं -

मुहर्मुर्हनिश्वसिततैर्मनोरथाविचिन्तमैः

प्रद्वेषस्त्वन्यकार्याणिमनुस्मृतिरुदाहृता[4]

अर्थात् मिलन की अभिलाषा का पथ अवरूद्ध होने पर जब प्रेम का उन्मुखी भाव कुण्ठित हो जाता है तो विरही राम आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे लौटने लगता है । अतीत का

1. भवभूति ग्रन्थावली पृष्ठ 63
2. मालती माधव 3/3
3. महावीर चरित 5/22
4. नाट्यशास्त्र, 22/1-77

ओर प्रत्यावर्तन करके वह मिलन को ध्यान में पाने का प्रयत्न करता है और इस तरह चिन्तन में अपने प्रत्यक्ष के अभाव की पूर्ति करता है, इसको स्मृति कहते हैं[1] ।

शकुन्तला के परित्याग के कारण विकल्प प्रियतमा की दशा को स्मरण कर दुष्यन्त अत्यन्त अधीर होता है । वह विदूषक से कहता है -

इतः प्रत्यादेशात् स्वजनंमनुगन्तुं व्यवसिता
स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे ।
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यन्तत् सविषमिव शल्यं दहति माम्[2] ।।

विक्रमोर्वशीयम् में उन्मादग्रस्त पुरुरवा के विरह वर्णन में स्मृतियों का विशेष योगदान है क्योंकि उर्वशी का रूप, रंग, देह, यष्टि, अंग संचालन प्रकृति के अनेक उपादानों में स्वाभाविक रूप में प्रापत होता है । वह कहता है - सलिल पूर्ण तथा रक्तवर्ण फूलों से युक्त कन्दली वृक्ष क्रोध से रक्तवर्ण तथा सवाष्पा उर्वशी की आँखो की याद दिलाते हैं -

आरक्तराजिभिरियं कुसुमैर्नवकन्दली सलिलमर्भैः ।
कोपादन्तर्वाष्पे स्मरयति मां लोचने तस्याः[3] ।।

उत्तररामचरित में चित्रवीथिका के अनेक प्रसंगों में राम-सीता की सुखद स्मृतियां संयोजित हैं । गोदावरी के तट-सम्बन्धित स्मृति का एक चित्र द्रष्टव्य है -

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणी तटेषु
वैखानसाश्रिततरुणि तपोवनानि ।
येष्वातिथेयपरमा यामिनो भजन्ते
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि[4] ।।

1. आधुनिक हिन्दी काव्य में विरह भावना, डॉ0 मधुर मालती सिंह, पृष्ठ 54
2. शाकुन्तल 6/9
3. विक्रमोर्वशीयम् 4/15
4. उ0रा0 चरित, 1/25

इसी प्रकार महावीर चरित में सीता विरहित राम उनके उत्तरीय वस्त्र को देखकर शरद्कार्तिक चन्द्रमा से सुन्दर कान्ति वाले सीता की याद का वर्णन भवभूति ने इस प्रकार किया है -

दृशोः शरच्छीतकरप्रकाशः कायेअपि कर्पूरपरागपूरः ।
स्वान्तेअपि सान्द्रामृतकुम्भसेकस्तदा यदासीत्किल दृष्टमात्रम्[1] ।।

4. गुणकथन :-

जब नायक-नायिका संयोग काल में एक-दूसरे पर मोहित होते हुए भी किसी कारणवश एक दूसरे से अलग हो जाते हैं । उस काल में परस्पर गुणानुवाद करना ही गुण-कथन कहलाता है ।

आचार्य भरत ने लिखा है -

अंग प्रत्यंग लीलाभिर्वाक्चेष्टाहसिते क्षणैः ।
नास्त्यन्य सदृशस्तेनेव्येतत्स्याद् गुणकीर्तने[2] ।।

अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला के रूप, गुण, शील, यौवनोन्मेष का रसोप्रेचक वर्णन हुआ है । राजा कहता है कि विधाता ने सम्पूर्ण गुणों की कल्पना कर सौन्दर्य-समूह से विलक्षणा स्त्री-रत्न शकुन्तला का निर्माण किया है -

चित्रेनिवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृतानु ।
स्त्रीरत्नसृष्टिपरा प्रतिभाति सा मे, धातु विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ।।[3]

विक्रमोर्वशीयम् में पुरुरवा कहता है कि वे उर्वशी को उसकी मुखकान्ति एवं हंसगति को देखकर स्वतः ही पहचान लेंगें ।

1. महावीर चरित 7/17
2. नाट्यशास्त्र 22/179
3. अभिज्ञान-शाकुन्तल, 2/9

निशामय मृगाकसदृशेन वदनेन हंसगतिः

अनेन चिहनेन ज्ञासयस्याख्यातं तव मया ।।[1]

मालविकाग्निमित्रम में मालविका के अकृत्रिम रसपेषण रुप-सौन्दर्य का गुणानुवाद अग्निमित्र ने अनेक स्थान पर किया है । ऐसा निष्कलुष रूप और ऐसी दक्ष-कला प्रतीत होती है । कन्दर्प के बाणों को विषदग्ध बना दिया गया है -

अव्याजसुन्दरी तां विज्ञानेन ललितेन योजयता ।

परिकल्पिता विधात्रा बाणः कामस्य विषदग्धिः ।।[2]

उत्तरराम चरित में तमसा से सीता की स्थिति की सूचना प्राप्त कर राम उसके चंचल दीर्घा के एवं कम्पित गर्भभार से अलसायी सीता के छोटे-छोटे मृणाल सदृश, चन्द्रिका से निर्मित क्षीण-शरीर की प्रशंसा अशंका के माध्यम से गुणानुवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है-

त्रस्तैकहायनकुरगविलोलटेस्टस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः

ज्योत्स्नामयीवमृदुवालमृणालकल्पाक्रव्याद्भिरगंलतिकानियतं विलुप्ता ।।[3]

मालती माधव में मालती के एयोच्य का बहुविध वर्णन है । माधव अपने मित्र मकरन्द से सुन्दरता की अधिष्ठात्री देवी के सौन्दर्य की चर्चा इस प्रकार की है -

सा रमणीयकानिधेरधिदेवता वा, सौन्दर्यसारसमुदाय निकेतनं वा ।

तस्या सखे नियतमिन्दुकलामृणालज्योत्स्नादि कारणमभून्मदनश्च बेधा ।।[5]

5. उद्वेग :-

आचार्य भरत ने लिखा है कि निरन्तर मिलन की उत्सुकता बनी रहे, उसे उद्वेग कहते हैं[6] ।

1. विक्रमोर्वशीयम् 4/20
2. मालविकाग्निमित्रम 2/13
3. उ०रा०च०, 3/28
4. मालती माधव 1/22
5. नाट्यशास्त्र 22/181

विरह में अतीत की स्मृतियां मिलनेच्छा को अत्यन्त उत्कट बना देती हैं । वियुक्तावस्था के उस वर्तमान यथार्थ और विवशता से स्मृतियों और इच्छाओं को द्वन्द्व चलता है और मन बेचैन हो उठता है । उत्कट् इच्छा और परिस्थिति जन्य विवशता के संघर्ष से मन के अव्यवस्थित हो जाने को आवेग कहते हैं[1] ।

अभिज्ञान शाकुन्तल में दुष्यन्त और शकुन्तला दोनों के उद्वेग का वर्णन है, यहाँ चन्द्रमा दुष्यन्त के लिए अग्नि की वर्षा और कामदेव के पुष्प-बाण वज्र सदृश कठोर प्रतीत होते हैं -

तव कुसुमशरत्वं शीतरस्मित्वमिन्दो-
द्वयमिदमथार्थ दृश्यते मद्विधेषु ।
विसृजति हिमगर्भैग्निमिन्दुर्मयूखै -
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोपि[2] ।।

विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी के वियोग में दुष्यन्त उस दृश्य का स्मरण बार-बार करता है । जिस समय रथ के हिलने डुलने से उसका कन्ध उर्वशी के कन्धे से स्पर्श कर गया था । अतः शेष अंग उसे भारवत् प्रतीत होते हैं -

अयं तस्या रथक्षोभादंसेनांसो निपीड़ितः ।
एकः कृती शरीरेअस्मिंरोषमगं भुवो भरः ।।[3]

मालविकाग्निमित्रम में बकुलाबलिका द्वारा मालविका के पैरों में द्राक्षारस लगाने पर वह अग्निमित्र से समागम हेतु उत्सुक हो उठती है । किन्तु ऐसा अवसर उसके भाग्य में ही नहीं है । वह कहती है -

हदयं, अलं सुखितया, उपस्थितोअयं विभवः । कथं वेदानीयात्मानं मोचयेयम् । अथवा एतदेव में मृत्युमण्डनं भविष्यति ।[4]

1. आधुनिक हिन्दी काव्य में विरह भावना, डॉ0 मधुर मालती सिंह
2. अभिज्ञान शाकुन्तल 3/3
3. विक्रमोर्वशीयम् 3/11
4. मालविकाअग्निमित्रम्, पृष्ठ 103

उत्तररामचरित के प्रारम्भ में सीता के अपवाद को सुनकर वियोगजनित अशंका से राम का उद्वेग इस प्रकार अभिव्यंजित हुआ है ।

विस्त्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्रामुनमुच्य प्रियगृहिणी ग्रहस्य लक्ष्मीम्
आतकंस्फुरितकठोरगर्भगुर्वी क्रव्याद्भवो बलिमिव दारुणः क्षिपामि ।।[1]

इसी तरह माधव-मालती के वियोग में अपना उद्वेग इस प्रकार व्यक्त करता है -

किमपि किमपि शंके मंगलेभ्यो यदन्य
द्विरमतु परिहाश्चण्डि ! पर्युत्सुकोअस्मि ।
कलयसि ? कलितोअहं वल्लभे । देहि वाचं
भ्रमति हृदयमन्तर्विह्वल निर्दयासि ।।[2]

6. उन्माद, प्रालाप :-

उत्कट इच्छा और व्यवस्था के सन्दर्भ में जब मन में असंतुलन रहता है, जिसका प्रकटीकरण व्यवहार में होता है, उसे उन्माद कहते हैं ।

वाणीजन्य असम्बद्ध कथन प्रलाप है ।

आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है कि चेतन, अचेतन का विवेक न रहना ही उन्माद है -

उन्मादश्यपरिच्छेदश्चेतन-चेतनस्वपि

अभिज्ञान शाकुन्तल में दुष्यन्त का उन्माद और प्रलाप षष्ठं अंक में भूरिशः व्यंजित है । वह उस भ्रमट को दण्डित करना चाहता है, जिसमें उसकी प्रिया के रति सर्वस्व एवं बिम्बाधरों का स्पर्श करता है । वह कहती है -

राजा - एवं भोः, न मे शासने तिष्ठसि ? श्रुयतां तर्हि सम्प्रति -
अविलष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं पीतं भया सदयमेव रतोत्सवेषु । बिम्बाधरं स्पृशसि चेद् भ्रमर प्रियायास्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्पम् ।।[3]

1. भवभूतिग्रन्थावली, 1/49
2. माधव मालती, 8/12,
3. साहित्य-दर्पण 3/191
4. अभिज्ञान शाकुन्तल 6/20

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीयम् में प्रलाप और उन्माद की अनेक उक्तियां पुरुरवा द्वारा कथित हैं । उसे इस दशा में कुछ स्पष्ट ही नहीं हो रहा कि नयी बिजली वाला काला मेष बरस रहा है अथवा कोई निशाचर उसकी प्रिया मृगलोचना को अपह्रत कर रहा है । वह फिर से सोचने लगता है कि वह रम्भोरु कहाँ जा सकती है -

इति मूर्च्छितः पतति । पुनर्द्विपदिकयोत्थाय निःश्वस्य) मया ज्ञातं मृगलोचनां निशाचरः कोऽपि हरित । यावन्नु नवतडिच्छ्यामलो धाराधरो वर्षति ।।

(इति सकरुणं विचिन्त्य)

क्व नु खलु रम्भोरुर्गता स्यात ?[1]

अग्निमित्र मालविका के विरह में पश्चाताप करता हुआ अपने शारीरिक दौर्बल्य और अश्रुपात का कारण प्रियजनित आलिंगन एवं दर्शन का अभाव मानता है । किन्तु उस हृदयगत अधैर्य का कोई कारण ही ज्ञात नहीं क्योंकि करंगाक्षी से कभी विरहित नहीं होता अतः उसका परिताप निश्चय ही व्यर्थ है ।

शरीरं क्षामं स्यादसति दयितालिंनसुखे
भवेत्सास्त्रं चक्षुः क्षणमपि न सा दृश्यत इति ।
तया सारगांक्ष्या त्वमसि न कदाचिद्विरहितं
प्रसक्ते निर्वाणे हृदय परितापं ब्रजसि किभ ?[2]

उत्तररामचरित के प्रारम्भ में जनापवाद को सुनकर राम का स्वाभाविक विवेक शून्य सा हो जाता है । जिस समय उन्हें यह स्मरण आता है कि राम सीता का निर्वासन कर चाण्डाल जैसा क्रूर कर्म कर रहे हैं तो वे अपने को काष्ठप्राय शरीरधारी मात्र मानते हैं -

अपूर्वकर्मचण्डालमयि मुग्धे । विमुंच माम् ।
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाक विषद्रुमम् ।। (उत्थाय) हन्त हन्त । संप्रति विपर्यस्तो जीवलोकः अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य जीणरिण्यं जगत् ।[3]

1. विक्रमोर्वशीयम् 4/8
2. मालविकाग्निमित्रम, 3/1
3. उ0रा0 चरित, पृ 30 / प्रथम अंक

मालती-माधव में उन्माद-जन्य विरह दशा का बहुविध वर्णन नाटककार भवभूति ने किया है । विरही माधव उस अवस्था को प्राप्त हो गया । जब वे उन्मादग्रस्त होकर चतुर्दिक मालती को ही देखता है -

पश्चामि तामित इतः पुरतश्च पश्चा-
दन्तर्बहिः परित एव विवर्तमानाम् ।
उद्बुद्ध मुग्धकनकाब्जनिभं वहन्ती-
मासंगतिर्यगपवर्तितदृष्टि वक्त्रम्[1] ।।

इस नाटक में मालती और माधव दोनों के प्रलाप, असम्बद्ध कार्य-व्यवहार का नाटककार भवभूति ने विशद् रूप से वर्णन किया है । वह कहता है -

दलित हृदयं गाढोद्वेगं, द्विधा तु न मिथते
बहति विकलः कायो मोहं न मुंचति चेतनाम् ।
ज्वलयति तनूमन्तदहिः करोति न भस्मसा-
त्प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी, न कृदन्ति जीवितम् ।।[2]

7. जड़ता :-

आचार्य भरत की मान्यता है कि स्मृति शून्य अवस्था को जड़ता कहते हैं -

हा कष्टवाक्यातूष्णीका जडतायां गतस्मृतिः

साहित्य-दर्पणकार की भी मान्यता इसी प्रकार कि शारीरिक अथवा मानसिक निष्चेष्टता जड़ता है -

"जड़ता हीनचेष्टत्वमंगनां मनसस्तथर"

तात्पर्य यह है कि हर्ष, क्रोध का न होना तो मन की शून्यता ही है साथ में मिलन-उत्सुकता एवं उसकी सिद्धि में व्यवधान जब मन का व्यावर्तन करता है तो उसका अधिक

1. मालती माधव, 1/41
2. मालती माधव 9/12
3. नाट्यशास्त्र 22/189
3. साहित्य-दर्पण, 3/192

शून्य हो जाना स्वाभाविक एवं मनो वैज्ञानिक भी है, मन की यह जड़ता जब अंगों पर भी अधिकार कर लेती है, शरीर कृश हो जाने के कारण शैथिल्य आ जाता है । वह निष्चेष्ट एवं निरुपाय सा हो जाता है, यही जड़ता की दशा कहलाती है -

भवभूति ने उत्तररामचरित में राम की जड़ता का इस प्रकार वर्णन किया है -

असार संसारः काष्ठप्रायं शरीरं । अशरणोअस्मि । कि करोमि ? का गतिः ? अथवा

दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमागतम् ।

मर्मोपधातिमिः प्राणर्वज्रकीलायितं हृदि ।।[1]

इसी प्रकार मालती माधव में मालती इनती शिथिल अंग वाली हो गयी है कि दैनिक क्रियाएं परिवारजनों के अनुरोध से ही सम्पन्न करती है -

परिमृदितमृणालीम्लानमंग प्रवृत्तिः

कथमपि परिवारप्रार्थनाभिः क्रियासु ।

कलपति च हिमांशोर्निष्कलंकस्य लक्ष्मी माभिनवकरिदन्तच्छेदकान्तः कपोलः[2] ।।

इसी प्रकार मालती केवल थके हुए ग्लानियुक्त सुन्दर हथेली पर कपोल को रखे हुए दिनों को मिला देती है -

केवलं म्लायमानकान्तहस्तपर्यस्तगण्डमण्डल । दिवसान्गमयति ।[3]

8. व्याधि :-

आचार्य भरत ने प्रेम के समस्त सुखों से वंचित, पूर्ण निराशा की अवस्था में व्याधिक को स्वीकार किया है -

सर्वे निराकृतैः पश्चाद् व्याधि समुपजायते"[4]

विश्वनाथ ने भी दीर्घनिःश्वास, पाण्डुता, कृशता आदि को व्याधिक कहा है -

1. उ0रा0च0 1/47
2. मालतीमाधव 1/23
3. मालतीमाधव पृष्ठ 236
4. नाट्यशास्त्र 22/187

"व्याधिस्तु दीर्घनिःश्वासपाण्डुताकृशतादयः"[1]

अभिज्ञान-शाकुन्तल में शकुन्तला के तीव्र विरहजन्य व्याधि का बहुविध वर्णन कालिदास ने किया है । दुष्यन्त उसके अवस्वस्थ्य शरीर को देखकर विचार करता है कि प्रिया का स्तनों पर खसयुक्त और शिथिल मृणाल के कंकण से युक्त इस अस्वस्थ्य शरीर में कितना कामदेव का संताप है और कितना लू (गर्म हवा) का । एतद् सम्बन्धी दृश्य दृष्टव्य है-

शकुन्तला किं वीजयतो मां सख्यौ । (सख्यौ विषादं नाटयित्वा परस्पर व लोकयतः)

राजा बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला दृश्यते ।

(सवितर्कम्) तत्विमयनातपदोषः स्यात, उत यथा मे मनसि वर्तते । (साभिलापं निर्वण्यं)

अथवा कृतं सन्देहेन ।

स्तनन्यस्तोशीर प्रशिथिलमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीय वपुरिदम् ।
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसश्यो
र्न तु ग्रीष्मस्यैवः सुभगमपराद्ध युवतिषु[2]

विक्रमोर्वशीयम में पुरुरवा की वेदना अपने निसीम रूप में वर्णित की गयी है -

हृदयमिपुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं सदा
कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागम कारिणीम् ।
न च सुखदनामा लेख्येअपि प्रियामसमाप्य तां
मम नयनयोरुद्रबाष्पत्वं सखे न भविष्यति ।।
नितान्त कठिनां रुज मम न वद सा मानसी
प्रभावविदितानुरागमवमन्यते वाअपि माम्
अलब्धकलनीरसान्मम विधाय तस्मिंजने
समागममनोरथान्भवतु पंचबाणः कृती[3]

1. साहित्य-दर्पण, 3/192
2. अभिज्ञान-शाकुन्तल, 3/6
3. विक्रमोर्वशीयम् 2/10-11

मालतीमाधव में युगल दम्पतियों की आधि-व्याधि, शारीरिक, मानसिक विकलता का बहुविध वर्णन नाटककार ने किया है । माधव कहता है -

चिरादाशातन्तुस्त्रुततु बिसिनीसूभिदुरो
महानाधिर्त्याधिर्निरवधिरिदानीं प्रसरतु ।
प्रतिष्ठामव्याजं व्रजतु मयि पारिप्लव धुरा
विधिः स्थैर्यं धन्तां ञवतु कृतकृत्यश्च मदनः[1] ।।

तात्पर्य यह है कि शास्त्रीय आचार्यो ने विरह की जितनी दशाओं का उल्लेख किया है प्रायः सभी कामदशाएं किसी न किसी रूप में कालिदास एवं भवभूति के नाटकों में प्राप्त होती है । यद्यपि इन आचार्यो में इस बात का मतैक्य नहीं है कि यह दशाएं विरह के किस भाग (पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण) में मिलेंगी विश्वनाथ ने इनका परिगणन पूर्वराग में किया है । कुछ दशाएं करुण या प्रवासजन्य विरह के अन्तर्गत आती हैं । कालिदास नें अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन और उन्माद का । भवभूति ने इनके साथ ही उद्वेग, आधि,-व्याधि तथा प्रलाप का वर्णन विशेष रूप से किया है । दोनों नाटककारों ने पूर्वराग और प्रसास के कारण उक्त ग्रह दशाओं का रसोद्देचक वर्णन किया है ।

अभिज्ञान-शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, उत्तररामचरित में विशेष परिस्थितियों का विवेचन उपलब्ध है क्योंकि इनमें नायकों को कथा के प्रारम्भ में या मध्य में नायिकाओं का सानिध्य-सहवास प्राप्त हो गया है और इनमें कहीं पूर्वराग के तो कहीं प्रवासजन्य कामदशाएं वर्णित हैं । जिनमें अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति और गुणकथन अपने विविध रूपों में व्याख्यापित हैं । तो दूसरी ओर मालविकाग्निमित्र् एवं मालती माधव में नायकों को प्रिया का समागम, मिलन अन्त में ही हो पाता है । अतः इनमें नायकों की कामदशाओं का एक दूसरा ही रूप मिलता है । इन दशाओं के मूल में मिलन की तीव्र आकांक्षा, उत्कट् अभिलाषा पूर्णवेग में अभिव्यंजित हुई है । इनकी अभिलाषाओं का रंग अत्यन्त मादक, हृदय-प्रावक, मधुर और कोमल भावनाओं से संवलित हैं ।

महावीरचरित में विरह-दशाएं उनमें व्यंजित हैं । इस तरह पूर्वराग रूप में विरह-दशाओं की दृष्टि से अभिज्ञान-शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र और मालतीमाधव में श्रेष्ठ स्थल उपलब्ध

1. मालतीमाधव 4/3

होते हैं तो मान, प्रवास या करुण विप्रलम्भ की दृष्टि से विक्रमोर्वशीयम् और उत्तर रामचरित महत्त्वपूर्ण नाटक हैं । यहाँ यह कहना अत्यन्त समीचीन हैं कि काव्य-शास्त्रोक्त उग्र-विरह दशाओं का अभिव्यंजन मात्र कथा के आग्रह के कारण न होकर इनसे पात्रगत हृदय की तीव्रतम, उत्कट और उद्दाम लालसा कुछ अपवादों को छोड़कर प्रियजन्य ऐकान्तिक अनन्यनिष्ठा जिस रूप में अभिव्यंजित है, उसमें भौतिक सुख चाह के साथ उसे एक नये आध्यात्मिक या श्रेष्ठ दशा के रूप में अभिव्यंक्ति हैं । अभिज्ञान शाकुन्तल और उत्तर रामचरित में प्रिया का मिलना, बिछुड़ना, और पुनः प्राप्ति तो मालविकाग्निमित्र, मालती माधव में प्रथम बार अन्तिम अवस्था में ही मिलन वर्णित हैं । अतः नाटककारों ने इस कामदशाओं का काव्यशास्त्रीय, कामशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक भावभित्त पर एवं तद्गत सिद्धान्तों के प्रकाश में इनका वर्णन, विश्लेषण किया है । इस दृष्टि से शकुन्तल और मालती माधव नाटक अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं ।

3. विरह की स्थितियां :-

पूर्व पृष्ठों में विप्रलम्भ श्रंगार की शास्त्री दशाओं अभिलाषा, चिन्ता आदि का विश्लेषण कर यह कहा गया है कि दोनों नाटककारों ने वियोग के लौकिक पक्ष के साथ अलौकिक पक्ष को भी प्रस्तुत किया है यहाँ संक्षिप्त रूप में विरह की कुछ विशिष्ट स्थितियों का वर्णन किया जायेगा जो प्रायः दोनों नाटककारों में समान रूप से मिलती यद्यपि इन स्थितियों का अत्यन्त सूक्ष्म उल्लेख कहीं दशाओं में कहीं संचारी भावों के साथ उल्लेख हो चुका है तथापि इस प्रकार विरह की स्थितियां विस्तृत रूप में नाटकों में मिलती है जो मानसिक या आन्तरिक तथा कायिक है कुछ विरह स्थितियों के उदाहरण निम्नलिखित है

1. वैवर्ण्य :-

वैवर्ण्य का शास्त्रीय विवेचन करते हुए कहा गया है कि वर्ण विकार ही वैवर्ण्य है काममद शेष आदि के कारण अंगो का पीला पड़ना इसी के अन्तर्गत आता है ।

कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला के पूर्वराग के पश्चात् मद और कामावेग जन्य वैवर्ण्य का विवेचन इस प्रकार किया है - अनसूया प्रियंवदा और प्रच्छन्न रूप से दुष्यन्त के द्वारा वैवर्ण्य की अभिव्यंजना इस प्रकार की गई है -

क्षामक्षामकपोल माननमुरः काठिन्यमुक्त स्तनं
मध्यः क्लान्ततर प्रकामविनतावंसौछविः पाण्डुरा ।[1]

इसी तरह भवभूति ने उत्तररामचित में राम की शारीरिक कृशता, मालतीमाधव में मालती और माधव के प्रेमजन्य वैवर्ण्य का निरुपण इस प्रकार किया है मालतीमाधव का एक उदाहरण देखिये जिसमें माधव द्वारा मालती के वैवर्ण्य का इस प्रकार विवरण दिया गया है जिसमें हाथ आदि अंग मर्दित मृणाल की भाँति मलिन हो गये है नये काटे गये हाथी दूत के खण्ड की भाँति पीला उसका कपोल कलंक विहीन चन्द्रमा के समान लगता है -

परिमृदित मृणालम्लिानमंग प्रवृत्तिः
कथमपि परिवारप्रार्थनाभिः क्रियासु ।
कलयति च हिमांशोनिष्कलंकस्य लक्ष्मी
अभिनवकरिदन्तच्छेकान्तः कपोलः ।।[2]

2. कृशता :-

यह एक शारीरिक बाह्य या आँगिक विकार है, जिसमें चिन्ता, उन्माद, आधि-व्याधि के कारण शरीर अत्यन्त क्षीण और आसक्त हो जाता है, कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला और दुष्यन्त, विक्रमोर्वशीयम् में पुरुरवा एवं उत्तररामचरित में राम-सीता एवं मालतीमाधव में दोनो प्रेमियों की कृशता का बहुविध वर्णन हुआ है यहाँ आलोच्य नाटककारों के एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

अभिज्ञान शाकुन्तल में अंगूठी मिलने के पश्चात् अपमानित शकुन्तला को मुखछवि का चिन्तन एवं आत्मग्लानि के कारण दुष्यन्त का शरीर अत्यन्त कृश हो गया है फिर भी तेज की अभिवृद्धि हो रही है कालिदास ने लिखा है -

चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजो गुणादात्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोअपिनालक्ष्यते[3] ।।

1. अभिज्ञान शाकुन्तल 3/7
2. मालतीमाधव 1/23
3. अभिज्ञान शाकुन्तल 6/6

इसी प्रकार उत्तररामचरित में वासन्ती द्वारा राम की कायिक कृशता दैर्वल्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि राम बड़ी मुश्किल से पहचानने योग्य है -

विकलकरण: पाण्डुच्छाय: शुचा परिदुर्बल:
कथमपि स इत्युन्नेतव्यस्तथापि दृशो: प्रिय:[1] ।।

3. सन्ताप :-

सन्ताप का अर्थ है तेज गमी अग्नि कष्ट पीड़ा क्रोध आदि से उत्पन्न अनुताप प्रायश्चित इत्यादि मूलत: यह आन्तरिक या मानसिक कष्ट हैं वियोग की परिस्थिति में सन्ताप अत्यधिक कष्टदायक होता है ।

कालिदास और भवभूति ने विरह वर्णन करते समय संताप के अनेक भव्य उज्जवल चित्रों का अंकन किया है शकुन्तला का आन्तरिक परिताप असह्य कामवेदना और नारी सुलभ लज्जा के कारण दुष्यन्त के प्रति अपनी तीव्र आकांक्षा की अनिर्वचनीय स्थिति एवं दुष्यन्त का असमान वयक्रम सामाजिक, प्रतिष्ठा तथा शकुन्तला के प्रति उद्दाम अनुराग के कारण वितर्क एवं अपने दरबार से परित्यक्ता शकुन्तला की स्मृतिजन्य संताप का कालिदास ने अत्यन्त भावुक रूप में चित्रित किया है । इसी प्रकार विक्रमोर्वशीयम् में लता रूप में परिवर्तित उर्वशी के विरह में पुरुरवा का संताप सहृदयो को करुणा विगलित बना देता है । उत्तररामचरित संताप का वह अक्षय भण्डार सिद्ध हुआ है जिसमें राम के दोहरे संताप का कवि ने जिस तरह से निरुपण किया है वह पत्थरों को भी द्रवित करने में पूर्ण सक्षम हैं इसी तरह मालतीमाधव में नायक-नायिका के मिलन में अनेक व्यवधानों का उल्लेख कर भवभूति ने विरहजन्य संताप का स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रांकन किया है । यहाँ हम पिष्टपेषण से बचने के लिए दोनों नाटककारों के एक-एक उदाहरण प्रस्तुत करेगीं ।

अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त का शकुन्तला की याद में रात्रि जागरण करना उष्णश्वोच्छवास के कारण अधरो का अधिक रक्तिम होना तथा प्रिया की याद कर पश्चाताप करना नि:सन्देह दुष्यन्त के आन्तरिक संताप को व्यक्त करते हैं राजा सानुमति से कहता है कि पहले तो मृगनयनी प्रिया के द्वारा जगाया जाने पर भी सोता रहा अब यह मेरा नीच हृदय पश्चाताप के दु:ख के लिए जागा है

1. उत्तररामचितर 3/22

प्रथमं सारंगाक्ष्या प्रियया प्रतिवोद्ध्यमानमपि सुप्तम् ।
अनुशयदु:खायोदं हतहदयं सम्प्रति विबुद्धम ।।[1]

इसी प्रकार उत्तररामचरित में वनानचल में भ्रमण करते राम द्वारा सीता की स्मृति अत्यन्त स्वाभाविक हैं क्योंकि वे दोहरे मानसिक संताप से गुजर रहे है प्रिया का रावण द्वारा अपहरण और जनापवाद के कारण स्वयं निर्वासिता सीता की याद उनके हृदय में शल्यविध्य पीड़ा उत्पन्न कर रही है वे कहते हैं कि उनका हृदय विदीर्ण हो रहा है देहबन्ध शल्थ हो रहे हैं संसार सूना-सूना सा लग रहा है । निरन्तर सघन शोक की लपटों से भीतर ही भीतर वे जल रहे हैं विरह वेदना से पीड़ित अन्तरात्मा अवसन्न सी होकर गहन अंधकार में डूबती सी जा रही है ऐसी त्रासद परिस्थिति में वे हतभाग्य किंकर्त्तव्य विमूढ हो रहे हैं ।

हा हा देवि ! स्फुटति हृदयं, ध्वंसते, देहबन्धः,
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा विष्वङ्मोहः स्थगयति
कथं मन्दभाग्यः करोमि ।।[2]

4. वैकल्य :-

वैकल्य मानसिक भाव है जिसमें विकलता उत्तेजना अनस्तित्व का भाव निहित रहता है संयोग और वियोग में विकलता का अनुभव प्रेमीजन करते है वियोग की अभिव्यंजना विकलता की गम्भीरता से ही मानी जाती है रसिक जन जितना तीव्र अनुराग होगा उनकी विकलता तदनुरूप होती है शकुन्तला दुष्यन्त, पुरुरवा उर्वशी अग्निमित्र मालविका राम सीता एवं माधव-मालती ऐसे ही प्रणयी है जिनकी विकलता का वर्णन नाटककारों ने किया है यहाँ यह बात दृष्टव्य है कि दुष्यन्त पुरुरवा और अग्निमित्र पूर्व विवाहित है पत्नी प्रमदा कामिनी का सान्निध्य उन्हें पूर्व प्राप्त है इसलिए उनके द्वारा अभिव्यंजित विकलता में मात्र कामीजनों का काम वासना जन्य वैकल्य ही प्रतीत होता है जबकि भवभूति के नायक या तो प्रेमी है अथवा उनकी विकलता का आधार पत्नी है । प्रिया का अतिशय सामीप्य वियोग की अवस्था में जिस विकलता को जन्म देता है वह उनके

1. अभिज्ञानशाकुन्तल 6/7
2. उत्तररामचरित 3/38

गम्भीर एकनिष्ठ पत्नीव्रत होने का पुष्ट प्रमाण है तो दूसरी ओर अविवाहित माधव का मालती के प्रति गहन आसक्ति एवं तदजन्य वैकल्य स्वाभाविक और मनोविज्ञान की भित्त पर आधारित है, दोनों नाटककारों के एक-एक उदाहरण नीचे दिये जा रहे है ।

विक्रमोर्वशीयम् में अप्सरा उर्वशी पत्र द्वारा अपनी विकलता का कारण पुरुरवा के मनोभावों को ही बताती हुई कहती है कि अनुरोग से पूर्व हृदय वाले आपके प्रति हमारा जैसा अज्ञान या औदासीन्य आपने स्थिर कर रखा है यदि वैसी ही बात रहती तो हमारी यह देह पारिजात पल्लव से बने शैय्या पर क्यों इस तरह छटपटाती तथा उसे नन्दनवायु से भी सन्ताप क्यों होता -

स्वाभिन्संभाविता यथाहं त्वयाअज्ञाता ।
तथानुरक्तस्य यदि नाम तवोपरि
ननु मम लुलितपरिजातशयनीये भवन्ति ।
नन्दनवनवाता अप्यत्युष्णकाः शरीरके ।।[1]

मालती माधव में विकलता का चित्रण भवभूति ने बड़ी बारीकी से किया है वियोग जनित विकलता का तो वर्णन दोनो नाटककारों ने समान रूप से किया है किन्तु भवभूति ने आन्तरिक बाह्य द्वन्द पर आधारित जिस विकलता का वर्णन किया है वह निश्चय ही कवि की नवनिमेष कल्पना जन्य सार्मथ का प्रतीक है पिता भूरिवसु द्वारा नन्दन से मालती के विवाह की स्वीकृत वैवाहिक कृत्यों का अनमनस्क होकर मालती द्वारा सम्पादित करना जितना बाह्यअम्बर प्रतीत होता है आन्तरिक वैकल्य के अभिव्यक्ति का वैवर्ण्य इस प्रकार किया गया है मकरन्द माधव से कहता है -

इयमवयवैः पाण्डुक्षाभैरलंकृतमण्डना
कलितकुसुमा वालेवान्तर्लता परिशोषिणी
वद्दे्त च वरारोहा रम्यां विवाहमहोत्सव-
श्रियमुदयिनीमुद्‌मतां च व्यनक्ति मनोरुजनम् ।।[2]

5. **तन्मयता :-**

तन्मयता का अर्थ तल्लीन होना संयोग में तो प्रियपात्र प्रत्यक्ष रहता है जबकि वियोग में उसका मानस बिम्ब ही नेत्रीन्द्रिय गोचर होता है यह स्थित प्रेम की गम्भीरता को अभिव्यंजित

1. विक्रमोर्वशीयम् 2/13
2. मालती माधव 6/6

करते हैं प्रिय पात्र का निरन्तर स्मरण ध्यान तन्मयता को जन्म देता है शकुन्तला दुष्यन्त के विरह में इतनी तन्मय हो गयी है कि दुर्वासा ऋषि का सत्कार नही कर सकी परिणाम स्वरुप उसे दारुण वियोग का शाप मिलता है - नेपथ्य से यह शाप इस प्रकार कहा गया है जिसमें शकुन्तला की तल्लीनता अभिव्यंजित हुई है -

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।
स्मरिष्यति त्वां न स वोधितोअपि सन्
कथां प्रमतः प्रथमं कृतामिव ।।[1]

मालतीमाधव में मालती को देखकर माधव की तन्मयता दृष्टव्य है जिसमें वह अन्य सांसारिक सम्बन्धों से शून्य होकर एक मात्र मालती के रुप का स्मरण करता है -

यद्विस्मयस्तिमितमस्तमितान्यभाव-
मानन्दमन्दममृतप्लवनादिवासीत् ।[2]

6. विवशता :-

विवशता मन की वह आकांक्षा प्रधान मनोवृत्ति है जिसमें प्रिय मिलन की उत्कटता नैकट्य की चाह तथा परिस्थितियों के विरोध के कारणमिलने में बाधा पड़ती है इस प्रकार चाह और बाधा के बीच का मनोभाव ही विवशता है -

अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला के प्रथम दर्शन के समय दुष्यन्त के मन में शकुन्तला को ऋषि कन्या मानने का वितर्क, दुष्यन्त को देखकर शकुन्तला केमन का द्वेध भाव राजधानी आने पर प्रिय वियोग जन्य विवशता का वर्णन कालिदास ने किया है ।

यहाँ शकुन्तला की विवशता की अभिव्यंजना जिन कायिक अनुभावों से व्यक्त की गयी है, उससे उसे क्रिया विदग्धा एवं मुग्धा नायिका के बीच की स्थिति स्वीकार कर कालिदास ने उसकी विवशता का बड़ा अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया है । प्रियदर्शन की लालसा, स्त्रीयोचित लज्जा और परिस्थिति जन्य बहाने की कल्पना द्वारा शकुन्तला की विवशता अपने साकार रुप में अभिव्यंजित हुई है -

1. अभिज्ञान शाकुन्तल 4/1 2. मालतीमाधव 1/20

शकुन्तला अनसूये, अभिनवकुशसूच्या परिक्षतं मे चरंण कुरबकशाखापरिलग्नं च वल्कलम् ।
तावत् परिपालयत मां यावदेतन्मोचयामि ।
(शकुन्तला राजानमवलोकयन्ती सत्याजं विलम्ब्य सह सखीम्यां निष्क्रान्ता ।)[1]

विक्रमोर्वशीयम् में राजा पुरुरवा की विवशता बहुविध रुपों में अभिव्यंजित है जब उर्वशी लता रुप में परिगत हो जाती है । तीव्र विहर का अनुभव करते हुए पुरुरवा शल्थ हताश होकर प्रकृति के उपादानों में उर्वशी की खोज करता है । नाटककार कालिदास ने चतुर्थ अंक में पुरुरवा की विवशता अत्यन्त भाव विभोर होकर अभिव्यंजित किया है वह कहता है कि मन्दार पुष्पों से सुवासित अपनी प्रेयसी के जिन अलकों में इस लगाया जाता था ऐसी प्राणवल्भा के दुर्लभ होने पर यह मणि भी उसके लिए व्यर्थ सिद्ध हुई है ।

मन्दारपुष्पैरधिवासितायां यस्याः शिखायामयमर्पणीयः
सैव प्रिया संप्रति दुर्लभा मे किमेनमस्त्रोपहतं करोमि ।।[2]

भवभूति ने अपने नाटकों में दो प्रकार के विवशता का वर्णन किया है परिस्थितजन्य वियोग से उत्पन्न विवशता का वर्णन प्रायः सभी कवि करते है किन्तु अपने आदर्शो के अनुरुप आरोपित विवशता अत्यन्त घातक होती है क्योंकि परिस्थितिजन्य विवशता में प्रिय मिलन की एक आशा जीवित रहती है जबकि स्वतः आरोपित विवशता का कोई अन्त नहीं इसीलिये उत्तररामचरित में राम का मन पुटपाक की तरह दग्ध होता रहता है राम कहते है कि सीता के निर्वासन से वे शरण विहीन हो गये है उनका शरीर काष्ठ की भांति बन गया है वे कहते है -

काष्ठप्रायं शरीरम् । अशरवाअस्मि । किं करोमि ? का गतिः ?
अथवा
दुःखसंवेदनायैव राम चैतन्यमागतम् ।
मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि ।[3]

7. अरुचि :-

यह प्रेम का भाव कैसा विचित्र है जिसमें एक साथ आसक्ति अनासक्ति का संयोग रहता है प्रिय दर्शन की उत्कट् चाह संयोग और वियोग दोनों में होती है प्रिय सामीप्य के कारण

1. अभिज्ञानशाकुन्तल 1/पृ0 88 2. विक्रमोर्वशीय 4/6 3. उत्तररामचरित 1/47

संसार की प्रत्येक वस्तु मोहक और रुचिकर लगती है जबकि वियोग में प्रिय के आकर्षण की अधिकता के कारण संसार ही नहीं खान-पान जैसे दैन्दिनी कार्य में भी अरुचि उत्पन्न हो जाती है क्योंकि अहर्निश मन प्रिय का अनुचिन्तन करता हुआ संयोग कालिक क्रियायों की आन्तरिक आवृत्ति करता है ।

अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला के वियोग में राजा का राज-काज छोड़ बैठना अपनी पट्टमहिषी की उपेक्षा उनकी विवशता को ही सूचित करता है वह वेतवती को आदेश करता है कि आज देर से उठने के कारण वो धर्मासन में नहीं बैठ सकते अतः तत्सम्बन्धी कार्य मंत्री ही करें-

राजा वेत्रवति, मद्वचनादमात्यमार्यविशुनं ब्रूहि । चिर प्रबोधनन्न संभावितमस्मामिरद्य धर्मासनमध्यासितुम् मत्प्रत्यवेक्षितं पौरकार्यमार्यण तत्पत्रमारोप्य दीयतामिति ।[1]

भवभूति ने माधव की अरुचि का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है जिसमें निराशा निर्वेद की सीमा तक पहुंच गया है जिसके कारण वह महामांस विक्रय हेतु तत्पर हो गया है -

(सोद्वेगम्) हन्त, सर्वथा संशयितजन्मसाफल्यः सव्रृतोअस्मि । तक्ति कर्तव्यम् । (विचिन्त्य) न खलु
महामांसविक्रयादन्यमुपायं पश्चामि । (प्रकाशम्) लयस्य मकरन्द, अपि भवानुत्कण्ठते मदयन्तिकायाम् ।[2]

सांराश यह है कि कालिदास और भवभूति दोनों नाटककारों ने संयोग की अपेक्षा वियोग को अधिक महत्व दिया है । मालविकाग्निमित्र में अन्तःपुर के अन्दर चलने वाले षडयंत्रों के मध्य अग्निमित्र की अधीरता प्रदर्शित की गयी है । इसी प्रकार विक्रमोर्वशीयम् में भी अन्तःपुर और स्वच्छन्द प्रकृति की पृष्ठभूमि में यह वर्णित है वियोग के कोमल शुचि, उज्जवल, सरस रूप का निर्दशन अभिज्ञानशाकुन्तल में हुआ है जिसका प्रेमी विवाहित पुरूष दुष्यन्त है किन्तु निसर्ग कन्या शकुन्तला के प्रति उसका अनुरोग प्रथम पुरूष की तरह आसक्ति मय लगता है इसके विपरीत भवभूति नक विरह वर्णन आन्तरिक और बाह्य परिस्थितियों के कारण हैं दोनों कवियों ने काव्यशास्त्रीय एवं कामशास्त्रीय लक्षणानुधावन करते हुए विरह के सभी रूपों और दशाओं का वर्णन किया हैं । इस विरह वर्णन में नायक-नायिकाओं की अनेक आन्तरिक भावदशाओं एवं उसका प्रभाव कायिक

1. अभिज्ञानशाकुन्तल पृ0 334
2. मालती माधव पृ 258

क्रिया कलापों पर परिलक्षित होते हुए दिखाया गया है -

कायिक दैर्वल्य मूर्च्छा नैराश्य पाण्डुरता मनस्ताप स्वअस्तित्व की विस्मृति वैकल्य विवशता और भौतिक पदार्थो के प्रति अरुचि का परिस्थिति सापेक्ष वर्णन हुआ है यद्यपि दोनों नाटककारों न समान रूप से विरह की स्थितियों का निर्दशन किया है तथापि परिस्थिति की गम्भीरता और मनोवैज्ञानिक कारणों की दृष्टि से भवभूति की विरहजन्य स्थितियों अत्यन्त हृदयद्रावक और अभिभूत करने वाली है जबकि मालविकाग्निमित्रम् और विक्रमोर्वशीयम् में यह वियोग बैठ ठाले, कामीजनों का प्रणयालाप सा प्रतीत होता है प्रणय केलि आतुर नायक किस प्रकार अन्त:पुर की रीनयों को धोखा देकर नवीन सहचर्य के साथ प्रणय विलास में मस्त आकंठ मग्न रहता है अभिज्ञानशाकुन्तल में अवश्य ही यह विरह लौकिक विरह से वात्सल्य परिवसित वियोगजन्य आनन्द में अभिव्यंजित हुआ है ।

दोनों नाटककारों ने लक्षणों के अनुरूप विरह का वर्णन किया है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनके विरह में पिष्ट पेषण मात्र ही है यहाँ हम दोनों कवियों द्वारा वर्णित विरह वण्रन का वैशिष्ट् दिखाकर तब अन्त में एतद् विषयक कवियों को दृष्टिगत साम्य वैषम्य की तुलना करेगी ।

विरह वर्णन का वैशिष्ट्य

1. विविध भाव्यंजनाओं एवं संचारी भावों का सफल सन्निवेष -

पहले कहाँ जा चुका है कालिदास और भवभूति ने संयोग एवं वियोग कालिक विविध दशाओं का चित्रांकन किया है । ये भाव दशायें जहाँ एक ओर काव्यशास्त्रीय आहर सम्बन्धी अनुभावों कि अभिव्यंजनां हेतु श्रृंगार रसोपयुक्त संचारी भावों का सफल प्रयोग किया गया है । यहाँ हमारा यह प्रदर्शित करना अभीष्ट है कि दोनो नाटककारों ने अपनी विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप वियोग कालिक भाव दशाओं का वर्णन किया है । कालिदास के नायक अन्त:पुर की पस्थितियों के शिकार है जबकि भवभूति के नायक अन्त:पुर से बाहर प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में तादात्म्य स्थापित कर अपने विरह की अभिव्यक्ति की है । दुष्यन्त और अग्निमित्र कुछ सीमा तक पुरुरवा प्रथम दृष्टिकोण के उदाहरण है राम सीता मालती-माधव मकरन्द-मदयन्तिका द्वितीय कोटि के उ उदाहरण है । विरह की इस अभिव्यंजना के पीछे कही शाप तो कही आन्तरिक अनुपात है अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला का शाप तथा विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी का शापवस लता बन जाना उसके निर्दशन है ।

मौन व्यंजना :-

दोनो नाटककारों के पात्रों का हृदय प्रेम रस से परिपूर्ण है उनका प्रेम कल्पना नहीं संकल्प है भावना नहीं भाग्य है कामना नहीं काम्य है, इसीलिए दुष्यन्त का अत्यन्त संक्षिप्त विरह वर्णन एवं परित्यक्ता शकुन्तला का मारीच ऋषि के आश्रम में दुष्यन्त का भेंट कर अपने मान को रोक कर गम्भीर मौन के द्वारा जिस विरह की अभिव्यक्ति नाटककार ने की है वह निश्चय ही दाम्पत्य सम्बन्ध की आदर्शमयी परिस्थिति है शकुन्तला स्वगतरूप में कहती है -

शकुन्तला (स्वगतम्) दिष्ट्याअकारण प्रत्यादेशी नार्यपुत्रः न खलु शप्तमात्मानं स्मरामि । अथवा प्राप्तो मया स हि शापो विरह शून्य हृदमया न विदितः दर्शयितत्यमिति ।[1]

उत्तररामचरित तो राम के आत्ममन्थन का नाटक है उनके मन का अन्तरद्वन्द मुखर रूप की अपेक्षा मौन रूप में अधिक आकर्षण बन पड़ा हे राम की कायिक क्रियाओं से अभिव्यंजित वियोग का एक उदाहरण देखिए -

तत्किमस्पृश्यः पातकी देवी दूषयामि ? (इति सीतायाः शिरः समुन्नमम्य बाहुमाकृष्य)

अपूर्व कर्मचण्डालमयिमुग्धे ! विमुंच मात्र ।
श्रितासि चन्दन भ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम् ।।[2]

आत्मदशा की अभिव्यक्ति :-

कालिदास और भवभूति के नाटकों में विरह निरुपण में जितनी गहनता, आकुलता, मार्मिकता, प्रौढ़ता और प्राज्वलता मिलती हैं उसके मूल में नायक या नायिकाओं की आत्मदशा की विवृति हैं, पुरुष चाहे वह दुष्यन्त हो या पुरुरवा, राम हो या माधव अपने वियोग की अभिव्यंजना निर्भीक होकर करते हैं जबकि पारिवारिक मर्यादा नारी सुलभ लज्जा के कारण शकुन्तला, मालविका और मालती उतने मुखर खब्दों में अपने आत्मदशा की अभिव्यक्ति नहीं कर पाती है अप्रत्यक्ष संकेतो अंपग दृष्टि तीर्यक मुख मन्दगगति से गमन आलस्य इत्यादि से अपना दृढ़ प्रेम एवं तद्जन्य वियोग की अभिव्यक्ति की गयी है ।

1. शाकुन्तल पृष्ठ 445   2. उत्तरराम चरित्र 1/46

शकुन्तला का निश्छल प्रथम कामावेग कितने स्वाभाविक रूप में अभिव्यंजित हुआ है उसकी अनुभूति पाठक को सहज ही जाती है मुग्धा नायिका का आत्म संघर्ष उसे अभिनव सोपना में प्रतिष्ठित करता है ।

मालविका का स्थिति तो और भी गम्भीर है हृदय रूप में बनी हुयी दासी नृत्य करते समय अपने दीर्घ अपांगो से ही अग्निमित्र के समक्ष अपनी प्रणय याचना करती है ।

उद्दीपन एवं प्रकृति :-

उद्धीपन विभाव के अन्तर्गत नाटकों में वर्णित प्रकृति पदार्थो के रूपों का विरह उद्वेलन में कितना महत्वपूर्ण हाथ है यह लिखा जा चुका है प्रायः दोनों नाटककारों के पात्र विरही अवस्था में प्राकृतिक क्रिया कलापों को देख अत्यधिक उद्धीप्त हो जाते हैं यह प्रकृति उन्हें चैन से नहीं रहने देती प्रतिक्षण संतप्त करती है रात्रि जागरण के लिये बाध्य करती है पुरुरवा का प्रकृतिगत पशुपक्षीयों के क्रीडालापों को देखकर उनसे उर्वशी के अंगो की स्मृति कर अपने विरह का करुणगान किया गया है ।

निष्कर्ष यह है कि दोनों नाटककारों के नायक नायिकाओं केविरह उद्धीपन हेतु प्रकृति का आवलन लिया है प्रकृति उद्धीप्त, यह विरहानुभूति कही कामातुरता को प्रगट करती है तो कहीं सात्विकता एवं पवित्रता को भी, पत्नी जब प्रेयषी बन जाती है तब उसका विरह द्विगुणीत होकर नायक को अत्यधिक गम्भीर प्रेमी के पद पर अभिसिक्त करती है राम और सीता उसके उदाहरण है -

उपालम्भ :-

संयोग हो या वियोग उपालम्भ अत्यन्त स्वाभाविक प्रियगत अपेक्षाओं आकांक्षाओं का द्वैतक है । दोनो नाटककारों ने अपने प्रेम की गहराई केलिये उपालम्भ का सहारा लिया है दुष्यन्त के प्रति हंसपदिका का प्रतीकात्मक उपालम्भ मालविकाग्निमित्रम् में रानीधारणी देवी का उपालम्भ मालती माधव में मालती एवं मदयन्तिका का उपालम्भ पात्रस्थ विरह का द्वैतक है ।

उत्तरराम चरित के सप्तम अंक में सभी अयोध्यावासियों के समक्ष सीता अपने लांक्षन को स्मरण कर अपने पुत्रों के संस्कार केलिये राम को उपालम्भ देती हुयी पृथ्वी से कहती है कि वह सीता को अपने अंगो में विलीन कर ले क्योंकि मनुष्य लोक में ऐसा तिरस्कार नहीं सहन कर

पा रही है ।

सीता नयतुमामात्मनोअंगे विलयमम्बा । न
सहिष्यामीदृशं जीवलोकस्य परिभवमनुमवितुम् ।[1]

प्रेम प्रेषण की शैली :-

कालिदास और भवभूति के नाटकों में प्रेम स्वरूप का विश्लेषण करते हुये यह देखा गया है कि प्रिय पात्र का प्रेम अनन्य है उसमें दृढ़ता निर्भीकता है एकाग्रता के कारण ही उन्हें कष्ट या पीड़ा का विशेष अनुभव करना पड़ा है इस दारुण वियोग की अभिव्यक्ति कही पत्र लेखन से तो कही मित्र या सखी के समक्ष आत्म निवेदन से हुआ है अभिज्ञानशाकुन्तलम् विक्रमोर्वशीयम् में प्रेम प्रेषण पत्र द्वारा हुआ है जिसमें हदय का गाढ़ अनुराग प्रिय की अपेक्षा या निष्ठुरता का मार्मिक विवेचन हुआ है सखीयों के आग्रह से शकुन्तला जिस प्रकार कोमल कमल पत्र पर नख निक्षिप्त वर्णो से अपने विरह को अभिव्यक्त करती है उसमें नायिका की सांकाक्षा कामावेग, कुलशील मर्यादा के बन्धनों का ही अधिक प्रावल्य है किन्तु अनन्य प्रेम किसी बन्धन में बंधता नहीं शकुन्तला कहती है -

शकुन्तला तब न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवाअपि रामावपि ।
निर्घृण, तपति वलीयस्त्वयि वृन्तमरोरथाया अंगानि[2] ।।

यहाँ यह कहना पिष्टप्रेषण मात्र ही होगा कि उत्तरराम चरित में तमसा, वासन्ती आदि समवयस्काओं के समक्ष राम का अन्तर रुदन मुखर रूप से अभिव्यंजित हुआ है । मालती माधवम् में मालती द्वारा अपनी सहेलियों एवं माधव द्वारा मकरन्द के समक्ष अपने विरह की उतप्त अस्तुत वेदना अभिव्यंजित की गयी है ।

5. नाटककारों के वियोग श्रृंगार वर्णन का तुलनात्मक अध्ययन :-

निष्कर्ष यह है कि श्रृंगार की पुष्टि के लिए वियोग श्रृंगार का सुन्दर एवं प्रभावोदत्पादक वर्णन अपेक्षित है क्योंकि इस प्रकार के वियोग वर्णन के बिना संयोग भलीभाँति पुष्टि को नहीं प्राप्ति होता है वियोग से प्रेम में परिपक्वता एवं दृढ़ता आती है इस काल में आलम्बन के प्रति प्रेम की

1. उत्तरराम चरित पृ0 166
2. अभिज्ञानशाकुन्तल 3/13

भावनायें दिनानुदिन अधिकाधिक पुष्ट होती जाती है और वे अपने पूर्ण चरमोत्कर्ष पर पहुंचती है यहाँ हम आलोच्यनाटककारों के विरह वर्णन सम्बन्धी साम्य एवं वैषम्य को दिखला रहे है ।

(क) साम्य :-

दोनों नाटककारों के नायक और नायिकायें तीव्र विरह का अनुभव करके अन्त में संयोग को प्राप्त होते हैं दुष्यन्त एवं शकुन्तला, विक्रम और उर्वशी, मालविका-अग्निमित्र, राम-सीता एवं मालती-माधव सभी वियोग के बाद परस्पर मिल जाते हैं ।

2. वियोग का कारण बाह्य परिस्थितियां हैं जिसमें शाप जनापवाद और माता पिता द्वारा अन्यत्र विवाह करने के लिए तत्पर होना आदि बाह्य घटनायें प्रमुख है शाकुन्तल और विक्रमोर्वशीयम् में शाप तो उत्तररामचित में लोकापवाद का प्रमुख योगदान है ।
3. इस वियोग काल को व्यतीत करने के लिए नायक या नायिका प्रकृति के सुरम्य वातावरण में रहता है जहाँ उसे प्राकृतिक निर्सग सुषमा तथा वन देवी-देवियों से सहयोग प्राप्त हुआ है इस परिस्थिति के कारण जहाँ एक ओर नायक नायिकाओं के ऐकान्तिक विलास का अवसर प्राप्त हुआ है वहीं दूसरी ओर मनुष्य और प्रकृति के उदान्त जीवन पर भी प्रभाव पड़ा है
4. दोनो नाटककारों ने नायकों के विरह का तद्जन्य आन्तरिक बाह्य चेष्टाओं का अत्यन्त सरस रूप में चित्रण किया है, पुरुरवा और राम का अनुताप, माधव और दुष्यन्त का विलाप इसके उदाहरण है ।
5. दोनों नाटककारों ने प्रवासजन्य वियोग श्रृंगार का अधिक वर्णन किया है ।
6. दोनों नाटककारों ने चिन्ता अभिलाषा, स्मृति, गुणकथन, जड़ता, वैकल्य, सन्ताप तथा आंगिक कृशता गम्भीर भावों की व्यंजना, उपालम्भ और प्रकृति द्वारा उद्दीप्त वियोग श्रृंगार हृदयद्रावक रूप में चित्रित किया है ।

(ख) वैषम्य :-

वैषम्य से हमारा तात्पर्य यह है कि वियोग वर्णन में समानता होने पर भी उसके चित्रण में कितनी विषमता है निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है ।

1. दोनों नाटककारों के नायकों में बहुत अन्तर है कालिदास के नायक पूर्व विवाहित हैं पत्नी सामीप्य, ऐन्द्रिय सुखोपभोग का उन्हें पूर्व अनुभव है अवस्था से परिपक्व प्रौढ़ प्रतीत होते है ।

उनकी नायिकायें पूर्ण युवती सकाम अथवा प्रणयकेलि में नितान्त चतुरा है इसके विपरीत भवभूति के नायक राजा अथवा कुमार युवक है उत्तररामचरित का प्रेम तो एक पत्नी का प्रेम है जिसमें पति की एक निष्ठा और लौकिक से अलौकिक बनने की अमर गाथा है इसी प्रकार मालतीमाधव में मालती और माधव मकरन्द और मदयन्तिका दोनों प्रणयी अविवाहित है प्रथम दर्शन से उत्पन्न रूपासक्ति क्रमशः प्रगाढ़तर होकर सहज स्वाभाविक रूप में वियोग वर्णित हुआ है । इस विषय में दोनों कवियों में दृष्टिकोणगत भिन्नता है कालिदास की शकुन्तला तीव्र वाहिनी उद्दाम वेग से तरंगित होने वाली सरित है तो उर्वशी अनेकानेक पुरूषों से प्रणयालाप करने वाली है तो भवभूति की सीता शान्त अविचलित समुद्र के समान है जिसमें व्यथा का ज्वार तो है किन्तु अपने मर्यादित रूप में है ।

2. कालिदास ने वियोग की अपेक्षा संयोग का कोमल और सकुमार रूप प्रस्तुत कर तदुपरान्त वियोग का वर्णन किया है जबकि भवभूति ने वियोग के अन्दर ही स्मृति रूप में संयोग कालिक क्रियायों का पुर्नस्मरण उत्तररामचरित में किया है यह एक प्रकार से दोहरे विप्रलम्भ का वर्णन है ।

इसी प्रकार मालतीमाधव में स्वप्न अथवा अन्य परिस्थितियों में संयोग की अभिव्यंजना हुई है ।

3. रस दशा की दृष्टि से कालिदास का वियोग मौन रूप में अधिक मुखर है जबकि भवभूति की विरह बहुत मुखरित हुआ है इस वियोग वर्णन में अन्य रसों का भी समावेश हुआ है इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि काव्यशास्त्री मानदण्डों के आधार पर भवभूति का विरह अधिक अलंकृत और काव्यशास्त्रीय है जबकि कालिदास का विरह कामेच्छा प्रधान ही होकर रह गया है ।

4. सहृदय की दृष्टि से जब हम विप्रलम्भ श्रृंगार की तुलना करते हैं तो यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास के नाटकों में दर्शक या सामाजिक तादात्मय रूप में वियोग का अनुभव करता है क्योंकि उसके नायक या नायिकायें सामान्य कोटि के नायक है जबकि उत्तररामचरित में दृष्ट और तादात्म्य रूप से रसानुभूति से होती है क्योंकि राम और सीता पूज्य और पूज्या है जिसमें रसानुभूति दृष्टा भाव से ही हो सकती है । अतः भवभूति की रसानुभूति दो स्तरों की है ।

निष्कर्ष यह है कालिदास और भवभूति दोनों नाटककारों ने प्रथम दर्शन, सामीप्य आदि के कारण उत्पन्न रूपाशक्ति कही मिलन तो कही प्रवास आदि के कारण उत्पन्न वियोग का वर्णन किया है जिसमें यत्र-तत्र कवि परम्परा प्रचलित रुढ़ियों के अनुसार वियोग का वर्णन कर लक्षणानुधावन का आश्रय लिया है । याद्विप अधिकांश स्थानों में इस विरह वर्णन में सरसता गम्भीरता मौनव्यंजना, तरलता और हृदयद्रावक्ता है दोनों नाटककारों के विरह वर्णन के सम्बन्ध में संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कालिदास का विरह वर्णन संक्षिप्त आकर्षक और हृदय को भाव विभोर करने वाला है जबकि भवभूति का विरह गम्भीर, विस्तृत और हृदय को करुणा से द्रवित करने वाला है ।

सहायक सामग्री

संस्कृत ग्रंथ

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम : कालिदास डॉ0 कपिल द्विवेदी रामनारायण लाल
2. विक्रमोर्वशीयम् : कालिदास अनु0 रामचन्द्र मिश्र चौखम्बा
3. मालविकाग्निमित्रम : कालिदास
4. उत्तर रामचरित : डॉ0 कपिल देव द्विवेदी
5. मालती माधवम् : शेषराज शर्मा चौखम्बा
6. महावीर चरितम् : रामचन्द्र मिश्र चौखम्बा
7. शिशुपाल वध : माघ
8. कुमार सम्भवम् : कालिदास
9. कालिदास ग्रंथावली : सम्पा0 सीताराम चतुर्वेदी
10. अभिनव भारती : अभिनवगुप्त विश्वेश्वर, दिल्ली 1952
11. साहित्य दर्पण : विश्वनाथ मोतीलाल बनारसीदास 1956
12. नाट्य शास्त्र : आ0 भरत मनमोहन घोष कलकत्ता
13. कामसूत्र : वात्स्यायन अनु0 पी0 सी0 वागची, नवम् संस्करण

0 काव्यानुशासन : हेमचन्द्र

0 वाल्मीमि रामायण : गीताप्रेस

0. रसामृत सिन्धु : रूपगोस्वामी

0 श्रृंगार प्रकाश : भोज

0 सरस्वती कण्ठाभरण : भोजदेव, कलकत्ता

0 रस तरंगिणी : भानुदत्त

0 भाव प्रकाशन : शारदतनय गायक वाड ओरि0 सिरीज 1930

0 दश रूपक : धनज्जय अनु0 भोला शंकर व्यास चौखम्बा

0 नाट्य शास्त्र : भरत मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली 1964

0 साहित्य-दर्पण : डॉ0 सत्यव्रत सिंह चौखम्बा

हिन्दी ग्रंथ

1. सौन्दर्य तत्व : डॉ0 दास गुप्त
2. सौन्दर्य विज्ञान : हरिवंश सिंह काशी विद्यापीठ 1963
3. चिद्विलास : सम्पर्णानन्द
4. भारतीय सौन्दर्य की भूमिका : डॉ0 फतेह सिंह
5. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र : बलदेव उपाध्याय
6. सौन्दर्य तत्व की भूमिका : डॉ0 आनन्द दीक्षित, प्रकाश दीक्षित
7. सौन्दर्यशास्त्र : डॉ0 हरद्वारी लाल शर्मा, साहित्य भवन इलाहाबाद 1953
8. कला और साहित्य : डॉ0 रामकुमार वर्मा, प्रयाग
9. रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र निर्मला जैन
10. पदमावत् : मलिक मुहम्मद जायसी, सम्पा0 रामचन्द्र शुक्ल, काशी
11. चिन्तामणि भाग-1 : रामचन्द्र शुक्ल, इण्डियन प्रेस, प्रयाग
12. सौन्दर्य शास्त्र के तत्व : डॉ0 कुमार विमल, राजकमल, दिल्ली
13. साहित्य और सौन्दर्य : डॉ0 फतह सिंह प्रथम संस्करण
14. सौन्दर्य तत्व और काव्य सिद्धांत डॉ0 सुरेन्द्र वाटलिंगे अनु0 डॉ0 मनोहर काले, नेशनल पब्लिशिंग, दिल्ली।
15. भवभूति और उनका उत्तर रामचरित डॉ0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, कानपुर
16. महाकवि भवभूति और उनकी नाट्य कला डॉ0 अयोध्या प्रसाद सिंह, मोतीलाल, दिल्ली
17. काव्य-दर्पण : रामदहिन मिश्र
18. रस सिद्धांत : डॉ0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
19. व्रजभाषा साहित्य में नायिका भेद डॉ0 प्रभुदयाल मित्तल- द्वितीय सं0
20. कालिदास : डॉ0 रमाशंकर तिवारी
21. श्रृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन डॉ0 राजेश्वर चतुर्वेदी

अंग्रेजी ग्रंथ

1. लेवचर्य ऑन आर्द : जान रस्किन
2. व्यूटी ऑफ यूटिलिटी : पेफ्रे एवं एलिशन
3. एस्थेटिक क्रोचे अनावादक : डी0 ए0 सवी 1953 संस्करण
4. परसेप्शन : सकाट जेम्स
5. एल्यूशन एण्ड रियलटी : काडवेल
6. दि फ्यूचर ऑफ पोयट्री : अरविन्द पाण्डचेरी
7. ए स्टडी इन दि साइकोलॉजी ऑव सेक्स- हैवल के-एलिस- 1921 संस्करण
8. दि मीनिंग ऑव व्यूटी : ए0 न्यूटन (1950 संस्करण)
9. स्टडीज इन संस्कृत एस्थेटिक्स :
10. ए जनरल इन्ट्रोडक्शन टू साइको : एनलिसिस- फ्रायट- लंदन

कोश एवं पत्रिकाएं

1. वाचस्पत्यान् :
2. संस्कृत हिन्दी कोश : आपटे
3. हिन्दी साहित्य कोश : डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा- वाराणसी